विषय सूची ।

विषय सूची।

श्री वीतरागाय नमः ।

शांतिनाथ पुराण

मंगलाचरण—नमः श्रीशांतिनाथाय, जगच्छान्ति विधायिने । कृत्स्नकर्मौघशांताय शांतये सर्वकर्मणाम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो शांतिनाथ भगवान् समस्त संसारको शांति देने वाले हैं और समस्त कर्मोंके समूहको शांत वा नष्ट करने वाले हैं ऐसे शांतिनाथ भगवान्को मैं (ग्रन्थकर्ता श्री भट्टारक सकलकीर्ति) समस्त कर्मोंको शांत वा नष्ट करनेके लिए नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जो शांतिनाथ भगवान इस संसारमें सोलहवे तीर्थंकरके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, समस्त देव जिनकी पूजा करते हैं, जो तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार हो चुके हैं, जो इस संसारमें महाराज पॉचवे चक्रवर्तीके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिन्हें समस्त राजा सब देव और सब विद्याधर नमस्कार करते हैं, जो कर्मोंको नाश करनेवाले जिनोंके भी स्वामी हैं, जो कामदेवके नामसे बहुत प्रसिद्ध हैं तथापि कामदेवको ही जीतनेवाले हैं जो अतिशय रूपवान हैं, जो जिनेंद्र हैं और जिन्होंने तीनों लोकोंमें अनेक गण स्थापित किये हैं, ऐसे श्रीशांतिनाथके दोनों चरणकमलोंको मैं उन शांतिनाथके समस्त गुण समूहकी सिद्धि वा प्राप्ति होनेके लिये नमस्कार करता हूं । शांतिनाथके उन दोनों ही चरणकमलोंमें अनेक शुभ लक्षण विराजमान हैं और उन्हें श्रीगणधर देव भी सदा बंदना करते रहते हैं ॥ २-५ ॥ मैं उन वृषभदेवको भी धर्मकी प्राप्ति होनेके लिये नमस्कार करता हूं जिन्होंने इस संसारमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिकी है, जो धर्मके स्वामी हैं धर्मके दाता हैं और जिनराजके भी स्वामी हैं ॥ ६ ॥ जिन्होंने युगके प्रारम्भमें मोक्ष मार्गको प्रगट करनेके लिये अपनी वचनरूपी किरणोंसे संसारका अज्ञानांधकार दूरकर

धर्मको प्रकाशित किया है, जो अत्यंत निर्मल हैं, जिनका आत्मा सुखस्वरूप है जो धर्मकी ही प्रवृत्ति करनेवाले हैं और इस युगके प्रारम्भमें तीर्थंकरोंमें सबसे पहिले सिद्ध होनेवाले हैं ऐसे जिनेंद्ररूपी सूर्य भगवान वृषभदेवके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७–८ ॥ जो भव्यलोगोंके हृदयरूपी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करनेवाले हैं अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करने वाले हैं चन्द्रमाके समान कांतिको धारण करनेवाले हैं और चन्द्रमाका ही जिनके चिह्न है ऐसे चंद्रप्रभ स्वामीको भी मैं नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥ जो अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीसे विभूषित हैं इच्छानुसार पदार्थोंको देनेवाले हैं, कायको नाश करने वाले हैं मुक्तिरूपी स्त्रीमें आसक्त हैं और अपनी स्त्रीके करस्पर्शके (पाणिग्रहण वा विवाहका) परित्याग करनेवाले हैं ऐसे सर्वोत्कृष्ट श्रीनेमिनाथके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥ तीनों लोक जिनकी सेवा करता है और जिनमें अनंत महिमा विराजमान है ऐसे पार्श्वनाथ जिनेंद्रदेवको मैं उनके निकटवर्ती होनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ११ ॥ जिनका निरूपण किया हुआ धर्म आज पाँचवें दुखम कालमें भी वर्तमान है तथा जिस धर्मको अनेक श्रेष्ठ मुनिराज और श्रावक सदा धारण करते रहते हैं ऐसे श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीको मैं तीनों लोकोंका हित करनेके लिये प्रतिदिन नमस्कार करता हूं क्योंकि वे वर्द्धमान स्वामी ही कर्मरूप शत्रुओंको शांत करने वाले हैं ॥ १२–१३ ॥ समस्त देव और मनुष्य जिनकी स्तुति करते हैं, जो तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं और जो धर्मसाम्राज्यके स्वामी हैं ऐसे बाकीके समस्त तीर्थंकरोंको भी मैं नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ जो श्रेष्ठ गुणोंके द्वारा सब समान हैं, इस संसारमें महा अतिशयोंसे सुशोभित हैं, प्रातिहार्योंसे विभूषित हैं अनन्त गुणोंसे विराजमान हैं भव्यजीवोंको आत्मज्ञान करानेवाले हैं और मुक्तिरमाके स्वामी हैं ऐसे चौवीस तीर्थंकरोंको मैं प्रारम्भ किए हुए कामको पूर्ण करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १५—१६ ॥ जो पूर्व विदेहक्षेत्रमें अब भी धर्मकी प्रवृत्ति कर रहे हैं और चारों प्रकारके संघके मध्यमें विराजमान हैं, समस्त देव मनुष्य जिनकी पूजा करते हैं जो भव्यजीवोंके लिये अद्वितीय वा सर्वश्रेष्ठ बंधु हैं धर्मकी खानि हैं समस्त संसारको आनन्द देनेवाले हैं और जिनाधीश हैं ऐसे श्रीसीमंधर देवको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७--१८ ॥

ढाई द्वीपमें और जो देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे अनेक तीर्थंकर हैं उन सबको भी मैं नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ जो श्रेष्ठ धर्मके प्रगट करनेवाले हैं जिनेंद्र हैं गणोंके स्वामी हैं, तीनों लोकोंके जीव जिनकी सेवा करते हैं जो केवलज्ञानरूपी दीपकसे सुशोभित हैं अनंत दर्शनसे विभूषित हैं अनेक सुखसे विराजमान हैं और श्रेष्ठ मुक्तिको देनेवाले हैं ऐसे तीनों कालमें उत्पन्न होनेवाले अतिशय शूरवीर तीर्थंकरोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २०—२१ ॥ जो कर्मरूपी शत्रुओंसे रहित हैं, आठ गुणोंसे सुशोभित हैं, लोकके शिखर पर विराजमान हैं, जिननाथ तीर्थंकर भी जिन्हें नमस्कार करते हैं और सब तरहके क्लेशोंसे रहित हैं ऐसे श्रीसिद्ध परमेष्ठीको मैं उनके गुण समूह प्राप्त होनेके लिए अपने मनमें सदा स्मरण करता हूं ॥ २२—२३ ॥

जो इस संसारमें दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य और तप इन पंचाचार गुणोंको स्वयं पालन करते हैं और मोक्ष प्राप्त करानेके लिये अपने शिष्य मुनियोंसे पालन कराते है ऐसे देवोंके द्वारा पूज्य आचार्यवर्योंके चरणकमलोंको मैं पंचाचारोंको विशुद्ध करनेके लिये अपने उत्तम शरीर मस्तकसे नमस्कार करता हूं ॥ २४--२५ ॥ जो ग्यारह अंग चौदह पूर्व और प्रकीर्णक शास्त्रोंको उनकी सिद्धिके लिए स्वयं पढते हैं तथा मोक्ष प्राप्त करानेके लिए अपने शिष्य मुनियोंको पढाते हैं जो द्वादशांग रूपी महासागरके पारंगत हैं और समस्त प्राणियोंका हित करानेके लिये तत्पर हैं ऐसे उपाध्याय मुनियोंको मैं ग्यारह अंग चौदह पूर्वकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूं ॥ २३--२७ ॥ जो रत्नत्रय सहित घोर और दुष्कर तपश्चरणसे अत्यंत निर्मल मोक्ष मार्गको इस संसारमें सिद्ध करते हैं जो साम सवेरे दोपहर तीनों समय योग धारण करते हैं जो गुणोंकी खानि हैं और तपश्चरणके साथ साथ बड़े ही धीर वीर हैं ऐसे महायती साधुओंको मैं उनके गुणोंकी प्राप्ति होनेके लिए नमस्कार करता हूं ॥ २८--२६ ॥ इस प्रकार इस ग्रन्थके प्रारंभमें जो पंच परमेष्ठी अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक नमस्कार किए गए हैं तथा जिनकी बंदना और स्तुतिकी गई है वे पञ्च परमेष्ठी इस प्रारम्भ किए गए शास्त्रके पूर्ण होनेके लिए मेरी बुद्धिको ग्रन्थ और अर्थकी अत्यंत पारगामिनी बनावें और मोक्ष प्राप्त होनेके लिए रत्नत्रय प्रदान करें ॥ ३०--३१ ॥ जो भव्य जीवोंका हित करनेके लिए परम पवित्र और मोक्षदेने वाले

द्वादशांग श्रुतज्ञानको स्वयं गूंथते हैं अर्थात् उसकी रचना करते हैं ऐसे श्रीवृषभसेनको आदि लेकर गौतम पर्यन्त समस्त गणधरोंको मैं कवित्व आदि गुण प्राप्त होनेके लिये मन वचन कायकी शुद्धि पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ ३२—३३ ॥ जो केवल ज्ञानके स्वामी हैं और श्रेष्ठ धर्मरूपी अमृतकी वर्षा करनेसे इस संसारमें मेघकी (बादलोंकी) उपमाको प्राप्त हुए हैं ऐसे सुधर्माचार्यको भी मैं वन्दना करता हूं ॥ ३४ ॥ जिन्होंने अपने बाल्यकालमें ही वैराग्यरूपी तलवारके द्वारा काम और मोह रूपी शत्रुको नाश कर दिया ऐसे सर्वोत्कृष्ट श्री जंबूस्वामीको भी मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३५ ॥ विष्णु, नन्दिमित्र अपराजित गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांचो ही मुनिराज श्रुतकेवली थे, श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारंगत थे और धर्मरूपी श्रेष्ठ मार्गके प्रवर्तक थे इसलिये इनको भी मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३६—३७ ॥ श्री विशाखाचार्यको आदि लेकर और भी बहुतसे आचार्य हैं जो कि धर्मको प्रगट करनेके लिये दीपकके समान हैं उन प्रत्येकको भी मैं अपने मंगलके लिये वन्दना करता हूं ॥ ३८ ॥ भव्य जीवोंको उपदेश देनेवाले, महाकवीश्वर और देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रीकुंद-कुंद आचार्यको भी मैं उनके गुण प्राप्त होनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ३९ ॥ जिनके वचन निष्कलंक हैं, जो कवीश्वर हैं, वादी हैं, और संसार मात्रका भला करनेवाले हैं ऐसे श्रीअकलंक स्वामीके लिये भी मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ ४० ॥ महा कवीश्वर और शुद्ध चेतन्य स्वरूप श्रीसमंत भद्र स्वामीके लिए मैं नमस्कार करता हूं तथा बड़े २ विद्वान लोग भी जिनकी पूजा करते हैं ऐसे श्रीपूज्यपादके लिए भी मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४२ ॥ सिद्धान्त शास्त्रके पारगामी श्रीनेमिचन्द्राचार्यको मैं नमस्कार करता हूं तथा इस संसारमें चंद्र-माकी उपमाको धारण करनेवाले श्रीप्रभाचंद्रके लिए नमस्कार करता हूं ॥ ४२ ॥ इनके सिवाय जिनसेन आदि जो अनेक आचार्य हुए हैं जो कि सम्यग्दर्शन आदि गुणोंसे सुशोभित हैं, चतुर हैं ज्ञान-विज्ञानके पार-गामी हैं सदा धर्मकी प्रभावना करनेवाले हैं और जिन्हें मुक्तिके समागमकी सदा लालसा लगी रहती है ऐसे आचार्योंके चरण कमलोंको भी मैं इस ग्रन्थके प्रारम्भमें मंगलके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ४३—४४ ॥ इस ग्रन्थके प्रारंभमें जिन कवियोंकी वन्दना की है, पूजा की है और स्तुति की है वे सब कवि मेरी बुद्धिको सब

शास्त्रोंमें पारगामिनी और सर्वोत्तम कर देवें ॥ ४५ ॥ जो श्रीवर्द्धमान स्वामीके मुखारविन्दसे प्रकट हुई है जिसे गणधर देव नमस्कार करते हैं सौधर्म आदि सब इंद्र और चक्रवर्ती पूजते हैं जो श्रेष्ठ मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेवाली है सर्वोत्तम है अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेवाली है तीनोंलोक जिसकी सेवा करता है जो अंग और पूर्वोंमें बटी हुई है तथा स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है ऐसी सरस्वती देवीको मैं सम्यग्ज्ञान, विवेक और मोक्ष:प्राप्त करनेके लिए वा आत्माका कल्याण करनेके लिये मस्तक झुकाकर सदा नमस्कार करता हूं ॥ ४७-४८ ॥ हे जिनवाणी ! तू श्रेष्ठ माता है और मुनि लोग तेरी स्तुति करते हैं इसलिए मुझ पुत्रका हित करनेके लिए तू कृपा पूर्वक मुझे उत्तम ज्ञानामृत प्रदान कर ॥ ४६ ॥ मंगलके लिये पांचों परमेष्ठियोंको सब गणधरोंको सब कवियोंको और सरस्वती देवीको नमस्कार करनेके अनन्तर इस संसारमें अपना और दूसरोंका भला करनेके लिये मैं अनन्त सुखमय श्रीशांतिनाथ तीर्थंकरका पवित्र चरित्र संक्षेपसे कहता हूं ॥ ५०-५१ ॥ मैं बुद्धिसे अत्यन्त बालक हूं इसलिये सिद्धान्तके अत्यन्त पारगामी आचार्योंने जो कुछ पहिले कहा है उसे कहनेके लिये मैं वास्तवमें असमर्थ हूं, तथापि उनके चरण कमलोंको प्रणाम करनेसे जो कुछ पुण्य प्राप्त हुआ है उसके प्रभावसे अपनी बुद्धिकी शक्तिके अनुसार थोड़ा किंतु सारभूत कहूंगा ॥ ५२–५४ ॥ पहलेके विद्वान लोग ग्रन्थके प्रारम्भमें वक्ता श्रोता और कथाके गुणोंका वर्णनकर पीछेसे धर्मसे विभूषित कथाको कहते हैं ॥ ५५ ॥ इसलिए इस परिपाटीके अनुसार ग्रन्थका प्रामाण्य प्रगट करनेके लिए मैं भी इस जगह वक्ताका लक्षण श्रोताका चिह्न और कथाओंके भेद कहता हूं ॥ ५५ ॥ जो विद्वान हों सम्यक्चारित्रसे विभूषित हो, विशाल बुद्धिसे चतुर हों, तपश्चरणसे सुशोभित हों, सब जीवोंका हित करनेके लिये सदा तत्पर हों अत्यन्त कृपालु हों मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति करनेवाले हों, जिन्हें वाणीका सौभाग्य प्राप्त हो, प्रश्नोंकी भरमारको सहन करनेवाले हों लौकिक विज्ञानोंके जानकार हों, अपनी प्रतिष्ठा प्रसिद्धि आदिकी इच्छासे रहित हों लोभ मद और कषायोंसे रहित हों. कवित्व आदि गुणोंसे सुशोभित हों जिनके वचन स्पष्ट हों, लोग जिन्हें मानते हों, पूजा करते हों और संसारमें जिनकी सच्ची कीर्ति फैल रही हो,

इत्यादि श्रेष्ठ गुणोसे पूर्ण जो आचार्य इस संसारमें विद्यमान हैं वे ही श्रेष्ठ धर्मकी कथा करनेके योग्य समझे जाते हैं अर्थात् ऊपर लिखे गुणोंसे सुशोभित आचार्य ही वक्ता गिने जाते हैं ॥ ५६-६० ॥ बुद्धिमान लोग वक्ताकी प्रमाणतासे ही वचनकी प्रमाणता मानते हैं इसलिये सबसे पहिले इस संसारमें वक्ताके उत्तम गुणही ढूंढ़ने चाहिये ॥ ६१ ॥ जो चारित्र रहित और पुत्र पौत्रादि सहित होकर भी धर्मका निरूपण करते हैं उनके वचनोंको लोग ग्रहण नहीं करते क्योंकि वे स्वयं ही अपने आचरणोंसे रहित हैं (वे दूसरोंको क्या उपदेश देंगे) ॥ ६२ ॥ "जो यह श्रेष्ठ धर्मका स्वरूप जानता है तो फिर स्वयं उसका आचरण क्यों नहीं करता" यही समझकर लोग उसके वचनोंको कभी ग्रहण नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥ जो श्रुतज्ञान सहित हैं और अपनी अपनी शक्तिके अनुसार स्वयं धर्मका पालन करते हैं उन लोगोंके श्रेष्ठ वाक्योंके अनुसार तथा उनके गुणोंके अनुसार लोग धर्मको स्वीकार करते हैं ॥ ६४ ॥ जो ज्ञानरहित हैं परन्तु चारित्रवान हैं यदि वे प्राणि-योंको धर्मका उपदेश देते हैं तो उसके उपदेशकी थोड़े ज्ञानसे उद्धत हुए लोग हंसी उड़ाया करते हैं ॥६५॥ इसलिये ज्ञान और चारित्रसे उत्पन्न होनेवाले वक्ताके दो ही मुख्य गुण हैं उन्हींसे लोग इस संसारमें श्रेष्ठ धर्मको स्वीकार किया करते हैं ॥ ६६ ॥ जिनके हृदयमें विवेक विराजमान है और उसीसे जो "यह व्याख्यान वा शास्त्र योग्य है अथवा अयोग्य है" इस प्रकार शीघ्रताके साथ विचार करते हैं उसमेंसे जो योग्य और श्रेष्ठ व्याख्यान है उसे ग्रहण करते हैं तथा जो असार है अथवा पहिलेका ग्रहण किया हुआ है उसे छोड़ देते हैं, जो गुरुकी भक्ति करनेमें तत्पर हैं, किसी त्रुटिपर कभी हंसते नहीं, क्षमा शौच आदि गुणोंसे सुशोभित हैं; भगवान अरहंत देवके कहे हुए वचनरूपी अमृतोंमें सदालीन रहते हैं व्रत और शीलसे शोभायमान हैं संसा-रके दुखोंसे भयभीत हैं दयालु हैं मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं जो ज्ञानी और शुद्ध सम्यग्दृष्टी हैं ग्रन्थ और अर्थ दोनोंको धारण करनेमें समर्थ हैं जो हंस शुक आदिके समान अनेक तरहके उत्तम गुणोंसे तथा आर्जव आदि (मार्दव सत्य शौच त्याग भोग ऐश्वर्य गांभीर्य स्थैर्य धैर्य सौभाग्य तप पूजा) से उत्पन्न होनेवाले अनेक गुणोंसे इस संसारमें शोभायमान हैं। इत्यादि ऊपर कहे हुए अनेक गुण जिनमें विरामान हैं

और जो चतुर हैं ऐसे पुरुष ही श्रेष्ठ धर्म कथाको सुननेके लिये निपुण गिने जाते हैं जिनमें ये गुण नहीं हैं वे शास्त्रोंके सुननेके कभी अधिकारी नहीं हो सकते ॥ ६७-७२ ॥

जो विचार करनेमें चतुर है ऐसे श्रोताके सामने ही धर्म और संवेगको प्रगट करनेवाला गुरुका कहा हुआ व्याख्यान शोभा देता है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार अन्धेके सामने नृत्य करना व्यर्थ है और वहिरेके सामने अच्छे गीत गाना व्यर्थ है उसी प्रकार जो श्रोता नहीं है उसके सामने मुनिका कहा हुआ व्याख्यान व्यर्थ हो जाता हैं ॥ ७४ ॥ इसलिये सबसे पहिले ग्रन्थके चतुर श्रोता तलाश करने चाहिये क्योंकि अच्छे श्रोताओंसे ही इस संसारमें ग्रन्थकी अच्छी प्रतिष्ठा होती है ॥ ७५ ॥ अव धर्म कथाका स्वरूप बतलाते हैं जिसमें जीव अजीव आदि सातों तत्वोंका निरूपण किया गया हो जिसमें उत्तम पुरुषोंके शरीर संसार और भोगोंसे वैराग्य प्रगट करनेवाले अनेक कारण बतलाये गए हों, जिसमें उत्तमदान, तप, शील, व्रत आदि कहे गये हों बंध मोक्षका लक्षण उनके कारण और फल बतलाये गये हों, जिसमें सब जीवोंको अभयदान देनेवाली प्राणियोंकी दया बतलाई गई हो जिस कथामें अठारह हजार शीलोंसे सुशोभित मुनियोंको मोक्षकी प्राप्ति बतलाई गई हो जिसमें इस संसारमें उत्पन्न होनेवाले प्राणियोंके धर्म अर्थ काम मोक्ष चारो पुरुषार्थ बतलाये गए हों, और चारो गतियोंमें होनेवाले जीवोंके पुण्य पापके फल बतलाये गये हो, जिसमें तीर्थंकरके पुण्यसे उत्पन्न होनेवाली तथा इन्द्रके द्वारा रचनाकी हुई और संसारको चकित करनेवाली श्रीअरहंतदेवकी महिमा इस संसारमें प्रकटकी गई हो जिसमें पुण्यसे प्रगट होनेवाले और समर्थशाली बलभद्र नारायण प्रति नारायण कामदेव और चक्रवर्तियोंके गुण निरूपण किए गए हों जिसमें अनेक मुनीश्वर सब तरहके परिग्रहोंका त्यागकर तथा अनेक तरहके उपसर्ग और परिषहोंको सहनकर मोक्ष प्राप्त करते हैं, जिसमें स्वर्ग नरककी रचना हो रही है ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोकसे जिसके तीन भेद हैं और जो द्रव्योंसे परिपूर्ण है ऐसे चराचर समस्त जगतका (लोकका) वर्णन जिसमें हो, जिसमें मुनियोंका श्रेष्ठ आचरण निरूपण किया गया हो तथा गृहस्थोंका पुण्य वृद्धि करनेवाला श्रावकाचारका वर्णन किया गया हो तथा संसारमें

जितने शुभ वा अशुभ पदार्थ विद्वानोंके द्वारा कहे गए हैं जो कि अनेक गुणोंसे विराजमान और सत्यार्थ हैं उन सबको वर्णन जिसमें हो उसको धर्मकथा कहते हैं ॥ ७३-८५ ॥ जिससे मनुष्योंका राग नष्ट हो जाय और संवेग (संसारसे डर वा वैराग्य) बढ़ जाय ऐसी धर्मकथा ही संसारमें धर्मात्मा पुरुषोंको सुननी चाहिए ॥ ८६ ॥ जिस कथाके सुननेसे अशुभ कर्मोंका संवर और निर्जरा हो तथा पुण्य कर्मों का आस्रव हो ऐसी कथाही लोगोंको सुननी चाहिये ॥ ८७ ॥ जिससे जीवादिक तत्त्वोंका पुण्य पापका, हित अहित का, हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) का और मोक्षका ज्ञान हो ऐसी कथाही बुद्धिमानोंको सुननी चाहिए ॥ ८८ ॥ जो कथा श्रीजिनेंद्रदेवकी कही हुई हो तथा ईर्षा वा रागद्वेषरहित मुनियोंके द्वारा कही गई हो ऐसी सब तरहकी धर्म कथायें धर्मकी वृद्धिके लिए सुननी चाहिए ॥ ८९ ॥ जिनमें श्रृंगार आदि रसोंका वर्णन हो ऐसी अन्य कथाएं कभी नहीं सुननी चाहिए क्योंकि ऐसी कथायें खोटे मार्गमें चलनेवाले धूर्त लोगों ने संसारमें लोगोंको ठगनेके लिए बनाई हैं ॥ ९० ॥ जिससे रागकी वृद्धि हो और वैराग्य नष्ट हो जाता हो ऐसी कथा अपने आत्माका कल्याण चाहनेवाले लोगोंको प्राणोंका नाश होने पर भी कभी नहीं सुननी चाहिए ॥ ९१ ॥ जिस कथाके द्वारा हिंसा युद्ध आदिका वर्णन किया जाता हो ऐसी राज्यकथा भोजनकथा स्त्रीकथा चोरकथा आदि विकथा बुद्धिमानोंको कभी नहीं सुननी चाहिए क्योंकि ऐसी कथाओंके सुनने से पाप कर्मों का ही आस्रव होता है ॥ ९२ ॥ जिन कथाओं के सुनने से चित्त में विकार करनेवाला क्षोभ प्रगट हो तथा आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान उत्पन्न हो ऐसी कथायें भी बुद्धिमानों को नहीं सुननी चाहिए ॥ ९३ ॥ जो कथायें मिथ्या हों, और जिनमें शील दान पूजा आदिका वर्णन न हो उनको सज्जन लोग मिथ्या कथाएं वा कुकथाएं कहते हैं क्यों-कि ऐसी कथाए सिद्धान्त के विरुद्ध ही होती हैं ॥ ९४ ॥ ऐसी ऐसी सब तरहकी कुकथाएं बुद्धिमानोंको छोड़ देनी चाहिए और स्वर्ग मोक्षके सुख देनेवाली धर्मकथा भक्तिपूर्वक सुननी चाहिए ॥ ९५ ॥ विद्वान् लोगोंको जन्म मरण और बुढापाकी जलनको नष्ट करनेके लिए कानोंकी अंजलिरूपी पात्रोंके द्वारा

सदा श्रेष्ठकथारूपी अमृत पीते रहना चाहिए ॥ ९६ ॥ इस संसारमें ऐसे अनेक वक्ता मनीश्वर विद्यमान हैं जो उत्तम गुणोंसे सुशोभित हैं धर्मकथा और सर्वोत्तम मोक्ष मार्गका निरूपण करनेवाले हैं पुण्यवान् हैं रत्नत्रयसे परिपूर्ण हैं जिनके संवेग आदि गुण बढ़े हुए हैं अनेक विद्वान लोग जिनकी स्तुती करते हैं, और समस्त संसार जिनको नमस्कार करता है और तीनों लोक जिनकी पूजा करता है, ऐसे वक्ता मुनिराज मेरे लिए कल्याण कर्ता हों ॥ ९७ ॥ इस संसार में अनेक श्रोता भी विद्यमान हैं जो गुणी हैं सम्यग्ज्ञानी हैं मोहरहित हैं संवेग (धर्मानुराग) आदि गुणों से सुशोभित हैं, रागद्वेष आदि दोषोंके समूहसे रहित हैं सार असार आदिके विचार करने में चतुर हैं वक्ताओं की कही हुई कथाओं को सुनना चाहते हैं गुणी हैं विवेकी हैं और अत्यन्त निर्मल हैं ऐसे श्रोता इस संसार में धन्य कहलाते हैं ॥ ९८ ॥ जो श्रीशांतिनाथके जन्मको सूचित करनेवाली है संवेग और धर्मको बढानेवाली है, सारभूत है, श्रेष्ठ गुणोंसे सुशोभित है बुद्धिमान लोग भी जिसको मानते हैं जिससे हिताहितका ज्ञान होता है जो शीलसे शोभायमान है गुरुकी भक्तिके भारसे बनी हुई है जीवोंको पुण्य बढ़ानेवाली है और श्री अरहंतदेवके मुखसे उत्पन्न हुई है ऐसी श्रेष्ठ कथाको मैं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कहूंगा ॥ ९९ ॥ देव विद्याधर आदि सभी जिनकी सेवा करते हैं जो समस्त तत्वोंको प्रगट करनेके लिये दीपकके समान हैं सब दोषोंसे रहित है धर्म तीर्थके स्वामी हैं समस्त गुणोंके सागर हैं और सब लोग जिनकी पूजा करते हैं ऐसे श्रीशांतिनाथकी मैं उनकी समस्त निर्मल कीर्ति कहकर स्तुति करता हूं ॥ १०० ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें इष्ट देवताको नमस्कार और कर्त्ता [वक्ता] श्रोता कथाको निरूपण करनेवाला पहिलाअधिकार समाप्त ॥ १ ॥

अथ दूसरा अधिकार।

तीनों लोक जिन्हें नमस्कार करता है ऐसे श्रीशांतिनाथके चरण कमलोंको नमस्कार कर मैं केवल कर्मोंको नाश करनेके लिये उन शांतिनाथकी कथाको कहता हूं ॥ १ ॥ इस मध्यलोकमें जंबुद्वीप नामका द्वीप

प्रसिद्ध है जोकि लाख योजन चौड़ा है गोल है और लवणसमुद्रसे घिरा हुआ है ॥ २ ॥ वह जम्बूद्वीप सुमेरु पर्वतरूपी मुकुटसे ऊंचा हो रहा है नदीरूपी हारोंसे सुशोभित है, चैत्यरूपी कुंडल और जिनालयरूपी कंकण पहने हुए है ॥ ३ ॥ कुलपर्वत ही उसके भुजादंड हैं, सुन्दर वेदी ही कटिमेखला वा करधनी है वन ही वस्त्र हैं और चूलिका ही तिलककी शोभा देरही है ॥ ४ ॥ वावडियां ही उसकी नाभि है भोगभूमि आदिका भोग-सामग्री ही उसकी भोगोपभोगकी सामग्री है सरोवर ही उसका मुंह है और अनेक द्वीपोंमें होनेवाले धन धान्यादिकसे वह धनी होरहा है ॥ ५ ॥ उसमें रहनेवाले देव विद्याधर ही उसकी सेना है रूपाचल वा विजया-र्द्ध पर्वत ही उसके नूपुर हैं और उसमें रहनेवाला चारप्रकारका संघ ही उसके परिवारकी शोभा बढा रहा है ॥ ६ ॥ इसप्रकार महा यशस्वी और समस्त गुणोंका एकमात्र स्थान ऐसा वह जंबूद्वीप इस संसारमें समस्त द्वीपरूपी राजाओंके मध्यमें चक्रवर्तीके समान शोभा दे रहा है ॥ ७ ॥ उस जंबूद्वीपके मध्यभागमें एक लाख योजन ऊंचा सुदर्शन नामका प्रसिद्ध महा मेरु पर्वत शोभायमान है ॥ ८ ॥ वह मेरु पर्वत चूलिका रूपी मुकुट से ऊंचा है जिनप्रतिमा रूपी कुंडलोंसे शोभायमान है, भगवान्, तीर्थंकरके जन्माभिषेकसे वह स्नान किया हुआ है, देवोंसे सुशोभित है, जिनालय ही उसके उत्तम हार हैं, वनरूपी वस्त्रोंसे वह मनोहर जान पडता है वेदिका रूपी करधनी पहने हुए है और वावड़ीरूपी नाभिसे वह सुन्दर मालूम होता है। पीठिका ही उसके सुन्दर बडे पैर हैं कूटरूपी हाथोंसे वह सुशोभित है उसपर आनेवाले विद्याधर ही उसकी भारी सेना है और चारण मुनियोंसे वह शोभायमान है। अनेक अप्सराएं उसकी सेवा करती हैं तीर्थंकरके स्नानका वह कारण है उसपर सदा नृत्य गीत होते रहते हैं और सुर असुर सबके लिये वह दर्शनीय है। वह अत्यंत सुन्दर है मनोहर है, सुन्दर आकारवाला है सबमें बड़ा है सब लोग उसकी आराधना करते हैं और अनेक कौतुकोंसे वह भरा हुआ है। जिसप्रकार सब इन्द्रोंमें सौधर्मेन्द्र इन्द्र शोभायमान होता है उसीप्रकार सब पर्वतोंमें वह सुदर्शन नामका श्रेष्ठ पर्वत शोभायमान है ॥ ९—१४ ॥ उसी मेरु पर्वतकी दक्षिण दिशामें भरत नामका क्षेत्र है जोकि धर्मकी खानि है और छह खंडोंसे शोभायमान है ॥ १५ ॥ वह भरत क्षेत्र शुभकार्योंका स्थान

हैं और पांचसौ छब्बीस योजन ६ कला (५२६-६-१९ योजन) चौड़ा है ॥१६॥ जिस भरत क्षेत्रमें अनेक मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं उस स्वर्गमोक्षके सुखके कारण भरत क्षेत्रका वर्णन भला कौन करसक्ता है ॥१७॥ जिन्हें सब संघ नमस्कार करता है और तीनों लोक जिनकी सेवा करते हैं ऐसे लोक अलोक सबको जाननेवाले तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रमें उत्पन्न होते हैं ॥१८॥ केवल मोक्ष प्राप्तकरनेकेलिये देव लोग भी उस भरतक्षेत्रके उत्तम कुलोंमें उत्पन्न होनेकी इच्छा करते हैं ॥ १९ ॥ उस भरतक्षेत्रमें सब जीवोंको सुख देनेवाला मुनि और श्रावकोंका धर्म प्रवर्तमान रहता है जो कि स्वर्गमें भी दुर्लभ है ॥ २० ॥ उस भरतक्षेत्रमें ऊंचे २ शिखरोंवाले दंड और ध्वजावोंसे शोभायमान धर्मकी खानिके समान ऊंचे २ जिनालय विराजमान हैं ॥ २१ ॥ उस भरतक्षेत्रमें स्थान स्थानपर निर्वाणभूमियां शोभायमान हैं जोकि पवित्र हैं मुनि लोग जिनकी सेवा करते हैं और जो धर्मकी खानिके समान जान पड़ती हैं ॥ २२ ॥ वहांपर धर्मोपदेश देनेके लिये अनेक मुनि विहार किया करते हैं जो कि सज्जनोंको अपनी २ इच्छानुसार फल देनेवाले हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानों चलते फिरते कल्पवृक्ष ही हों ॥ २३ ॥ वहांपर लोगोंको अनेक केवलज्ञानीयोंके भी दर्शन होते रहते हैं जोकि चारों प्रकारके संघसहित विराजमान हैं और जीवोंके सब तरहके संदेह दूर करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ वहांपर नगर खानें पत्तन गांव द्रोणमुख और द्वीप आदि बहुत शोभायमान हैं जो कि सब धर्मके स्थानके समान जान पड़ते हैं ॥ २५ ॥ उस भरतक्षेत्रसे श्रावक लोग दान पूजा तप व्रत संयम आदि पालनकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं भला उस भरतक्षेत्रका वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥ २६ ॥ उस भरतक्षेत्रसे अनेक मुनीश्वर तपश्चरणकर स्वर्ग जाते हैं और अनेक मुनिराज समस्त कर्मोंका नाशकर मोक्ष जाते हैं ॥ २७ ॥ वह भरतक्षेत्र ऊपर कहे हुए अनेक गुणोंसे परिपूर्ण है अनेक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंसे सुशोभित है बहुतसी प्रशंसायुक्त वस्तुओंसे भरा हुआ है और उसका आकार भी शुभ है ॥ २८ ॥ उस भरतक्षेत्रके मध्यभागमें ऊंचा और बड़ा विजयार्द्ध पर्वत शोभायमान है जो कि शुक्लध्यानके पुंजके समान (सफेद) जान पड़ता है। वह विजयार्द्ध पर्वत पच्चीस योजन ऊंचा है पचास योजन चौड़ा है और ऊंचाई का

चौथाई अर्थात् सवा छह योजन भूमिके भीतर है ॥३०॥ उसी विजयार्द्ध पर्वतमें पचास योजन लंबी आठ यो-
जन चौड़ी दो गुफाएं हैं जिनमें किवाड़ आदि सब लगे हुए हैं ॥ ३१ ॥ उस विजयार्द्ध पर्वतपर भूमिसे दश
योजन ऊंचे चढ़कर उत्तर दक्षिण दोनों दिशाओंकी ओर दो श्रेणियां है ॥ ३२ ॥ वे दोनो श्रेणियां दश
२ योजन चौड़ी हैं और इस समुद्रसे उस समुद्र तक लम्बी हैं ॥ ३३ ॥ उन श्रेणियोंमेंसे दक्षिण श्रेणीमें
पचास नगर बसे हुए हैं और उत्तर श्रेणीमें साठ नगर बसे हुए हैं ॥३४॥ उन नगरोंमें से प्रत्येक नगरसे
एक एक करोड़ गांव लगे हुये हैं जोकि धन धान्य आदिसे भरपूर हैं और जो न कभी उत्पन्न होते है और
न नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ इन श्रेणियोंसे दश योजन और ऊंचे चलकर पहलेके समान ही उत्तर दक्षिणकी
ओर दो श्रेणी और हैं जिनपर व्यंतरोंके नगर बसे हुए हैं ॥ ३६ ॥ उनके बाद पांच योजन ऊंचे चल-
कर सब एकसे नौ कूट हैं जो कि अधोभागके समान ऊंचे हैं ॥ ३७ ॥ उनमेंसे पूर्व कूटके ऊपर भगवान
अरहंतदेवका अकृत्रिम जिनालय है जो कि अनेक तरहके रत्नोंसे जड़ा हुआ है और अत्यन्त सुन्दर है
॥ ३८ ॥ वह दिव्य जिनालय सुवर्णमय है और रत्नोंके बने हुए शृंगार कलश आदि उपकरणोंसे धर्मकी
खानिके समान शोभायमान है ॥ ३९ ॥ वहांपर सब देव पूजाकी सामग्री लेकर भगवानकी पूजा करनेके
लिये आते हैं और सब अपने आनन्दमें डूबकर पुष्पवृष्टि करते हैं ॥ ४० ॥ वहांपर अनेक विद्याधर
प्रतिदिन विमानोंमें बैठकर जय जय शब्द करते हुए भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेके लिये
आते हैं ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार गीत गाती हुई और नृत्य करती हुई विद्याधरी भी उस जिनालयमें भगवानकी
पूजा करनेके लिये आती हैं और देवांगनाओंके समान शोभा देती हैं ॥ ४२ ॥ उस चैत्यालयमें कितनी ही
नृत्य करतीं हैं कितनी ही भगवानकी पूजा करती हैं और अपने आनन्दके अत्यन्त रसमें मग्न हुई कितनी ही
विद्याधरियां बाजे बजाती हैं ॥ ४३ ॥ कितनी ही विद्याधरियां बड़े उत्सवके साथ भगवान जिनेन्द्र देवका
अभिषेक करती हैं और कितनी ही विद्याधरियां भगवानका दर्शन करती हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार देव देवि-
योंसे तथा विद्याधर विद्याधरियोंसे भरा हुआ और गम्भीर शब्दोंसे भरपूर वह चैत्यालय धर्मरूपी महासागरके

समान जान पड़ता है ॥४५॥ कितनेक ही लोग तो वहां पूजा करनेके लिये आते हैं और कितने ही पूजा करके वहांसे बाहर निकलते हैं इस प्रकार वह चैत्यालय समवसरणके समान शोभा देता है फिर भला उसका वर्णन कौन कर सक्ता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार अकृत्रिम चैत्यालयसे सुशोभित और वन वेदी सहित वह सिद्ध-कूट नामका कूट विजयार्द्ध पर्वतपर प्रसिद्ध है ॥ ४७ ॥ उस कूटके सिवाय बाकीके जो आठ कूट हैं उनपर वेदी वन और बावडियोंसे सुशोभित देवोंके नगर बने हुए हैं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार भरतक्षेत्रको विभाग करने-वाला वह विजयार्द्ध पर्वत भरतक्षेत्रके बीचमें शोभायमान है जो कि कुन्दके फूल, वा चंद्रमा अथवा शंखके समान सफेद वर्णका है और ऐसा जान पड़ता है मानो यशकी राशि ही हो ॥ ४९ ॥ वहांपर बादलोंसे होने-वाली वृष्टि सदा सफल ही होती है और ऐसी जान पड़ती है मानो मेरुपर्वतपर श्रेष्ठ जलसे भरपूर भगवानके अभिषेककी धारा ही हो ॥ ५० उस विजयार्द्ध पर्वत पर न तो कभी दुर्भिक्ष होता है और न कोई भय होता है वहांपर सदा धर्मसे सुशोभित चौथा काल ही बना रहता है ॥ ५१ ॥ वहांकी प्रजा तीन वर्णोंमें वटी हुई है वहांपर ब्राह्मण वर्ण नहीं है । वहांकी प्रजा बड़ी भारी विभूतिसे भरपूर रहती है और सदा जैनधर्ममें लीन रहती है ॥ ५२॥ वहांपर व्रती तपस्वी चारित्रसे सुशोभित और ज्ञानी धीर वीर मुनि बहुतसे विहार करते रहते हैं वहांपर मिथ्यादृष्टी सर्वथा नहीं है॥ ५३ ॥ वहांपर ऊंचे और अनेक तरहकी शोभासे सुशोभित ऐसे तीर्थं-करोंके बहुतसे जिनालय शोभायमान हैं वहां अन्य देवोंके मठ कहीं पर दिखाई नहीं पड़ते ॥ ५४ ॥ उस विजयार्द्ध पर्वतपर श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए, सनातन अहिंसा धर्मकी ही प्रवृत्ति सदा बनी रहती है वहांपर वेद आदिमें कहे हुए धर्मकी प्रवृत्ति कहीं दिखाई नहीं देती॥ ५५ ॥ वहांके समस्त मुनि और सब गृहस्थ श्रीजिनेन्द्रदेवकी कही हुई, जिनवाणीका ही सदा पाठ करते हैं अन्य धूर्तोंकी कही हुई वाणीको वहांपर पढ़ता सुनता नहीं ॥ ५६ ॥ वहांके वनोंमें अनेक तरहके फल फूलते हैं और पुण्यवान मनुष्योंके लिये भोगोप-भोगकी सामग्री वहाँ पर स्थान स्थानपर विद्यमान है ॥ ५७ ॥ वहांके मनोहर बनोंमें विद्याधरियां अपने पतियों सहित सदा क्रीड़ा करती रहती हैं फिर भला उस पर्वतका क्या वर्णन करना चाहिये ॥५८॥ वहांकी बावड़ी

कमलरूपी निर्मल मुखोंसे सदा हंसती रहती हैं और स्त्रियोंके समान लहरेंरूपी स्त्रियोंको उठा उठाकर बहुत
अच्छा नृत्य करती रहती हैं ॥ ५६ ॥ जिस विजयार्द्ध पर्वतपर देव लोग भी अपनी देवांगनाओंके साथ
स्वर्गोंसे आ आकर क्रीड़ा करते हैं उसकी उत्कृष्ट शोभाका वर्णन भला क्या करना चाहिये ॥ ६० ॥ उसी
विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर चक्रवाल नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है ॥ ६१ ॥ उस नगरीके
चारों ओर रत्नोंका कोट है वह नगरी नित्य है कभी नष्ट नहीं होती, बड़ी मनोहर है और मणिमय वेदिकासे
जम्बूद्वीपकी दूसरी पृथ्वीके समान सुन्दर जान पड़ती है ॥ ६१ ॥ उसके चारों ओर अत्यन्त शीतल और गंभीर
(गहरी) खाई शोभायमान है जो कि सदा बनी रहती है और दूसरे समुद्रके समान जान पड़ती है
॥ ६३ ॥ जिस प्रकार प्रमाण और नयके समूहोंसे जिनवाणी सुशोभित होती है उसी प्रकार वह नगरी भी
मणियोंसे जड़े हुए ऊंचे २ बाहरी दरवाजोंसे सुशोभित है ॥ ६४ ॥ उस नगरीके मध्यमें भगवान जिनेन्द्र
देवके ऊंचे चैत्यालय विराजमान हैं जो कि कोई तो सुवर्णमय हैं और कोई रत्नोंकी किरणोंसे भरपूर हो
रहे हैं ॥ ६५ ॥ वे जिनमन्दिर बहुत ही ऊंचे हैं धूपगंधसे भरपूर हैं पुष्पवृष्टिसे अत्यन्त दुर्गम हो रहे हैं और
गीत नृत्य बड़े २ तुरई आदि बाजेके और जय जय शब्दों से शब्दायमान हो रहे हैं ॥६६॥ वह नगरी जिनालयके
शिखरोंपर फहराती हुई ध्वजारूपी उत्तम हाथोंके द्वारा धर्म करनेके लिये ही क्या मानो पुण्यवान इन्द्रोंको
भी स्वर्गसे बुला रही है ऐसी शोभायमान हो रही है ॥ ६७ ॥ उस नगरीमें चतुर लोग अपनी कल्याणके लिए
विवाह आदि उत्सवोंमें श्रीजिनमन्दिरमें जाकर शांति देनेवाली भगवान अरहंतदेवकी महापूजा करते हैं ॥६८॥
वहांके मनुष्योंपर थोड़ा सा भी दुख आ पड़नेपर उसको दूर करनेके लिए जिनालयमें जाकर दुख और संता-
पको दूर करनेवाली और पुण्य बढ़ानेवाली भगवानकी महापूजा करते हैं ॥ ६६ ॥ कितनी ही सुन्दर स्त्रियां
पूजाकी सामग्री लेकर मंदिरमें चलती हुई ऐसी शोभायमान होती हैं मानों देवियां हा चल रही हों ॥ ७० ॥
सुन्दर मुखवाली कितनी ही विद्याधरियां देवांगनाओंके समान पूजाको समाप्तकर निकलती हुई बहुत अच्छी
पड़ती हैं ॥ ७१ ॥ रूप लावण्य और आभूषणों से सजी हुई कितनी ही स्त्रियां विमानों में बैठकर जिना-

त्यमें जाती हुई देवांगनाओंके समान बहुत ही अच्छी जान पड़ती हैं ॥ ७२ ॥ कितनी ही विद्याधरियां अकृ-
त्रिम चैत्यालयमें पूजाकर बड़ी विभूतिके साथ लौटती हुई देवांगनाओंके समान जान पड़ती हैं ॥ ७३ ॥ उस
नगरीमें विद्याधर लोग प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन अपने आप सामायिक आदि उत्तम धर्म ध्यानका सेवन
करते हैं ॥ ७४ ॥ दोपहरके समय उदार त्यागी मनुष्य भगवानको पूजाकर दान देनेके लिये द्वारापेक्षण करते
हैं ॥ ७५ ॥ कितने ही दानी बड़े आनन्दमें मग्न होकर उत्तम पात्रोंके लिये केवल पुण्य बढ़ानेके लिये छहों-
रसोंसे परिपूर्ण और प्रासुक उत्तम दान देते हैं ॥ ७६ ॥ कितने ही दानियोंके महादान देनेसे पंचाश्चर्य प्रगट
होते हैं जो कि दाता पात्र आदिके संयोगसे आगेके लिये भी उत्तम फलोंके सूचक होते हैं ॥ ७७ ॥ कितने
ही धर्मात्मा दानी उत्तम पात्रका संयोग न मिलनेसे खेद करते हैं और कितनेही दानी सत्पात्रोंके मिल जा-
नेसे (उन्हें दान देकर) संतुष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

इसीप्रकार संध्या आदि समयमें भी सज्जन लोग धर्मध्यान करते हैं कायोत्सर्ग करते हैं और भगवान अर-
हंतदेवकी स्तुति करते हैं ॥ ७९ ॥ उस नगरीमें पूर्व पुण्यके उदयसे पुण्यवान लोग दान पूजा व्रत करते हुए
बड़े सुखसे निवास करते हैं ॥ ८० ॥ सम्यग्दृष्टी लोग पहिले भवमें स्वर्गमें अच्छे अच्छे पुण्य संपादनकर उस
नगरीमें उत्तम पूज्य कुलमें और अच्छे घरमें आकर जन्म लेते हैं ॥ ८१ ॥ उस नगरीमें जन्म लेकर कितने ही
लोग दुष्कर चारित्रको धारणकर और उस तपश्चरणके बलसे कर्मोंका नाशकर मोक्षको जाते हैं ॥ ८२ ॥
तथा कितने ही लोग संयम धारणकर, कितने ही अरहंत देवको पूजाकर और कितने ही लोग दान देकर
सुखकी खानि ऐसे स्वर्गमें जाकर उत्पन्न होते हैं ॥ ८३ ॥ उस नगरीमें रहनेवाले सद्गृहस्थ लोग जिनेन्द्रदेवके
कहे हुए हिंसा आदि पापोंसे रहित धर्मको ही सदा और सब तरहसे पालन करते हैं अन्य धर्मको वे कभी
पालन नहीं करते ॥ ८४ ॥ जिस प्रकार स्वयंबर रचानेवाली कन्या वरके पास अपने आप आ जाती है उसी
प्रकार उस धर्मके प्रतापसे लोकमें भरी हुई सुख देनेवाली लक्ष्मी भी उन धर्मात्माओंके पास अपने आप
आ जाती है ॥ ७५ ॥ उस लक्ष्मीसे वहांपर रहनेवाले विद्याधर लोगोंको उनके पुण्यसे उत्पन्न हुई अत्यन्त

भोगोपभोगोंकी उत्तम सामग्री प्राप्त होती है ॥ ८६ ॥ वहांके रहनेवाले चतुर लोग अपने सफेद बालोंको देखकर भोगोंको छोड़ देते हैं और वैराग्य तपश्चरण धारणकर सम्यक्चारित्रके प्रभावसे वे धीर वीर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ८७ ॥ इस प्रकार उस नगरीमें पुण्यवान सज्जनोंको धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों ही पुरुषाथोंके महाफल प्राप्त होते और बढ़ते रहते हैं ॥ ८८ ॥ अत्यन्त सुभ संपदाओंसे भरी नगरी प्रति दिन ऐसी जान पड़ती थी मानो धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी खानिही हो ॥८९॥ जिस प्रकार महा विभूतियोंसे भरे हुए स्वर्गमें देवालय (देवोंके विमान) शोभित होते हैं इसीप्रकार पुरुष और स्त्रियोंसे भरे हुए उस नगरीके ऊंचे घर शोभायमान होते हैं ॥ ९० ॥ उस नगरीके बाहर सब ऋतुओंसे भरे हुए कूए बावड़ी और तलाओंसे सुशोभित तथा नेत्रोंको सुख देनेवाले वन उपवन शोभायमान हैं ॥ ९१ ॥ उनमेंसे कुछ निर्जन वनोंमें कितनेही धीर वीर योगी मुनि मोक्ष प्राप्त करनेके लिगे पर्यंकासनसे विराजमान होकर ध्यान करते हैं ॥ ९२ ॥ कितनेही मुनिराज शरीरसे ममत्व छोड़कर और पर्वतके समान निश्चल होकर कायोत्सर्ग धारणकर आत्मध्यान करते हैं ॥ ९३ ॥ किसीवनमें कित · ही मुनि केवल कर्मोंको नष्ट करनेके लिए एकाग्र चित्त होकर लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले सिद्धांत शास्त्रोंका पठन पाठन करते हैं ॥ ९४ ॥ वह शीत उष्ण आदि उपसर्गोंसे रहित है सुन्दर है और ध्यानको बढ़ानेवाली है इस लिए ध्यानकी सिद्धिके लिए मुनि लाग उसे कभी नहीं छोड़ते हैं ॥ ९५ ॥ इस प्रकार वह नगरी ऊपर कहे हुए कितने ही गुणोंसे भरपूर है उस नगरोका स्वामी पुण्यवान और पुण्य और गुणोंका एक स्थान ऐसा ज्वलनजटी नामक विद्याधर राज्य करता था ॥ ९६ ॥ वह विद्याधर बड़ी भारी विभूतिका स्वामी था अनेक विद्याधर उसे नमस्कार करते थे, अनेक स्त्रियोंका समूह उसकी सेवा करता था और बड़ी भारी सेनासे सुशोभित था ॥ ९७॥ भगवान जिनेन्द्रदेवकी महापूजा और महाभिषेक करनेमें वह सदा तत्पर रहता था, वह बहुत हो धीर वीर उदार और सुन्दर था ॥ ९८ ॥ वह सम्यग्दर्शनसे सुशोभित था सदा पुण्य कार्योंमें लगा रहता था, जिनधर्ममें लीन था दानी था और जिनधर्ममें बहुतहो प्रेम रखता था ॥ ९९ ॥ उसके मस्तकपर बहुत बड़ा मुकुट लगा हुआ था,

गलेमें हार पड़ा हुआ था वह दिव्य वस्त्र पहिने था उसके दोनों हाथ कड़ोंसे शोभायमान थे। वह बहुत ही पुण्यवान और अत्यन्त सुन्दर था ॥ १०० ॥ उसका कंठ दिव्य वाणीसे शोभायमान था शरीर शोभासे अलंकृत था शरीरसे वह कामदेवको भी जीतता था और नेत्रोंको वह बहुत ही आनन्दकारी था। ॥१०१॥ वह विद्याधर राजा पहिले भवमें उपार्जन किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे विद्या आदि विभूतियोंके द्वारा सदा चक्रवर्तीके समान शोभायमान होता था ॥ १०२ ॥ धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है और अर्थसे राज्य सुखसे उत्पन्न हुए कामकी प्राप्ति होती है यही समझ कर वह राजा निरंतर एक धर्मका ही सेवन करता था ॥ १०३ ॥ वह राजा इस लोक और परलोकका कल्याण करनेके लिये अपना चित्त धर्ममें लगाता था अपने वचन धर्मके गुण वर्णन करनेमें लगाता था और अपना शरीर सदा उसी धर्मकी सेवा करनेमें लगाता था ॥ १०४ ॥ वह राजा सदा सब गुणोंका खजाना ऐसा मुनियोंके लिये दान देता था और सबतरहके कल्याण करनेवाली श्रीजिनेन्द्रदेवको पूजा करता था ॥ १०५ ॥ धर्मके प्रभावसे उसके घरमें राज्यके सब अंगोंको बढ़ानेवाली और सब तरहके बड़े बड़े सुख देनेवाली लक्ष्मी सदा दासीके समान निवास करती थी ॥१०६॥ संसारमें जो कुछ दुर्लभ था जो कुछ सारभूत धन था वह सब बहुतसे धर्मसे सुशोभित उस राजाके यहां उसके पुण्य कर्मके उदयसे स्वयं आजाता था ॥ १०७ ॥ उस राजाके समस्त भोगोपभोगों को देनेवाली और राज्यको बढ़ानेवाली बहुतसी विद्याएं उसके शुभ योगोंसे अपने आप सिद्ध हो जाती थीं ॥ १०८ ॥ इस प्रकार समस्त शत्रुओंको जीतनेवाला वह राजा सद्धर्ममें लीन होकर और सब तरहके वैरभाव छोड़कर शुभ कर्मोंके उदयसे न्याय मार्गसे राज्य करता था ॥ १०९ ॥ अथानन्तर दिव्य तिलक नामके नगरमें चन्द्राभ नामका राजा राज्य करता था उसके अनेक लक्षणोंसे सुशोभित सुभद्रा नामकी रानी थी ॥ ११० ॥ उन दोनोंके वायुवेगा नामकी कन्या थी जोकि अनेक लक्षणोंसे सुशोभित थी और रूप लावण्य आभूषण आदिसे कामियोंके चित्तको क्षोभित करनेवाली थी ॥ १११ ॥ उस वायुवेगाने अपने पुण्य कर्मके उदयसे अपनी वेगविद्यासे वेग विद्यावाले बहुतसे विद्याधरोंके राजा बड़ी शीघ्रताके साथ जीत लिये थे ॥११२॥

होता है ॥ ३६ ॥ धर्मसे ही स्त्री पुत्रवती होती है धर्मसे ही पुत्र सुलक्षण (अच्छे लक्षणों वाले) होते हैं धर्म-
से ही माता शीलवती होती है और धर्मसे ही मनुष्यों को अच्छे भाई बन्धु मिलते हैं ॥ ३७ ॥ सब इन्द्रियों-
को सुख देनेवाले भोग सब धर्मसे ही मिलते हैं और घर सवारी पदार्थ राज्य आभूषण आदि सब धर्मसे
प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ जो शरीर तपश्चरण करनेमें समर्थ होता है, सब दोषों से रहित होता है जिसका उ-
त्तम संहनन होता है और रूप लावण्य सौभाग्य आदिसे सुशोभित होता है वह सब धर्मसे ही प्राप्त होता
है ॥ ३९ ॥ धर्मसे ही धर्मात्मा लोगों के लक्ष्मी सदा दासीके समान स्थिर बनी रहती है और संसारमें जो जो
दुर्लभ वस्तुए हैं वे सब धर्मके प्रभावसे अपने आप घरमें आ जाती हैं ॥ ४० ॥ जिस प्रकार स्वयंवरकी रचना
करानेवाली कन्या विवाहके लिये अपने आप आ जाती है उसी प्रकार धर्मके प्रभावसे मुक्तिरूपी कन्या भी
धर्मात्मा जीवको बार बार देखती रहती है ॥ ४१ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है संसारमें जो कुच्छ दुर्लभ है
चाहे वह तीनों लोकों में कहीं भी हो वह सब धर्मके प्रभावसे पुरुषों को अपने आप प्राप्त हो जाता है ॥ ४२।
मनुष्यों को ये सब बातें बिना धर्मके कभी नहीं हो सकती । ये ही सब बातें पाप कर्मके उदयसे दुख देने-
वाली विपरीत हो जाती हैं ॥ ४३ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवने वह धर्म दो प्रकारका बतलाया है एक श्रावकों का दूसरा
मुनियों का, श्रावकों का धर्म सुगम साध्य है और मुनियों का कठिन साध्य है ॥ ४४ ॥ पांच अणुव्रत तीन
गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत श्रावकों का धर्म है सम्यग्दर्शनके साथ होनेसे यही धर्म शुद्ध कह-
लाता है स्वर्गोंके सुख देनेवाला हैं अनुक्रमसे मोक्ष देनेवाला है यही धर्म श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओं में बंटा
हुआ है ॥४६ ॥ पांच महा व्रत पांच समिति और तीन गुप्ति यह तेरह प्रकारका चारित्र मुनियों का कहलाता
है यही धर्म सवथा पापरहित है और मोक्ष प्राप्त करानेमें एक अद्वितीय पंडित है ॥ १४७ ॥ हे राजन् ! इन
दोनों धर्मोंमेंसे जो तुझे अच्छा लगता हो और धारण कर सकता हो उसे स्वीकारकर क्योंकि परलोकमें स्वर्ग-
मोक्षके सुखोंका सागर एक धर्म ही है ॥ १४८ ॥ मुनिकी यह आज्ञा सुनकर राजाने बड़े आनन्दसे सम्य-
ग्दर्शनके साथ साथ गृहस्थोंके व्रत स्वीकार किये ॥ १४९ ॥ तदनंतर वह राजा सम्यग्दर्शन और दान पूर्वक

व्रतोंको धारणकर तथा दोनो मुनियोंके चरण कमलोंको नमस्कार कर अपने राजभवनमें आया ॥ १५० ॥ अन्य स्त्री पुरुष सब भव्योंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार उन मुनिके समीप व्रत ग्रहण किये ॥ १५१ ॥ स्वयंप्रभा भी उन मुनियोंके समीप दान पूजा उपवास आदि सहित कितने ही व्रतोंको धारणकर अपने घर आई ॥ १५२ ॥ किसी एक दिन स्वयंप्रभाने अपने नियत पर्वके दिन उपवास किया दूसरे दिन भक्ति पूर्वक अरहंतदेवकी पूजाकी और उपवाससे जिसका मुख कुछ मलिन हो रहा है ऐसी उस स्वयंप्रभाने विनयसे नम्र होकर अपने दोनों हाथोंसे भगवान अरहंतदेवके चरण कमलोंके स्पर्शसे पवित्र हुई और पापोंको दूर करनेवाली विचित्र माला आकर समर्पण की ॥ ५३–५४ ॥ राजा ज्वलनजटीने भक्तिपूर्वक वह माला ली और उपवासके भारी खेदसे कुछ थकी हुई और धर्ममें तत्पर ऐसी अपनी कन्याको देखा ॥ ५५ ॥ "बेटी तू जाकर अब पारणा कर" इसप्रकार कहकर उसे विदा किया परन्तु उसीसमय उस राजाके हृदयमें उसके विवाह करनेकी चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ उसने उसीसमय सब मंत्रियोंको बुलाया और अपनी पुत्रीके विवाहकी चर्चा उनसे की ॥ ५७ ॥ राजाकी बात सुनकर शास्त्रोंमें चतुर ऐसा सुश्रुत नामका मंत्री परीक्षा कर अपने आत्मामें निश्चय किये हुए उत्तम वचन कहने लगे ॥५८॥ इसी विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलका नामकी नगरी है उसका राजा मयूरग्रीव है और उसकी रानीका नाम नीलांजना है ॥ ५९ ॥ उनके सबसे बड़ा अश्वग्रीव नामका पुत्र है दूसरा नीलरथ तीसरा नीलकंठ चौथा सुकंठ पांचवां वज्रकंठ इसप्रकार पांच पुत्र हैं ॥ ६० ॥ उनमेंसे अश्वग्रीवकी रानीका नाम कनकचित्रा है और उन दोनोंके रत्नग्रीव रत्नांगद रत्नचूल रत्नरथ आदि पांचसौ पुत्र हैं उसके मंत्रीका नाम हरिश्मश्रु है और शतविंदु अष्टांग निमित्तको जाननेवाला नैमित्तिक है ॥ ६१–६२ ॥ इसप्रकार राजा अश्वग्रीवका राज्य संपूर्ण है और वह तीन खंडका स्वामी है इस लिये अपना कन्यारत्न उसीको देना चाहिये ॥ ६३ ॥ यह सुनकर बहुश्रुत नामका मंत्री कहने लगा कि हे राजन् ! सुश्रुत मंत्रीकी बात तो आपने सुनली अब मेरी बात भी सुनिये ॥ ६४ ॥ श्रेष्ठकुल, नीरोगता, शरीर, शील, आयु, शास्त्रका पठन पाठन, पक्ष, लक्ष्मी और परिवार ये नौ गुण वरमें होने चाहि-

ये ॥ ६५ ॥ अश्वग्रीवमें ये सब गुण हैं परन्तु उसकी आयु अधिक है इस लिये जिसमें ये सब गुण हों और तरुण हो ऐसा कोई दूसरा वर ढूंढना चाहिये ॥ ६६ ॥

गगनवल्लभ नगरमें प्रसिद्ध राजा सिंहरथ है, मेघपुर नगरमें नीतिविशारद राजा पद्मरथ है। चित्रपुर नगरमें बलवान राजा अरिंजय है। त्रिपुर नगरमें विद्याधरोंका राजा ललितांगद है, अश्वपुर नगरमें राजा कनकरथ है, महारत्नपुर नगरमें प्रसिद्ध विद्याधरोंका राजा धनंजय है ॥ ६७-६९ ॥ हे राजन् इनमेंसे विचार कर किसी एकको पुण्यवान कन्यारत्न शुभमुहूर्तमें दे देना चाहिये ॥ ७० ॥ बहुश्रुतके ये वचन सुनकर शास्त्रोंको जाननेवाला श्रुतसागर नामका मन्त्री विचारकर मनको अच्छे लगनेवाले बचन इस प्रकार कहने लगा ॥ ७१ ॥ कि यदि आप कुल आरोग्य आयुरूप आदि सब गुणोंसे सुशोभित वरके लिये कन्या देना चाहते हैं तो मेरी कही हुई बात सुनिये ॥ ७२ ॥ उत्तर श्रेणीके सुरेंद्रकांतार नगरमें मेघवाहन नामका बिद्याधर राज्य करता है उसकी राणीका नाम मेघमालिनी है ॥ ७३ ॥ उसके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र है और ज्योतिमाला नामकी पुत्री है। राजा मेघबाहन पुण्य और लक्ष्मीके समान इन दोनोंसे बहुत आनन्दित रहता है ॥ ७४॥ किसी एक दिन वह राजा मेघवाहन श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेके लिये बड़ी भारी विभूतिसे सुशोभित ऐसे श्रीसिद्धकूट चैत्यालयमें गया था ॥ ७५ ॥ वहांपर राजाको अपने पुण्य कर्मके उदयसे अनेक गुणोंसे विराजमान वरधर्म नामके अवधिज्ञानी चारण मुनिके दर्शन स्वयं हो गए थे ॥ ७६ ॥ राजाने बड़े आनन्दसे उन उत्तम मुनियोंकी बंदनाकी और मुनिराजने उस राजाके सामने स्वर्ग मोक्ष देनेवाले धर्मका स्वरूप कहा ॥ ७७ ॥ तदनंतर राजाने उन मुनिराजसे:अपने पुत्रके पहिले भव पूछे थे। राजन्! उन्हें मैं कहताहूं आप अपना चित्त सावधानकर सुनिये ॥ ७८ ॥ इसी प्रसिद्ध जम्बूद्वीपमें वत्सकावती देश है और उसमें श्रेष्ठधर्मसे सुशोभित प्रभाकरी नामकी नगरी है ॥७९॥ पुण्यकर्मके उदयसे उस नगरीका राजा नन्दन था जो कि बहुतही सुन्दर था और उसके शुभ कर्मके उदयसे जयसेना नामकी रानी उसे प्राप्त हुई थी ॥ ८० ॥ उन दोनोंके विजयसेन नामका पुत्र था जो कि पुण्य और गुणोंका एक स्थान था, विवेकी था और ज्ञानी था वह बुद्धिमान किसी

एक दिन अपनी इच्छानुसार मनोहर नामके बनमें गया और वहाँपर एक आमके पेड़को फल रहित देख कर सब भोगोंसे विरक्त हुआ। सो ठीक ही है क्योंकि वैराग्य ही मोक्षका कारण है ॥ ८१-८२ ॥ यह संसार असार है और जिसप्रकार बादलसे प्रकट हुई बिजली क्षणमात्रमें नष्ट हो जाती है उसीप्रकार भोग राज्य शरीर और धन सब क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं ॥ ८३॥

जिसकी बुद्धि शांत हो गई है ऐसा वह विजयसेन ऊपर लिखे अनुसार चिंतवनकर सब तरहके परिग्रहोंसे रहित पिहितास्रव नामके मुनिके समीप गया और उनको जाकर:नमस्कार किया ॥८४॥ उसने गुरुकी आज्ञानुसार वैराग्य धारण करनेमें तत्पर ऐसे चौदह हजार राजाओंको भी दुर्लभ ऐसा संयम धारण किया ॥ ८५ ॥ उसने कर्मोंको नाश करनेवाला कठिन बारह प्रकारका तपश्चरण किया और अंतमें समाधिमरण धारण कर चारों आराधनाओंका स्वयं चिंतवन किया। शरीरको छोड़कर पुण्यकर्मके उदयसे वह माहेंद्र स्वर्गके चक्रक नामके विमानमें दिव्य आभरणोंसे सुशोभित देव उत्पन्न हुआ ॥ ८६—८७ ॥ अपने किये हुए तपश्चरणसे:प्राप्त हुए पुण्य कर्मसे उसने सात सागर तक समस्त इन्द्रियोंको सुख देनेवाले दिव्य भोग भोगे ॥८८॥ वहांसे चयकर यह तेरे विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ है अब आगे अत्यंत घोर तपश्चरणकर मोक्ष जायगा ॥ ८९ ॥ मैं एक दिन पुण्यसंपादन करनेकेलिये श्रीसिद्धकूट चैत्यालयमें स्तुति करनेके लिये गया था वहांपर मैंने यह पुण्यका कारण सब वृत्तांत सुना था ॥ ९० ॥ वह विद्युत्प्रभ वरके सब गुणोंसे पूर्ण है और सुखी है इसलिये गुणोंसे सुशोभित और धर्ममें तत्पर ऐसी यह कन्या उसीको देनी चाहिये ॥ ९१ ॥ तथा हे राजन्! अपना राजकुमार अर्ककीर्ति पुण्यकी मूर्ति है इस लिये उसकेलिये पुण्यवती ज्योतिमाला बड़ी विभूतिके साथ लेलेनी चाहिये ॥ ९२ ॥ श्रुतसागरकी यह बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाला सुमति नामका मन्त्री सब संकल्प विकल्पोंपर उत्तर देने लगा ॥९३॥ वह कहने लगा कि पुण्यके प्रभावसे यह कन्या पुण्यरूप आदि सब गुणोंसे विभूषित है इसीलिये इसके लिये अलग अलग कितनेहो विद्याधर राजा प्रार्थना करते हैं ॥ ९४ ॥ इसलिये यह कन्या विद्युत्प्रभको नहीं देना चाहिये क्योंकि उसे बहुतोंके साथ बैर करना पड़ेगा किन्तु इसके

लिए स्वयंवरकी रचना करनी चाहिए यह कहकर वह चुप हो गया॥ ९५ ॥ अन्य सब मन्त्रियोंने कार्यको सिद्ध करनेवाली उसकी यह बात मान ली इसलिए राजाने मन्त्रियोंको आदर सत्कार कर बिदा किया ॥ ९६॥ तदनंतर राजा ज्वलनजटीने पुराणोंके अथको जाननेवाले और ज्ञानी ऐसे संभिन्न श्रोत नामके नैमित्तिकसे पूछा कि बताओ स्वयंप्रभाका पति कौन होगा ? यह कहकर राजा चुप होगया और वह नैमित्तिक नीचे लिखे अनुसार बचन कहने लगा ॥ ९७-९८ ॥ पहले पुराणोका निरूपण करते समय श्रीऋषभदेवने भरत चक्रवर्तीको प्रथम नारायणकी कथा इस प्रकार कही थी ॥ ९९ ॥ इसी जम्बूद्वीपके सुन्दर पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नगरी है ॥२००॥ उसी नगरीके समीप मधुक नामके वनमें बनका स्वामी पुरूरवा नामका भद्र भीलोंका राजा रहता था ॥ १ ॥ किसी एक दिन उस बनमें सागरसेन नामके मुनिराज मार्ग भूल कर विहार करते हुए उधर जा रहे थे। वे पुण्यकर्मके उदयसे उस भीलने देखे ॥ २ ॥ चारित्र पालन करनेवाले उन मुनिराजको उस भीलने बड़े अच्छे भावोंसे परलोकमें सुख देनेवाला नमस्कार किया ॥ ३ ॥ उन मुनिराजने कृपापूर्वक उस भव्यके लिये इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें सुख देनेवाला मद्य मांस आदिके त्याग करने रूप धर्मका उपदेश दिया ॥ ४ ॥ उस धर्मात्मा भीलने मुनिराजके चरण कमलोंको नमस्कार किया और काललब्धि प्राप्त हो जानेके कारण मन बचन कायकी शुद्धि पूर्वक मद्य मांस आदिका त्याग किया तथा श्रेष्ठधर्मको स्वीकार किया ॥५॥ उस धर्मके फलसे वह सौधर्म स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिवाला और दिव्य लक्ष्मीका स्वामी देव हुआ ॥ ६ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो, थोड़ेही पुण्यसे वह भील ऐसा हुआ फिर भला जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए लोग धर्म सेवन करते हैं वे क्यों न सुखी होते होंगे ॥ ७ ॥ इसी भरतक्षेत्रकी अयोध्या नगरीमें भरत नामका चक्रवर्ती था। उसके सुख देनेवाली अनन्तसेना नामकी स्त्री थी उन दोनोंके वह भीलका जीव स्वर्गसे च्युत होकर मारीच नामका पुत्र हुआ था, उस बुद्धिमानने श्रीऋषभदेवके साथ दीक्षा ग्रहणकी थी ॥ ९ ॥ उस मारीचने भूख प्यास आदिसे उत्पन्न हुई परीषहोंके डरसे संयमरूपी माणिक्यको तो छोड़ दिया था और कुलिंगियोंका भेष धारणकर लिया था ॥ १० ॥ श्रीऋषभदेवके मुखसे

उस मूर्खको यह भी मालूम हो गया था कि उसे आगे चलकर मोक्ष प्राप्त करानेवाली श्रीतीर्थंकरकी विभूति प्राप्त होगी ॥ ११ ॥ तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे उसने श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ धर्म छोड़ दिया था और नरकमें पहुंचानेवाला दुष्ट सांख्यमत स्वीकार कर लिया था ॥ १२ ॥ उसने खोटे मार्गका उपदेश दिया था इस लिये उस पाप फलसे तीव्र रूपी लहरोंसे भरे हुए संसारसागरमें वह बहुत दिनके लिये मग्न हो गया था ॥ १३ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो वह मरीच तपस्वी था तथापि खोटें मार्गका उपदेश देनेसे इतने भारी दुखको प्राप्त हुआ फिर भला जो खोटेमार्गका आचरण करते हैं वे क्यों न दुखी होंगे ॥ १४ ॥ इसी भरत-क्षेत्रके सुरम्य देशमें एक पोदन नामका मनोहर और शुभ नगर है वहांके राजा प्रजापतिके मृगावती नामकी भर्या है ॥१५॥ वह भीलका जीव संसाररूपी बनमें परिभ्रमणकर तथा काललब्धि पाकर तपश्चरणके द्वारा पुण्य उपार्जनकर उन दोनोंके त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ है ॥१६॥ उसी राजाके भद्रा नामकी रानीसे विजय नामका बड़ा पुत्र हुआ है। वे दोनों भाई बड़ेही सुशोभित हैं और वे दोनों इन्हीं श्रीश्रेयांसनाथ तीर्थंकरके समयमें अपने पौरुषसे प्रतिनारायण अश्वग्रीव शत्रुको मारकर तीन खण्ड लक्ष्मीके स्वामी प्रथम नारायण बलभद्र होंगे ॥ १७-१८ ॥ इनमेंसे विजय नामका बलभद्र श्रीश्रेयांसनाथ तीर्थंकरसे दीक्षा ग्रहणकर घोर तपश्चरणकर तथा कर्मोंको नाशकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥ १९ ॥ त्रिपृष्ठ नारायण अशुभ योगके कारण संसारमें बहुत परि-भ्रमण करेगा और फिर काललब्धि पाकर अन्तिम तीर्थंकर होगा ॥ २० ॥ आपका जन्म इसी विजयार्द्ध पर्व-तपर धरणेन्द्रके सम्बन्धसे महाराज कच्छके पुत्र नमिके वंशमें हुआ है और महाराज प्रजापतिका जन्म श्रीऋषभदेव तीर्थंकरके उपदेशके अनुसार इस संसारमें प्रसिद्ध श्रीबाहुबलीके प्रसिद्ध वंशमें हुआ है। इस-लिये हे राजन्! उनके साथ आपका सम्बन्ध पहिलेसेही निश्चित है फिर अब भी वह सुन्दर सम्बन्ध होना ही चाहिये ॥ २१-२३ ॥ इसलिये धर्म और लक्ष्मीसे सुशोभित आपको तीन खण्डकी लक्ष्मी और सुखके स्वामी ऐसे पुण्यवान त्रिपृष्ठके लिये अपनी कन्या दे देनी चाहिये ॥ २४ ॥ त्रिपृष्ठ को जामाता (जंवाई) बनालेनेसे आप सब विद्याधरोंके स्वामी हो जायंगे यह बात निश्चित है इसलिये ऐसा करना ही चाहिये।

यह कथा श्रीआदिनाथ तीर्थंकरके वचनोंके अनुसार ही कही गई है ॥ २५ ॥ उस पौराणिककी यह बात सुन-कर रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीने उसकी बात मानी और प्रसन्न होकर उसे वस्त्र आभरण सम्मान आदि दिया ॥ २६ ॥ राजा ज्वलनजटीने इन्द्र नामके दूतको बुलाया और पत्र तथा भेट देकर उसी समय महाराज प्रजापतिके पास भेजा ॥ २७॥ त्रिपृष्टने जयगुप्त नामके नैमित्तिकसे पहिलेही यह बात जान ली थी इसलिये वह शीघ्रही पुष्पकरंडक नामके वनमें आगया था ॥ २८ ॥ वहींपर ज्वलनजटी विद्याधरका दूत आकाशसे उतरा। त्रिपृष्टने उसका स्वागत किया और उत्सवके साथ उसे सभामें ले गया ॥ २९ ॥ दूतने जाकर महाराजके सामने भेट रख नमस्कार किया और फिर खड़ा हो गया। महाराजने अपने हाथसे उसे आसन दिया॥३०। महाराजने वह सब भेट देखी और अपना अनुराग प्रकट किया तथा "हम आपकी भेट से बहुत संतुष्ट हैं," यह कहकर दूतको संतुष्ट किया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर दूतने निवेदन किया कि "ज्वलनजटी विद्याधर पुत्रोंमें श्रेष्ठ श्रीत्रिपृष्टके लिये अपनी कन्या देना चाहता है" यह कहकर वह चुप होगया ॥ ३२ ॥ यह सुनकर महाराज प्रजापतिने सब बात यथार्थ समझ ली और प्रसन्न होकर कहा कि ठीक है रत्न और सोनेका सम्बन्ध भला कौन नहीं चाहता है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर महाराजने योग्य भेंट देकर दूतका आदर सत्कार किया और अपनी कार्य सिद्धिके लिए दूतको विदा किया ॥ ३४ ॥ वह दूत बड़ी शीघ्रतासे गया और अपने स्वामीके लिए विवाह आदि शुभ कार्यका निवेदन किया ॥ ३५ ॥ यह सुनकर वह ज्वलनजटी विद्याधर बड़ी विभूति के साथ कन्याको लेकर आकाश मार्गसे पोदनपुर में आया ॥ ३६ ॥ महाराज प्रजापति राजा ज्वलनजटी का आना सुनकर बड़े प्रेमसे भारी विभूति के साथ शीघ्रही स्वयं सामने आए ॥ ३७ ॥ उन्होंने उनका स्वा-गत किया। महाराज प्रजापति ने हर्षसे अपना नगर सजाया, तोरण बांधे और बहुतसी ध्वजाओंकी मालायें बांधी। ऐसे नगरमें वे महाराज ज्वलनजटीको लाए ॥ ३८ ॥ महाराज प्रजापतिने महाराज ज्वलनजटीको योग्य स्थान पर ठहराया और स्नान भोजन आदि सब तरहसे उनका स्वागत किया जिससे ज्वलनजटी

बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ३९ ॥ तदनन्तर महाराज ज्वलनजटीने रत्नमाला आदिसे सुशोभित मंडप बनाया अपने कुटुम्ब परिवारके लोगों को बुलाया और उनको विवाहमें देने योग्य वस्त्र आभूषण दिए।

तदनन्तर उन्होंने शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें बड़ी विभूति और भारी उत्सवके साथ त्रिपृष्टके लिए अपना कन्यारत्न समर्पण किया ॥ ४०—४१ ॥ सब राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसा वह प्रथम नारायण त्रिपृष्ट अपने पुण्यकर्मके उदयसे जिसे विद्याधर लोग भी चाहते हैं और जो रूप लावण्यसे सुशोभित है ऐसी उत्तम कन्याको पाकर अपने धर्मके फलसे प्राप्त हुए उत्तम भोगोंका भोग करने लगा ॥ ४२ ॥ कहां तो इस पृथ्वीपर वह बड़ा भारी पर्वत और कहां वह वियधरोंके राजाकी पुत्री तथापि आश्चर्य है कि वह पुण्यकर्मके उदयसे भूमिगोचरी त्रिपृष्टके घर आगई। इसलिए विद्वान लोगोंको सदा धर्म सेवन करते रहना चाहिए ॥ ४३ ॥ संसार में चाहे वह पदार्थ दूर हो और चाहे तीनों लोकोंमें कठिनसाध्य हो तथापि धर्मके फलसे प्राणियोंको वह मिल ही जाता है इस लिए श्री अरहंतदेवका कहा हुआ धर्म सदा धारण करते रहना चाहिए ॥ ४४ ॥ रत्नत्रय से उत्पन्न हुवा धर्म तीनों लोकोंका ईश्वरपना और उत्तम सुखका देनेवाला है पापोंका नाश करनेवाला है तीर्थंकरकी विभूति देनेवाला है अत्यंत निर्दोष है स्वर्ग मोक्षको सर्वथा वश करनेवाला है गुणोंका खजाना है तीनों लोकोंमें पूज्य है और कल्याणों की परम्पराको समर्पण करनेवाला है। इसलिए बुद्धिमानों को उसका सेवन सदा करते रहना चाहिए ॥ ४५ ॥ श्रीशान्तिनाथ भगवान निर्मल गुणोंके खजाने हैं स्वर्ग मोक्षके अद्वितीय कारण हैं तीनों लोकोंके इन्द्र उनकी सेवा करते हैं उत्तम मुनिराज उनकी स्तुति करते हैं सब तरहके सुख देनेवाले हैं और विद्वान लोग भी उनकी पूजा करते हैं इसलिए उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिए समस्त गुण समूहोंका वर्णनकर मैं उनकी स्तुति करता हूं ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीशान्तिनाथ पुराण त्रिपृष्ट और स्वयंप्रभाके विवाहका वर्णन करनेवाला यह दूसरा अधिकार समाप्त ॥ २ ॥



तीसरा अधिकार ।

मैं अपने प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धिके लिये समस्त गुणोंके सागर पांचवे चक्रवर्ती और कामदेव ऐसे सोलहवें तीर्थंकर श्रीशांतिनाथको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ तदनंतर राजा ज्वलनजटीने त्रिपृष्ठके लिये सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी दो विद्याएं सिद्ध करनेके लिये दीं ॥ २ ॥ इस प्रकार परमोत्सव मनानेवाले वे सब मिलकर अपने अपने पुण्यकर्मके उदयसे उत्तम सुखसागरमें निमग्न हो गये ॥ ३ ॥ इधर अश्वग्रीवके नगरमें उसके पापकर्मके उदयसे उल्कापात हुआ पृथ्वी चलायलान हुई और इधर उधर दिशाओंमें आग लगने लगी ॥ ४ ॥ जिस प्रकार तीसरे कालके अंतमें भोगभूमिके आर्य सूर्यको देखकर चकित हुये थे उसीप्रकार वहांकी प्रजा पहिले कभी न होनेवाले उन तीनों तरहके उपद्रवोंको देखकर चकित होगई और डर गई ॥ ५ ॥ उन उपद्रवोंको देखकर अश्वग्रीव भी चकित हो गया और मंत्रियोंके साथ बैठकर उसने शतविंदुनामके मतिज्ञानीसे 'यह क्या है ?' इसप्रकार उनका फल पूछा ॥ ६ ॥ वह शतविंदु कहने लगा कि अपने पराक्रमसे जिसने सिंधुदेशमें सिंह मारा है, आपके लिये भेजी हुई भेट जिसने जबदस्ती छीन ली है और रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीने अपने पुण्यकर्मके उदयसे जिसे आपको देनेयोग्य स्त्रीरत्न समर्पण किया है वह मनुष्य आपका अनिष्ट करेगा ॥ ७–८ ॥ उसके ये सब सूचक हैं आप इसका उपाय कीजिये इसप्रकार उस निमित्तज्ञानीका कहा हुआ उस अश्वग्रीव विद्याधरने सुनो ॥ ९ ॥ तदनन्तर उसने गुप्तचरोंके द्वारा सिंहका मारना आदि सुना और उस निमित्तज्ञानीकी बातका निश्चय किया ॥ १० ॥ इसके पश्चात् इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसने चिंतागति और मनोगति नामके दो विद्वान् दूत त्रिपृष्टके पास भेजे ॥ ११ ॥ वे दोनों दूत शीघ्रही पोदनपुर पहुंचे उन्होंने वहांके बलवान राजाको देखा और उसके आगे भेट रखकर वे दोनों ही विनयके साथ कहने लगे ॥ १२ ॥ कि हे राजन् ! विद्याधरोंके राजा अश्वग्रीवने आपको आज्ञा दी है कि मैं (अश्वग्रीव) रथावर्त पर्वतपर आऊंगा आप भी वहां आवें। हम दोनों आपको लेने

के लिये आये हैं इसलिये उनकी आज्ञा मस्तकपर रखकर शीघ्र चलिये इस प्रकार कहकर वे दोनों ही दूत चुप हो रहे ॥ १३—१४ ॥ उन दूतोंकी यह बात सुनकर त्रिपृष्ट क्रोध पूर्वक उन दोनों दूतोंसे कहने लगा कि "अश्वग्रीव (घोड़ेके से मुखवाले) अथवा खरग्रीव (गधेके से मुखवाले) मनुष्य मैंने आज तक नहीं देखे हैं इसलिये मैं कौतूहलपूर्वक उनको यहां ही देखना चाहता हूं।' त्रिपृष्टकी यह बात सुनकर स्वामीकी हित की इच्छा करनेवाले वे दोनों ही दूत कहने लगे ॥ १५—१६ ॥ कि हे राजन ! अनेक राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसा वह विद्याधरों का राजा अश्वग्रीव आपका तो पक्षपाती है अतएव उसके लिये आपको ऐसे वचन नहीं कहना चाहिये ॥ १७ ॥ यह सुनकर त्रिपृष्ट कहने लगा कि वह खग (विद्याधर अथवा पक्षी) हमारा पक्षपाती भले ही हो परन्तु मैं उसे देखनेके लिए उस पर्वतपर नहीं जाऊंगा। यह सुनकर वे दोनों विद्याधर कहने लगे ॥ १८ ॥ कि उस चक्रवर्तीकी अनुपस्थितिमें ऐसे अभिमानके वचन नहीं कहना चाहिए क्योंकि जब वह आकाशमें खड़ा होगा तब ऐसा कौन राजा है जो उसके सामने खड़ा हो सके ॥ १९ ॥ यह सुनकर त्रिपृष्ट कहने लगा कि क्या वह चक्र फिरानेका काम किया करता है और घड़े आदि वर्तन बनाया करता है ? तब तो वह अच्छा शिल्पकार है फिर भला उसे क्या देखना चाहिए ? त्रिपृष्टकी यह बात सुनकर उन दोनों दूतोंने कहा कि यह कन्यारत्न चक्रवर्तीके योग्य था वह आज तेरे घरमें सड़ रहा है ॥२०—२१॥ इसप्रकार कहकर वे दोनों ही दूत बड़ी शीघ्रतासे निकल गए, शीघ्र ही अश्वग्रीवके पास पहुंचे और उसको नमस्कारकर सब समाचार कह सुनाया ॥२२॥ त्रिपृष्टकी सब बातें सुनकर अश्वग्रीव क्रोधित हुआ और बड़े आडंबर तथा सेनाके साथ स्वयं रथावर्तपर्वतपर आपहुंचा॥२३॥ नगरसे निकलते समय उसके नाश-को सूचित करनेवाले पहिलेके समान तीनों तरहके उपद्रव हुए अश्वग्रीवका आना सुनकर बलभद्र नारायण भी अपनी विभूतिके साथ शीघ्र ही उस पर्वतपर पहुंच गए ॥२४॥ वहांपर दोनों सेनाओंका भारी युद्ध हुआ दोनोंकी सेना समान मारी गईं इसलिए उसी समय से यमराजका समवर्ती नाम पड़ गया था ॥२५॥ बहुत देर तक तो युद्ध होता रहा फिर "व्यर्थ ही पियादोंका (सेनाका) नाश करनेसे क्या लाभ है" यह सोचकर

त्रिपृष्ट स्वयं युद्ध करनेके लिए शत्रुके सामने गया ॥ २६ ॥ अश्वग्रीव भी पहले जन्मके वैरसे बंधा हुआ था इस लिए क्रोधित होकर उसने वाणोंकी वृष्टिसे त्रिपृष्टको घेर लिया ॥ २७ ॥ उन दोनोंका समान युद्ध होता रहा दोनोंमेंसे कोई भी एक दूसरेको न जीत सका इस लिए उन दोनोंने अपनी अपनी विद्यासे माया युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥

अश्वग्रीव पहिले तो बहुत देर तक युद्ध करता रहा परन्तु उसने अपने वैरीको छोटे शस्त्रोंसे जीतना असंभव समझा इसलिए उसने रथमेंसे ही शत्रुके ऊपर चक्र चलाया ॥ २६ ॥ परन्तु त्रिपृष्टके पुण्योदयसे वह चक्र त्रिपृष्टकी तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दहिने हाथपर आकर ठहर गया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदयसे जीवोंको क्या २ प्राप्त नहीं हो सकता है ॥३०॥ पहिले जन्मके वैर भावोंसे त्रिपृष्टने क्रोधित होकर नरकमें जानेवाले उस शत्रु अश्वग्रीवको उसी चक्रसे मार दिया ॥ ३१ ॥ वह पापी अश्वग्रीव धर्म धारण न करनेके कारण तथा रौद्रध्यानके कारण अत्यन्त दुख देनेवाले और बहुतसा आरम्भ तथा परिग्रहसे होनेवाले सातवें नरकमें पहुंचा ॥ ३२ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो इतनी भारी विभूतिको धारण करनेवाला विद्याधरोंका राजा होकर भी पापसे नरक गया फिर भला दूसरे लोग पापोंसे दुर्गतियोंमें दुखके पात्र क्यों नहीं होंगे ? ॥ ३३ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे सूर्य चंद्रमाके समान सुशोभित होनेवाले त्रिपृष्ट और विजय दोनों ही भाई तीन खंडके स्वामी बन गये थे और बड़े ही अच्छे जान पड़ते थे ॥ ३४ ॥ सब भूमिगोचरी राजाओंने विद्याधरोंके राजाओंने और मागध आदि व्यंतरोंने त्रिपृष्टका राज्याभिषेक किया और इसतरह वह पृथ्वीपर बहुत ही मान्य माना गया ॥ ३५ ॥ त्रिपृष्टने स्वयंप्रभाके पिता ज्वलनजटीको हर्षपूर्वक दोनों श्रेणियोंका स्वामी बनाया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यसे इस पृथ्वीपर क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सब कुछ होता है ॥३६॥ देवोंके समूह जिनकी रक्षा करते हैं ऐसे खड्ग, शंख, धनुष, शक्ति, दंड, चक्र और गदा ये सात रत्न चक्रवर्ती त्रिपृष्टके प्रगट हुए थे ॥ ३७ ॥ मोक्षगामी बलभद्र विजयके रत्नमाला गदा हल और मूसल ये चार महारत्न धर्मके प्रभावसे प्रगट हुए थे ॥ ३८ ॥ पहिले जन्ममें प्राप्त किये हुए पुण्यकर्मके

उदयसे त्रिपृष्टके रूप और लावण्यसे सुशोभित स्वयंप्रभा आदि सोलह हजार देवियां प्राप्त हुई थीं ॥ ३९ ॥ धर्मके प्रभावसे बलभद्रके भी कुल रूप गुणों से सुशोभित सौभाग्यवती आठ हजार देवियां प्राप्त हुई थी ॥४०॥ धर्मके प्रभावसे उन दोनों भाईयों के चरण कमलों को अनेक मुकुटबद्ध राजा मस्तक नवाकर नमस्कार करते थे और उन दोनों की आज्ञा पालन करते थे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार वे दोनों भाई पुण्यकर्मके उदयसे सुखसागरमें मग्न थे और उनके शरीर तीनों खंडों में उत्पन्न होनेवाली लक्ष्मीसे सुशोभित थे ॥ ४२ ॥

अथानन्तर—उसी विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर-श्रेणिके इन्द्रकान्त नामके शुभ नगरमें मेघवान नामका राजा था ॥ ४३ पुण्यकर्मके उदयसे उसके अच्छे लक्षणोंवाली मेघमाला नामकी रानी थी। उन दोनोंके सुन्दरमुखी ज्योतिर्माला नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी ॥ ४४ ॥ वह ज्योतिर्माला विद्याधरोंके स्वामी ज्वलनजटीके पुत्र अर्ककीतिने बड़े उत्सव और विधिके साथ विवाही थी ॥ ४५ ॥ उन दोनोंके अमिततेज नामका पुत्र हुआ था जोकि बहुत ही सुलक्षण था और कामदेवके समान रूप लावण्य और सौभाग्यसे सुशोभित था ॥ ४६ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे बाल चंद्रमाके समान वह कुमार अवस्थाको प्राप्त हुआ, शस्त्र और शास्त्रसे उत्पन्न होनेवाली सब विद्यायें उसने पढ़ीं और अनुक्रमसे वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ संसारके सुखोंमें अनुरक्त होनेवाले उन्हीं अर्ककीर्ति और ज्योतिर्मालाके सुतारा नामकी पुत्री हुई जोकि रूप और लक्षणोंसे बड़ीही सुशोभित थी ॥ ४८ ॥ इधर त्रिपृष्ट और स्वयंप्रभाके श्रीविजय और जयभद्र नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे और ज्योतिप्रभा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी ॥ ४९ ॥ इसप्रकार महाराज प्रजापतिको बहुतसी विभूतियां प्राप्त हुई थीं। किसी एक दिन काल लब्धि प्राप्त होनेसे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे विचार करने लगे ॥ ५० ॥ कि यह राज्य अनेक जीवोंके साथ शत्रुता उत्पन्न करनेवाला है, भयानक है, पाप और संतापका घर है तथा बध बंधन आदिसे उत्पन्न होनेवाला घोर दुखका पात्र है इसलिए इसको धिक्कार हो ॥ ५१ ॥ यह लक्ष्मी अनेक चिंताओं को उत्पन्न करनेवाली है पाप दुख और शोक प्रगट करनेवाली है तीव्र दुखोंसे उत्पन्न होनेवाली है और नरक देनेवाली है इसलिये इससे कभी सुख नहीं मिल

सकता ॥ ५२ यह स्त्री भी दुर्गति देनेमें बड़ी कुशल है, मोह उत्पन्न करनेवाली है, भयानक है, निंद्य है और सप्त धातुओं से बनी हुई है ऐसी स्त्रीको भला कौन बुद्धिमान सेवन करेगा ॥ ५३ ॥ ये पुत्र मनुष्यों को बांधने के लिये पाश (जाल) के समान इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें कठिन दुख देनेवाले और धन धान्य आदि सब विभूतिको खा जानेवाले उत्पन्न होते हैं ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार आमके अच्छे पकनेपर उस पेड़पर आम खानेके लिए बहुतसे पक्षी आ बैठते हैं और फल नष्ट हो जानेपर उसको छोड़कर सब अपने-अपने ठिकाने चले जाते हैं उसीप्रकार धनी कुलमें भोग भोगने के लिये सब कुटुंबी लोग इकट्ठे हो जाते हैं और अंतमें उसको छोड़कर चारों गतियों में चले जाते हैं ॥ ५५-५६ ॥ यह शरीर अन्न पान आदि द्रव्यों से तथा वस्त्र आभरणों से पुष्ट किया हुवा भी जीवके साथ दुष्टों का सा व्यवहार किया करता है ॥ ५७ ॥ ये भोग नरक के दुख देनेवाले हैं, पाप रोग क्लेश आदि के कारण हैं दुख पूर्वक प्राप्त होते हैं और बुद्धिमानों के द्वारा निंद्य गिने जाते हैं ऐसे इन भोगों से भला संसार-में कौन सुखी हो सकता है ॥ ५८ ॥ यह अनादि संसार दुखों से भरा हुआ है सुखरहित है अनंत है और भयानक है ऐसे इस संसारमें कौन ज्ञानी पुरुष भला प्रेम करेगा ॥ ५९ ॥ हाथमें रक्खे हुए पानीके समान जीवोंकी आयु क्षण क्षणमें नष्ट होती रहती है फिर भी परलोकके लिये हित चाहनेवाले लोग अपना कल्याण क्यों नहीं करते ? ॥ ६० ॥ जब तक आयु नष्ट न हो जाय, जबतक बुढ़ापा न आजाय और जब तक इन्द्रियां समर्थ बनी रहें तब तक जीवोंको अपना हित कर लेना चाहिये ॥ ६१ ॥ जिसप्रकार घरमें आग लग जानेपर कूआ नहीं खोदा जाता उसीप्रकार जब मृत्यु आजाती है तब यह जीव कुछ भी धर्म नहीं करसकता ॥ ६२ ॥ इसप्रकार वह बुद्धिमान् राजा संसारकी विचित्रताका चितवन कर कर्मरूप शत्रुओं के भी शत्रु, ऐसे दूगुने वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥६३॥ तदनंतर वह राजा अपने पुण्य कर्मके उदयसे पुराने तिनकेके समान कुटुंब और राज्य लक्ष्मीका त्याग कर पिहितास्रव मुनिके समीप पहुंचा ॥ ६४ ॥ वे मुनिराज सब तरहके परिग्रहों से रहित थे, परन्तु गुणरूपी संपदासे रहित नहीं थे वे सब जीवों का हित करनेवाले थे और पूज्य

थे ऐसे मुनिराजको नमस्कार कर तथा मन वचन कायकी शुद्धि पूर्वक सब तरहके परिग्रहों का त्यागकर महाराज प्रजापतिने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये गुरूके वाक्यानुसार संयम धारण किया ॥ ६५-६६ ॥ तदनंतर वे मुनिराज अपनी शक्तिको प्रगट कर कर्मोंका संतानको नाश करनेवाला बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे बारह प्रकारका घोर तपश्चरण करने लगे ॥ ६७ ॥ उन्होंने बहुत दिन तक अत्यन्त दुष्कर और डरपोक लोगोंको भय देनेवाला तपश्चरण किया और आयुके अन्तमें अपना चित्त ध्यानमें लगाया ॥ ६८ ॥ उन मुनिराजने सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वका, संयमसे असंयमका और अप्रमत्त अवस्थासे प्रमादका नाश किया और वे क्षपकश्रेणी चढ़ गए ॥ ६९ ॥ उन्होंने शुक्लध्यानसे मोहनीय कर्मको और फिर अनुक्रमसे ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय इन बाकीके तीनों घातिया कर्मोंका नाश किया और फिर वे छद्मस्थ अवस्थाको छोड़कर केवलज्ञानरूपी परमज्योतिको प्राप्त हुए ॥ ७० ॥ इन्द्रादि देवोंने आकर उनकी पूजाकी और वे केवली भगवान अघातिया कर्मोंका नाशकर सुख देनेवाले मोक्षमें जा विराजमान हुए ॥ ७१ ॥ महाराज प्रजापतिकी यह कथा ज्वलनजटीने भी सुनी और उनकी बड़ी स्तुतिकी। तदनंतर वे विचार करने लगे कि महाराज प्रजापति धन्य हैं, जिन्होंने अपना उत्तम घर भी छोड़ दिया। मैं मूर्ख बालकोंके समान भोगोंमें लोलुप हुआ अबतक निंद्य पापोंकी खानि और नरक देनेवाले गृहस्थाश्रममें पड़ा हूं ॥ ७२-७३ ॥

इसप्रकार उन्होंने अपनी निंदाकी और सज्जनोंको त्याग करने योग्य राज्य अर्ककीर्तिको दिया तदनन्तर वे मुनिराज जगन्नंदनके समीप पहुंचे ॥७४॥ उन्होंने मोक्षकी इच्छा रखनेवाले धीर वीर मुनिराजको नमस्कार किया और उन मुनिराजके वचनोंके अनुसार देवोंके द्वारा पूज्य ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवका नग्न रूप अच्छे परिणामोंसे धारण किया ॥ ७५ ॥ वे मुनिराज कर्मोंको नाश करनेके लिए क्षमा, श्रेष्ठ मार्दव, उत्तम आर्जव, सत्य, शौच, उत्तम संयम, श्रेष्ठ तप, सुखकी खानि त्याग, आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ऐसे दश प्रकारके धर्म धारण करने लगे ॥ ७६-७७ ॥ वे मुनिराज ग्यारह अंग चौदह पूर्वसे उत्पन्न हुए ज्ञानका अभ्यास करने लगे, धर्मध्यान और शुक्लध्यान दोनों उत्तम ध्यान करने लगे और अत्यंत घोर तथा उत्तम तपश्चरण

करने लगे ॥ ७८ ॥ उन्होंने आत्मध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी ईंधनको जला दिया और लोक अलोक दोनोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ७९ ॥ तदनंतर तीनों लोकोंसे ईश्वरपनेको प्रकट करनेवाली पूजा प्राप्तकी और फिर सुखका सागर तथा आत्माके आठों गुणोंसे विराजमान निर्वाण प्राप्त किया ॥ ८० ॥ अथानंतर—किसी एक समय त्रिपृष्ठने अर्ककीर्तिके पुत्र अमिततेजके लिये अपनी सुख देनेवाली ज्योतिप्रभा नामकी कन्या प्रीतिपूर्वक स्वयम्बर विधिसे दे दी थी ॥ ८१ ॥ तथा अर्ककीर्तिकी पुत्री सुतारा स्वयंबरकी मनोहर विधिपूर्वक बड़े प्रेमसे त्रिपृष्ठके पुत्र श्रीविजयकी अर्धांगिनी बन गई थी ॥ ८२ ॥ इसप्रकार संतान दर संतानसे जिनका परस्पर संबंध चला आरहा है ऐसे वे सब भाई पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई और संतान दर संतानका कल्याण करनेवाली लक्ष्मीको प्राप्त हुए थे ॥८३॥ जिसप्रकार पानीमें लोहा सबसे नीचे जाकर बैठ जाता है उसीप्रकार बहुतसे आरंभ और परिग्रहके भारसे वह त्रिपृष्ठ नारायण सातवें नरकरूपी समुद्रमें जा डूबा था ॥८४॥ वहांपर उसने तेतीस सागर तक जिनकी न कोई उपमा दी जा सकती है और न जो वाणीसे कहे जा सकते हैं ऐसे अत्यन्त घोर दुख भोगे थे ॥ ८५ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो, यदि ऐसे चक्रवर्तीको भी पापोंसे नरक जाना पड़ा तो फिर अशुभ कार्योंसे अन्य साधारण लोग नरकरूपी खारे समुद्रमें क्यों न डूबेंगे? ॥ ८६ ॥ देखो इन भोगोंके कारण चक्रवर्तीकी भी ऐसी अवस्था हुई फिर भला सर्पके समान इन भोगोंमें ऐसा कौनसा ज्ञानी है जो तल्लीन हो जाय ॥ ८७ ॥ यदि राज्यसे ऐसी अवस्था हुई तो फिर दुख देनेवाले उस राज्यको धिक्कार हो तथा यदि राज्यलक्ष्मीसे ही नरककी प्राप्ति होती है तो उस लक्ष्मीको दुष्ट स्त्रीके समान बुद्धिमानोंको छोड़ देना चाहिये ॥ ८८ ॥ नारायणके वियोगसे बलभद्रको भी बड़ा भारी शोक हुआ सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें इष्ट वियोगसे क्या २ नहीं होता है? अर्थात् सब कुछ होता है ॥ ८९ ॥ पश्चात् उन बुद्धिमानने कुटुम्ब और राज्यसंपदाको विजलीके समान चंचल समझा और इसप्रकार उन धीर वीरने शोकका नाश किया ॥ ९० ॥ उन्होंने बुद्धिमानोंको त्याग करने योग्य ऐसा राज्य तो श्रीविजयके लिये दिया और युवराजपद विजयभद्रके लिये दिया ॥ ९१ ॥ तदनंतर

वैराग्यमें तत्पर वे बलभद्र शीघ्र ही मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी ऐसे सुवर्णकुम्भ नामके मुनिराजके समीप पहुंचे ॥ ९२ ॥ उन्होंने उन मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणा दीं मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार किया और मुनिराजके आदेशानुसार सात हजार राजवोंके साथ संयम धारण किया ॥ ९३ ॥ उनने शुक्लध्यानरूपी शस्त्रसे घातिया कर्मोंका नाश किया और इन्द्रादिकोंके द्वारा पूज्य ऐसे अनगार केवलीका पद प्राप्त किया ॥ ९४ ॥ इधर अर्ककीर्तिने भी बलभद्रकी उत्तम कथा सुनकर उनकी बड़ी स्तुतिकी और विचार किया कि वे बड़े ही धन्य हैं जिन्होंने तप धारण किया ॥ ९५ ॥ यद्यपि मैं बुद्धिमान हूं तथापि अत्यन्त निंद्य, चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाले, दुष्ट पापका कारण और बुरी तरहसे त्याग करने योग्य ऐसे गृहस्थाश्रममें मैं कैसे ठहर रहा हूं ॥ ९६ ॥ इसप्रकार अपनी निंदाकर वह वैराग्यको प्राप्त हुआ और बुद्धिमानोंको त्याग करने योग्य राज्य अमिततेजको समर्पण किया ॥ ९७ ॥ वह रागद्वेष रहित होकर शीघ्र ही राजा और देवोंके द्वारा पूज्य तथा आकाशगामी ऐसे विपुलमति नामके चारणमुनिके समीप पहुंचा ॥ ९८ ॥ उसने मुनिराजके दोनों चरण कमलोंको नमस्कार किया सब तरहके परिग्रहोंका त्याग किया और मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाली जिनदीक्षा धारण की ॥ ९९ ॥ उन्होंने बारह प्रकारका तपश्चरण किया और शुक्लध्यानरूपी तलवारसे घातिया कर्मोंको नाशकर केवलज्ञानसे प्रगट हुआ राज्य प्राप्त किया ॥ १०० ॥ तदनंतर उन्होंने बड़े २ अतिशयोंसे सुशोभित, इन्द्रादि देवोंके द्वारा पूज्यशुभ और अनन्त सुख देनेवाली मुक्तिरूपी स्त्रीको प्राप्त किया ॥ १०१ ॥

अथानन्तर—पुण्यकर्मके उदयसे अमित तेज और श्रीविजयका सुखदायी समय बड़े प्रेमसे व्यतीत होने लगा ॥ २ ॥ किसी एक दिन कोई एक पुरुष श्रीविजयके दरबारमें आया और आशीर्वाद देकर जोरसे कहने लगा कि राजन् मेरी बात सुनिये ॥ ३ ॥ आजसे सातवें दिन पोदनपुरके राजाके मस्तकपर बज्र पड़ेगा ऐसा निश्चय समझकर शीघ्र ही इसका उपाय कीजिये ॥ ४ ॥ यह सुनकर युवराज क्रोध पूर्वक कहने लगा कि तू सबका जाननेवाला है इसलिये बता तो सही कि उस समय तेरे मस्तक पर क्या पड़ेगा ॥ ५ ॥ युवराजकी बात सुनकर वह आगंतुक पुरुष कहने लगा कि मेरे मस्तकपर अभिषेकके साथ रत्नोंकी वर्षा होगी। इन

मेरे कहे हुए बचनोमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ उसके इस प्रकारके निश्चित बचन सुनकर राजाको आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा कि हे मित्र ! इस आसन पर बैठिये आपसे कुछ बात चीत करना है ॥ ७ ॥ आपका क्या गोत्र है, कौन गुरु है, आपने क्या शास्त्र पढ़ा है और किस प्रकार पढ़ा है ? आपका नाम क्या है और किस कारणसे आपने ऐसी आज्ञा दी है यह सब राजाने उससे पूछा ॥८॥ वह कहने लगा कि कुण्डलपुर नगरमें राजा सिंहरथ राज्य करता है उसके बुद्धिमान पुरोहितका नाम सुरगुरु है उसका मैं निपुण शिष्य हूं ॥ ९ ॥ बलभद्रके साथ दीक्षा लेकर मैंने सब अष्टांग निमित्त पढ़े हैं और उपदेशके अनुसार सुने हैं ॥१०॥ इस संसारमें वे अष्टांग निमित्त कौनसे हैं उनके क्या नाम हैं क्या फल हैं और क्या लक्षण हैं हे निमित्त शास्त्रको जाननेवाले ! उन सबको कहो ॥ १२ ॥ राजाके इस प्रकार पूछनेपर वह कहने लगा कि हे राजन् शुभ अशुभको सूचित करनेवाले उन अष्टांग निमित्तोंको मैं कहता हूं आप मन लगाकर सुनिये ॥ १३ ॥ अंतरिक्ष भौम, अङ्ग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न ये आठ निमित्त कहलाते हैं ॥ १४ ॥ आकाशमें शीघ्र और मन्दगतिसे चलनेवाले जो चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारे ये पांच प्रकारके ज्योतिषी हैं उनके उदय अस्तसे हार, जीत, बृद्धि, हानि, जीवन, मरण, हानि, लाभ, शुभिक्ष दुर्भिक्ष, शुभ, अशुभ आदि और भी बहुत सी बातें निमित्त शास्त्रके विद्वानों द्वारा कही जाती हैं वह सज्जनोंके द्वारा वास्तविक अंतरीक्ष नामका निमित्तज्ञान कहा जाता है ॥ १५-१६ ॥ पृथ्वीके स्थानोंके भेदोंको जानकर हानि बृद्धिका ज्ञान करना तथा पृथ्वीके भीतरके रत्न आदिका कथन करना भौम नामका निमित्तज्ञान कहलाता है ॥ १७ ॥ अङ्ग उपांगोंके स्पर्शकर वा देखकर जीवोंके जीवन, मरण, रोग आरोग्य सुख दुख आदि अङ्ग और तीनों कालोंसे उत्पन्न हुए शुभ अशुभोंका निरूपण करना चतुर पुरुषोंके द्वारा अङ्ग नामका निमित्तज्ञान कहलाता है ॥ १८-१९ ॥ चतुर निमित्त शास्त्रोंको जाननेवाला मेरी मृदङ्ग वीणा आदिके शुभ अशुभ स्वरोंसे तथा गधा, पक्षी, हाथी आदिके स्वाभाविक सुस्वर दुःस्वरोंसे प्राणियोंके सब तरहके इष्ट अनिष्टोंका कहना संसारमें स्वर नामका निमित्तज्ञान कहलाता है ॥ २०-२१ ॥ मस्तक मुख आदिमें उत्पन्न हुए तिल चिन्ह घाव आदिसे लक्ष्मी स्थान मान लाभ हानि आदिका

जानना व्यंजन नामका निमित्तज्ञान कहलाता है ॥ २२ ॥ श्रीवृक्ष स्वस्तिक (सांथिया) आदि शरीरपर उत्पन्न हुए एकसौ आठ लक्षणोंसे भोग ऐश्वर्य आदिकी प्राप्तिका कथन करना लक्षण नामका निमित्तज्ञान है ॥ २३ ॥ वस्त्र शास्त्र आदिकोंमें चूहे आदिके द्वारा देव मनुष्य और राक्षसोंके भेदसे छेद करना तथा उसके द्वारा उसका फल कहना छिन्न नामका निमित्तज्ञान है। शुभ और अशुभके भेदसे स्वप्न दो प्रकारके हैं उन्हें देखकर मनुष्योंकी वृद्धि नाश आदिका यथार्थ कथन करना स्वप्न नामका निमित्तज्ञान है ॥ २५ ॥ हे राजन् इसप्रकार मैंने संक्षेपसे आठ निमित्तज्ञान कहे हैं ये सब मनुष्योंके सुख दुखकी सूचना देनेवाले हैं ॥ २६ ॥ भूख प्यास शीत उष्ण आदि बाईस परिषहोंको न सह सकनेके कारण मैं उनसे दुखी हो गया और ऐसी ही अवस्थामें मैं पद्मिनीखेट नगरमें आया ॥ २७ ॥ पाप कर्मके उदयसे दुष्ट मन्दभागी और पापी मैंने सब तरहके सुख देनेवाली जिनमुद्रा छोड़ दी ॥ २८ ॥ वहांपर सोमशर्मा नामके मेरे मामाने बड़े प्रेमसे हिरण्यलोमासे उत्पन्न हुई चन्द्रानना नामकी अपनी पुत्री केरे साथ ब्याह दी ॥ २९ ॥ मैं वहांपर कुछ कमाता तो था नहीं सदा निमित्त शास्त्रका ही अभ्यास करता रहता था और इधर उसके पिताका दिया हुआ सब धन निबट चुका था इसलिये वह मुझे देखकर कुछ विरक्त सी हो गई थी ॥ ३० ॥ दूसरे दिन भोजनके समय उसने क्रोधसे मेरी थालीमें मेरा इकट्ठा किया हुआ कौडियोंका समूह पटक दिया और कहा कि येही तुम्हारा कमाया हुआ है ॥ ३१ ॥ मेरी थाली स्फटिकके समान थी उसमें वे कौड़ियां सूर्यकी किरणोंके समान जान पड़ती थीं तथा मेरी स्त्रीने हाथ भी धोए थे इसलिये कौडी डालते समय उसमें पानीकी धारा भी पड़ रही थी। इन सब बतोंको देखकर मैंने निश्चय करलिया कि संतोष-पूर्वक मेरा अभिषेक होगा और मुझे धन भी मिलेगा। हे राजन् आज आपको यह समाचार अमोघजिह्वने भेजा है ॥ ३२–३३ ॥ उस निमित्तज्ञानीकी युक्तिपूर्ण बात सुनकर राजा चिंतासे व्याकुल हो गया और उसको बिदाकर मंत्रियोंसे इस प्रकार कहने ३४ ॥ कि इस निमित्तज्ञानीकी बातका निश्चय वा निर्णय करना चाहिये और फिर उसका उपाय हिये क्योंकि जड़का नाश अत्यंत शीघ्र ही होनेवाला होतो फिर उसका उपाय करनेके लिये कौन

देर करेगा ॥ ३५ ॥ राजाकी यह बात सुनकर सुमति नामका मन्त्री कहने लगा कि हे राजन् धर्म सेवन करते हुए यत्नपूर्वक लोहेकी पेटीमें बैठकर समुद्रके मध्यमें रहना चाहिये ॥ ३६ ॥ सुमति मन्त्रीकी यह बात सुनकर सुबुद्धि नामका मन्त्री कहने लगा कि समुद्रमें रहना ठीक नहीं है क्योंकि वहां मगरमच्छोंका डर है इसलिये विजयार्द्ध पर्वकी गुफामें रहना ठीक है ॥ ३७ ॥ सुबुद्धि मन्त्रीकी यह बात सुनकर पहिली सब बातोंका जाननेवाला बुद्धिमान बुद्धिसागर मन्त्री एक प्रसिद्ध कथा कहने लगा ॥ ३८ ॥ इसी भरतक्षेत्रके सिंहपुर नगरमें एक सोम नामका ज्ञानी किन्तु कुबुद्धि परिव्राजक रहता था जो कि खोटे शास्त्रोंके अभ्याससे बड़ा ही अभिमानी था ॥ ३९ ॥ किसी एक दिन वह बाद विवादमें जिनदाससे हार गया समय पाकर वह मरा और उसी सिंहपुर नगरमें एक भारी भैंसा हुआ ॥ ४० ॥ खोटे शास्त्रोंके अभ्याससे उत्पन्न हुए पाप कर्मोंके उदयसे वह एक छोटे व्यापारीके घरमें आया वहांपर वह बहुत थक गया और नमक आदि बहुत सा बोझा लादता रहा ॥४१॥ जब वह भैंसा बहुत थक गया और बोझा लादने योग्य न रहा तब उस व्यापारीने भी उसकी ओर उपेक्षाको दृष्टि कर दी और उसे घास पानी देना बंद कर दिया ॥ ४२ ॥ कुक्षि फट जानेके कारण वह मरा और अशुभ बैर बांधकर किसी नगरके श्मशानमें राक्षस हुआ। वहां उसे जातिस्मरण भीहुआ था ॥ ४३ ॥उसी नगरमें कुम्भ भीम राज्य करते थे। पापकर्मके उदयसे कुंभ सदा भयानक नरकको ले जानेवाले मांसमें (मांस खानेमें) तल्लीन रहता था ॥ ४४ ॥ कुंभके रसोइयाका नाम रसायनपाक था। किसी एक दिन उस रसोइयाको दुख देनेवाला पशुका मांस नहीं मिला इसलिये उसने राजाके डरसे किसी मरे हुए बालकका मांस उसे खानेके लिये दे दिया ॥ ४५ ॥ उसी दिनसे वह पापी मनुष्यके मांस खानेका लोलुपी हो गया था ॥ ४६ ॥ नरक गतिमें जानेवाले और नरमांसके लोलुपी उस कुम्भने स्वयं नरमांस खाना प्रारंभ किया ॥ ४७ ॥ इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं कि राजा प्रजाकी रक्षा करनेवाला है परन्तु प्रजाकी रक्षा करना तो दूर रहा वह पापी अपनी प्रजाको खाने लगा था॥ ४८ ॥ यही समझकर मंत्रियोंने उस पापीका

परित्याग कर दिया था। सो ठीक ही है क्योंकि दुख देनेवाला पापका घोर फल इसी जन्ममें मिल जाता है ॥ ४९ ॥ उस रसोइयाके दिये हुए मांससे जीवित रहनेवाले उस क्रूर राजाने उसी अपने रसोइएको मारकर ऐसी विद्या सिद्धकी जिससे वह ऊपर लिखा हुआ भैंसाका जीव राक्षस उसके वशमें हो गया ॥ ५० ॥ वह दुष्ट कुनिर्दयी और नरक जानेवाला कुम्भ उसी नगरमें चारों ओर घूमने लगा और उस राक्षसकी सहायतासे अपनी अच्छी प्रजाको खाने लगा ॥ ५१ ॥ उस समय उसके भयसे उसकी सब प्रजा अपनी रक्षा करनेके लिये बड़ी शीघ्रताके साथ उस नगरको छोड़ कारकट नामके नगरमें चली गई थी ॥ ५२ ॥ परन्तु वह पापी वहां आकर भी प्रजाका खूब भक्षण करने लगा था इसलिये उसी समयसे उस नगरका नाम कुँभकारकट नगर पड़ गया था ॥ ५३ ॥ वह पापी जिस मनुष्यको देखता था उसीको खा जाता था इससे डरकर वहांकी प्रजाने उसको एक जगह ठहरनेका प्रबन्ध किया और उसके खानेके लिये एक मनुष्य और एक गाड़ी अन्न प्रतिदिन देना स्वीकार किया ॥ ५४ ॥ उसी नगरमें एक चन्द्रकौशिक नामका ब्राह्मण रहता था और संसारको बढ़ानेवाली उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था ॥ ५५ ॥ उन दोनोंके पुण्य कर्मके उदयसे तथा बहुत दिन तक भूतोंकी उपासना करनेसे मंडकौशिक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ५६ ॥ किसी एक दिन वह भयभीत मण्डकौशिक पाप कर्मके उदयसे गाड़ीपर बैठा हुआ कुम्भके भोजनके लिये जा रहा था ॥५७॥ दैवयोगसे उसी मार्गसे भूत जा रहे थे उन भूतोंने उस ब्राह्मणको पकड़ लिया परन्तु कुम्भ हाथमें दण्डा लेकर आया और उसने उन सब भूतोंको फटकार लगाई ॥ ५८ ॥ उस कुम्भके डरसे भूतोंने उस ब्राह्मणको केसी बिलमें (गढ़ेमें) रख दिया और वे स्वयं सब भाग गए। परन्तु अशुभ कर्मके उदयसे उस ब्राह्मणको एक अजगर निगल गया (खा गया) ॥ ५९ ॥ आचार्य करते हैं कि देखो कर्मरूपी शत्रुओंसे बन्धा हुआ प्राणी अनेक दुखोंकी परंपराको भोगता रहता है, और जब तक वह कठिन तपश्चरण नहीं करता तब वह कभी उन दुखोंसे नहीं छूट सकता ॥ ६० ॥ इसलिये हे राजन्! विजयार्द्ध पर्वतकी गुफामें अनेक भय भरे हुए हैं इसलिये आपको उसमें रखना सर्वथा अनुचित है इसके लिये तो कुछ और ही अच्छा

उपाय होना चाहिए ॥ ६१ ॥ उसको इस कथाको सुनकर सूक्ष्म बुद्धिवाला मतिसागर नामका मन्त्री कहने लगा कि उस निमित्तज्ञानीने यह नहीं कहा है कि महाराज श्रीविजयके ऊपर वज्र गिरेगा उसने तो यह कहा है कि पोदनपुर नगरके स्वामीके ऊपर वज्र गिरेगा। इसलिए जब तक यह विघ्न दूर न हो जाय तब तक इस नगरका राजा किसी और को बना लेना चाहिए॥ ६२-६३॥ मतिसागरकी यह बात सब श्रेष्ठ मंत्रियोंने मान ली और सबने मिलकर स्वयं राज्यसिंहासनपर एक यक्षका प्रतिबिंब स्थापन किया॥६४॥ तथा सबने कहा कि आजसे पोदन नगरका राजा तू ही है यह कहकर सबने उसकी पूजाकी इधर महाराज श्रीविजयने भी राज्य और भोगोपभोगोंकी सब संपदाएं छोड़ दीं॥६५॥ तदनंतर वह चैत्यालयमें गया और शांतिके लिये सब तरहके विघ्नोंको दूर करनेवाली श्री जिनबिंबकी महापूजा करने लगा ॥६६॥ वह राजा सुपात्रोंके लिये समस्त अनिष्टोंको दूर करनेवाला दान देने लगा तथा दीन और अनाथ लोगोंको करुणादान देने लगा ॥ ६७ ॥ वह एकाग्रचित्तसे समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाले और पंच परमेष्ठीके वाचक ऐसे पंच नमस्कार मंत्रका जप बार २ करने लगा ॥ ६८ ॥ उसने अन्य सब कार्य छोड़ दिये और वह जिन मंदिरमें बैठकर प्रतिदिन विघ्नोंको दूर करनेवाला धर्म्यध्यान करने लगा ॥ ६९ ॥ यह बात ठीक है कि धर्मसे, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेसे, पात्रोंको दान देनेसे और नमस्कार मंत्रके जपके फलसे सब तरहके विघ्न दूर हो जाते हैं ॥ ७० ॥ यही समझकर वह मंत्रियोंका समूह जिनेन्द्रदेवकी पूजाकर, नित्य ही जपकर तथा दान देकर शांतिकर्म करने लगा ॥ ७१ ॥ राजाके सब कुटुम्बी लोग विघ्न दूर करनेके लिये दान पूजासे उत्पन्न हुआ तथा शांति करनेवाला धर्मसेवन प्रतिदिन करने लगे ॥ ७२ ॥ नगरमें पूजाके लोग भी शांतिके लिए दान जिनपूजा और महामंत्रका जप आदिसे अनेक गुणोंका भंडार ऐसा पुण्य सम्पादन करने लगे ॥ ७३ ॥ इसप्रकार उस नगरमें धर्मकी प्रवृत्ति बहुत ही बढ़ गई थी सो ठीक ही है क्योंकि जिसप्रकार वज्रसे पर्वत चूर चूर हो जाते हैं उसी प्रकार धर्मसेवनसे सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ सातवें दिन उस राज्यसिंहासनपर बैठी हुई यक्षकी प्रतिमाके मस्तकपर अकस्मात् बड़ा भारी शब्द करता हुआ और अत्यन्त निष्ठुर ऐसा वज्रपात हुआ ॥ ७५ ॥

इसप्रकार जब वह उपद्रव नष्ट हो गया तब वे नगर निवासी बड़े ही प्रसन्न हुए और पूजा दान व्रत आदिके द्वारा द्विगुणित धर्म सेवन करने लगे ॥ ७६ ॥ लोग बड़े ही प्रसन्न हुए उन्होंने उस नगरमें सब ओर तोरण बांधे तथा चारों ओर बड़े बड़े नगारे बजवाये इसप्रकार उन्होंने बड़ा भारी उत्सव मनाया ॥ ७७ ॥ उस विघ्नके शांत हो जानेसे राजाको धर्मका भारी निश्चय होगया और अपने किए हुए धर्मका प्रत्यक्ष फल देख लेनेसे वह बहुतही प्रसन्न हुआ ॥७८॥ राजाने संतुष्ट होकर उस निमित्त ज्ञानीको बुलाया उसका आदर सत्कार किया और पद्मखेटके साथ साथ उसे सौ गांव दिये ॥ ७९ ॥ सब उत्तम मंत्रियोंने भक्ति और विधि पूर्वक भगवान् जिनेन्द्रदेवकी शांति पूजाकी और फिर शांति देनेवाला महाभिषेक किया ॥ ८० ॥ पुण्यकर्मके उदयसे सोनेके कलशोंसे राजाका अभिषेक किया और उसे सिंहासनपर विराजमान कर फिर उसे अपने राज्यका स्वामी बनाया ॥ ८१ ॥ भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मका सेवन करनेसे उत्पन्न हुये पुण्य कर्मके उदयसे अनेक तरहके दुःख और शोक देनेवाला तथा मनुष्योंका नाश करनेवाला समस्त विघ्नोंका समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ८२ ॥ यह मनुष्य धर्मके प्रभावसे सुन्दर स्त्रियां प्राप्त करता है धर्मके ही प्रभावसे अच्छे सुख प्राप्त करता है धर्मके ही प्रभावसे बड़ी भारी राज्य विभूतिको प्राप्त होता है और धर्मके ही प्रभावसे परलोकमें स्वर्गोंके सुख प्राप्त करता है ॥ ८३ ॥ धर्मके प्रभावसे मनुष्योंके अत्यन्त तीव्र, मनुष्य देव और सर्प आदिसे उत्पन्न होने वाले अग्नि जल आदिसे उत्पन्न होनेवाले और आकस्मिक ऐसे उन मनुष्योंको नष्ट करनेवाले अनन्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं ॥ ८४ ॥ संसारमें यह धर्म सबतरहके सुख देनेवाला है जीवका भला करनेवाला है स्वर्गमोक्षको प्राप्त करनेवाला है श्रीतीर्थंकरकी परम विभूतिको देनेवाला है गुणोंका निधि है पापोंका नाश करनेवाला है समस्त अनिष्टोंको नाश करने वाला है और विद्वानोंके द्वारा सेवन करने योग्य है इसलिये गुणी पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये समस्त पापोंको छोड़कर सदा धर्मका सेवन करते रहना चाहिये ॥ ८५ ॥ श्री शांतिनाथ भगवान् जरारहित हैं देवोंके द्वारा पूज्य हैं समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेके लिए दीपकके समान हैं, इंद्रिय दमन

शांति और संयमके स्थान हैं सब तरहके सुख देने वाले हैं समस्त दोषों से रहित हैं और स्वर्ग मोक्षके कारण हैं ऐसे श्री शांतिनाथ भगवानकी निर्मल और समस्त कीर्तिका वर्णन कर मैं उनकी स्तुति करता हूं ॥ ८६ ॥

इसप्रकार शांतिपुराणमें अमिततेजको राज्य प्रजापति, ज्वलनजटीका मोक्षगमन, श्रीविजयके विघ्नोंको दूर करनेका ३ रा अधिकार समाप्त। ३॥

अथ चौथा अधिकार।

ज्ञानादि गुणोंका घात करने वाले घातिया कर्मोंको शांत करने के लिए संसारभरमें शांति स्थापन करने वाले श्री शांतिनाथ जिनेंद्रदेवको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अथानंतर किसी एक दिन श्रीविजयने माताके उपदेशसे अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये आकाशगामिनी विद्या सिद्ध की ॥ २ ॥ उस विद्याकी सहायतासे वह राजा सुताराके साथ विमानमें बैठकर क्रीड़ा करनेके लिए ज्योतिर्वनमें गया ॥ ३ ॥ वहांपर वह अपनी रानीके साथ मनोहर नामके बनमें आनन्दसे इच्छानुसार लीलापूर्वक बिहार कर रहा था ॥ ४ ॥ इधर चमरचंच नामके नगरमें विद्याधरोंका राजा इंद्राशनि राज्य करता था उसके पुण्यकर्मके उदयसे उसे आसुरी नामकी रानी मिली थी ॥ ५ ॥ उन दोनोंके अशनिघोष नामका पुत्र हुआ था उसने भी आकाशगामिनी विद्या सिद्धकी थी और उससे वह आकाशमार्गसे अपने नगरको आ रहा था ॥ ६ ॥ उस वनमें सुताराको देखकर उसपर वह मोहित हो गया और उसे लेजानेका उद्योग करने लगा उसने श्रीविजयको एक बनावटी हिरण दिखलाया ॥ ७ ॥ अशुभ कर्मके उदयसे वह श्री विजय क्रीड़ापूर्वक उस हिरणके पीछे चला गया और वह पापी अशनिघोष अपना श्रीविजयकासा रूप बनाकर आकर सुतारासे कहने लगा ॥ ८ ॥ कि हे सुन्दरी प्रिये ! वह हिरण तो वायुके समान उड़ गया परन्तु मैं लौट आया। अब सूर्य भी डूबनेको हुआ इसलिए चलो घर चलें ॥ ६ ॥ इसप्रकार कहकर उस पापी विद्याधरने उस सुताराको अपने विमानमें बिठा लिया और थोड़ी दूर जाकर उसे अपना निजी रूप दिखला दिया उसके रूपको देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गई और कहने लगी कि यह पापी दुष्ट मूर्ख कौन है जो मुझे ले आया है ॥ ११ ॥ इधर अश-

निवेगकी आज्ञासे वैतालीविद्या सुताराका रूप बनाकर उसकी जगह बैठ गई थी ॥ ॥ जब श्रीविजय उधरसे लौटा और सुताराको (वैतालीको) खेद खिन्न देखा तो उसने उससे पूछा कि हे सुन्दरमुखी ! यह तेरी अवस्था ऐसी दुखको सूचित करनेवाली क्यों हो रही है ॥ १३ ॥ इसके उत्तरमें उस वैतालीने कहा कि नाथ ! मुझे कुक्कुट सर्पने काट लिया है यह कहकर उस दुष्टाने मायाचारीसे (विद्यासे) अपना मरनेका रूप बना लिया ॥ १४॥ पोदनपुरके राजा श्री विजयका हृदय बहुतही कोमल था इसलिये उस विषको मणि मंत्र औषधिआदिके द्वारा असाध्य जानकर वह उसके साथ मरनेके लिए तैयार हुआ ॥१५॥ उसने लकड़ी इकट्ठीकर चिता बनाई उसमें सूर्यकांत मणिसे अग्नि लगाई और शोकसे व्याकुल होकर वह स्वयं रानीके साथ उसमें जा बैठा ॥ १६ ॥ उसी समय उसके पुण्यकर्मके उदयसे उस उपद्रवको नष्ट करनेवाले कोई दो उत्तम विद्याधर वहांपर आ पहुंचे ॥ १७ ॥ उन दोनोंमेंसे एकने अपने पराक्रमसे उलटी तरहसे विच्छेदनी विद्याका स्मरणकर उस वैताली विद्याको मार भगाया ॥ १८॥ वह बैताली विद्या उसके सामने ठहर न सकी इसलिये राजा श्रीविजयको अपना निजी रूप प्रकट दिखाकर अदृश्य हो गई ॥१६॥ यह सब तमाशा देखकर राजाको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उसने उस विद्याधरसे पूछा कि यह क्या है ? इसके उत्तरमें वह विद्याधर कहने लगा कि ॥ २० ॥ इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें पुण्यवान और सुन्दर ऐसे विजयार्द्ध पर्वतके दक्षिण श्रेणीमें एक ज्योतिप्रभ नामका सुन्दर नगर है। वहांका मैं संभिन्न नामका राजा हूं और पुण्य कर्मके उदयसे मेरी सर्वकल्याणी नामकी रानीसे उत्पन्न हुआ यह द्वीपशिख नामका मेरा पुत्र है ॥ २१-२२ ॥ मैं सदासे विद्या और श्रेष्ठपुण्यसे शोभायमान तथा सर्वोत्तम ऐसे अमिततेज नामके विद्याधरका अनुचर बना आ रहा हूं ॥ २३ ॥ आज मैं पुण्य सम्पादन करनेके लिए सुमेरु आदि पर्वतोंपर यात्रा कर आकाश मार्गसे आ रहा था मार्गमें मैंने एक विमानमें शोकके शब्द सुने ॥ २४ ॥ वे शब्द स्त्रीके थे और बड़ी करुणा और दुखसे भरे हुए थे। वह कह रही थी कि हे स्वामी श्रीविजय आप कहां हैं ? हे रथनूपुरके राजन ! आप कहां हैं ? मेरी रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ तदनन्तर मैं उसके समीप गया और उससे कहा कि तू कौन है और किसको हरकर ले

जा रहा है ? तब वह क्रोधसे कहने लगा कि मैं चमरचंच नगरका राजा हूं अशनिघोष विद्याधर मेरा नाम है और मैं इसे जबर्दस्ती ले जा रहा हूं। यदि तुझमें सामर्थ है तो आ इसे छुड़ा ले जा ॥ २६—२७ ॥ उसकी यह बात सुनकर मैंने अपने मनमें सोचा कि यह पापी मेरे स्वामीकी बहिनको ले जा रहा है ॥ २८ ॥ ऐसे समयमें मुझे साधारण मनुष्योंके समान नहीं चला जाना चाहिए किन्तु इस दुष्टको मारकर सुताराको ले चलना चाहिए। यही सोचकर मैं उसके समीप गया ॥ २६ ॥ जब मैंने उसके साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया तब सुताराने कहा कि भाई तुम युद्ध मत करो किन्तु इसी समय ज्योतिर्वनमें जा कर शोक रूपी अग्निसे जले हुए श्रीविजयसे मेरी अवस्थाका सब समाचार कह सुनाओ ॥ ३०-३१ ॥ हे राजन्! इस प्रकार तेरी रानीके द्वारा भेजे हुए हम यहां आए हैं यह तेरे शत्रुकी भेजी हुई वैताली देवी मैंने मार भगाई है ॥ ३२॥ राजा सम्भिन्नकी यह बात सुनकर श्रीविजयने कहा कि हे मित्र! अब आप शीघ्रही जाकर यह सब समाचार मेरी माता और छोटे भाई आदिसे कह सुनाइए ॥ ३३ ॥ तब राजा सम्भिन्नने अपने पुत्र द्वीपशिखको पोद-नपुरमें भेज दिया। इधर पोदनपुरमें भी बहुतसे उपद्रव हुए थे ॥ ३४ ॥ उन्हें देखकर अमोघ जिह्व और जयगुप्त निमित्तज्ञानियोंने अपने निमित्तज्ञानसे जानकर स्वयंप्रभा आदिसे कहा कि इस समय महाराजको कुछ भय उत्पन्न हुआ है परन्तु वह उसी समय नष्ट हो गया है कोई पुरुष इसी समय राजी खुशीके समा-चार लेकर आवेगा ॥ ३५-३६ ॥ आप लोग निश्चलताके साथ बैठे रहें किसी तरहका भय न करें। महाराज इस समय पुण्यकर्मके उदयसे बिना किसी उपद्रवके राजी खुशी निवास कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ उसी समय द्वीपशिख नामका विद्याधर आकाशसे उतर कर पृथ्वी पर आया और उसने विधिपूर्वक स्वयंप्रभ तथा उसके पुत्रको नमस्कार किया ॥ ३८ ॥ उसने कहा कि श्रीविजय कुशलपूर्वक हैं आप लोग भय छोड दीजिए। यह कहकर उसने सब समाचार ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ ३९ ॥ उस समाचारको सुनकर स्वयं प्रभाकी कांति मन्द पड़ गई और जिस प्रकार पृथ्वी दावानल अग्निसे जल जाती है उसी प्रकार वह शोकरूपी अग्निसे झुलससी हो गई ॥ ४० ॥ वह स्वयंप्रभा अपने पुत्र और सेनाको लेकर तथा अनेक विद्याधरोंके साथ नग-

रसे निकली और पुत्रको देखनेके लिए शीघ्र ही उस बनमें जा पहुंची ॥ ४१ ॥ राजा श्रीविजयने दूरसे ही देखा कि माता आ रही है और वह शोकसे व्याकुल सी हो गई है। उसे देखकर वह सामने गया और उसने उनके दोनों चरण कमलोंको नमस्कार किया ॥ ४२॥ स्वयंप्रभाने अपने पुत्रको देखा और बड़े संतोषसे उसका आलिंगन किया और फिर जय जीव आदि वाक्योंके द्वारा उसे आशीर्वाद दिया ॥ ४३ ॥ जब वह श्रीविजय सुखसे बैठ गया तब माताके पूछने पर उसने स्त्रीके वियोगसे होनेवाला सुताराके हरण होने आदिका सब वृत्तांत कह सुनाया। इसके बाद उसने माताके सामने राजा सम्भिन्नकी प्रशंसा भी अनेक तरहसे की सो ठीकही है क्योंकि विद्वान लोग किसीके उपकारको नहीं भूलते हैं ॥ ४४-४५ ॥

उस स्वयंप्रभाने अपने छोटे पुत्र विजयभद्रको तो नगरकी रक्षाका भार सौंपा और स्वयं बड़े पुत्र श्रीविजयके साथ आकाश मार्गसे रथनूपुर नगरको चली ॥ ४६ ॥ अपने देशके दूतोंसे अमिततेजने भी उसके आनेका समाचार जान लिया और वह उसे मान देनेके लिये उसके सामने आया ॥ ४७ ॥ अमिततेजने उसे बड़ी विभूतिके साथ नगर और घरमें प्रवेश कराया और स्नान भोजन आदिसे उसका बहुतही अच्छा आदर सत्कार किया ॥ ४८ ॥ तदनंतर मा बेटोंने अर्थात् स्वयंप्रभा और श्रीविजयने अमिततेजके सामने पाप कर्मके उदयसे होनेवाले सुताराके हरण आदिके सब समाचार स्वयं कह सुनाए ॥ ४९ ॥ यह सुनकर अमिततेजने सुतारा मांगनेके लिये अशनिघोष विद्याधरके पास मरीच नामका एक दूत शीघ्रही भेजा ॥ ५० ॥ दूत राजा अशनिघोषके पास गया और उससे सुतारा मांगी। परन्तु उस पापी राजाने उस दूतसे उस समय बहुत बुरे शब्द कहे ॥ ५१ ॥ इसलिये वह दूत शीघ्र ही वहांसे चला आया और अपने स्वामीके पास आकर जो कुछ उसने दुर्वचन कहे थे वे सब ज्योंके त्यों कह सुनाये ॥ ५२ ॥ तब अमिततेजने मंत्रियोंके साथ विचार किया और उस अमिततेज विद्याधरने अपनी विद्या और सेनाके द्वारा मदोन्मत्त उस विद्याधरके नाश करनेकी तैयारीकी ॥ ॥ ५३ ॥ उस अमिततेज विद्याधरने श्रीविजयके लिये बंधमोचनी (बंधको छुड़ानेवाली) प्रहरणावरणी (शस्त्रोंको रोकनेवाली) और युद्धवीर्या (युद्धमें पराक्रम प्रगट करनेवाली) ये तीन विद्याएं दी ॥ ५४ ॥

अमिततेजने रश्मिवेग सुवेग आदि अपने पांचसौ पुत्रोंके साथ पोदनपुर नगरके राजा श्रीविजयको शत्रुके सामने भेजा तथा वह स्वयं बड़े पुत्र सहस्ररश्मिके साथ सब विद्याओंके सिद्ध करनेका स्थान भूत ऐसे ह्रीमंत पर्वतपर पहुंचा॥ ५५-५६ ॥ वहांपर वह अपने पुत्रके साथ संजयंत नामके महा चैत्यालयमें सब विद्याओंका नाश करनेवाली 'महाज्वाला' नामकी विद्या सिद्ध करने लगा ॥ ५७ ॥ इधर अशनिघोषने रश्मिवेग आदिके साथ श्रीविजयका आगमन सुनकर हठ पूर्वक युद्धके लिये पुत्र भेजे ॥५८॥ सुघोष शतघोष सहस्रघोष आदि वे सब योद्धा श्रीविजयके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५६ ॥ वहांपर उन दोनों सेनाओंका बड़ाभारी युद्ध हुआ जो कि आश्चर्य प्रगट करनेवाला था और अनेक जीवराशिको त्तय करनेवाला था ॥ ६० ॥ उस युद्धमें कितने ही लोगोंके अंग और संधियां छिन्न भिन्न हो गई थी और उनमेंसे कितने ही उपवास धारण कर तथा हृद-यमें श्रीजिनेन्द्रदेवका स्मरण कर स्वर्ग चले गये थे ॥ ६१ ॥ जिनके शरीर वाणोंसे छिन्न भिन्न हो गये हैं ऐसे कितने ही धीरवीर योद्धा भावदीक्षा लेकर तथा ध्यान धारणकर स्वर्गमें जा विराजमान हुए थे ॥ ६२ ॥ उस युद्धमें तीव्र दुःखसे दुःखी हुए कितने ही लोग पंच नमस्कार मंत्रका ध्यानकर देवोंकी लक्ष्मीको प्राप्त हुए थे ॥ ६३ ॥ वह युद्ध रौद्र ध्यानसे उत्पन्न हुआ था और अत्यंत पापोंको उत्पन्न करनेवाला था इसलिये धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाले हमलोगोंने वर्णन नहीं किया है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार अत्यंत भय उत्पन्न करने-वाला वह संग्राम पंद्रह दिनतक होता रहा अंतमें अन्यायसे उत्पन्न हुए पापके कारण सब शिथिल हो गये ॥ ६५ ॥ यह समाचार जानकर वह पापी भयानक अशनिघोष विद्याधर क्रोधसे अंधा होकर स्वयं युद्ध करनेके लिये आया ॥ ६६ ॥ वह बुद्धहीन और कुमार्गगामी विद्याधर शत्रुको पाकर अपनी हानि करनेवाला तथा अपयश और पापका कारण ऐसा घोर युद्ध करने लगा ॥ ६७ ॥ उस युद्धमें जब श्रीविजयने अपने दो रूप बनाये तब अशनिघोषने भी अपनी भ्रामरी विद्यासे अपने दो रूप बना लिये ॥ ६८ ॥ परंतु अशनिघोषके वे दोनोंरूप श्रीविजयने खंडनकर दिये, उनके खंडन करते ही उसके चार रूप हो गये इस प्रकार खंडन करते करते अशनिघोषके रूपोंकी दूनी दूनी बृद्धि होती गई ॥६९॥ इस प्रकार वह समस्त युद्धस्थल भ्रामरी विद्याके

द्वारा यमके घरके समान अशनिघोषके रूपोंसे अत्यंत भरगया ॥ ७० ॥ उसी समय रथनूपुरके राजा अमित-तेजको महापुण्यकर्मके उदयसे समस्त राज्यको बढ़ानेवाली वह विद्या सिद्ध हो गई ॥ ७१ ॥ तदनंतर वह अमित तेज विद्याधर अपने पुत्रके साथ युद्धस्थलपर आया और उसने आते ही उस भ्रामरी विद्याको नाश करनेवाली महाज्वाला विद्याको आज्ञा दी ॥ ७२ ॥ उस अशनिघोषको युद्ध करते पंद्रह दिन हो गये थे अंतमें वह महाज्वाला विद्याको सह नहीं सका इसलिये अशुभकर्मके उदयसे भय भीत हुआ वह विद्याधर युद्धसे हट गया और दूर भाग गया ॥ ७३ ॥ विजय नामके उत्तम नाभेव पर्वतपर भव्यजीवोंको शरणभूत ऐसा श्रीजिनेंद्र-देवका समवशरण था वह अशनिघोष विद्याधर भागकर वहां पहुँचा ॥ ७४ ॥ अमिततेज आदि भी क्रोधित होकर उसके पीछे पीछे गये परन्तु वहांपर मानस्तंभको देखकर सब शांत हो गये और सबके मन स्वस्थ हो गये ॥ ७५ ॥ वे सबलोग (अशनिघोष अमिततेज आदि) अपना अपना वैररूपी विष छोड़कर तथा संसार मात्रका हित करनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवकी तीन प्रदक्षिणा देकर और उन्हें नमस्कारकर एक साथ बैठ गये ॥ ७६ ॥ उसी समय उसी मार्गसे पुण्यवती सती अशनिघोषकी माता आसुरी दावानल अग्निसे जली हुई लताके समान सुताराको लेकर आई ॥७७॥ तथा श्रीविजय और अमिततेजसे कहने लगी कि मेरे पुत्रसे अपराध बन पड़ा है आप उसे क्षमा कर दीजिये यह कहकर उसने उन दोनोंको वह सुतारा सोंपदी ॥७८॥ श्रीजिनेद्रदेवके सामने जाति और स्वभावसे उत्पन्न हुआ पशुवोंका घोर बैर भी नष्ट हो जाता है फिर भला मनुष्योंका वैर नष्ट क्यों न हो जायगा ॥ ७९ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवके समीप दुर्भिक्ष और ईति भीति आदि सब नष्ट हो जाता है फिर भला इस संसारमें उनके समीप जाकर बैर भावका त्याग कर देना कितनी बड़ी बात है ॥ ८० ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवको पाकर अनादि कालसे बन्धे हुए कर्म भी नष्ट हो जाते हैं फिर उनकी दिव्य-ध्वनि सुनकर उनका बैर छूट जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ८१ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवका ध्यान करनेमें तत्पर ऐसे भव्यजीव अत्यंत दुर्निवार यमराजको भी लीलामात्रमें निवारण कर देते हैं फिर भला क्या शुभ-कर्मोंके उदयसे शत्रुका निवारण नहीं किया जा सकता ? ॥ ८२॥ भगवानकी दिव्यध्वनि सुनकर यदि सिंह

हिरण आदि क्रूर जीव भी परस्पर प्रेम करने लग जाते हैं फिर भला उन दोनोंमें अत्यंत प्रेम क्यों नहीं हो सकता था? ॥ ८२ ॥ भगवान जिनेंद्रदेवके माहात्म्यसे प्राणियोंके शरीरको नष्ट करनेवाले भी सब तरहके विघ्न नष्ट हो जाते हैं फिर भला इस संसारमें उन दोनोंको किसी प्रकारका विघ्न किस प्रकार हो सकता था ॥ ८४ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको यमराज तथा बुरे विघ्नोंको दूर करनेके लिये इस लोक और परलोक दोनोंलोकोंका हित करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेवका ही स्मरण करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अथानन्तर अमिततेज विद्याधरने भक्तिपूर्वक श्रीजिनेंद्रदेवको नमस्कार किया और तत्वार्थोंका ज्ञान होनेके लिये हाथ जोड़कर धर्मका स्वरूप पूछा ॥ ८६ ॥ वह पूछने लगा कि हे भगवान ! यह असार संसाररूपी समुद्र तीव्र दुखरूपी लहरोंसे भरा हुआ है घोर क्रोध मान आदि कषायरूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है। हे नाथ इसका पार कौन पा सकता है ॥ ८७ ॥ हे देव आप संसाररूपी सागरके पार हो चुके हैं आप ही संसारमें एक मात्र बंधु हैं और आपही सब जीवोंका हित करनेमें तत्पर हैं इसलिए आपके सिवाय यह विषय और किसीसे नहीं पूछा जा सकता ॥ ८८ ॥ हे प्रभो ! आपही संसारके नाथ हैं आप ही तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं आपही देवोंके द्वारा पूज्य हैं और आपही इस संसारभरमें उत्तम हैं ॥ ८९ ॥ मुनिलोग आपकी ही सेवा करते हैं आप ही जीवोंके गुरु हैं और आप ही इस संसारमें समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेवाले दीपक हैं ॥९०॥ हे जिनेंद्रदेव ! आप अतिशय पुण्यवाले हैं इसलिये आपको नमस्कार हो। हे जगन्नाथ आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ ९१ ॥ हे देव, भव्यजीव रत्नत्रयरूपी धनको लेकर आपकी दिव्यध्वनिरूपी महानावपर चढ़कर संसाररूपी महासागरसे पार हो जाते हैं और मोक्षरूपी द्वीपमें जा पहुंचते हैं ॥ ९२ ॥ हे स्वामिन् ! जिसप्रकार बिना सूर्यके प्रकाशके रात्रिका अंधकार दूर नहीं हो सकता उसी प्रकार आपकी दिव्यध्वनिरूपी दीपकके बिना हम लोगोंके मनका अंधकार कभी दूर नहीं हो सकता जिसप्रकार संसार रूपी मार्गमें चलनेवाले जीव मेघोंकी वर्षासे सुखी होते हैं उसीप्रकार मोक्षमार्गमें चलनेकी इच्छा रखनेवाले भव्यजीव आपको दिव्यध्वनिकी वर्षासे सुखी होते हैं ॥ ९४ ॥ हे जिनेंद्रदेव ! जिस प्रकार

मेघवर्षाके द्वारा चातकों की प्यास बुझाता है उसीप्रकार आपभी अपनी दिव्यध्वनिसे हम लोगों की संसारमें फैलनेवाली भोगों से उत्पन्न हई तृष्णाको दूर कर दीजिए ॥ ९५ ॥ हे जगतपूज्य ! हे जिनेंद्रदेव ! आप हम सरिखे भव्य जीवों के लिए तत्वों से भरे हुए धर्मका स्वरूप निरूपण कीजिए ॥९६॥ इसप्रकार पूछनेपर श्रीजिनेंद्रदेव दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे सो ठीक ही है क्यों कि जिसप्रकार मेघों की वर्षासे चातक पक्षी संतुष्ट होते हैं उसी प्रकार भगवानकी दिव्यध्वनिसे भव्यजीव भी संतुष्ट होते हैं ॥ ९७ ॥ भगवान तत्वों का निरूपण करने लगे कि हे विद्याधरों के राजा तू अपना मन निश्चलकर सुन, मैं तेरे लिए धर्म और तत्वों से भरा हुआ कुछ ज्ञान निरूपण करता हूं ॥ ९८ ॥ जीवोंको घोर दुख देनेवाला यह संसार अनंत और अनादि है। अभव्योंके लिये तो इसका कभी अंत ही नहीं होता और भव्यजीवोंके लिये इसका अंत हो जाता है ॥९९॥ इस संसारके कारण घोर दुख देनेवाले कर्म हैं उन कर्मोंके अनेक भेद हैं मूलभेद तो आठ हैं और उत्तर भेद एकसौ अड़तालीस हैं ॥ १०० ॥ उन कर्मोंके कारण तथा बन्ध करनेवाले आस्त्रव हैं जो कि सब तरहके पाप उत्पन्न करनेवाले हैं और मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योगके भेदसे अनेक प्रकारके ॥ १ ॥ उनमेंसे ज्ञान और चारित्रका घात करनेवाला तथा चित्त धर्म और शुभ अशुभ तत्वोंमें मूढता उत्पन्न करनेवाला मिथ्यात्व पांच प्रकारका कहा गया है ॥ २ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने धर्मका नाश करनेवाले इस मिथ्यात्वके एकांत विपरीत वैनयिक संशय और अज्ञान ये पांच भेद बतलाए हैं ॥ ३ ॥ संसारके समस्त तत्व क्षणिक हैं और कर्मोंका न कोई कर्ता है न भोक्ता है इस प्रकार बौद्धोंके द्वारा एकांत कथन करना एकांत मिथ्यात्व कहलाता है ॥ ४ ॥ देव रागी हैं, गुरु परिग्रह सहित होता है, और हिंसासे धर्म होता है इस प्रकार वेद और ब्राह्मणसे उत्पन्न होनेवाला तथा पशुओंके द्वारा यज्ञादिका किया जाना विपरीत मिथ्यात्व कहा जाता है ॥ ५ ॥ मूर्ख लोग जो जिनेन्द्रदेव तथा कुदेवोंमें, सुगुरु और कुगुरुमें एकसी विनय करते हैं वह तपसियोंके आश्रयसे उत्पन्न हुआ वैनयिक मिथ्यात्व है ॥ ६ ॥ केवली कवलाहारी होते हैं और स्त्रियों को भी मोक्ष होती है इस प्रकार पाखंडियों के द्वारा कहा हुआ संशय मिथ्यात्व है ॥ ७ ॥ देव कुदेव, धर्म, अधर्म, सुगुरु, कुगुरु, और

शास्त्र कुशास्त्रका ज्ञान न होना सो म्लेच्छोंसे उत्पन्न होनेवाली अज्ञान नामका मिथ्यात्व है ॥ ८ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने इसप्रकार पांच प्रकारका मिथ्यात्व कहा है। वह मिथ्यात्व समस्त दोषोंका खजाना है इसलिये बुद्धिमानोंको सर्पके समान उनका त्याग कर देना चाहिये ॥ ९ ॥ इसी मिथ्यात्वसे पापोंको उत्पन्न करनेवाली मूढ़ता और दुष्टता उत्पन्न होती है तथा इसी मिथ्यात्वसे विवेक धर्म ज्ञान चारित्र आदि श्रेष्ठ गुण सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ इस लिये हे भव्य ! तू मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सब तरहके पापोंको उत्पन्न करनेवाले इस मिथ्यात्वरूपी पर्वतको सम्यग्दर्शनरूपी वज्रकी चोटसे चूर २ कर दे ॥ ११ ॥ मनुष्योंको चारों गतियोंमें घुमानेवाला यह मिथ्यात्व पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें मुख्यतासे बंधका कारण है ॥ १२ ॥ पांचों इंद्रिय तथा मनको वशमें न करना और त्रस स्थावरके भेदसे छह प्रकारके जीवोंकी रक्षा न करना इसप्रकारका यह बारह प्रकारका असंयम कहलाता है ॥ १३ ॥ जीवोंका घात करनेवाले पंचेंन्द्रियोंके विषयोंमें मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा मनुष्योंकी जो उच्छृंखल (इच्छानुसार) प्रवृत्ति है वह असंयम कहलाता है ॥ १४ ॥ यह असंयम दुराचारोंको उत्पन्न करनेवाला है और इसलोक परलोक दोनों लोकोंमें दुख देनेवाला है इसलिये तू इसे शत्रुके समान श्रेष्ठ व्रतरूपी तलवारके बलसे नष्ट कर दे ॥१५॥ जीवोंके जबतक अप्रत्याख्यानावरण नामके चारित्र मोहनीय कर्मका उदय रहता है तबतक अर्थात् चौथे गुणस्थानतक यह असंयम मुख्यतासे बंधका कारण गिना जाता है ॥ १६ ॥ चार विकथा चार कषाय पांच इन्द्रिय स्नेह और निद्रा ये पंद्रह प्रमाद कहलाते हैं ॥ १७ ॥ ये सब प्रमाद व्यर्थ ही पापोंको उत्पन्न करनेवाले हैं और व्रतोंको घात करनेवाले हैं इसलिए चतुर पुरुषोंको ध्यान अध्ययनके द्वारा शत्रुके समान इनका नाश कर देना चाहिए ॥ १८ ॥ व्रतोंमें मल वा दोष उत्पन्न करनेवाली मन वचन कायकी प्रवृत्तिको प्रमाद कहते हैं यह प्रमाद छठे गुणस्थानमें मुख्यतासे बंधका कारण है ॥ १९ ॥ अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इसप्रकार कषायके सोलह भेद हैं ॥२०॥ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, वेद, पुंवेद,

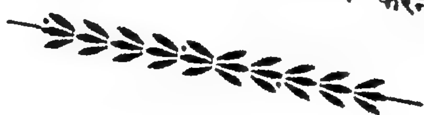
नपुंसकवेद ए नौ नोकषाय कहलाते हैं ॥ २१ ॥ इनमेंसे अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ सम्यग्दर्शनका घात करते हैं, अप्रत्याख्यानावरण कोध मान माया लोभ अणुव्रतोंका घात करते हैं, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ सकलसंयमका घात करते हैं ग्रौर संज्वलन क्रोध मान माया लोभ यथाख्यात चारित्रका घात करते हैं ॥ २२ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने चारों गतियोंमें परिभ्रमण करनेवाले और अत्यंत दुख देनेवाले ए घोर कषाय स्थितिबंधके कारण बतलाए हैं ॥ २३ ॥ ए पच्चीस कषाय पापकर्मके कारण हैं सातवें नरककेलिए माग दिखलानेवाले हैं, अत्यंत भवोंमें परिभ्रमण करानेवाले हैं, क्रूर हैं, अशुभ कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, और समस्त दोषोंके खजाने हैं इसलिए अपने शत्रुओंके समान इनको तू क्षमा मार्दव आर्जव शौच आदि शस्त्रोंके द्वारा शीघ्रही नष्ट कर ॥ २४—२५ ॥ इस पुरुषके जबतक संज्वलन कषायका उदय रहता है तबतक अर्थात् सातवें आठवें नौवें दशवें गुणस्थानमें ये संज्वलन कषाय मुख्यतासे बंधके कारण हैं ॥ २६ ॥ मन वचन कायके द्वारा जो आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंदन होता है उसको योग कहते हैं। यह योग ही संसारका कारण है और जीवोंको शुभ अशुभ करनेवाला है। यह योग पंद्रह प्रकारका है ॥ २७ ॥ चार प्रकारका मनोयोग चार प्रकारका वचन योग और सात प्रकारका काययोग यह पन्द्रह प्रकारका योग जीवों को दुख देनेवाला है ॥ २८ ॥ सत्यमनोयोग असत्यमनोयोग उभय मनोयोग कौर अनुभय मनोयोग यह चार प्रकारका मनोयोग है तथा सत्यवचन योग, असत्यवचन योग, उभयवचन योग और अनुभयवचन योग यह सदा शुभाशुभका करनेवाला चार प्रकारका वचनयोग है ॥ २९ ॥ औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियक काययोग, वैक्रियक मिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारक मिश्रकाययोग और कार्मण काययोग यह सात प्रकारका काययोग कहलाता है ॥ ३० ॥ इनमेंसे सत्यमनोयोग सत्यवचनयोग तथा अनुभय मनोयोग और अनुभयवचनयोग ये चतुर पुरुषोंको ग्रहण करने योग्य हैं क्योंकि ये ही धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं उत्तम हैं और सब जीवोंको भला करनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ असत्य मनोयोग असत्यवचनयोग उभय मनोयोग उभय वचनयोग ये सब तरहके पापोंको उत्पन्न करनेवाले हैं अन्य जीवोंको दुख देनेवाले हैं और

दुष्ट हैं इसलिये बुद्धिमानों को अपने प्राणोंका नाश होनेपर भी नहीं बोलना चाहिये ॥ ३२ ॥ जीवोंको दुख और क्लेशोंका सागर ऐसा प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योगोंके द्वारा होता है ऐसा श्रीजिनेंद्रदेवने निरूपण किया है ॥ ३३ ॥ मन वचन कायसे उत्पन्न हुआ यह योग अकेला ही ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें सातावेदनीय कर्मका बंध करता है ॥ ३४ ॥ अशुभयोगसे इसलोक और परलोक दोनों में अत्यंत संक्लेश दुख और शोक आदिका महासागर तथा नरकका कारण ऐसा महापाप उत्पन्न होता है ॥३५॥ शुभयोग से विवेकी पुरुषों को चक्रवर्ती और तीर्थंकरकी विभूति देनेवाले तथा सब तरहके सुख प्रकट करनेवाले पुण्यकर्मका बंध होता है ॥ ३६ ॥ जिसप्रकार अपनी स्त्री आसक्त होकर अपने पास आ जाती है उसी प्रकार जो इन योगोंको रोककर परमात्माका ध्यान करते हैं उनके पास मुक्तिरूपी स्त्री अपने आप आ जाती है ॥ ३७ ॥ हे भव्य ! स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ध्यान और अध्ययनरूपी जालसे विषयरूपी मैदानमें दौड़ते हुए इन योगरूपी हिरणोंको तू बांध ॥३८॥ हे वत्स ! आज मैंने मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय और योग ये पांच बन्धके कारण बतलाये हैं, ये सब पाप उत्पन्न करनेवाले हैं समस्त दुखोंके समुद्र हैं तीव्र हैं दुष्ट हैं और चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाले ॥ ३९ ॥ विषयोंमें अन्धा हुआ यह मनुष्य ऊपर लिखे हुए मिथ्यात्व आदि पांचों कारणोंके द्वारा एकसौ वीस कर्मोंकी असह्य प्रकृतियोंको सदा बांधता रहता है ॥ ४० ॥ उन कर्मोंसे घिरा हुआ तथा दुखसे व्याकुल हुआ यह जीव अशुभ कर्मके उदयसे सदा पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही रहता हुआ संसाररूपी वनमें परिभ्रमण किया करता है ॥ ४१ ॥ यह संसाररूपी लहरोंसे भरा हुआ है नरक ही इसके रंध्र हैं जन्म मरण और बुढ़ापा ही इसकी मछलियां हैं इस समुद्रका कहीं अन्त नहीं है और अत्यंत कठिनतासे इसके पार जाया जा सक्ता है। ऐसे इस समुद्रमें मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र सहित संयम रहित यह भव्य अथवा अभव्य जीव रात दिन डूबता और उछलता रहता है ॥ ४२-४३ ॥ किसी समय काललब्धि आदिको पाकर तथा सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली सातों प्रकृतियोंका उपशमकर सुमार्गको दिखानेवाला उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ॥४४॥ तदनन्तर यह मनुष्य

अप्रत्याख्यानावरणरूपी पापकर्मके क्षयोपशमसे सब तरहके सुख देनेवाले बारह व्रतोंको धारण करता है ॥४५॥ फिर प्रत्याख्यानावरण कषायके क्षयोपशम होनेसे यह मनुष्य मुक्तिरूपी स्त्रीको प्रसन्न करनेवाले पूर्ण महाव्रतोंको धारण करता है ॥ ४६ ॥ तदनंतर सम्यग्दर्शनका घात करनेवाली सातों प्रकृतियोंका नाशकर यह जीव कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला उत्तम और मोक्ष प्राप्त करानेमें अत्यन्त चतुर ऐसा क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ॥ ४७ ॥ इसके पश्चात् क्षायिक चारित्रसे विभूषित हुआ वह चतुर मुनि क्षपक श्रेणी चढ़ता है और शुक्लध्यानरूपी तलवारसे मोहरूपी शत्रुका नाश करता है ॥ ४८ ॥ तदनन्तर वे मुनिराज दूसरे शुक्लध्यानसे बाकीके तीनों घातिया कर्मोंका नाश करते हैं और समस्त लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं ॥ ४९ ॥ उस समय वे नव केवललब्धियोंके स्वामी हो जाते हैं अनन्त गुणोंके सागर हो जाते हैं और तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य हो जाते हैं। तदनन्तर वे धर्मोपदेश दिया करते हैं ॥ ५० ॥ फिर वे केवली भगवान तीसरे शुक्लध्यानसे योगोंका निरोध करते हैं और चौथे शुक्लध्यानसे समस्त कर्मोंका नाश करते हैं ॥ ५१ ॥ कर्म और शरीरका संबंध छूट जानेसे एरंडके बीजके समान वे लोकके ऊपरी भागतक ऊपरको गमन करते हैं तथा अनन्त स्वाभाविक गुणोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ वहांपर वे सदा कालतक सब तरहकी बाधाओंसे रहित, उपमा रहित, आतंकरहित और विषयोंसे रहित सदा रहनेवाले अनंत सुखका उपभोग किया करते हैं ॥ ५३ ॥ सम्यक्त्व आदि अष्ट गुणमय, अरूपी, नित्य, निरंजन, ऐसे सिद्ध भगवान मुक्ति लक्ष्मीके साथ अनन्तकाल तक सदा विराजमान रहते हैं ॥ ५४ ॥ रत्नत्रयके संबंधसे तेरे ऐसे भव्यजीव अनुक्रमसे संसाररूपी समुद्रको पारकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं और वहांपर सदा अनन्त सुखका अनुभव किया करते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार जन्मसे लेकर निर्वाण प्राप्त करने तक कथन करनेवाली श्रीजिनेन्द्रदेवकी कही हुई वाणीको अमृतके समान पानकर वह अमिततेज विद्याधर मोक्षके समान सुखी हुआ ॥ ५६ ॥ उस समय काललब्धिके प्राप्त हो जानेसे उस अमिततेजने स्वर्ग मोक्षका कारण ऐसा सातों तत्वोंका श्रद्धान करनेरूप सम्यग्दर्शन धारण किया ॥ ५७ ॥ उस भव्य विद्याधरने अपने आत्माका धर्म प्रगट

करनेके लिये अपने योग्य गृहस्थोंके उत्तम व्रत धारण किये॥ ५८ ॥ तदनन्तर उसे राजाने अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकपर रखकर भगवानको नमस्कार किया और फिर अपने पहिले भव सम्बन्धी प्रश्न पूछे ॥ ५९ ॥ वह पूछने लगा कि हे भगवान् हे केवलज्ञानसे विभूषित होनेवाले ! परमदेव मेरे चित्तमें आपसे कुछ और पूछनेकी इच्छा है ॥ ६० ॥ हे देव ! इस अशनिघोष विद्याधरने मेरी छोटी वहिन सुतारा किस कारणसे हर ली थी यह सब आप वतलाइए। तथा मैंने पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा उत्तम पुण्य किया था जिससे मैं विद्याधरोंकास्वामी हुआ और मुझे ऐसी महाविभूति प्राप्त हुई तथा श्रीविजयपर मेरा अधिक प्रेम किस कारणसे है। हे प्रभो ! मेरे हितके लिये कृपाकर इन तीन प्रश्नोंका उत्तर और दे दीजिये ॥ ६२–६३ ॥ इसप्रकार जो भगवानके वचनोंमें अनुरक्त है, सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका एक अद्वितीय पात्र है, परमधर्मका जाननेवाला है, ज्ञान विज्ञानमें चतुर है, अणुव्रतरूपी गुणोंसे शोभायमान है और सब विद्याधर जिसके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं, ऐसे अमिततेज विद्याधरने श्रीभगवानके समीप यह उत्तम कथा पूछी ॥६४॥ तथा तीनों लोक जिनके उत्तम चरण कमलोंकी पूजा करते हैं जो अत्यन्त निर्मल हैं संसारके समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेके लिये दीपकके समान हैं सबका हित करनेवाले हैं, अनंतज्ञान आदि अनेक गुणरत्नोंके समुद्र हैं, मुक्तिरूपी रमाके उत्तम वर हैं और संसाररूप समुद्रसे पार करनेवाले हैं ऐसे वे श्रीजिनेन्द्रदेव सबका उपकार करनेके लिये उस अमिततेज भव्यके लिये पहिले भव सम्बन्धी धर्मकथा कहने लगे ॥ ६५ ॥ जिन्होंने कर्मरूपी समस्त शत्रु नष्ट कर दिये हैं जो पांचवें चक्रवर्ती हैं जिन्होंने कामदेवका अभिमान सब जीत लिया है तथापि जो कामदेव हैं अत्यन्त रूपवान हैं और समस्त निर्मल तत्वोंको जाननेवाले हैं ऐसे सोलहवें तीर्थंकर श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्रदेव अपनी कीर्तिसे तीनों लोकोंमें शोभायमान हो रहे हैं ॥ ६६ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें अमिततेजके द्वारा 'धर्मसंबंधी प्रश्न वर्णन' करनेवाला यह चौथा अधिकार समाप्त हुआ ॥ ४ ॥



पाचवां अधिकार ।

मैं अपने प्रारंभ किये हुए कामको प्रारम्भ करनेके लिये तीनों लोक जिसकी सेवा करता है, विद्वान लोग जिसकी सेवा करते हैं और जो सब जीवोंका हित करनेवाली है ऐसी जिनवाणीको नमस्कार करता हूं ॥१॥ वे भगवान अमिततेजके पूर्वभव कहने लगे कि इसी जम्बूद्वीपके मंगलादेशके अलका नरकमें एक धरणीजड़ नामका ब्रह्माण रहता था ॥ २ ॥ उसकी ब्राह्मणीका नाम अग्निला था उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, एकका नाम इन्द्रभूति था और दूसरेका नाम अग्नभूति, वे दोनों ही भाई मिथ्याज्ञानी थे ॥३॥ उसी ब्राह्मणके अशुभ कर्मके उदयसे एक कपिल नामका दासी पुत्र था जो कि तीक्ष्ण बुद्धि था। जब वह धरणीजड़ अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढ़ाता था तब उसे सुनकर वह कपिल भी याद कर कर लेता था ॥ ४ ॥ उस कपिलका वेद पढ़ना जानकर उस ब्राह्मणने उसे जबर्दस्ती निकाल दिया परन्तु वह कपिल बाहर जा कर शीघ्रही वेद वेदांगका पारगामी हो गया ॥ ५ ॥ अथानन्तर-इसी जम्बूद्वीपके मलय देशमें रत्नसंचयपुर नामका नगर है वहांपर अपने पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके उदयसे श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था ॥६॥ वह राजा कांतिवाला था, अत्यन्तरूपवान था, नीतिमार्गकी प्रवृत्ति करनेवाला था, शूर था, धीरवीर था, राजाओंके द्वारा पूज्य था, शत्रुओंको जीतनेवाला और गुणोंका समुद्र था, ॥ ७ ॥ वह जिन धर्ममें अपना चित्त लगाता था, शास्त्रोंका जानकार था, सत्यनिष्ठ था, उसे किसी तरहकी कोई बाधा नहीं थी कोई रोग नहीं था और वह सुखसागरमें निमग्न था ॥ ८ ॥ वह सदा पात्रदान करता रहता था, श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें तत्पर था, गुरुमें भक्ति रखता था, सदाचारी था, विवेकी था, पुण्यवान था, और उत्तम था ॥ ९ ॥ वह हार कुंडल केयूर मुकुट आदि आभरणोंसे सुशोभित था और दिव्यवस्त्रोंसे विभूषित था इस लिये वह अपने रूपसे कामदेवको भी जीतता था ॥ १० ॥ इस प्रकार राज्यलक्ष्मीको वश करनेवाला वह श्रीषेण राजा अपने शुभकर्मके उदयसे न्यायपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करता था ॥ ११ ॥ उस श्रीषेणके पुण्यकर्मके उदयसे रूपवती लाव-

गयवती और शुभलक्षणोंसे सुशोभित ऐसी सिंहनिंदिता और अनिंदिता नामकी दो रानियां थीं ॥ १२ ॥ सिंहनिंदिताके शुभकर्मके उदयसे चन्द्रमाके समान अत्यन्त रूपवान और शुभलक्षणोंसे सुशोभित ऐसा इन्द्र नामका पुत्र हुआ था ॥ १३ ॥ तथा अनिंदिताके धर्मके प्रभावसे रूपवान गुणवान और ज्ञान विज्ञानका पारगामी ऐसा उपेंद्र नामका पुत्र हुआ था ॥१४॥ जिस प्रकार पापोंको नाश करनेवाले मुनिराज सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे सुशोभित होते हैं उसीप्रकार शत्रुवोंको जीतनेवाला वह राजा उनदोनों सुन्दर पुत्रोंसे शोभायमान होता था ॥ १५ ॥ उसी नगरमें एक सात्यकी नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम जंम्बू था और उसके सत्य गुणसे सुशोभित सत्य भामा पुत्री थी ॥ १६ ॥ पहिले कहा हुआ धरणीजडका दासीपुत्र कपिल जनेऊ पहिनकर ब्राह्मणका रूप धारणकर उसी रत्नसंचयपुर नगरमें आया ॥ १७ ॥ सात्यकी उसे रूपवान और वेदका पारगामी देखकर उसे अपने घर ले गया और उसने अपनी सत्यभामा पुत्री उसे दे दी ॥ १८ ॥ उस सत्यभामाने रात्रिमें उस कपिलको कितनी ही नीची चेष्टाएं देखीं इसलिए "यह अच्छे कुलका उत्पन्न हुआ नहीं है" इस चिंताने उसे आ घेरा ॥ १९ ॥ वह सोचने लगी मनुष्योंको हलाहल विष खा लेना अच्छा है, सर्पका साथ करना अच्छा है जलती हुई अग्निमें या पानीमें कूद पड़ना अच्छा है परन्तु नीच मनुष्योंकी संगति करना अच्छा नहीं है ॥ २० ॥ यही समझकर जिसका हृदय पवित्र है और जो कपिलसे कुछ विरक्त सी हो गई है ऐसी वह धीर वीर सती सत्यभामा अपने चित्तमें सदा खेदखिन्न रहने लगी ॥२१॥ इधर धरणीजड दरिद्र हो गया और उसने कपिलकी भी सब बात सुन ली इसलिये वह धनकी इच्छासे उसके पास आया ॥ २२ ॥ कपिलने भी लोगोंसे कह दिया कि यह मेरा पिता है इसलिये लोगोंके द्वारा आदर सत्कार पाया हुआ वह ब्राह्मण सुख पूर्वक कपिल वा सात्यकीके घर रहने लगा ॥ २३ ॥ किसी एक दिन सत्यभामाने बहुत सा धन उस धरणीजड ब्राह्मणको देकर बड़ी विनयके साथ उससे कपिलका कुल पूछा ॥ २४ ॥ उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि हे पुत्री ! यह तेरा पति (कपिल) मेरी दासीका पुत्र है । इस दुष्टने संसारमें यह कपटवेष बना लिया है ॥ २५ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो कुटिलता वा परस्त्री आदिसे उत्पन्न

हुए मूर्खोंके गुप्त महापाप भी कुष्ठ रोगके समान शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं ॥ २६ ॥ यह सुनकर उस पुण्यशालिनी सत्यभामाने अपने शील भंग होनेके डरसे जबर्दस्ती कपिलका त्याग कर दिया और रणवासमें जाकर राजाका शरण लिया ॥ २७ ॥ कपिलने जो इतने दिन तक कपट करनेका पाप किया था उसके बदले राजाने उस दुष्टको गधेपर चढ़ाकर अपने देशसे बाहर निकाल किया ॥ २८ ॥ दान पुण्य आदि गुणोंसे शोभायमान और शीलव्रतसे विभूषित ऐसी वह सती पतिव्रता सत्यभामा रणवासमें ही सुख पूर्वक रहने लगी ॥ २६ ॥

अथानन्तर—पुण्योपार्जन करनेमें तत्पर वह श्रीषेण राजा पात्रदान देनेके लिये प्रतिदिन स्वयं द्वारापेक्षण करता था ॥ ३० ॥ किसी एकदिन अमितगति और अरिंजय नामके दो आकाशगामी चारण मुनि उसके घर पधारे। वे दोनों ही मुनिराज सब तरहके परिग्रहोंसे रहित थे परन्तु गुणरूपी संपदाओंसे रहित नहीं थे तपश्चरणसे उनका समस्त शरीर कृश हो गया था और वे रागद्वेषसे सर्वथा रहित थे। वे संसारमें निर्लोभी थे तथापि मोक्ष साम्राज्यके मिलनेमें उन्हें बड़ा लोभ था, वे समस्त जीवोंका हित करनेवाले थे धीर वीर थे और ज्ञान ध्यानमें सदा तत्पर रहते थे यद्यपि वे स्त्रीकी वांच्छासे भी रहित थे तथापि मुक्तिरूपी स्त्रीमें बड़े ही आसक्त थे, मनुष्य देव सब उनकी पूजा करते थे तीनों काल सामायिक करते थे और रत्नत्रयसे सुशोभित थे, वे इच्छा और अहंकारसे रहित थे, मूलगुण और उत्तरगुणकी खानि थे और भव्य जीवोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करनेकेलिये जहाजके समान थे। वे ज्ञानरूपी महासागरके पारगामी थे, पृथ्वीके समान क्षमा धारण करनेवाले थे और कर्मरूपी ईंधनको जलानेकेलिये वे दोनों ही यति अग्निके समान थे, वे जलके समान स्वच्छ हृदयके थे, वायुके समान सब देशोंमें विहार करनेवाले थे अपने धर्मका (आत्माके धर्मका) उद्योत करनेवाले थे चतुर थे और प्रतिदिन वनमें निवास करनेवाले थे और वे दोनों ही विद्वान मुनि चौरासी लाख उत्तरगुणोंसे विभूषित थे और शीलके अठारह हजार भेदोंसे सुशोभित थे। ऐसे वे दोनों मुनिराज आहार लेनेकेलिये राजाके घर पधारे ॥ ३१-३८ ॥ जिस प्रकार खजानेको देखकर दरिद्री प्रसन्न होता है

उसीप्रकार मनुष्योंको स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करानेवाले उन दोनों मुनिराजोंको देखकर राजा श्रीषेण बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ३९ ॥ राजाने अपना मस्तक झुकाकर उन दोनों मुनिराजोंके चरणकमलोंको नमस्कार किया और तिष्ठ तिष्ठ कहकर दोनोंको स्थापन किया ॥ ४० ॥ श्रेष्ठदान देनेमें तत्पर उस राजाके उस समय श्रद्धा शक्ति निर्लोभपना भक्ति ज्ञान दया और क्षमा ये दाताके सातों गुण प्राप्त होगये थे ॥ ४१ ॥ प्रतिग्रह उच्च-स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, वाक्‌शुद्धि, कायशुद्धि, मनशुद्धि और आहारशुद्धि यह नौ प्रकारकी भक्ति कहलाती है यह नवधा भक्ति पुण्यकी खानि है और इसलिये पुण्यको उत्पन्न करनेवाली है। उस दानके समय राजाने ए सब नव भक्तियां की थीं ॥ ४३ ॥ जो विशुद्ध हो, प्रासुक हो, मिष्ट हो, कृतकारित आदि दोषोंसे रहित हो, मनोज्ञ हो, छहों रसोंसे परिपूर्ण हो, और ध्यान अध्ययन आदिको बढ़ानेवाला हो उसे श्रेष्ठ आहार कहते हैं ॥ ४४ ॥ ऊपर लिखे हुए सातों गुणोंसे सुशोभित उस राजाने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये उन दोनों चारणमुनियोंको विधिपूर्वक तृप्त करनेवाला उत्तम आहार दिया ॥ ४५ ॥ उन दोनों रानियोंने भी उस श्रेष्ठदानकी अनुमोदना करके भक्तिपूर्वक शुश्रूषा करके तथा प्रणाम और विनय आदिके द्वारा बहुतसा पुण्य संपादन किया था ॥ ४६ ॥ उस सत्यभामा ब्राह्मणीने भी बड़ी भक्तिसे तथा दीन भावोंसे उन मुनिराजकी आदर सत्कार आदिसे सेवाकी थी इसलिए उसने भी रानियोंके समान ही पुण्य संपादन किया था ॥ ४७ ॥ इसप्रकार उन सबलोगोंने अच्छे परिणामोंसे पात्रदान देकर उसी समय महापुण्य संपादन किया था सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे परिणामोंसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ वे दोनों मुनिराज समभावोंसे आहार लेकर तथा उस घरको पवित्रकर और शुभ आशीर्वाद देकर आकाशमार्गसे चले गए ॥ ४९ ॥ उस दानसे उत्पन्न हुए आनन्दके रससे जिसका मन अत्यन्त तृप्त हो रहा है ऐसा वह राजा अपनेको कृतकृत्य मानने लगा और गृहस्थाश्रमको सफल मानने लगा ॥ ५० ॥ अथानन्तर—कौश-म्बी नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे महाबल नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम श्रीमती था और उन दोनोंके श्रीकान्ता नामकी पुत्री थी ॥ ५१ ॥ रूप लावण्य आदि गुणोंसे विभूषित वह श्रीकान्ता कन्या

पुण्यकर्मके उदयसे श्रीषेणके पुत्र इन्द्रके साथ विधिपूर्वक विवाही गई थी ॥ ५२ ॥ उसी राजाके एक अनन्तमती नामकी विलासिनी थी जो कि रूपवती और गुणवती थी । राजाने स्नेहसे वह भी श्रीकान्ताके लिए दे दी थी ॥ ५३ ॥ वह अनन्तमती रूपवान उपेन्द्रके साथ आसक्त हो गई और स्वयं उसके साथ कामभोग आदिमें लंपट होगई ॥ ५४ ॥ इसलिए वे दोनो भाई उसकेलिए परस्पर युद्ध करने लगे । आचार्य कहते हैं कि देखो मनुष्योंके ऐसे भोगादि सुखोंको धिक्कार हो ॥ ५५ ॥ इनबातोंको सुनकर राजा श्रीषेणको भी अपनी आज्ञा भंग होनेका बहुत दुःख हुआ। और पापकर्मके उदयसे वह अद्भुत विषफल सूंघकर मरगया ॥ ५६ ॥ धातकीखंडद्वीपमें पूर्वमेरुके उत्तर दिशाकी ओर जो उत्तर कुरु नामकी सुख देनेवाली भोगभूमि है वहां लावण्य आदिसे सुशोभित आर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५७-५८ ॥ वह सिंहनिंदिता रानी भी उसी विषफलको सूंघकर मरगई और उस दानसे उत्पन्न हुए धर्मके प्रभावसे उसी भोगभूमिमें उसी आर्यके आर्या उत्पन्न हुई ॥ ५९ ॥ अनिंदिता दूसरी रानी भी उसी तरह मरी और स्त्रीलिंग छेदकर महापुण्यके उदयसे उसी भोगभूमिमें आर्य हुई ॥ ६० ॥ वह सत्यभामा ब्राह्मणी भी प्राणोंको छोड़कर धर्मके प्रभावसे उस अनिंदिताके जीव आर्यके आर्या उत्पन्न हुई ॥ ६१ ॥ आचार्य कहते हैं कि देखो अपमृत्यु वा अपघातसे मरकर भी केवल उस महादानके फलसे ही वे सबलोग शुभगतिको प्राप्त हुये थे इसलिये कहना चाहिये कि दान देना उत्तम है ॥ ६२ ॥ इधर वे दोनो भाई युद्ध कररहे थे परन्तु पूर्व जन्मके स्नेहसे किसी मणिकुंडल नामके विद्याधरने आकर उनको रोक दिया ॥ ६३ ॥ और वह कहने लगा कि हे राजकुमारो मैं एक अच्छी कथा कहता हूं तुम अपना ईर्षाभाव छोड़कर और चित्तको शांतकर सुनो क्यों कि वह कथा तुम दोनोंका हित करनेवाली है ॥ ६४ ॥ देखो धातकीखंडद्वीपमें पूर्वमेरु संबंधी पूर्व विदेहक्षेत्र है जो कि सद्धर्म और तीर्थंकर आदिसे सुशोभित है ॥ ६५ ॥ उसके पुष्कलावती देशमें एक भारी रूपाचल पर्वत शोभायमान है जोकि ऊंचा है जिन चैत्यालयोंसे विभूषित है और दूसरे मेरुके समान जान पड़ता है ॥ ६६ ॥ उसी पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक आदित्याभ नामका सुन्दर नगर है और उसमें पुण्यकर्मके उदयसे कुंडलीसे सुशोभित सुकुंड-

ली नामका राजा राज्य करता है ॥ ६७ ॥ उसकी रानीका शुभ नाम अमिततेजसेना है और बुद्धिमान मणि-
कुंडल नामका मैं उन दोनोंका पुत्र हूं ॥ ६८ ॥ पुंडरीकिणी नगरीमें अमितप्रभ नामके केवली भगवानके
पास जाकर और उन्हें नमस्कारकर मैंने अपने पहिले भवकी कथा पूछी थी ॥ ६९ ॥ भगवानने जो कथा
मुझसे कही थी वही मैं तुमसे इस समय कहना चाहता हूं क्योंकि तीर्थंकरके मुखसे उत्पन्न हुई वह कथा
बड़ी मनोहर है और तुम दोनोंका हित करनेवाली है ॥ ७० ॥ देखो—पुष्कर द्वीपमें जिनचैत्यालयोंका आश्र-
यभूत पश्चिम मेरु पर्वत है उसके पूर्वकी ओर त्रिवर्णाश्रमसे सुशोभित विदेहक्षेत्र है ॥ ७१ ॥ उसमें एक
वीतशोका नगरी है उसमें चक्रायुध नामका राजा राज्य करता था और उसकी पुण्यशालिनी रानीका नाम
कनकमाला था ॥ ७२ ॥ उस कनकमालाके कनकलता और पद्मलता नामकी दो पुत्री थीं उसी राजाके एक
विद्वन्मती नामकी पतिव्रता दूसरी रानी थी उसके पद्मावती नामकी पुत्री थी। ये सब मिलकर धर्मके प्रभा-
वसे अनेक तरहके सुखोंका अनुभव करते थे। किसी एक दिन रानी कनकमाला पुण्यकर्मके उदयसे अपनी
दोनों पुत्रियोंके साथ गणिनी (व्रतवाली आचार्यानी) अमितसेना अर्जिकाके समीप पहुंची ॥ ७३-७४ ॥
उसके समीप जाकर उन सबने नमस्कार किया और काललब्धिके प्राप्त हो जानेसे सबने गृहस्थोंके व्रत स्वी-
कार किये ॥ ७६ ॥ वे सब व्रतोंको पालनकर सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्त्रीलिंगको छेदकर सौधर्म स्वर्गमें बड़े
ऋद्धिधारी देव हुए ॥ ७७ ॥ पद्मावती भी मरकर अपने पुण्योदयसे सौधर्म स्वर्गमें एक अप्सरा हुई जोकि
बड़ी ही गुणवती थी ॥ ७८ ॥ वे सब देव धर्मके प्रभावसे उत्पन्न हुए इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले उत्तम और
ऋद्धियों तथा देवीगण आदिके संबंधसे प्रकट होनेवाले सुखोंका अनुभव करने लगे ॥ ७९ ॥ अपनी आयु-
के पूर्ण हो जानेपर वे सब वहांसे च्युत हुये। उनमेंसे कनकमालाका जीव मैं मणिकुंडली हुआ हूं कनक-
लता पद्मलता दोनों पुत्रियोंके जीव स्वर्गसे देव पर्याय छोड़कर बाकी बचे पुण्यकर्मके उदयसे तुम दोनों
इन्द्र उपेन्द्र नामके राजपुत्र उत्पन्न हुये हो ॥ ८०-८१ ॥ तथा पद्मावतीका जीव जो सौधर्म स्वर्गमें अप्सरा
हुई थी वह वहांसे चयकर यह रूपवती अनन्तमती विलासिनी हुई है ॥ ८२ ॥ श्रीअमितप्रभ तीथकरसे यह

शुभ और उत्तम कथा सुनकर पहिले जन्मके स्नेहसे मैं तुम्हें समझानेके लिये आया हूं ॥ ८३ ॥ इस कथा-को सुनकर उन दोनों भाईयोंने अपनी निंदाकी और विरक्त होकर वे दोनों भाई शुभ कर्मके उदयसे सुधर्म नामके मुनिराजके समीप पहुंचे ॥ ८४ ॥ उन दोनोंने उन मुनिराजको नमस्कार किया विरक्त होकर वाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग किया और उत्कृष्ट संयम धारण किया ॥ ८५ ॥ उन दोनों मुनिराजोंने शुक्लध्यानरूपी अग्निसे कर्मरूपी ईंधनको शीघ्र ही जला दिया और घोर तपश्चरणके द्वारा केवल-ज्ञान प्राप्त किया ॥८६॥ सूक्ष्मध्यानरूपी तलवारसे उन दोनों ने समस्त कर्मोंका नाश किया और वे तीनों शरीरोंको नष्टकर मोक्ष पधारे तथा अनंतगुणोंके पात्र बन गये ॥८७॥ अनंतमतीने भी श्रावकके संपूर्ण व्रत धारण किये और धर्मके प्रभावसे स्वर्गमें जा उत्पन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके अनुग्रहसे क्या २ प्राप्त नहीं होता है ॥८८॥ अथानन्तर—श्रीशेण आदिके वे सब जीव पात्रदानके प्रभावसे दश प्रकारके कल्पवृक्षों से उत्पन्न हुये तथा जो बचनों से नहीं कहे जा सकें ऐसे सुखोंका अनुभव करने लगे ॥ ८९ ॥ मद्यांग तूर्यांग, विभूषांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरांग, गृहांग, भोजनांग, पात्रांग, और वस्त्रांग ये दश प्रकारके कल्प-वृक्ष होते हैं ॥ ९० ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवने भोगभूमिमें दश प्रकारके कल्पवृक्ष कहे हैं वे कल्पवृक्ष बड़े मनोहर होते हैं, रत्नमयी होते हैं और अपनी कांतिसे सब दिशावोंको प्रकाशित करनेवाले होते हैं ॥ ९१ ॥ मद्यांग जातिके वृक्ष मधु, मैरेय, सीधु, अरिष्ट, आसव आदि सुगंधित और अमृतके समान अनेक प्रकारके रसों को देते हैं ॥ ९२ ॥ यह मद्य, मद्य नहीं है किंतु इसमें कामोद्दीपनकी सामर्थ्य है इस लिये उपचारसे इसे मद्य कहते हैं वास्तवमें यह एक प्रकारका वृक्षोंका रस है जिसे भोगभूमियां लोक सेवन करते हैं ॥ ९३ ॥ जो मद्य मद उत्पन्न करता है जिसे मतवाले लोग पीते हैं और जो मनको मोहित करनेवाला है ऐसे मद्यको आर्य लोग कभी नहीं पीतें हैं ॥९४॥ तूर्यांग जातिके वृक्ष भेरी नगाड़े घंटा शंख मृदंग झल्लरी तालकाहला आदि बाजोंको देते हैं ॥९५॥ भूषणांग जातिके वृक्ष हार केयूर नूपूर कुंडल करधनी कंकण और मुकुट आदि आभूषण देतेहैं ।९६। मालांग जातिके वृक्ष नागकेसर चंपा आदि सब ऋतुवोंसे उत्पन्न होनेवाले फूलोंकी अनेक तरहकी मालवोंको देते

हैं दीपांग जातिके ऊंचे वृक्ष प्रतिदिन मणिमय दीपोंसे शोभायमान होते हैं और नय पत्त फूल फलोंसे जलते हुए दीपकोंके समान जान पड़ते हैं ॥ ९८ ॥ ज्योतिरंग जातिके वृक्ष सदा देदीप्यमान होते हुए प्रकाश करते रहते हैं और करोड़ों सूर्यके समान सब दिशाओंको प्रकाशित करते रहते हैं ॥ ९९ ॥ गृहांग जातिके वृक्ष मण्डप, ऊंचे राजभवन, राजस्थान, चित्रशाला, नर्तनशाला, आदि देनेमें समर्थ होते हैं ॥ १०० ॥ भोजनांग जातिके बृक्ष अमृतके समान स्वादिष्ट, पौष्टिक और छहों रसोंसे भरपूर ऐसे भोजन आदि सुन्दर आहार देते हैं ॥ १०१ ॥ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य यह चार प्रकारका आहार कहलाता है तथा कड़वा, कषायला, चरपरा, मीठा, खट्टा और नमकीन ये छह रस कहलाते हैं ॥ २ ॥ भाजनांग जातिके वृक्ष सोने और रत्नोंके बने हुए भृंगार, कचक, कलशा, थाली, करवा आदि वर्तन दिया करते हैं ॥ ३ ॥ बस्त्रांग जातिके बृक्ष कोमल वारीक और बहुमूल्य ऐसे रेशमी डुपट्टे और पहनने के कपड़े देते हैं ॥ ४ ॥ ये कल्पबृक्ष न तो वनस्पतिके हैं और न देवोंके द्वारा बने हुए हैं ये केवल पृथ्वीके बने हुए हैं ॥ ५ ॥ ये कल्पवृक्ष अनादि निधन हैं और स्वभावसे ही फल देनेवाले हैं। काल आदिसे उत्पन्न हुए किसी भी निमित्त कारणकी इनको आवश्यकता नहीं है ॥ ६ ॥ जिसप्रकार आजकल के वृक्ष मनुष्योंका उपकार करते हैं उसी प्रकार मनुष्योंको दानके फलसे ये कल्पवृक्ष भी अनेक तरहके फलोंसे फलते हैं ॥ ७ ॥ भोगभूमिमें मूंगा सोना हीरा चन्द्रमा और नीलरत्न आदिसे सुशोभित रहनेवाली पांचों रंगकी सुगंधित पृथ्वी रात दिन शोभा देती रहती है ॥ ८ ॥ वहांकी पृथ्वी हर समय सब इंद्रियोंको सुख देती रहती है और उसपर सदा कोमल चिकनी चार अंगुल प्रमाण घास सुशोभित रहती है ॥ ९ ॥ वहांके पशु रसायनके रसकी बुद्धि रखकर स्वादिष्ट कोमल और चिकनी ऐसी उस घासको सदा चरते रहते हैं ॥ १० ॥ वहांपर क्रीडा पर्वत भी बने हुए हैं जो सुन्दर हैं किरणें जिनमें से छूट रही हैं सोना मूंगा रत्न आदिके बने हुए हैं और कल्पवृक्षों से शोभायमान हैं ॥ ११ ॥ वहांपर स्वच्छ जलसे भरी हुई बावड़ी भी हैं जिनमें रत्नोंकी सीढ़ियां लगी हुई हैं तथा स्थान स्थानपर रत्नमय बालूसे सुशोभित नदियां बहती ही रहती हैं ॥ १२ ॥

वहांके बन भी बड़ी अच्छी शोभा देते रहते हैं जिनमें उनमत्त कोकिल सदा बोलती रहती हैं सब ऋतुवोंके फल फूल खिले रहते हैं और दूसरे देवारण्यके समान जान पड़तें हैं ॥ १३ ॥ वहांपर सूर्यका संताप कभी नहीं होता न बादलों से वर्षा होती है न शीतकाल होता है और न कोई भय होता है ॥ १४ ॥ न वहांपर चांदनी होती है न रातदिनका विभाग होता है न ऋतुऐं पलटती हैं और न वहांपर किसीको दुःख देनेवाले किसीके भाव प्रकट होते हैं ॥१५॥ वहांपर सिंह, सूवर, बिल्ली, बाघ, कुत्ता आदि अशुभ जानवर मांसभक्षी और क्रूर कभी नहीं होते ॥१६॥ शंख, चींटी, डासे, मच्छर, खटमल, बीछी, आदि विकलत्रय (दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय चौइंद्रिय) जीव भी वहां नहीं होते ॥ १७ ॥ वहांपर कौवा गीध आदि पक्षी नहीं होते तथा सर्प आदि विषैले जानवर और दुष्ट मांसभक्षी जानवर नहीं होते ॥ १८ ॥ वहांपर रोगी द्वेष करनेवाला, ज्वरसे पीडित, बूढ़ा, दीन, कुरूप, बदसूरत, उन्मत्त (पागल) लंगड़ा लूला आदि किसी अंग से रहित, दुखी, दरिद्री, दुर्जन, शोक करनेवाला, क्रोधी, अभिमानी, दुर्बल, दुःस्वर (बुरी आवाजवाला) अशुभ, क्रूर और पापकर्म करनेवाला कभी दिखाई नहीं देता १९—२० ॥ वहांपर न तो किसीको इष्टवियोग होता है न अनिष्ट संयोग होता है न किसीका शीलभंग होता है न कोई अनाचार होता है, विषाद, ग्लानि, निद्रा, तंद्रा (आलस) पलकसे पलक लगना आदि कुछ नहीं होता, न शरीर संबन्धी मल मूत्र होता है न लार होती है और न पसीना होता है ॥ २१—२२ ॥ वहांपर सब भोगभूमिया उदय होते हुए सूर्य के समान होते हैं सब पसीना रहित रज रहित उत्तम और हार, कंकण केयूर, मुकुट आदि से शोभायमान रहते हैं ॥२३॥ सबके भोगोपभोगकी सामग्री एकसी होती है सबका सुख एकसा होता है सब सुन्दर होते हैं और सबके वज्रवृषभ नाराच संहनन होता है ॥ २४ ॥ सबका स्वर मीठा होता है देखनेमें सब मनोहर होते हैं मंदकषायी होते हैं रूपवान होते हैं शुभ होते हैं सब दयालु और कोमल होते हैं तथा समचतुरस्र संस्थावाले होते है ॥ २५ ॥ कला विज्ञान चातुर्य आदि गुणोंसे सुशोभित होते हैं तथा शुभकर्मके उदयसे वे सब आर्य स्वभावसे ही भद्र और उत्तम होते हैं ॥ २६ ॥ वहांपर उत्पन्न होनेके बाद सातदिन तक ऊपर

को अपना मुँह किये हुये पड़े रहते हैं और अपने अंगूठेसे उत्पन्न हुए दिव्यरसका पान किया करते हैं ॥ २७ ॥ मुनीश्वरलोग उनको आगेकी दशा इसप्रकार बतलाते हैं कि दूसरे सातदिनतक तो वे दंपती पृथ्वी पर रिंगते हैं फिर तीसरे सप्ताहमें वे उठ खड़े होते हैं मीठे शब्द करते हैं और पृथ्वीपर लीलापूर्वक गिरते पड़ते चलना सीखते हैं ॥ २८—२९ ॥ उसके बाद चौथे सप्ताहमें पैरोंको स्थिर रखते हैं और फिर पांचवें सप्ताहमें कला ज्ञान आदि गुणोंसे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३० ॥ छठे सप्ताहमें पूर्ण नवयौवन हो जाते हैं और वस्त्र आभूषण आदिसे सुशोभित वे भोगभूमिया बड़े ही अच्छे जान पड़ते हैं ॥ ३१ ॥ वे गर्भमें भी नौ महीने तक रत्नोंके बने हुए भीतरी घरके समान रहते हैं और फिर दानके फलसे बड़े सुखसे उनका जन्म होता है ॥३२॥ जब वे दोनों दंपति उत्पन्न होते हैं तब माता पिता की अवश्य ही मृत्यु हो जाती है मरते समय माताको छींक आती है और पिताको जंभाई आती है इसप्रकार उनकी मृत्यु सुखसे ही होती है ॥ ३३ ॥ इसीलिये वहांपर जीवोंके भाई पुत्र आदिका संकल्प नहीं होता उनके केवल पति पत्नीका ही संबन्ध होता है उनके और किसी संबन्धकी कल्पना नहीं होती ॥ ३४ ॥ उनके शरीरकी उंचाई तीन कोस होती है वे सम्पूर्ण लक्षणों से सुशोभित होते हैं और बुढ़ापा रोग आदि उनके कुछ नहीं होता ॥ ३५ ॥

श्रीजिनेन्द्रदेवने उन आर्योंकी आयु तीन पल्यकी बतलाई है तथा उसका कभी कदलीघात नहीं होता और वे सदा यौवन अवस्थामें ही बने रहते हैं ॥३६॥ वे तीन दिनके बाद बदरीफलके (बेरके) समान आहार लेते हैं जो कि अमृतमय दिव्य और महास्वादिष्ट होता है ॥ ३७ ॥ वे आर्य सदा संकल्पमात्रसे ही दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए और सब ऋतुवोंमें सुख देनेवाले भोगोंका अनुभव किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सम्यग्दर्शनरहित भद्र पुरुष ही उत्कृष्ट पात्रको दान देनेसे भोगोपभोगको सेवन करनेवाले विचक्षण आर्य होते हैं ॥ ३९ ॥ पात्रदानकी अनुमोदना करनेसे उदार हृदयके पशु भी भोगभूमिमें भोगोपभोगोंसे भरपूर शुभ जन्म लेते हैं ॥ ४० ॥ केवल भोगोंकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य कुपात्रको दान देनेसे इस भोगभूमिमें सुखी पशु होते हैं ॥ ४१ ॥ जो सम्यग्दर्शन रहित भी एक वार पात्रदान देता है वह भोगभूमिमें

सुखसागरके मध्यमें अवश्य जाकर मग्न होता है ॥ ४२ ॥ प्रीति उत्पन्न करनेवाला और बाधा रहित जो सुख भोगभूमियोंको होता है वह अनेक तरहकी चिन्ता करनेवाले चक्रवर्तियोंको भला कहां मिल सकता है ॥४३॥ भोगभूमिमें रहनेवाले जीवोंको दानसे ही अनेक प्रकारकी ऋद्धि प्राप्त होती है दानसे ही अनेक तरहके सुख मिलते हैं दानसे ही अनेक तरहके भोग मिलते हैं दानसे ही अनेक तरहके गुण प्राप्त होते हैं दानसे ही अनेक तरहकी रूप लावण्य आदि संपदाएं प्राप्त होती हैं और दानसे ही अनेक तरहकी प्रीति प्राप्त होती हैं ॥४४-४५॥ भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले आर्य पात्रदानसे उत्पन्न हुए महासुखोंका उपभोगकर मंद कषायरूप भावोंसे वे सब स्वर्गको ही जाते हैं ॥ ४६ ॥

अथानन्तर—श्रीषेणका जीव भी बहुत दिनतक वहांके सुख भोगकर सौधर्म स्वर्गके श्रीनिलय विमानमें श्रीप्रभ नामका देव हुआ ॥ ४७ ॥ सिंहनिन्दिताका जीव भी भोगभूमिके सुख भोगकर उसी स्वर्गके उसी विमानमें विद्युत्प्रभा नामकी देवी हुई ॥ ४८ ॥ अनिन्दिताका जीव भोगभूमिके सुखोंका अनुभवकर उसी सौधर्मके बिमलप्रभ नामका देव हुवा ॥ ४९ ॥ सत्यभामा ब्राह्मणीका जीव भी सुख पूर्वक प्राणोंको छोड़कर पुण्यकर्मके उदयसे उसी बिमानमें शुक्लप्रभा नामकी देवी हुई ॥ ५० ॥ उन सबका शरीर निर्मल था सात धातुओंसे रहित नख केश आदिसे रहित था और आंखोंकी टिमिकारसे रहित था ॥ ५१ ॥ उन सबके मति श्रुत अवधि तीन ज्ञान थे आठ ऋद्धियोंसे वे सुशोभित थे, मानसिक आहारसे संतुष्ट हो जाते थे, बैक्रियिक उनका शरीर था और वे बड़े ही रूपवान थे ॥ ५२ ॥ उनके रोग क्लेश विषाद आदि कभी नहीं होता था, उनका हृदय सदा शुभ रहता था, वे बड़े ही निर्मल थे मधुर भाषण करते थे सुन्दर और नेत्रोंको सुखदेनेवाले थे ॥ ५३ ॥ वे सब दिव्य माला दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित थे, शुभ लक्षणोंवाले थे, पसीनारहित थे सुन्दर थे, उनका समचतुरस्र संस्थान था और सुन्दर मूर्ति थी ॥ ५४ ॥ पहले जन्ममें उपार्जन किये हुए पुण्यकर्मके उदयसे देव और देवी सब रूप लावण्य और शोभासे सुशोभित थे और अनेक गुणोंसे विभूषित थे ॥ ५५ ॥ वे सब देव दिव्य सामग्री लेकर मेरु पर्वत नन्दीश्वरद्वीप आदि स्थानोंमें अकृत्रिम

चैत्यालयोंमें जाकर भगवानकी पूजा करते थे ॥ ५६ ॥ वे देव परलोक सम्बन्धी सुख प्राप्त करनेके लिये कर्म भूमियोंमें जाकर बड़ी भक्तिसे प्रतिदिन श्रीजिनेन्द्रदेवकी वन्दना करते थे ॥ ५७ ॥ वे देव तत्त्वोंको जानने और उनपर श्रद्धा करनेके लिये अपने परिवारके साथ श्रीतीर्थंकरके मुखसे प्रगट हुई जिनवाणीको सुनते थे वे देव दिव्य भवनोंमें मेरुपर्वतपर बनोमें और द्वीपसमुद्रोंमें अपनी अपनी देवियोंके साथ सदा अनेक तरहकी क्रीड़ा किया करते थे ॥ ५१ ॥ वे सब देव अपनी अपनी देवियोंके साथ मधुर गीत सुनते थे, सुन्दर नृत्य देखते थे, और अनेक तरहके भोग भोगते थे स्वर्गोंमें बड़ा भारी सुख है इस लिए आनन्द रससे संतुष्ट हुए और सुख सागरमें निमग्न हुए वे देव बीतते हुए समयको भी नहीं जानते थे ॥ ६१ ॥ अपने पुण्य-कर्मके उदयसे उन चारों जीवोंकी सब तरहके दुःखोंसे रहित सब तरहकी बाधाओंसे रहित और सुखकी स्थान ऐसी पांच पल्यकी आयु थी ॥ ६२ ॥ उसको पूरीकर श्रीषेणका जीव वहांसे चयकर पुण्यकर्मके उदयसे तू अर्ककीर्तिका पुत्र अमिततेज नामका बड़ा राजा हूआ है ॥ ६३ ॥ रानी सिंहनिन्दिताका जीव जो स्वर्गमें विद्युत्प्रभा देवी थी वह चयकर शुभकर्मके उदयसे ज्योतिःप्रभा नामकी तेरी स्त्री हुई है ॥ ६४ ॥ रानी अनि-न्दिताका जीव जो स्वर्गमें देव था वह वहांसे चयकर पुण्यके फलसे बुद्धिमान यह श्रीविजय हुआ है जोकि तुझपर बहुत प्रेम करता है ॥ ६५ ॥ सत्यभामा ब्राह्मणीका जीव जो स्वर्गमें देवी थी वह चयकर शुभकर्मके उदयसे पुण्यवती और शुभलक्षणोंसे सुशोभित ऐसी यह सुतारा हुई है ॥ ६६ ॥ ऐरावती नदीके किनारे रथभूत रमण नामके बनमें एक तापसाश्रम था जिसकी पृथ्वी सब जली हुई थी और जो मिथ्यात्वसे भरपूर था ॥ ६७ ॥ उसमें एक कौशिक नामका तपसी रहता था जोकि मिथ्यातपश्चर और मिथ्या व्रत करनेमें तत्पर था अशुभ कर्मके उदयसे उसके चपलवेगा नामकी स्त्री थी ॥ ६८ ॥ पहिले कहा हुआ कपिल नामका मूर्ख ब्राह्मण बहुत दिनोंतक चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता रहा और अनाचार करनेके कारण उन दोनोंके मृगशृंग नामका पुत्र हुआ ॥ ६९ ॥ वह भी मिथ्यात्व कर्मके उदयसे संसारमें परिभ्रमण करानेवाला और पंचाग्नि आदिसे उत्पन्न हुआ मिथ्यातपश्चरण ही करता था तथा मिथ्या व्रतोंको ही पालता था ॥७०॥ किसी

एक दिन उसने चपलवेग विद्याधरकी विभूति देखी और उसे देखकर उस मूर्खने उस विभूतिके लिये विद्वानोंके द्वारा निन्दा करने योग्य ऐसा निदान किया ॥ ७१ ॥ उस पहिले जन्ममें किये हुए निदानसे विद्याधरोंके कुलमें यह अशनिघोष विद्याधर हुआ है और पहिले जन्मके स्नेहके कारण आज इसने यह सुतारा हरली है ॥ ७२ ॥ प्रेम द्वेष और स्नेह वैर ये सब पहिले जन्मके संबंधसे प्राणियोंके भव भवमें अनेक प्रकारसे साथ जाते हैं ॥ ७३ ॥ इसलिए हे राजन् अपने आत्माका हित करनेवालोंको किसी दुर्बलके साथ भी सैकड़ों दुःख देनेवाला वैर कभी नहीं करना चाहिये ॥ ७४ ॥ हे राजन्! इस जन्मसे नौवें भवमें तू श्रीशांतिनाथ नामका सोलहवां तीर्थंकर और पांचवां चक्रवर्ती होगा ॥ ७५ ॥ इसप्रकार भगवानरूपी चन्द्रमाकी वाणी रूपी चांदनीसे उस विद्याधरका हृदयरूपी कुमुदिनीका घर (समूह वा तलाव) खूब खिल गया ॥७६॥ उस समय वह विद्याधर अपने तीर्थंकर पदकी प्राप्तिकी आज्ञा सुनकर बड़े भारी आनन्दमें डूब गया और अपनेको ऐसा मानने लगा मानो उसे अरहंतकी विभूति प्राप्ति ही हो गई हो ॥ ७७ ॥ अशनिघोष विद्याधरने अपनी कथा सुनकर स्वयं अपने आत्माकी बड़ी निन्दाकी और परम वैराग्यको पाकर वहींपर उसने संयम धारण कर लिया ॥ ७८ ॥

इस कथाको सुनकर अशनिघोषकी माता आसुरीको भी स्वर्ग मोक्ष देनेवाला संवेग प्राप्त हुआ और उसने भगवानके बचनानुसार कर्मोंको नाश करवाली दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ ७९ ॥ श्रीविजयकी माता स्वयंप्रभा भी देह भोग और संसारसे विरक्त हुई और उसने भी कर्मरूप शत्रुओंका नाश करनेके लिए मोक्ष प्राप्त करानेवाला संयम धारण कर लिया ॥ ८० ॥ सुतारा भी अपने भव सुनकर विरक्त हुई और मोक्षके लिये वैराग्यरूपी आभरणोंसे सुशोभित होकर कर्मोंका नाश करनेवाला तपश्चरण करने लगी ॥ ८१ ॥ बाकीके श्रीविजय आदि सब लोगोंने भक्ति पूर्वक श्रीजिनेन्द्रदेवकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं उनको नमस्कार किया और वे अमिततेजके साथ अपने अपने योग्य स्थानको पधारे ॥ ८२ ॥ व्रतोंका समुदायही जिसका मुकुट है, ज्ञान ही जिसका कुंडल है, यह नियम ही जिसके शस्त्र हैं, सम्यग्दर्शन ही जिसका हार है, जो शांत परिणा-

म रूपी सुखमें लीन है शीलही जिसके वस्त्र हैं और मनुष्य विद्याधर सब जिसकी पूजा वा आदर सत्कार करते हैं ऐसा वह अमिततेज राजा पुण्यकर्मके उदयसे मुनिराजके समान शोभा देता था ॥ ८३ ॥ साता वेदनीय कर्मके उदयसे जो अनेक तरहके सुखोंको भोगता है पुण्यकर्मके उदयसे जिसे सब विद्याधर नमस्कार करते हैं और जो गुणोंका एक महासागर है ऐसा वह राजा अर्ककीर्तिका पुत्र अमिततेज विद्याधर लोकमें उत्पन्न हुई समस्त लक्ष्मीको प्राप्त हुआ था ॥ ८४ ॥ इसलिये हे विद्वान् लोगो ! जो श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ है, निर्मल है, तीर्थंकरकी विभूतिको देनेवाला है, श्रेष्ठदान और व्रतोंसे उत्पन्न होता है देवगण भी जिसके लिये प्रार्थना करते हैं जो सुखोंकी खानि है नरकादि दुर्गतियोंसे रोकनेवाला है, अच्छे अच्छे पदोंको देनेवाला है और स्वर्गकी लक्ष्मीका घर है ऐसे पुण्यकर्मोंको सम्यग्दर्शनके साथ सदा और शीघ्रताके साथ संपादन करते रहो ॥ ८५ ॥ जिनके चरण कमलोंको देव और विद्याधर सब नमस्कार करते है जो समस्त तीनों लोकोंके एक अद्वितीय स्वामी हैं, जो निर्मल गुणोंके समुद्र हैं, शांति देनेवाले हैं धर्मके कर्ता हैं अनेक श्रेष्ठ मुनिराज जिनकी सेवा करते हैं और जो मुक्तिरूपी स्त्रीमें अनुरक्त हैं, ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवान अपनी निर्मल कीर्तिसे सदा जय शील हों ॥ ८६ ॥

इस प्रकार शांतिनाथपुराणमें राजा श्रीषेण आदि श्रीशांतिनाथके चार भवोंका वर्णन करनेवाला यह पांचवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा आधिकार ।

जो संसार भरको शांति देनेवाले हैं और तीनों लोक जिनकी पूजा करता है ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवानको मैं अपने पाप नाश करनेके लिए प्रतिदिन नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अथानन्तर—अमिततेज विद्याधर सब पर्वोमें हिंसा आदि आरम्भको छोड़ मोक्ष प्राप्त करानेवाला उपवास नियमपूर्वक करने लगा ॥ २ ॥ जब कभी उसे राज्यके आरम्भादिकसे कोई दोष लग जाता था तो वह उस दोषको दूर करनेवाला योग्य प्रायश्चित्त लेता था ॥ ३ ॥ सब तरहकी विभूतियोंको देनेवाली और आठ

द्रव्योंसे होनेवाली महा पूजा वह श्रीजिनालयमें जाकर भी बड़ी विभूतिके साथ करता था और अपने घरपर भी करता था ॥ ४ ॥ वह अपने कुटुम्बके साथ विमानमें बैठकर मेरु पर्वत आदि क्षेत्रोंमें जिनचैत्यालयोंमें विराजमान जिनप्रतिमाओंकी यात्रा बड़ी भक्तिसे सदा करता रहता था ॥ ५ ॥ वह राजा प्रतिदिन शुद्धतापूर्वक सुखका सागर घरके सब पापोंको दूर करनेवाला उत्तम चार प्रकारका दान मुनिराजोंको दिया करता था ॥ ६ ॥ वह तीर्थंकरोंके पुराणोंमें कही हुई, पदार्थोंसे संवेग प्रकट करनेवाली, महापुण्य उत्पन्न करनेवाली, सारभूत, मनोहर, और उत्तम धर्मकथाको सदा सुनता रहता था ॥ ७ ॥ मनको जीतनेवाला वह राजा भव्यजीवोंको सुखका सागर, सब जीवोंको हित करनेवाला, सारभूत, धर्मका उपदेश दिया करता था ॥ ८ ॥ चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाले दुष्ट दर्शनमोहनीय कर्मका नाशकर वह राजा मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाले निःशंकित आदि गुणोंको बढ़ाता रहता था ॥ ९ ॥ वह राजा मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अपनी योग्यतानुसार स्वर्ग देनेवाले सारभूत व्रतोंको यत्नपूर्वक निरतिचार पालन करता था ॥ १० ॥ मुनिके समान उसके परिणाम शांत हो गए थे, पिताके समान वह प्रजाका पालन करता था और दोनों लोकोंका हित करनेवाले धार्मिक कामोंमें वह सदा अपनी प्रवृत्ति रखता था ॥ ११ ॥ प्रज्ञप्ति, कामरूपिणी, अग्निस्तंभनी, उदकस्तंभनी, विश्वप्रवेशिनी, अप्रतिघातगामिनी, आकाशगामिनी, उत्पादनी, वशीकरणी, आवेशिनी, प्रस्थापिनी, प्रमोहनी, प्रहरणी, संक्रामणी, वर्तनी, संग्रहणी, भंजनी, विपाटनी, प्रवर्तनी, प्रमोदनी, प्रहापणी, प्रभावती, प्रलापिनी, निक्षेपिणी, शवरी, चंडाली, मातंगी, गौरी, षट्कांगिका, श्रीमुद्गनी, शतसंकुला, कुंभांडी, चिरवेगिनी, रोहिणी, मनोवेगा, चपलवेगा, चंडवेगा, लघुकरी, पर्णलघ्वाक्षिका, वेगवती, शीतवेताली, उष्णवेताली, महाज्वाला, सर्वविद्याछेदनी, युद्धवीर्या, बंधमोचनी, प्रहारावरणी, भ्रामरी, भोगिनी, आदि कुल और जातिसे उत्पन्न हुई बहुतसी विद्याएं पुण्यकर्मके उदयसे उस विद्याधर अमिततेजने स्वयं सिद्धकी थीं ॥ १२-१३ ॥

पुण्यकर्मके उदयसे वे सब विद्याएं उसे सब तरहके कार्योंको करनेवाली और मनोहर ऐसी अनेक तरहकी भोगोपभोग संपदाओंको देती रहती थीं ॥ १४ ॥ धर्मके प्रभावसे उसे दोनों श्रेणियोंका आधिपत्य

[राज्य] मिल गया था इसलिये वह दोनों श्रेणियोंका चक्रवर्ती होकर विद्याधरोंके योग्य भोगोंका अनुभव करता रहता था ॥ २५ ॥ किसी दिन ज्ञानवान्, सवतरहके परिग्रहोंसे रहित, और धीर वीर ऐसे दमवर नामके चारणमुनि उस राजाके घर आहार लेनेके लिये आये ॥ २६ ॥ राजाने बड़ी भक्तिसे उन मुनिराजको पडगाहन किया और केवल श्रेष्ठ आत्मसुखमें लीन हुए उन मुनिराजको परलोक सुधारनेके लिये मधुर आहार दान दिया ॥ २७ ॥ उसके फलसे उस राजाके घर इसलोक परलोक दोनों लोकोंमें उत्तमफलको सूचित करनेवाले रत्नवृष्टि आदि पंच आश्चर्य प्रगट हुए ॥ २८ ॥ किसी एक दिन धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा रखनेवाले अमिततेज और श्रीविजय दोनों ही असरगुरु और देवगुरु मुनिराजके समीप गये ॥ २९ ॥ उन दोनों राजाओंने उन दोनों मुनिराजोंको मस्तक भुकाकर वंदना की तीन प्रदक्षिणाएं दीं और फिर उनसे धर्मका यथार्थ स्वरूप पूछा ॥ ३० ॥ तव अमरगुरु नामके मुनिराज कहने लगे कि मैं कुछ धर्मके साधन वतलाता हूं तुम दोनों ही मन लगाकर सुनो ॥ ३१ ॥ मोक्ष देनेवाला निर्मल धर्म सम्यग्दर्शनसे उत्पन्न होता है तथा सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तपश्चरणसे भी नियम पूर्वक वह धर्म प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ मुक्तिरूपी स्त्रीके चित्तको मोहित करनेवाला वह उत्तमधर्म मुनियोंके उत्तमक्षमा आदि दश धर्मोंसे प्रगट होता है ॥ ३३ ॥ दूसरोंको उत्कृष्ट धर्मका उपदेश देनेसे, दूसरोंका उपकार करनेसे और मन वचन कायको शुद्ध रखनेसे वह महाधर्म प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ मुनीश्वरोंको वह उत्तमधर्म कायोत्सर्ग पालन करनेसे धर्म शुल्क आदि उत्तम ध्यान करनेसे, और श्रेष्ठ मंत्रोंका जप करनेसे प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ गृहस्थोंको वह पुण्यरूप धर्म अणुव्रत आदि वारह व्रतोंको पालन करनेसे, पात्रोंको दान देनेसे, और भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेसे प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार धर्म उपार्जन करनेके वहुतसे कारण हैं उन सवको जानकर तुम दोनोंको स्वर्ग मोक्ष देनेवाले किसी भी धर्मका उपार्जन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे ही यह जीव परलोकमें इन्द्र होता है, तीर्थंकर होता है, चक्रवर्ती होता है, वहुतसी विभूति पाता है, स्वर्ग प्राप्त करता है, कामदेव होता है, पूज्य होता है, सदा श्रेष्ठ सुखोंको प्राप्त होता है, मान्य होता है, रूपवान् होता

है, धर्मात्मा होता है, अत्यन्त गुणी होता है। इसके सिवाय और भी बहुतसी विभूतियोंको प्राप्त होता है ॥ ३८-३९ ॥ जिनकी बुद्धि धर्ममें ही लगी हुई है ऐसे वे मुनिराज उन दोनोंके सामने इसप्रकार धर्मका स्वरूप उसके हेतु कारण और फल कहकर चुप हो गए ॥ ४० ॥ वे दोनों राजा धर्मका यथार्थ स्वरूप सुनकर और उनके वचनामृतोंका पानकर अजर अमर होनेके समान संतुष्ट हुए ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जिन्हें देव मनुष्य सब पूजते हैं ऐसे उन मुनिराजोंके चरण कमलोंको नमस्कार कर श्रीविजयने अपने पिता त्रिपृष्ठके पहिले भव पूछे ॥ ४२ ॥ उत्तरमें उन मुनिराजने अपने ज्ञानसे विश्वनंदिके भवसे लेकर पुण्य उत्पन्न करनेवाले सब भव कह सुनाया ॥ ४३ ॥ उसे सुनकर वह सोचने लगा कि देखो विषयोंमें आसक्त चित्त होकर उसने अनेक दुखोंको देनेवाला और महा निंद्य ऐसे भोगोंमें निदान किया था ॥ ४४ ॥ तदनन्तर धर्मध्यानमें तत्पर वे दोनों ही राजा अनेक तरहसे पुण्योपार्जनकर उन दोनों मुनिराजोंके चरणकमलोंको नमस्कार कर अपने घरको चले गये ॥ ४५ ॥

वे दोनों ही राजा भूमिगोचरी और विद्याधरोंके भोगोंका अनुभव करते हुए कितने ही समय तक पुण्योदयसे प्राप्त हुआ अपना राज्य करते रहे ॥ ४६ ॥ किसी एक दिन पुण्यकर्मके उदयसे वे दोनों ही राजा विपुलमति और विमलमति नामके मुनियोंके समीप पहुंचे ॥ ४७ ॥ वे दोनों ही राजा तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसे उन मुनिराजके चरण कमलोंको मस्तक झुकाकर नमस्कार कर तथा उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गए ॥ ४८ ॥ बड़े मुनिने उन दोनोंके सामने समस्त दुखोंको दूर करनेवाला और समस्त सुखोंका सागर ऐसे मुनि श्रावकके भेदसे दोनों प्रकारके धर्मका स्वरूप कहा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उन मुनिराजने कहा कि तुम दोनोंकी एक महीनेकी आयु रह गई है इसलिए अब तुम दोनों ही व्रत धारण करो ॥ ५० ॥ यह सुनकर उन दोनोंको ही कर्मोंको नाश करनेवाला भोग शरीर संसार और राज्यसे वैराग्य प्राप्त हुआ और शुभ परिणामोंको धारणकर वे दोनों ही अपने अपने घर गये ॥ ५१ ॥

अथानन्तर—वे दोनोंही चिंतवन करने लगे कि देखो यह आयु क्षण क्षणमें योंही चली जाती है तथापि

ये मूर्ख अपने आत्माका भला करनेवाला धर्मका सेवन नहीं करते ॥ ५२ ॥ यह राज्य लक्ष्मी विजली और बादलके समान चंचल है ये दुष्ट भोग विषफलके समान अन्तमें बहुत ही दुःख देनेवाले हैं ॥ ५३ ॥ स्त्रियां सब दुर्गति देनेवाली हैं और सर्पिणीके समान प्राण नाश करनेवाली हैं सब धन धान्य आदिको भक्षण करने वाले पुत्र जालके समान हैं। यह कुटुंब अहित करनेवाला है, धर्म दान दीक्षा आदिको रोकनेवाला है और पापको प्रेरणा करनेवाला है इसलिये बड़े लोगोंको शत्रुओंके समान इसका त्याग करदेना चाहिये ॥ ५५ ॥ स्त्री आदिसे उत्पन्न हुआ सुख पराधीन है दुर्गति देनेवाला है दुखसे उत्पन्न होता है और दुखका कारण है इसलिये वह दुःखरूप ही इसमें किसी तरहका संदेह नहीं ॥ ५६ ॥ एक जन्मको नाश करनेवाला हलाहल विष खा लेना अच्छा है परन्तु अनेक जन्मोंमें दुख देनेवाला विषयसेवनसे उत्पन्न हुआ सुख भोगना अच्छा नहीं है ॥ ५७ ॥ यह संसार विषमय है, अपार है, निस्सार है, दुःखों से भरा हुआ है, और जीवोंको सब तरहके दोष उत्पन्न करनेवाला है इसमें विषयोंमें अन्धे रहनेवाले मनुष्य ही परिभ्रमण करते हैं ॥ ५८ ॥ जो धर्मकी नावपर चढ़कर संसाररूपी समुद्रको पारकर मोक्ष नगरमें जा विराजमान हुए हैं वे ही जीव सुखी हैं इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ५९ ॥ हम लोग बड़े मूर्ख हैं जो विषयोंमें आसक्त होकर और राज्यका भार ढोढोकर इस दुर्लभ आयुका बहुभाग योंही व्यर्थ गंवा दिया ॥ ६० ॥ इसलिये जबतक यह निर्दयी यम लेने के लिये नहीं आता तबतक हमें अपना हित करलेना चाहिये ॥ ६१ ॥ इसप्रकार उन दोनों ही धीर वीर राजाओंने अपने मनमें चिंतवन किया और भोगों से उदास होकर वे द्विगुणित संवेगको प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ राजा अमिततेजने तो अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य दिया और श्रीविजयने अपने पुत्र श्रीदत्तके लिए राज्य दिया तथा वैराग्यमें तल्लीन होकर वे दोनों सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुंचे ॥ ६३ ॥ वहांपर जाकर वे दोनों ही अपने आत्माको विशुद्ध करनेके लिये समस्त पापोंको नाश करनेवाली श्रीजिनेन्द्रदेवकी अष्टाह्निकाकी महापूजा भक्ति और विभूतिके साथ करने लगे ॥ ६४ ॥ पूजा करनेके बाद वे दोनों ही राजा चंदन वनमें परलोकको सुधारनेवाले नंदन नामके मुनिराजके समीप पहुंचे ॥ ६५ ॥ वहां जाकर मन वचन कायकी

शुद्धिपूर्वक उन मुनिके चरण कमलों को नमस्कार किया और मुनिकी आज्ञानुसार दोनों प्रकारके अशुभ परिग्रहों का त्यागकर उन दोनों ने जिनमुद्रा धारण की ॥ ६६ ॥ उन्होंने जीवन पर्यंत चार प्रकारके आहार त्यागकर संतोषरूप आहार धारण किया अर्थात् जीवन पर्यंत आहारका त्याग कर सन्यास धारण किया और शुद्धतापूर्वक चारों आराधनाओं का आराधन करने लगे ॥ ६७ ॥ वे दोनों ही मुनिराज अपनी शक्ति को प्रकटकर भूख प्यास आदिसे उत्पन्न हुई घोर बाईस परिषहों का जबर्दस्ती सहन करते थे ॥ ६८ ॥ वे दोनों ही मुनि मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक अपने मनमें समस्त इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले पंच परमेष्ठों के नामसे उत्पन्न हुए महामंत्रका जाप करते थे ॥ ६९ ॥ वे दोनों ही मुनिराज समस्त पापों को दूर करने के लिये अपनी शक्तिके अनुसार रात दिन सब तरहका सुख देनेवाले धर्मध्यानमें ही विराजमान रहते थे ॥ ७० ॥ तपश्चरणसे उन दोनोंका सब शरीर कृश हो गया था, हाथ पैरोंका बल जाता रहा था, केवल हड्डी चमड़ा रह गया था, नेत्र दोनों नीचेको बैठ गये थे परन्तु हृदय दोनोंका शुद्ध था उन दोनोंने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया था, श्रीजिनेंद्रदेवके चरण कमलोंमें अपना हृदय समर्पण कर दिया था, अशुभ ध्यान उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया था और वैराग्यमें ही अपना चित्त लगाया था ॥ ७१-७२ ॥ वे समस्त कर्मोंको नाश करनेके लिये ही विराजमान थे आत्मवल ही उनका सहायक था और शुभ भावोंसे सदा धर्मध्यानमें ही तत्पर रहते थे ॥ ७३ ॥ उनमेंसे शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले अमिततेजने विधिपूर्वक प्रायोपगम सन्यास धारण किया, चारों अराधनाओंका आराधन किया और वह समाधिपूर्वक प्राणोंको छोड़कर आनतस्वर्गके नंद्यावर्त विमानमें रविचूल नामका बड़ी ऋद्धिका धारी देव हुआ ॥ ७४-७५ ॥ श्रीविजय भी सन्यासकी विधिसे प्राणोंको छोड़कर उसी स्वर्गके स्वस्तिक विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ ॥ ७६ ॥ वहां पर विमान सब सफेद रत्नोंके बने हुए हैं, पृथ्वी सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली है और वृक्ष सब कल्पवृक्ष हैं ॥ ७७ ॥ वहांके राजभवन बहुत ऊंचे हैं और मणियोंके किरणोंसे भरपूर हैं सभास्थान बहुत ही मनोहर हैं और उपपाद स्थान बहुत ही अच्छे हैं ॥ ७८ ॥ वहांपर सौ योजन लंबे पचास योजन चौड़े और पचहत्तरि योजन ऊंचे

अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं ॥ ७९ ॥ वे जिनमन्दिर रत्न और सोनेके बने हुए हैं, सदा सब दिशाओंको प्रकाशित करते रहते हैं, देव देवियोंसे भरे रहते हैं और गाजे बाजे आदिके शब्दोंसे भरपूर रहते हैं ॥ ८० ॥ जिनमें भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा सदा होती रहती है और सैकड़ों उत्सव होते रहते हैं ऐसे वे चैत्यालय रत्नोंके बने हुए उपकरणोंसे सदा शोभायमान रहते हैं ॥ ८१ ॥ एक एक जिनमन्दिरमें रत्नोंकी कांतिसे देदीप्यमान और पांचसौ धनुष ऊंची एक सौ आठ २ प्रतिमाएं विराजमान हैं ॥ ८२ ॥ जिनपर श्रीजिनेंद्रदेवकी प्रतिमाएं बिराजमान हैं जो रत्न और सोनेके बने हुए हैं बड़े ऊंचे हैं और इन्द्र भी जिनकी पूजा करते हैं ऐसे चैत्यवृक्ष बड़े ही अच्छे जान पड़ते हैं ॥ ८३ ॥ वहांके नगर कोट गलियोंसे शोभायमान हैं और देव देवियोंसे भरे हुए हैं ॥ ८४ ॥ वहांके क्रीड़ा पर्वत, वन, बावड़ी और तालाव बड़े ही अच्छे जान पड़ते हैं वहांपर रात दिनका विभाग नहीं होता रत्नोंका प्रकाश सदा बना रहता है ॥ ८५ ॥ वहांपर न संताप होता है, न वायु वर्षा होती है न गर्मी सर्दीकी बाधा होती है वहांपर न छहों ऋतुओंका परिवर्तन होता है और न चोर शत्रु आदिका भय होता है ॥ ८६ ॥ इस स्वर्गलोकमें न कोई दुखी है न दरिद्री है न दीन है न कुरूपी है न कोई अंग उपांगरहित है और न कोई कुमार्गगामी दिखाई देता है ॥ ८७ ॥ वहांपर सदा उत्सव होता रहता है, गीत नृत्योंमें सब चतुर होते हैं, समय सदा शांत बना रहता है, भाव शुभ होते हैं और देव सब सदा यौवन अवस्थामें बने रहते हैं ॥ ८८ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है संसारमें जो दुर्लभ और कठिन है वह स्वर्गमें स्वभावसे ही दिखाई देता है ॥ ८९ ॥ उन दोनों ही देवोंने शुभकर्मके उदयसे दिव्य शय्यासहित और शुद्ध रत्नमय ऐसे शिला संपुटके भीतर जन्म लिया था ॥ ९० ॥ दो घड़ीमें ही वे नवयौवन अवस्थाको प्राप्त हो गये थे, आठ ऋद्धियोंको प्राप्त हो गए थे और उनके तीनों ज्ञानरूपी नेत्र खुल गए थे ॥ ९१ ॥ वे दोनों ही देव पुष्पमाला, वस्त्र, समस्त आभूषण, पहने हुये थे, सुन्दर थे और दिव्य रूपवान थे। जब उन्होंने पुण्यकर्मके उदयसे अपनेको देव पर्यायमें जाना तब कल्पवृक्षोंसे होनेवाली पूजाकी अनेकतरहकी सामग्री लेकर वहांके जिनालयमें भक्तिपूर्वक भगवानकी पूजाकी ॥ ९२-९३ ॥ तदनन्तर उन्होंने पुण्यकर्मके

उदयसे प्राप्त हुई अनेक देवियां तथा विमान आदिसे भरी हुई ऋद्धियां ग्रहण की ॥ ९४ ॥ इसप्रकार वे धर्मके प्रभावसे प्राप्त हुए, गाजे बाजे नृत्य आदिसे होनेवाले तथा देवियोंके गुणोंसे प्रगट होनेवाले अनेक भोगोंका उपभोग करते थे ॥ ९५ ॥ साढ़े तीन हाथका उनका शरीर था, उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त थी और मोक्ष प्राप्त होनेतक सब तरहके कार्य सिद्ध करनेवाला अवधिज्ञान प्राप्त था ॥ ९६ ॥ बीस सागरकी उनकी आयु थी और बीस हजार वर्ष बाद वे अमृतके समान मानसिक आहार लेते थे ॥ ९७ ॥ वे बीस पक्षके बाद उच्छ्वास लेते थे और अपने चित्तमें अपनी देवांगनाओंका स्मरण करने मात्रसे ही वे कामसुखसे तृप्त हो जाते थे ॥ ९८ ॥ वे दोनों ही देव बड़ी विभूतिके साथ पंच कल्याणकोंमें जाकर बड़ी भक्तिसे तीर्थंकरोंकी पूजा करते थे ॥ ९९ ॥ वे दोनों ही देव पुण्योपार्जन करनेके लिये देवलोक मनुष्य लोक और तिर्यंच लोकमें जाकर स्वभावसे ही अकृत्रिम प्रतिबिंबोंकी पूजा किया करते थे ॥ १०० ॥ स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये वे देव गणधरोंके तथा धर्मोपदेश देनेवाले मुनियोंके चरण कमलोंको नमस्कार किया करते थे ॥ १ ॥ धर्मसेवन करनेके लिए वे अपने परिवारके साथ श्रीतीर्थंकरके समवशरणमें जाकर उनकी उपमारहित दिव्य ध्वनि सुनते थे ॥ २ ॥ इसप्रकार वे प्रतिक्षण अनेक तरहके पुण्योपार्जन किया करते थे तथा सुखसागरमें निमग्न होकर अनेक तरहके भोग भोगते रहते थे ॥ ३ ॥ जो देवियोंके समूहमें बैठकर पुण्यसे प्राप्त हुए भोगोंमें लीन हो रहे हैं और जिनके परिणाम शुभ हैं ऐसे उन दोनों देवोंको व्यतीत होता हुआ समय भी मालूम नहीं होता था अथानन्तर—इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक वत्सकावती नामका मनोहर देश है ॥ ५ ॥ उस देशमें ध्यानमें विराजमान ऐसे मुनियोंसे सुशोभित बहुतसे वन हैं और धर्मात्मा लोगोंसे भरे हुए बहुतसे गांव खेट नगर हैं ॥ ६ ॥ जिनके किनारेपर कायोत्सर्ग धारण किये हुए अनेक मुनि विराजमान हैं जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ है और पक्षियोंके मनोहर शब्द हो रहे हैं ऐसी कितनी ही नदियां वहांपर बहती हैं ॥ ७ ॥ वहांपर निर्मल जलसे भरे हुए और राजहंसोंसे शोभायमान तालाब हैं और पेड़ पेड़पर कमलोंसे छाई बावड़ियां हैं ॥ ८ ॥ वहांपर धर्मोपदेश देनेवाले असंख्य जिनराज, देव मनुष्योंके

साथ प्रतिदिन विहार करते हैं ॥९॥ वहांपर चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव और असंख्य धर्मात्मा उत्पन्न होते रहते हैं ॥ १० ॥ केवलज्ञानी भी सब संघके साथ विहार करते हैं और देवोंके द्वारा पूज्य तथा सातों ऋद्धियोंसे सुशोभित ऐसे गणधरदेव भी विहार करते रहते हैं ॥ ११ ॥ वहांपर ऊंची ध्वजावोंसे शोभायमान और मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका चारों संघोंसे भरे हुए धर्मकी खानिके समान अनेक चैत्यालय शोभायमान हैं ॥ १२ ॥ वहांपर कुदेव उनका मत कुलिंगी, कुशास्त्र, कुधर्म और उसको प्ररूपण करनेवाले शास्त्र कभी दिखाई नहीं देते ॥ १३ ॥ वहांपर अनेक सुख देनेवाला अहिंसा और सत्यस्वरूप मुनि श्रावकके भेदसे दो प्रकारका जिनधर्म सदा प्रवर्तमान रहता है ॥ १४ ॥ उसी देशके मध्यभागमें बड़ी मनोहर अनेक तरहकी सैकड़ों ऋद्धियों से भरपूर और स्वर्गके समान प्रभावशालिनी प्रभाकरी नामकी नगरी है ॥ १५ ॥ वह नगरी बारह योजन लंबी है और नौ योजन चौड़ी है अनेक पुण्यवान लोगोंसे भरी हुई वह नगरी दूसरी धर्मकी खानिके समान जान पड़ती है ॥ १६ ॥ उस नगरीमें बाहरसे आनेकेलिये रत्नोंकी किरणोंसे सुन्दर एक हजार बड़े रास्ते हैं और ध्वजाओं से शोभायमान पांचसौ छोटे रास्ते हैं ॥ १७ ॥ वहांपर ऊंचा अकृत्रिमकोट है जलसे भरी हुई खाई है बारह हजार सोने रत्नोंके बाजार हैं एक हजार चौक हैं और मोक्षमार्गके समान मनुष्योंसे भरे हुए रास्ते हैं ॥ १८-१९ ॥ करोड़ों भवनों में लगी हुई देवों को वश करनेवाली ध्वजाओं से वह नगरी ऐसी अच्छी जान पड़ती है मानो उन ध्वजारूपी हाथों से जन्म लेनेकेलिए देवों को ही बुला रही हो ॥ २० ॥ वहांपर बाजेगाजों से भरपूर सुवर्णमय सुन्दर जिन मन्दिर ऐसे अच्छे जान पड़ते हैं मानो धर्मके सागरही हों ॥ २१ ॥ उस नगरीमें दान पूजा करनेवाले पुण्यवान व्रती सदाचारी और अच्छे लक्षणों वाले स्त्री पुरुष निवास करते हैं ॥२२॥ चारों प्रकारके संघसे सुशोभित सुख देनेवाली, सदा उत्सवों से भरपूर और धर्मकी खानि ऐसी वह नगरी जिनवाणीके समान शोभायमान है ॥ २३ ॥ उस नगरीमें उत्पन्न हुए कितने ही लोग मोक्ष देनेवाली दीक्षा लेकर तथा तपश्चरणके बलसे कर्मोंको नाशकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥ कितनेही लोग गृहस्थ धर्मका सेवनकर और कितने ही भगवानकी पूजाकर स्वर्ग जाते हैं और

कितने ही दान देकर भोगभूमिके सुख प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥ इत्यादि अनेक गुणोंसे शोभायमान ऐसी उस नगरीमें पुण्य कर्मके उदयसे धर्मात्मा स्तिमित सागर नामका राजा राज्य करता था ॥२६॥ वह राजा त्यागी (दानी) था, भोगी था, रूपवान था, न्यायमार्गमें तत्पर था, शूरवीर था, धीरवीर था और पुण्यवान था इसीलिये वह दूसरे विष्णुके समान जान पड़ता था ॥ २७ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे उस राजाके रूपवती लावण्यवती सती सुन्दर तथा आभूषणोंसे सुशोभित ऐसी वसुन्धरा नामकी देवी थी ॥ २८ ॥ रविचूल नामका देव नंद्यावर्त्य बिमानसे चयकर उन दोनोंके अपराजित नामका पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ मणिचूल नामका देव अपने स्वस्तिक बिमानसे चयकर उसी राजाकी अनुमती रानीके श्रीमान अनन्तबीर्य नामका पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ वे दोनों ही भाई अनुक्रमसे बढ़ते हुए अस्त्र शस्त्र सब विद्याओंमें निपुण हो गए और कुमार अवस्थाको प्राप्त होकर कला विज्ञान आदि सबमें सुशोभित हो गए थे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वे दोनों ही राज पुत्र यौवन अवस्थाको प्राप्त होगए और उनका शरीर पुण्यकर्मके उदयसे रूप आदि शोभासे सुशोभित हो गया था ॥ ३२ ॥ वे दोनों ही भाई जम्बूद्वीपके दो चन्द्रमाओंके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कांतिसे कुमुदिनियोंके समूहको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वे दोनों भाई भी अपनी कांतिसे कुवलय अर्थात् पृथ्वी मंडलको प्रसन्न करते थे चन्द्रमा जिसप्रकार तृष्णा और संतापको दूर करता है उसी प्रकार वे दोनों भाई भी-तृष्णा और संतापको दूर करते थे और चन्द्रमा जिसप्रकार अनेक कलाओंको धारण करता है उसी प्रकार वे दोनों भाई भी अनेक कलाओंको धारण करते थे ॥ ३३ ॥ अथवा वे दोनो भाई सूर्यके समान थे क्योंकि जिसप्रकार सूर्य पद्म अर्थात् कमलोंको आनंदित करते हैं, उनका शरीर (पिंड) दैदीप्यमान रहता है, वे अंधकारको नाश करते हैं सदा उदय रहते हैं और प्रतापी होते हैं उसी प्रकार वे दोनों भाई भी पद्मा अर्थात् लक्ष्मीको आनन्दित करनेवाले थे। उनके शरीर दैदिप्यमान थे, पापरूप अन्धकारको नाश करनेवाले थे, सदा बढ़ते रहते थे और बड़े प्रतापी थे॥ ३४ ॥ उनके वक्षःस्थलपर हार पड़ा था, मस्तक पर मुकुट शोभायमान था, कानोंमें कुण्डल थे और बाकीके सब आभूषण वे पहिने हुए थे ॥ ३५ ॥ धीरवीर

वे दोनों भाई दिव्य वस्त्र पहने रहते थे, अपने अतिशय रूपसे कामको भी जीतते थे और अपनी विभूतिसे लोगोंको धर्मका फल ही बतला रहे थे ॥ ३६ ॥ वे दोनों ही भाई न्याय मार्गमें लीन थे, चतुर थे, राजनीतिकी प्रवृत्ति करनेवाले थे, सब शत्रुओंको वश करनेवाले थे, पुण्यवान थे और सत्यवक्ता थे ॥ ३७ ॥ वे जिनधर्ममें लीन थे दान जिनपूजा आदि करनेमें तत्पर थे, ज्ञानका अभ्यास करनेमें लगे रहते थे, और देव तथा गुरुओंके चरणारबिंदोंकी सदा सेवा किया करते थे ॥ ३८ ॥ उन दोनों भाइयोंको अनेक ऋद्धियां प्राप्त थीं नारायण बलभद्रका पद प्राप्त था अनेक राजा उनकी सेवा करते थे और इसलिये वे इन्द्र प्रतींद्रके समान जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥ राजा स्तिमित सागर उन दोनों पुत्रोंको राज्य भोगके योग्य समझकर लक्ष्मी भोग और सुखादिकोंसे विरक्त होगया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग भोगोंका अनुभव तब तक ही करते हैं जबतक कि पुत्र योग्य न हो जाय, पुत्रके योग्य हो जानेपर वे उन सबको छोड़ देते हैं ॥ ४०-४१ ॥ राजा स्तिमित सागरने सबसे पहिले श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजाकी और फिर बड़ी विभूतिके साथ अभिषेककर अपने बड़े पुत्र अपराजितको राज्य दे दिया ॥ ४२ ॥ तथा उसने बड़े उत्सवके साथ दूसरे पुत्र अनन्तवीर्यको युवराज पद दिया इस प्रकार उस राजाने सबकी इच्छा छोड़ दी केवल चारित्रकी इच्छा करने लगा ॥ ४३ ॥ वह राजा स्वयंप्रभ नामके जिनेंद्रदेवके समीप पहुंचा और धर्मोपदेश देनेवाले उन जिनेंद्रदेवको बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया ॥ ४४ ॥ तीर्थंकरकी आज्ञानुसार उसने सब परिग्रहोंका त्याग किया और कर्मोंको नाश करनेके लिये सब तरहके कल्याण करनेवाली उत्तम दीक्षा धारण की ॥ ४५ ॥ किसी एकदिन उन स्तिमितसागर मुनिने धरणेंद्रकी विभूति देखी और अज्ञानसे उसे पानेकेलिये साधुओंके द्वारा निंदा करने योग्य ऐसा निदान किया ॥ ४६ ॥ इस लिये उनसे उस निदानके दोषसे बड़ी ऋद्धिके पदको नष्टकर जिससे थोड़े भोग प्राप्त होते हैं ऐसा धरणेंद्र पद प्राप्त किया ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार इसलोकमें थोड़े मूल्यकी वस्तु अधिक मूल्यसे मिलना कठिन नहीं होती उसीप्रकार पर लोकके लिए भी समझना चाहिए यह बात निश्चित है ॥ ४८ ॥ इधर वे दोनों भाई अपने उपार्जन किए हुए शुभकर्मके उदयसे नारायण बलभद्रका पद पाकर

नीतिरूप आचरणोंसे और विभूतिसे बड़ी भारी उन्नतिको प्राप्त हुए थे ॥ ४९ ॥ उनके घर वर्वरी और चिलातिका नामकी दो नृत्य करनेवाली थीं जोकि बड़ी रूपवती थीं और नृत्य गीत आदि कलाओंमें बड़ी निपुण थीं ॥ ५० ॥ किसी एक दिन वे दोनों ही भाई उन दोनोंका नृत्य देख रहे थे, बड़े प्रसन्न हो रहे थे और बड़े आरामसे बैठे थे इतनेमें वहां नारद आ पहुंचे ॥ ५१ ॥ उस समय वे दोनों भाई नृत्य देखनेमें लगे हुए थे इसलिए उन्होंने नरकगामी क्रूर पापी उस नारदको आसन देना प्रणाम करना आदिसे आदर सत्कार नहीं किया ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार तेलसे अग्नि भडक जाती है अथवा ज्येष्ठ महीनेमें सूर्य अतिशय संतप्त हो जाता है उसी प्रकार उस समय नारदका हृदय प्रगट हुए क्रोधरूपी अग्निकी शिखासे संतप्त हो गया था ॥ ४३ ॥ वह कलहप्रिय नारद उसी समय उस सभासे निकल गया और वह दुष्ट क्रोधित होकर उसीसमय शिवमन्दिर नामके नगरमें पहुंचा ॥ ५४ ॥ वहांपर राजा दमितारि सभामें राज्य सिंहासनपर बैठा था वह पापी नारद उसके समीप पहुंचा और उसे आशीर्वाद दिया ॥ ५५ ॥ राजा दमितारि नारदको देखकर उठकर सामने आया और उसका आदर सत्कार कर तथा प्रणामकर उसे सिंहासनपर बिठाया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर राजाने कहा कि हे शुभदायक (अच्छा फल देनेवाले) आज आप मेरे घर किस कारणसे पधारे हैं ॥ ५७ ॥ उसके उत्तरमें वह कुमार्गगामी नारद जीवोंको हिंसा करनेवाले न्यायसे बहुत दूर करनेवाले और उस राजा दमितारिको नाश करनेवाले बचन कहने लगा ॥ ५८ ॥ कि प्रभाकरी नगरीमें जो दोनों भाई राज्य करते हैं वे बलभद्र नारायण हैं उनके सामान कोई दूसरा मल्ल नहीं है और वे अपनी नई लक्ष्मीके मदसे उद्धत हो रहे हैं ॥ ५९ ॥ उनके घर दो नृत्य करनेवाली हैं जो संसारमें सारभूत हैं और आपके ही योग्य हैं उन्हें देखकर ही मैं आपको कहनेकेलिए आया हूं ॥६०॥ नर्तकीकी बात सुनकर दमितारिके मनमें लालसा उत्पन्न हुई और उसने उसी समय भेट देकर सब समाचारोंके सम्बन्धको जाननेवाले दूतको भेजा वह दूत वत्सकावती देशमें दिनपर दिन उन्नत होनेवाले उन दोनों भाइयोंके पास पहुंचा। उस दिन राजा अपराजित और उदार हृदयवाले युवराज अनन्तवीर्य मंत्रियोंके साथ प्रोषधोपवास करते हुए श्रीजिनालयमें विराजमान थे।

॥ ६१-६२ ॥ दूतने दोनोंके सामने लाई हुई भेंट रख दी और कहने लगा कि हे देव ! शिवमन्दिर नगरमें सब शत्रुओंको जीतने वाला तीन खंडका स्वामी राजा दमितारि संसारमें प्रसिद्ध हैं उन्होंने स्वयं आपके यहांकी दोनों नर्तकी मागनेके लिए मुझे भेजा है इसलिए उनको प्रसन्न करनेकेलिए आपको अपनी नर्तकी इसी समय देदेनी चाहिये। उनके देनेसे राजा प्रसन्न होगा और आपको भी बहुत अच्छा फल मिलेगा ॥ ६४-६५ ॥ यह बात सुनकर दूतको तो ठहरनेकेलिए घर भेज दिया और मंत्रियोंको बुलाकर उन दोनोंने पूछा कि अब क्या करना चाहिए ॥ ६७ ॥ उसी समय पुण्यकर्मके उदयसे सब तरहके फल देने वाली तीसरे भवकी (अमिततेजके भवकी) विद्या देवताने स्वयं आकर उन दोनोंके सामने कहा कि तुम दोनों घवड़ाओ मत, अपना कार्यसिद्ध करनेके लिए अपने इच्छानुसार कार्यमें हमको लगा दो ॥ ६८-६९ ॥ विद्या देवता की यह बात सुनकर उन्होंने अपने राज्यका भार तो मंत्रियोंको दिया और वे दोनों भाई नर्तकीका भेष रखकर उस दूतके साथ हो लिए ॥७०॥ उन्होंने अपने गुप्तकामका पक्का विचार कर लिया वे शिवमंदिर नगरमें पहुंचे राजा दमितारिको देखा और उन दोनोंने राजभवनमें प्रवेश किया ॥७१॥ राजा दमितारिने नर्तकीका भेष धारण करनेवाले उनदोनोंसे बातचीतकी, आदर सत्कारसे उन्हें संतुष्ट किया और दोनोंको अपने रहनेके भवनमें भेज दिया ॥ ७२ ॥ दूसरे दिन उन दोनोंने अपने मनोहर अंग, उपांग, विलास, रस और भाव दिखलाकर नृत्य करना प्रारम्भ किया ॥ ७३ ॥ उन दोनोंको देखकर राजा दमितारि बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने उन्हें योग्य पारितोषक दिया और कहा कि ये सब अच्छी कलाएं आप मेरी पुत्री कनकश्री (कनक-माला) को सिखलाइए यह कहकर उसने अपनी पुत्री कनकश्री उनको सौंप दी। उन्होंने भी उस विद्याधर की पुत्रीको साथ लीया और उसे यथायोग्य नृत्य कला सिखाने लगे ॥ ७४-७५ ॥ किसी एक दिन वे दोनों भाई बड़े मीठे स्वरसे होनहार नारायणके (अनंतवीर्य अर्द्धचक्रीके) गुणोंसे गुथा हुआ और कानोंको सुख देनेवाला काव्य पढ़ने लगे ॥ ७६ ॥ वह काव्य इस अभिप्रायका था "जिसने कुल और बल आदि गुणोंसे संसारभरमें सब राजाओंको जीत लिया है, जिसने अपने शरीरकी शोभासे कामदेवको भी लज्जित कर

दिया है जो सबसे श्रेष्ठ तरुण अवस्थाको धारण करता है चतुर स्त्रियोंके विलास और उनके सुन्दर कटाक्षोंका घर है ऐसा वह सब पृथ्वीका स्वामी प्रसिद्ध राजा अनन्तवीर्य तुम लोगोंकी रक्षा करो" ॥ ७७ ॥ उनके इस काव्यको सुनकर उस राजपुत्रीका मन कामसे कुछ व्याकुल हुआ और वह पूछने लगी कि जिसके विषयमें मैं यह काव्य सुन रही हूं वह कौन है ? ॥ इसके उत्तरमें वे कहने लगे कि जिस प्रकार पर्वतसे महामणि प्रकट होता है उसीप्रकार अनेक राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसा वह अनन्तवीर्य राजा स्तिमित सागरका पुत्र है और प्रभाकरी नगरीका राजा है ॥ ७९ ॥ इसप्रकार अनन्तवीर्यके गुण रूप और लावण्यका वर्णन सुनकर उस विद्याधरकी पुत्रीका प्रेम दूना बढ़ गया और वह इसप्रकार कहने लगी ॥ ८० ॥ कि क्या मुझे अनन्तवीर्यके दर्शन हो सकते हैं ? तब अनन्तवीर्यने कहा कि-हां, अच्छी तरह हो सकते हैं यह कहकर उसने अपना साक्षात् रूप दिखला दिया ॥ ८१ ॥ अनन्तवीर्यको देखकर वह कनकमाला मदनज्वरसे पीड़ित हो गई इस लिए वे दोनों नर्तकी उसे लेकर आकाशमार्गसे चल दीं ॥ ८२ ॥ राजा दमितारिने कंचुकीके मुखसे यह बात सुनकर उन दोनोंको पकड़नेके लिए अपने योद्धा भेजे ॥ ८३ ॥ उन योद्धावोंको आते हुए देखकर बड़े भाई बलभद्र राजा अपराजितने उस कन्याके साथ छोटे भाई अनंतवीर्यको तो दूर बिठा दिया और आप स्वयं लौटकर उन योद्धावोंसे युद्ध करने लगे ॥ ८४ ॥ वे योद्धा तो बहुत देर तक तो बलभद्रके साथ लड़ते रहे परन्तु अन्तमें सबको यमराजके घर जाना पड़ा। यह जानकर राजा दमितारिने क्रोधित होकर बड़े निपुण और शूर वीर योद्धाओंको भेजा ॥ ८५ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें पवत डूब जाते हैं उसीप्रकार बलभद्रकी तलवारकी धारारूपी सागरमें वे सब योद्धा डूब गए। इस बातको सुनकर राजा दमितारिको बहुत ही आश्चर्य हुआ ॥८६॥ उसने सब मंत्रियोंको बुलाकर पूछा कि नर्तकियोंका इतना प्रभाव नहीं हो सक्ता यह क्या बात है ? सो तुम लोग कहो। इसके उत्तरमें सब बातें जानकर उन मंत्रियोंने सब ज्योंका त्यों निवेदन कर दिया ॥८७॥ उस बातको सुनकर उस विद्याधरका हृदय क्रोधरूपी अग्निसे संतप्त हो गया और वह स्वयं सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये निकला ॥ ८८ ॥ बलभद्र राजा अप-

राजित अकेला ही था इसलिये उसने दमितारिको तो छोड़ दिया और विद्या तथा पराक्रमके सहारेसे अनेक योद्धाओं को मारने लगा ॥ ८९ ॥ यह देखकर यमके समान वह राजा दमितारि अपराजितके सामने आया, उसे अपने बड़े भाईके सामने आता हुआ देखकर अनंतवीर्य क्रोधित होकर स्वयं उसके सामने गया ॥९०॥ वह राजा अपराजित स्वयं उसके समीप पहुंचा और विद्या बलके मदसे उद्धत हुए उस राजा दमितारिको मदरहित किया। तथा अनेक तरहसे युद्धकर उसे रथरहित कर दिया ॥ ९१ ॥ राजा दमितारिने देखा कि अनंतवीर्य जीता नहीं जा सकता, वह धीर वीर है और बहुत ही पराक्रमी है यह देखकर उसने चक्र हाथमें लिया और मारनेके लिए उसपर चलाया ॥ ९२ ॥ सब तरहके कल्याणोंको सिद्ध करनेवाला वह चक्र अनंतवीर्यके पुण्यकर्मके उदयसे उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथपर आकर ठहर गया ॥ ९३ ॥ अनंतवीर्यने उसी चक्रसे राजा दमितारिको यमराजके घर भेज दिया और सेनाके बाकी बचे हुए योद्धाओं के लिए उसने अभय घोषणा कर दी ॥ ९४ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे जिसका पराक्रम प्रकट हो चुका है ऐसे उस अनन्तवीर्यकी अनेक विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओं ने आकर स्तुति की और उसकी पूजा की ॥ ९५ ॥ इसप्रकार धर्मके प्रभावसे जिन्हें विद्याएं प्राप्त हुई हैं, लक्ष्मी प्राप्त हुई हैं, जिन्हों ने सब शत्रुवोंको जीत लिया है, युद्धमें अपना पराक्रम प्रकट किया है; जो सब तरहके सुखके सागर हैं प्रतापी हैं और मनुष्य विद्याधर देव सब जिनकी सेवा करते हैं ऐसे वे दोनों भाई संसारमें देवोंके समान सुशोभित होते थे ॥९६॥ धर्मके ही प्राभावसे जीवों को नाश करनेवाले कठिन संग्राममें अनेक तरहकी जीत प्राप्त होती है, धर्मके ही प्रभावसे तीनों लोकोंमें रहनेवाली अनेक तरहकी लक्ष्मी प्राप्त होती है और धर्मके ही प्रभावसे इंद्र तीर्थकर चक्रवर्ती आदिके अनेक प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं, संसारमें ऐसा कौनसा पदार्थ है जो धर्मात्मा सज्जनों को प्राप्त न होता हो ॥ ९७ ॥ यह एक धर्म ही मोक्षका कारण है इंद्र चक्रवर्ती आदिके पद देनेवाला है और सुखकी खानि है इसलिए हे विद्वान लोगो ! शीघ्र ही इस धर्मका सेवन करो, व्यर्थके बड़े २ वचनों और आडम्बरोंसे कोई लाभ नहीं होता ॥९८॥ जो बुढ़ापा आदि दोषों से रहित है, देव भी जिनकी सेवा

करते हैं जो सब तरहके परिग्रहों से रहित हैं अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित हैं, गुणोंके समूह और और सुखके समुद्र हैं प्रतिहार्योंसे सुशोभित हैं समस्त दोष जिन्होंने नष्टकर दिए हैं और जो पुण्यवान लोगों-को शांन्ति देनेवाले हैं ऐसे श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर देवकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ६६ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें देव आदि दो भवोंका वर्णन करनेवाला यह छठा अधिकार समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां अधिकार ।

जो धोर वीर हैं जिन्होंने समस्त शत्रुओंका नाशकर दिया है, जो महाराज हैं (चक्रवर्ती राजा हैं) भव्य जीवोंको शांति देनेवाले हैं स्वयं शांति हैं और गुणोंके सागर हैं ऐसे शांतिनाथ तीर्थंकर परमदेवको मैं उनके गुण प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अथानन्तर-किसी एक दिन वे दोनों ही भाई विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे जा रहे थे परन्तु पूजाका क्रम उल्लंघन होनेके डरसे ही क्या मानों उनके दोनों विमान अकस्मात् ठहर गए ॥ २ ॥ ये विमान किसीने कील दिए हैं अथवा कारणसे ये आये नहीं जा रहे हैं इस-प्रकार विचार करते हुए वे चारों ओर देखने लगे इतनेमें ही उन्हें मानस्तम्भ दिखाई दिए ॥३॥ उन्हें उप-रसे बावड़ियां दिखाई दीं, चारों वन दिखाई दिए और देव मनुष्य तथा मुनिराज आदिके संघसे भरी हुई सम्पूर्ण सभा दिखाई दी ॥ ४ ॥ अनेक तरह अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी और प्रातिहार्योंसे वेष्टित तथा अनेक तरहकी ऋद्धियोंसे सुशोभित ऐसे गंधकुटीपर विराजमान श्रीजिनेंद्र देव दिखाई दिए ॥ ५ ॥ भव्यजीवोंको समझानेके लिये इन्हीं धर्म रत्नाकर श्रीजिनेंद्रदेवकी धर्म और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली कथा कहता हूं ॥ ६ ॥ इसी विजयार्द्ध पर्वतके शिवमंदिर नामके नगरमें राजा कनकपुँख राज्य करते थे इनकी महारानीका नाम जय-देवी था ॥ ७ ॥ इनके कीर्तिधर नामका पुत्र था जो कि कीर्तिसे विभूषित था ये ही बुद्धिमान और क्षमा आदि गुणोंको उत्पन्न करनेके लिये पृथ्वीके समान राजा कीर्तिधर दमितारिके पिता थे ॥ ८ ॥ किसी एक दिन शुद्ध बुद्धिवाले वे राजा कीर्तिधर काल लब्धि पाकर राज्य, भोग, उपभोग, शरीर और संसारादिकसे

विरक्त हुए ॥ ६ ॥ तदनंतर वे बुद्धिमान भव्य जीवोंको सब तरहकी शांति करनेवाले शांतिकर नामके मुनिराजके समीप पहुंचे ॥ १० ॥ वहां जाकर मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक मस्तक झुकाकर भगवानको नमस्कार किया और दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्यागकर श्रीजैनेश्वरी दीक्षा धारण की ॥ ११ ॥ मूलगुण तथा उत्तर गुणोंको धारण करनेवाले और सब जीवोंका हित करनेवाले वे संयमी बारह प्रकारका तपश्चरण करने लगे और ध्यानका अभ्यास करने लगे ॥ १२ ॥ उन्होंने एक वर्ष तक प्रतिमायोग धारण किया, और शुक्लध्यानसे घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १३ ॥ तदनंतर भक्तिमें डूबे हुए भव्य देवोंने आकर उन कीर्तिधर जिनेंद्रदेवकी पूजा और वंदनाकी ॥ १४ ॥ उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया धर्मवृष्टिसे भव्यरूपी खेतोंको सींचा और फिर वे आकर वहां विराजमान हुए ॥ १५ ॥ वहींपर वे दोनों भाई आए भक्तिपूर्वक भगवानकी तीन प्रदक्षिणा दीं, मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार किया और धर्मश्रवण करनेके लिए बैठ गए ॥ १६ ॥ उन दोनों भाइयोंने भगवानके मुखसे अनेक तरहके सुख देनेवाले और दोनों लोकोंका हित करनेवाले दोनों प्रकारके धर्मका स्वरूप सुना और निंदाकर पापोंका नाश किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर कनकश्री भी उन दोनोंके साथ आई, घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले अपने बाबाको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और अपने पहिले भव पूछे ॥ १८ ॥ इसके उत्तरमें समस्त जीवोंके हित करनेमें तत्पर ऐसे वे श्रीजिनेंद्रदेव भी अपने वचनामृतरूपी जलसे उसे संतुष्ट करनेके लिए कहने लगे ॥ १६ ॥ उत्तम जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मनोहर शंख नगरमें देविल नामका एक वैश्य रहता था ॥ २० ॥ उसकी स्त्रीका नाम बंधुश्री था। उनके श्रीदत्ता नामकी बड़ी पुत्री तू थी और दो छोटी पुत्रियां थीं जिनके नाम कुंटी और पंगूकुणी था ए दोनों ही बहिरी और कुबड़ी थीं तथा कानी और खंजी थीं। उन सबका पालन पोषण तू ही करती थी ॥ २१-२२ ॥ किसी एक दिन पुण्य कर्मके उदयसे तू शंख पर्वतपर गई और वहांपर तैंने सर्वयश नामके मुनिराजको वंदना की ॥ २३ ॥ मुनिराज सुखके लिये कृपाकर तेरे सामने सब तरहके सुखोंकी खानि और सारभूत ऐसा श्रावकका धर्म निरूपण किया ॥ २४ ॥ उसे सुनकर तेरे परिणाम शांत हुए और तू अहिंसा

अणुव्रतको तथा धर्मचक्र नामके उपवासको धारणकर अपने घर आई ॥ २५ ॥ किसी एक दिन तूने शुद्ध परिणामोंसे विधिपूर्वक सुव्रता नामकी गणिनीको रसोंसे परिपूर्ण आहार दान दिया ॥ २६ ॥ परन्तु अपने कर्मोंके उदयसे उसने उसी समय वमन कर दिया। उस समय तेरे सम्यग्दर्शन था नहीं इसलिये तूने उसकी ग्लानि की ॥ २७ ॥ तदनंतर केवल व्रतोंके ही फलसे तूने समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और सुख देनेवाले सौधर्म स्वर्गमें तू सामानिक जातिकी देवी हुई ॥ २८ ॥ वहां पर तूने अनेक तरहके अच्छे सुख भोगे और फिर वहांसे चयकर तू मंदिरमालिनी नामकी रानीसे दमितारिकी पतिव्रता पुत्री हुई है ॥ २९ ॥ व्रत और उपवासके पुण्यसे तूने स्वर्गमें सुख भोगे और इस लोकमें भी उत्त-म जन्म रूप और संपदा प्राप्त की ॥ ३० ॥ मुनिराजकी ग्लानि करनेके कारण उत्पन्न हुए पापसे तुझे शोक हुआ और तेरे बलवान पिताको मारकर तुझे ये ले गए तथा इसतरह तुझे दुखी बनाया ॥ ३१ ॥ इसलिये चतुर और पुण्यवान पुरुषोंको मुनियोंके शरीरकी ग्लानि प्राणनाश होते हुए भी कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि मुनियोंकी ग्लानि सब दोषोंकी खानि है और सब तरहके दुख उत्पन्न करनेके लिये भूमि है ॥ ३२ ॥ यह कथा सुनकर वह विद्याधरकी पुत्री शोकसे दुखी हुई और श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कारकर उन दोनों भाइयोंके साथ प्रभाकरी नगरीको चली गई ॥ ३३ ॥ अथानन्तर—अनंतवीर्यका पुत्र अनंतसेन शिवमंदिर नगरमें राज्य करता था परन्तु सुघोष और विद्युद्दंष्ट्र नामके कनकश्रीके दोनों भाई नगरके बाहरसे आये और पिताके वैरसे क्रोधित होकर उस अनंतसेनके साथ लड़ने लगे ॥ ३४–३५ ॥ दमितारिके दोनों पुत्रोंको अपने पुत्रके साथ लड़ते हूये देखकर नारायण बलभद्रको भी क्रोध आया और उन्होंने उन दोनोंको युद्धमें मार दिया ॥ ३६ ॥ अपने दोनों भाइयोंके मरनेकी बात सुनकर कनकश्री उस दुखको सह नहीं सकी और भारी शोकके कारण दावानल अग्निसे जली हुई लताके समान वह मुरझा गई ॥ ३७ ॥ वह काम भोगोंकी इच्छा छोड़कर वैरागको प्राप्त हुई और आत्मज्ञान होजानेके कारण अपने किए हुएकी निंदा करने लगी ॥ ३८ ॥ यह बिचार करने लगी कि ये भोग पिता भाई आदिका घात करनेवाले हैं नरकके साधन हैं और

अनेक क्लेशोंके समूहके समुद्र हैं इसलिये ऐसा कौन बुद्धिमान है जो इनका सेवन करे ॥ ३९ ॥ यह लक्ष्मी विजलीके समान चंचल है यह जीवन दाभकी बूंदके समान शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाला है, यह शरीर रोग-रूपी सर्पका घर है और संसारमें जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब नष्ट होनेवाला है ॥ ४० ॥ इस प्रकार चिंतवनकर वह द्विगुणित वैराग्यको प्राप्त हुई और काल लब्धि प्राप्त हो जानेसे दीक्षा लेनेके लिए तैयार हुई ॥ ४१ ॥ वह विद्याधरकी पुत्री नारायण बलभद्रसे प्रार्थनाकर उनसे अलग हुई और अपने ज्ञानसे शल्योंको छोड़कर निःशल्य हुई ॥ ४२ ॥ तथा तीनों लोक जिनकी पूजा करते हैं ऐसे स्वयंप्रभ तीर्थंकरके समीप पहुंची और उसने मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ उसविद्याधरीने उन तीर्थंकरसे मृत्युरूपी विषको दूर करनेवाले धर्मामृतका पान किया और शोकरूपी विषका बहुत शीघ्र त्याग कर दिया ॥ ४४ ॥ वह सुप्रभा नामकी गणिनीके पास पहुंची और उसे नमस्कारकर कर्मोंको नाश करनेके लिए तथा सुख प्राप्त करनेके लिए उसने उनसे दीक्षा धारण की ॥ ४५ ॥ संसारसे डरकर उसने बारह प्रका-रका कठिन तपश्चरण धारण किया और स्त्रीलिंगका छेदकर सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुई ॥ ४६ ॥ वहांपर वह देव अपने हृदयमें धर्म धारणकर देवी और विभूति आदिसे उत्पन्न होनेवाला धर्मका फल स्वरूप सुख भोगने लगी ॥ ४७ ॥ देखो ! कहां तो वह कामांध कन्या, कहां वह कठिन तपश्चरण और कहां वह अनेक तरहकी विभूतिसे शोभायमान स्वर्गका देव, ये सब आश्चर्य करनेवाले हैं ॥ ४८ ॥ संसारमें यह प्राणी कुछ सोचता है और भाग्यसे कुछ और कार्य कर बैठता है इसलिये भाग्यकी लीला ही आश्चर्यकारक है ॥ ४९ ॥

अथानन्तर—उन दोनों भाइयोंने पुण्यकर्मके उदयसे छह प्रकारकी, सेनासे चक्ररत्नसे और अपने पराक्रमसे तीनों खंड पृथ्वी जीतली अनेक भूमिगोचरी जीते विद्याधर जीते व्यंतरदेव जीते और इनकी सार-भूत वस्तु अपने चरणोंके सामने रखाकर ग्रहणकी। तदनंतर जिनके चरणोंको देव विद्याधर नमस्कार करते हैं ऐसे उन दोनों भाई नारायण बलभद्रने इन्द्रके समान अपनी नगरीमें प्रवेश किया और उत्कृष्ट विभूतिसे वे बहुत ही शोभायमान होनेलगे ॥ ५०—५२ ॥ वे दोनों ही नारायण बलभद्र पुण्यसे बिना बांटे

ही एक साथ लक्ष्मीका उपभोग करते थे और सुख सागरमें निमग्न रहते थे इसलिये व्यतीत होता हुआ समय भी उन्हें मालूम नहीं होता था ॥ ५३ ॥ अपराजित बलभद्रके विजया रानीसे सुमति नामकी पुत्री हुई थी जोकि बड़ी बुद्धिमती थी और रूपलावण्यसे सुशोभित थी ॥ ५४ ॥ चंद्रमाकी रेखाके समान अनुक्रमसे बढ़ती हुई वह कला और लक्ष्मीसे बहुत ही अच्छी जान पड़ती थी और प्रतिदिन दानपुण्य करनेमें वह बड़ी ही चतुर थी ॥ ५५ ॥ किसी एक दिन उसने सब परिग्रहोंसे रहित ऐसे दमवर नामके चारणमुनिको यथायोग्य अत्यन्त मीठा आहारदान दिया ॥ ५६ ॥ उसदानके फलसे उसके यहां रत्न वृष्टि आदि पंचाश्चर्य हुए सो ठीक ही है क्योंकि दान देनेसे संसारमें क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ ५७ ॥ पुण्यवान बलभद्र प्रसन्न होकर उसे देखनेके लिये आया और अपनी पुत्रीको देखकर उसके विवाहकी चिंता करने लगा ॥५८॥ वह सोचने लगा कि यह कन्या केवलरूपसे ही सुशोभित नहीं है किंतु यौवन और पुण्यसे भी सुशोभित है इसलिये कौनसा पुण्यवान इसका वर होना चाहिये ॥५९॥ इसप्रकार सोचकर बलभद्रने उसी समय दूतोंको भेजा और स्वयंवर करनेकी घोषणाकी ॥ ६० ॥ स्वयंवर विधिकेलिए उसने शीघ्र ही एक बड़ा भारी मंडप बनाया और बाहरसे आए हुये विद्याधरोंको तथा राजाओंको यथायोग्य स्थानपर बिठाया ॥ ६१ ॥ अत्यंत विभूषित हुई वह कन्या भी रथपर चढ़कर आई और बलभद्र नारायण भी बड़ी विभूतिके साथ एक स्थानपर आ खड़े हुए ॥ ६२ ॥ इतनेमें ही कोई एक सुन्दर देवी विमानमें चढ़ कर आई और आकाशमें ठहरकर हित करनेवाले धर्मरूप बचन कहने लगी ॥६३॥ वह कहने लगी कि हे कन्ये ! तुझे अपनी और मेरी पहिलेकी अवस्था याद है या नहीं । हम दोनों ही लक्ष्मी सुखका अनुभव करने वाली स्वर्गमें देवी थीं ॥ ६४ ॥ हम दोनोंमें सदा सुखी रहनेके लिये परस्पर संबोधन करनेवाला उत्तम और हितकारी यह नियम किया था कि हम दोनों-मेंसे स्वर्गसे जो पहिले च्युत होगी उसे मोक्षमार्गमें लगानेके लिये दूसरी देवी समझावेगी ॥६६॥ इस लिये अपने बचनोंकी प्रतिज्ञाको स्मरणकर दुःख और क्लेश उत्पन्न करने वाले रागको दूर कर और तपश्चरण धारण कर ॥ ६७ ॥ अब मैं संवेग आदि गुणोंको बढ़ानेवाली हम दोनोंकी पहिले भवकी कथा कहती हूं, तू मनको

स्थिरकर अच्छी तरह सुन ॥ ६८ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्वभरत क्षेत्रके नंदनपुर नगरमें पुण्यके प्रभावसे अमितविक्रम नामका राजा राज्य करता था ॥ ६९ ॥ उसकी रानीका नाम अनंतमती था उसके धर्मको धारण करनेवाली चतुर दो पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं एकका नाम धनश्री था और दूसरीका नाम अनंत श्री था ॥ ७० ॥ किसी एकदिन वे दोनों पुत्रियां पुण्य संपादन करनेके लिए धर्मकी प्राप्ति करानेवाले सिद्धकूट चैत्यालयमें गईं और वहांपर उन्होंने नंदननामके मुनिकी बंदनाकी ॥ ७१ ॥ मुनिराजने उनके सामने सुख देनेवाले व्रत उपवाससे उत्पन्न होनेवाले और जीवोंका हित करनेवाले गृहस्थोंके धर्मका उपदेश दिया ॥ ७२ ॥ धर्मका स्वरूप सुनकर उन्होंने पुण्यसंपादन करनेके लिये व्रतोंके साथ साथ भावोंकी शुद्धि पूर्वक पापोंके नाश करनेवाले उपवास धारण करनेकी प्रतिज्ञाकी ॥ ७३ ॥ किसी त्रिपुरन-गरमें वज्रांगद नामका विद्याधर राज्य करता था उसकी सुखदेने वाली रानीका नाम वज्रमालिनी था ॥ ७४ ॥ किसी एकदिन वह वज्रांगद अपनी रानीके साथ मनोहर बनमें गया था वहांपर उनदोनों कन्याओंको देख-कर वह अत्यंत रागांध हो गया था ॥ ७५ ॥ वह अपनी रानीको अपने नगरमें पहुंचाकर शीघ्रही वापिस लौट आया और उन कन्यायोंको लेकर चलने लगा इतनेमें उसके अभिप्रायको समझकर उसकी रानी वज्रमालिनी आगई उसे दूरसे ही देखकर उससे डरकर उसने उनदोनोंको वेणुवनमें छोड़ दिया और रानीको साथ लेकर वह अपने नगरको चलागया ॥ ७७ ॥ उस वेणुवनमें उन दोनोंने संन्यास धारणकिया और शक्ति प्रगटकर क्षुधा तृषा आदि परीषह जीतीं और धर्मध्यान करती हुई वहां रहने लगी ॥ ७८ ॥ उन्होंने श्री जिनेन्द्रदेव के चरणोंमें अपना मन लगाया और सुख प्राप्त करनेके लिये जन्मपर्यंत उपवास धारणकर समाधिपूर्वक प्राण छोड़े ॥ ७९ ॥ उस व्रत उपवासके पुण्यसे मैं रूपवती ज्ञानवती और ऋद्धियोंको धारण करनेवाली नवमिका नामकी सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी देवी हुई ॥ ८० ॥ तूने भी शुभ ध्यानसे ही प्राण छोड़े थे इसलिए पुण्यकर्म के उदयसे तू भी रति नामकी बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाली कुबेरकी देवी हुई थी ॥ ८१ ॥ वहांपर भी परस्पर हम दोनोंने पहले भवका सब हाल जान लिया था और इसलिए हम दोनोंमें पुण्य उत्पन्न करने-

वाला बड़ा भारी प्रेम उत्पन्न हो गया था ॥ ८२ ॥ किसी एक दिन हम दोनों बड़ी विभूतिके साथ नंदीश्वरद्वीपमें गईं थीं और वहांपर नन्दीश्वर पर्वमें बड़ो भारी पूजा की थी ॥ ८३ ॥ हम दोनों पूजा कर धर्म सेवन करने के लिये मंदराचल पर्यंत भद्रशाल आदि वनमें गईं थीं ॥ ८४ ॥ वहांपर निर्जंतुक वनमें मति श्रुत, अवधि इन तीनों ज्ञानसे सुशोभित धृतिषेण नामके चारणमुनि विराजमान थे। पुण्य कर्मके उदयसे हम दोनोंने उनके दर्शन किए थे ॥ ८५ ॥

सब जीवोंको सुख देनेवाले उन मुनिराजको हम दोनोंने नमस्कार किया था और 'हम दोनोंको मोक्ष कब प्राप्त होगी' यह प्रश्न उनसे किया था ॥ ८६ ॥ इसके उत्तरमें उन मुनिराजने कहा था कि इस भवसे चौथे जन्ममें तपश्चरणके द्वारा अनंत सुख देनेवाली मोक्षलक्ष्मी तुम दोनोंको अवश्य प्राप्त होगी ॥८७॥ उन मुनिराजके ये वचन सुनकर हम दोनोंने दीक्षा आदि लेनेके लिये ऊपर कही हुई निश्चयात्मक प्रतिज्ञा की थी ॥ ८८ ॥ अब मैं तेरे विवाहकी बात जानकर और अपने बचनोंका स्मरणकर दीक्षा दिलानेके लिए तुझे समझानेको स्वर्गसे यहां आई हूं ॥ ८९ ॥ इसलिए दुख देनेवाले और नरकमें पहंचानेवाले विवाहको तू छोड़ और स्वर्ग मोक्ष बतलाने के लिये घरके दीपकके समान उत्तम दीक्षाको धारणकर ॥ ९० ॥ उस देवीकी इस बातको सुनकर अपने नामको सार्थक करती हुई उस सती सुमतिने धर्मको उत्पन्न करनेके लिये खानिके समान वैराग्य धारण किया तथा पिताकी आज्ञा लेकर सब कुटुंब और विवाहके सुखको छोड़कर संवेगमें तल्लीन होती हुई वह सुव्रता नामकी गणिनीके पास पहुंची ॥ ९१–९२ ॥ उसने एक साड़ीको छोड़कर बाकीके दोनों प्रकारके सब परिग्रहोंका त्याग किया और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सातसौ कन्याओं के साथ दीक्षा धारण की ॥ ९३ ॥ उसने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता धारण की और कर्मोंको नाश करनेके लिये समस्त परीषहोंको जीतकर घोर और कठिन तपश्चरण करना प्रारंभ किया ॥ ९४ ॥ अन्तमें उसने समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और सम्यग्दर्शनरूप धर्मसे स्त्रीलिंगको छेदकर आनत स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिको धारण करने वाला देव हुई ॥ ९५ ॥ वहांपर वह अपने धर्मके फलसे बीस सागर तक देवियोंके समूहसे उत्पन्न

होनेवाला दिव्यसुख भोगने लगा ॥ ९६ ॥ अथानन्तर--राजा अनन्तवीर्य अनेक तरहके सुख भोगता हुवा तीन खंडका राज्यकरता था परन्तु उसने सम्यग्दर्शन व्रत नियम आदि कुछ धारण नहीं किया था ॥ ९७ ॥ उसने बहुत से आरम्भ और बहुतसे परिग्रहसे अनेक तरहका पाप उपार्जन किया वह सदा पांचों इंद्रियों के वश रहा और क्रोध लोभ आदि कषायोंके आधीन रहा ॥ ९८ ॥ उसने रौद्रध्यान पूर्वक प्राण छोड़े और अशुभकर्मके उदयसे नरकमें अधोमुख लटकते हुये घंटाके आकारमें जाकर जन्म लिया ॥ ९९ ॥ नरककी भूमिमें जाते ही ऐसा दुख होता है मानों हजारों विच्छुवोंने काट लिया हो, वह अशुभ है उसका स्पर्शही बहुत बुरा है और वह स्वभावसे ही अत्यन्त दुर्गंधमय है ॥ १०० ॥ वहांपर यह जीव अन्तमुहूर्तमें ही असह्य शरीर प्राप्तकर लेता है और पूर्ण अवस्थाको धारणकर अधोमुख होकर पृथ्वीपर पड़ता है ॥ १०१ ॥ वह नारकी बार २ ऊपरको उछलता है और फिर नीचे पड़ता है तथा जिसप्रकार वायुके द्वारा सूखा पत्ता पृथ्वी पर इधर उधर उड़ता फिरता है उसीप्रकार वह नारकी भी पृथ्वीतलपर इधर उधर लोटता फिरता है ॥ २ ॥ उस समय वह उस भयानक स्थानको देखकर तथा :समस्त असाताके दुखके खजाने ऐसे लाल २ आंखें निकाले हूए नारकियोंको देखकर वह मनमें विचार करता है कि मैं कौन हूं ? मैं यहां क्यों आया ? यह भयंकर भूमि कौन सी है और दुख देनेमें अत्यन्त चतुर, ऐसे ये भयानक नारकी कौन हैं ? ॥ ३--४ ॥इस प्रकार चिंतवन करते ही उसे कुअवधिज्ञान प्राप्त होता है और उससे वह अपने को नरकमें पड़ा हुवा समझता है। उस समय अनन्तवीर्यके जीवने भी उसी प्रकार समझा ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह जीव पहिले कर्मोंके लिये अत्यंत असह्य बिलाप करता है और उन दुखोंको देखकर दीनके समान अतिशय पश्चताप करता है ॥ ६ ॥ वह सोचता है कि पहले भवमें मेरी बुद्धि मारी गई थी मैं मदसे अंधा हो गया था इसलिए मैंने जैसे कर्म किये थे जिनसे मुझे जबर्दस्ती नरकमें आना पड़ा ॥ ७ ॥ दुर्लभ मनुष्य भवको पाकर भी दुष्ट इन्द्रियों के वश होकर मुझ मूर्खने जो पाप किये थे अब उनका फल किस प्रकार भोगा जायगा ? ॥ ८ ॥ मैंने स्त्री पुत्र और कुटुम्बके लिये जो पाप इकट्ठा किया था उसीका फल मुझ अकेलेको सहना पड़ता है ॥९॥

वहांपर मेरी लक्ष्मीको भोगनेवाले बहुतसे मनुष्य थे परन्तु यहां अत्यन्त तीव्र दुखोंको सहन करनेके लिए मेरे सिवाय कोई दिखाई नहीं देता ॥१०॥ जिस प्रकार आमके फलनेपर उसके लोभसे बहुतसे दुष्ट पक्षी आकर इकट्ठे हो जाते हैं और फलोंके समाप्त होनेपर सब भाग जाते हैं उसीप्रकार कुटुम्बी लोग भी इस समय सब अलग हो गए हैं ॥११॥ अनेक तरहकी भोगोपभोग संपदाओंसे जिस दुष्ट शरीरका मैंने पालन पोषण किया था वही मेरे नरकका कारण हुआ और शत्रुके समान मुझे छोड़कर चला गया ॥१२॥ उस समय (मनुष्य जन्ममें) मुझ पापीने न तो देवपूजन किया था, न पात्रदान दिया था, न उत्तम व्रत किये थे और न सुख देनेवाला कोई नियम किया था ॥१३॥ उस समय मेरा चित्त विषयोंमें ऐसा आसक्त हुआ था कि न तो मैं कोई तपश्चरण कर सका, न ज्ञान संपादन कर सका, न सुखके सागर ऐसे श्रुतज्ञानका पठन पाठन कर सका और न पंच नमस्कार महा मंत्रका जप ही कर सका ॥१४॥ वहांपर मैंने जीवोंकी हिंसा की थी, मिथ्याभाषण किया था, बिना दिया हुआ दूसरेका द्रव्य लिया था, परस्त्रियोंका सेवन किया था अनेक तरहका तीव्र परिग्रह धारण किया था और सुखकी इच्छा करनेवाले मुझ मूर्खने नरक देनेवाली इन्द्रियोंका सेवन किया था ॥१५—१६॥ जिह्वालंपटी हो कर रात्रिमें भोजन किया था और नरक पहुंचानेवाले कंद मूल आदि अभक्ष्य बस्तुवोंका भक्षण किया था ॥ १७ ॥ वहांपर मैंने इन सब कर्मोंसे अत्यन्त घोर पाप किया था उसीके उदयसे मुझे यह नरककी घोर वेदना प्राप्त हुई है॥ १८ ॥ कितने ही पुण्यवान मनुष्योंने उस उत्तम मनुष्य भवको पाकर तपश्चरणसे स्वर्ग प्राप्त किया था अथवा अनंत सुखका सागर ऐसा मोक्ष प्राप्त किया ॥ १९ ॥ परंतु मुझ दुष्टने उत्तम धर्मको छोड़-कर पाप संपादन किया था इसी लिये मुझे मनुष्योंको भय उतपन्न करनेवाले नरकोंके सम्पूर्ण दुख प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥ इस लिए आज यहांपर मैं कहां जाऊं ? कहां रहूं ? क्या करूं ? किससे जाकर पूछूं और इन दुखोंसे बचनेके लिए किसकी शरण लूं ? ॥ २१ ॥ मैं किसका स्मरण करूं ? इस घने दुखमहासागरसे मैं कैसे पार होऊगा और आयुके पूर्ण हुए बिना इससे मेरा निकलना किस प्रकार होगा ? ॥ २२ ॥ जिस प्रकार तेलके पड़नेसे अग्नि और अधिक भड़क उठती है उसीप्रकार ऊपर लिखे अनुसार चिंतवन करनेसे

उसके हृदयकी तीव्र वेदना और भड़क उठती है ॥ २३ ॥ उसी समय उस नये नारकी को देखकर अनेक दुष्ट दुराचारी नारकी आकर अनेक तरहके अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसे मारते हैं ॥ २४ ॥ कितने ही नारकी मुद्गरोंसे उसके समस्त हड्डियोंके समूहको चूर्ण कर डालते हैं, कितने ही नारकी उसकी आंखें निकाल लेते हैं और कितने ही उसकी अंतडियोंको तोड़ डालते हैं ॥ २५ ॥ कितने ही नारकी उसके शरीर को आरेसे चीरकर दो टुकड़े कर देते हैं और कितने ही दुर्बुद्धि नारकी विना किसी तरहकी दयाके दुख देनेके लिए उसके शरीर और मर्मस्थानको काट डालते हैं ॥ २६ ॥ उसके हाथ पैरोंको काट डालते हैं शरीरके टुकड़े २ कर डालते हैं और वे दुष्ट उसके शरीरके तिलके समान छोटे २ टुकड़े कर डालते हैं ॥ २७ ॥ जिसप्रकार डंडाके मारनेपर जलकी बूंदे उछलकर उसी जलमें आकर मिल जाता हैं उसीप्रकार उसके शरीर के टुकड़े २ उसी समय इकट्ठे होकर मिल जाते हैं ॥ २८ ॥ अशुभ कर्मके उदयसे दुखरूपी महा सागरमें डूबे हुये नारकियोंकी जबतक आयु पूरी नहीं होती तबतक उनकी मृत्यु भी नहीं हो सकती ॥ २९ ॥ कितने ही नारकी उसे वहांसे उठाकर गरम की हुई तेलकी कड़ाईमें डाल देते हैं इसलिए वहां उसे गरमीका अत्यन्त तीव्र दुख सहना पड़ता है ॥ ३० ॥ वहांपर उसका सब शरीर जल जाता है इस लिये कुछ ठंडक पानेके लिये वह स्वयं बैतरणी नदीके खारे और राधखूनमय अपवित्र जलमें डूबता है ॥ ३१ ॥ परंतु उस जलके स्पर्श होनेमात्रसे ही सब शरीरमें दुर्गंधमय दाह उत्पन्न होता है और फिर उससे अत्यन्त तीव्र दुख होता है ॥ ३२ ॥ वहांसे संतप्त होकर अशुभ कर्मोंसे ठगा हुआ वह नीच अपनेआरामके लिये जबर्दस्ती असिपत्रके वृक्षोंके घने बनमें जाता है ॥ ३३ ॥ परंतु वहां पर भी वायुके चलनेसे तलवारकी धारके समान उन वृक्षों के पत्ते गिरते हैं और उसके शरीरके टुकड़े२ कर डालते हैं ॥ ३४ ॥ शरीरके छिन्न भिन्न और टुकड़े २ हो जानेसे जिसके शरीरमें असह्य बेदना हो रही है ऐसा वह नारकी विश्राम लेनेके लिए दुर्गम पहाड़पर चढ़ जाता है ॥ ३५ ॥ परन्तु वहांपर भी दुख देने वाले सिंह बाघ आदि क्रूर जानवर अपने तीक्ष्ण नख दाढ़ोंसे उस नारकीको खाना प्रारंभ कर देते हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वह नारकी अपने पाप कर्मके उदयसे

क्षण क्षणमें उत्पन्न होनेवाले असह्य और घोर दुःखोंको सहता है ॥ ३७ ॥ वहांपर भूख इतनी लगती कि जो संसारके समस्त पुग्दलों से तथा समस्त धान्योंसे भी शांत न हो वह भूख असाध्य तीव्र और सब हृदय को सोखने वाली होती है, परन्तु खानेकेलिये उसे तिलमात्र भी भोजन नहीं मिलता वह सदा उस भूखसे उत्पन्न हुए तीव्र दुखको केवल सहता है ॥ ३८—३९ ॥ वहांपर प्यास इतनी लगती है कि जो अनेक समुद्रोंके जलसे भी शांत न हो वह दुर्धर और घोर, प्यास सब शरीरको जलाती रहती है और सब शरीरको सोख लेती है ॥ ४० ॥ परन्तु उसे शांतकरनेको पीनेके लिये उसे कभी भी एक बूंद नहीं मिलता उसका सब शरीर प्याससे सदा व्याकुल बना रहता है ॥ ४१ ॥ संसारमें जो दुख देनेवाले असह्य रोग हैं वे सब उसके शरीरमें स्वभावसे ही होते हैं इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ जो नरक उष्ण है उनमें इतनी गर्मी है कि यदि एक लाख योजन प्रमाण लोहेका गोला डाल दिया जाय तो वह भी पिघलकर खंड खंडरूप हो जाय ॥४३॥ इस-प्रकार त्रिखंडी अनन्तवीर्यका जीव रत्नप्रभा नरकमें पड़कर पहिले उपार्जन किए हुए पापके फलसे प्रतिक्षण बिना किसी अन्तरके तीव्र दुःख भोगने लगा। क्षेत्रसम्बन्धी दुख, तीव्र उष्णताके दुख, शारीरिक मानसिक और वाचनिक ऐसे तीनों प्रकारके परस्पर नारकियोंके द्वारा दिए हुए विक्रिया ऋद्धि से उत्पन्न हुए दुख, अत्यन्त बैर और कुज्ञानसे उत्पन हुए दुख. जो कवियोंकी वाणीसे भी नहीं कहे जा सकें ऐसे अत्यन्त भया-नक असुरोंके द्वारा दिए हुए दुख, कुटिल हृदय आर्तरौद्र और अशुभ लेश्या आदिसे बढे हुए दुख, सिंघ वाघ आदि मांसभक्षी पशुवोंके द्वारा दिए हुए दुख तथा शोकसे उत्पन्न हुए दुख इत्यादि अनेक प्रकारके दुखोंको वह भोगने लगा ॥ ४४—४७ ॥ उसे वहांपर कभी क्षणभर भी सुख नहीं मिलता था वह केवल छेदन भेदन आदिसे उत्पन्न होने वाला दुख ही सदा भोगा करता था ॥ ४८ ॥ बहुत कहनेसे क्या संसारमें जो जो दुख हैं वे सब इकट्ठे होकर नारकियोंको स्वभावसे ही प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ केवलज्ञानियोंको छोड़-कर नरकोंके दुखोंको और कोई वर्णन नहीं कर सकता यही समझकर हम अब चुप हो जाते हैं ॥ ५० ॥

अथानन्तर-अनंतवीर्यके मरजानेसे सब शरीरको दुखदेने वाले उसके वियोगके शोकसे बलभद्र अपराजि-

तको बहुतही दुख हुआ और वह ऐसा होगया मानों उसे पिशाचने ही पकड़ लिया हो ॥ ५१ ॥ परंतु थोड़ी देर बाद ही विवेकरूपी तलवारसे कठिन शोकको नष्टकर दिया और वे अपने मनमें संसारके विचित्र स्वरूपका इस प्रकार चिंतवन करने लगे ॥ ५२ ॥ आश्चर्य है कि मनुष्योंको महामोह उत्पन्न करनेवाली राज्यलक्ष्मी मायारूप है और विजलीके समान अत्यन्त चंचल है ॥ ५३ ॥ स्त्री भाई पुत्र आदि कुटुंब सब क्षणभंगुर है ये सब अपने कर्मके उदयसे पाहुनेके समान आकर इकट्ठे हुए हैं ॥ ५४ ॥ यह नीच संसार इंद्रियोंके द्वारा ठगा गया है ये इन्द्रियां जबर्दस्ती धर्मरत्नको चुराकर इसको नरकमें पहुंचा देती हैं ॥ ५५ ॥ यह मनरूपी हाथी विषयरूपी वनमें फिरा करता है और निरकुंश होकर धर्मरूपी कल्पवृक्षको उखाड़ता रहता है ॥ ५६ ॥ यह दुष्ट आशा पिशाचीके समान मूर्ख लोगोंको पकड़ लेती है और विषय रुपी मांसको खाकर भी तृप्त नहीं होती ॥ ५७ ॥ जो यह शरीर अन्न पान और आभूषणोंसे सदा पालन पोषण किया जाता है वही जीवके साथ नहीं जाता फिर भला और पदार्थों की तो बात ही क्या है ॥ ५८ ॥ येसूर्य चंद्रमारूपी दोनों बैल दिन-रातरूपी घटीयंत्रके द्वारा मनुष्यरूपी कूऐसे आयुरूपी जलको सदा निकालते रहते हैं ॥ ५९ ॥ इसलिये जब-तक शरीर स्वस्थ है जबतक इंद्रियोंका बल बना हुआ है और जबतक आयु नष्ट नहीं होती तबतक मनुष्योंको अपना हित कर लेना चाहिये ॥ ६० ॥ यदि भाग्यसे आयु नष्ट होगई तो फिर केवल हाथ मलना ही बाकी रह जाता है और मनुष्योंका बहुमूल्य महारत्न अपने हाथसे नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार चिंतवन करनेसे उनके आत्माका भला करनेवाला देह भोग और संसारकी विरक्तिसे उत्पन्न होनेवाला वैराग्य उनके हृदयमें दूना हो गया ॥ ६२ ॥ उनके भोगोंकी इच्छा जाती रही और मोक्ष सिद्ध करनेकी इच्छा हो गई उन्होंने सज्जनोंको त्याग करने योग्य राज्य अनंतवीर्यके पुत्र अनंतसेनको दिया ॥ ६३ ॥ तदनंतर जिनका मन मोक्षमें लगा हुआ है और संवेग आदि गुण जिनके बढ़े हुए हैं ऐसे वे बल-भद्र तपश्चरण धारण करनेके लिये शीघ्र ही यशोधर मुनिके पास पहुंचे ॥ ६४ ॥ उन्होंने संसाररूपी सागरमें नावके समान उन मुनिराजके दोनों चरण कमलोंको नमस्कार किया और उनकी आज्ञानुसार दोनों प्रकारका

अशुभ परिग्रह त्यागकर संयम धारण किया ॥ ६५ ॥ तदनंतर वे संयमी अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए तथा मन और इंद्रियोंको वश करने लिये उन मुनिराजके मुखसे अंग पूर्व और प्रकीर्णकोंका सदा अभ्यास करते रहते थे ॥ ६६ ॥ वे मुनिराज कर्मोंको नष्ट करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार छोटे हृदयवालोंको भय उत्पन्न करनेवाला और अत्यन्त कठिन ऐसा बारह प्रकारका तपश्चरण विधिपूर्वक करते थे ॥ ६७ ॥ शरीर से ममत्व दूर करनेके लिये अशुभ कर्मरूपी बनको जलानेके लिये अग्निके समान ऐसा कायोत्सर्ग कभी पंद्रह दिनका करते थे और कभी महीने भरका वा इससे भी अधिक करते थे ॥ ६८ ॥ वे मुनि आर्तध्यान और रौद्रध्यानका त्यागकर मनरूपी हाथीको वश करनेके लिए सिंहके समान धर्मध्यानादिकका ही रात दिन ध्यान करते रहते थे ॥ ६९ ॥ वे मुनिराज अपने मुनियोंके आचरणको विशुद्ध रखनेके लिये प्रमादरहित हृदयसे सुखके सागर ऐसे मूलगुण और उत्तर गुणोंको अच्छी तरह पालन करते थे ॥ ७० ॥ वे चतुर मुनि मोक्षके कारण जैसे उत्तमक्षमा आदि दश धर्मोंको धारण करते थे और वैराग्य बढ़ानेके लिए अनुप्रेक्षाओंका बार बार चिंतवन करते थे ॥ ७१ ॥ वे मुनि ध्यान और अध्ययनके लिये गुफा पर्वत श्मशान वन और सूनी वसतिका आदि स्थानोंमें सदा अकेले निवास करते थे ॥७२॥ श्रेष्ठ मोक्षमार्गसे कभी डिग न जांय इसलिये वे धीर वीर भूख प्यास आदिसे उत्पन्न होनेवाली और दुख देनेवाली ऐसी बाईस घोर परीषहोंको जीतते थे ॥ ७३ ॥ वे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये मधुर बचनोंसे धर्मकी इच्छा करनेवाले भव्यजीवोंको धर्मो-पदेश दिया करते थे ॥ ७४ ॥ वे मुनिराज ध्यान अध्ययन आदिकी सिद्धिके लिए प्रमादोंको छोड़कर रात दिन निर्जन स्थानमें सदा जगते ही रहते थे ॥७५ ॥ वे जितेंद्रिय मुनि कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिए और सदा रहनेवाले मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिए ऊपर लिखे अनुसार अनेक प्रकारका काय क्लेश किया करते थे ॥ ७६ ॥ उन्होंने अवधिज्ञानके द्वारा अपनी थोड़ी आयु जानकर विधिपूर्वक स्वयं चारों प्रकारको आराधनाओंका आराधन किया ॥७७॥ तीस दिनतक सन्यास धारण किया और धर्मध्यान तथा पूर्ण समाधि पूर्वक अपने प्राणोंका त्याग किया ॥ ७८ ॥ वे अपराजित मुनीश्वर अपने तपश्चरणके प्रभावसे अच्युत

नामके सोलहवें स्वर्गमें सब ऋद्धियों से भरपूर ऐसे अच्युत नामके इन्द्र हुए ॥ ७९ ॥ बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाले उस इन्द्रने बड़ी सुन्दर शिलाओंके संपुटमें रत्नोंकी दिव्य और कोमल, शय्यापर जन्म लिया था ॥ ८०॥ अंतमुहूर्तमें ही वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गया था और उठकर बैठकर सब दिशाओंको ओर देखने लगा था ॥ ८१ ॥ चारों ओर देखकर वह सोचने लगा कि यह इन्द्रजाल है अथवा स्वप्न है अथवा मायामई भ्रम है यह विचित्र दृश्य क्या है कुछ समझमें नहीं आता ॥ ८२ ॥ यह इन्द्रका सभाभवन है जो कि बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देवोंसे भरा है बड़ी शोभासे सुशोभित है सात प्रकारकी सेनासे मंडित है और बहुत बड़ा है ॥ ८३ ॥ ये दिव्य घर शोभायमान हैं जो सुन्दर स्त्रियोंसे भरे हैं ऊंचे हैं सुन्दर हैं और सोने रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त हैं ॥ ८४ ॥ यह महा सुन्दर नगर है जो दिव्य वस्तुओंसे भरा हुआ है मनोहर है, रत्नोंके कोट और दरवाजोंसे शोभायमान है और देव भी इसकी पूजा करते हैं ॥८५॥ यहांकी भूमि बड़ी ही मनोहर है अनेक तरहके रत्नोंसे बनी हुई है इसका स्पर्श भी सुख देनेवाला है देवोंसे सुशोभित है और पुण्यकी खानिके समान अच्छी जान पड़ती है॥ ८६ ॥ यह मनोहर जिनालय है जिसमें रत्नोंके प्रतिबिंब विराजमान हैं और जो उत्तम स्तुति गीत बाजोंसे धर्ममहासागरके समान सुन्दर जान पड़ता है ॥८७॥ ए अत्यन्त आनन्द देनेवालीं देवियां हैं जो रूप और लावण्यकी खानि हैं और जिनकी आकृति और मूर्ति सुन्दर है तथा जो मुझे देखकर अपनी प्रवृत्ति दिखला रही हैं॥ ८८ ॥ ए देव हैं जो बड़ी बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं वस्त्र आभूषणोंसे सुशोभित हैं और मुझे देखकर मस्तक झुकाकर बड़ी विनयसे नमस्कार कर रहे हैं॥ ८९ ॥ यह सात प्रकारकी सेना है जो हाथी घोड़ा आदिसे अपनी शोभा बढ़ा रही है जिसके सात सात भेद हैं और सब कार्योंको सिद्ध करनेवाली है ॥ ९० ॥ यह मनोहर नृत्य हो रहा है जिसे नृत्य करनेवाली सेना कर रही है जो गीत बाजे और रससे भरपूर है तथा सब इन्द्रियोंको सुख देनेवाला है ॥ ९१ ॥ ए मनोहर गीत हैं जिन्हें गंधर्व जातिके देव गा रहे हैं जिनमें दिव्य स्वर निकल रहा है जो सुनने योग्य हैं और कानोंको सुख देनेवाले हैं ॥ ९२ ॥ ए चैत्यवृक्ष शोभायमान हैं जो बहुत ऊंचे हैं मणियोंसे सुशोभित हैं

जिनपर श्रीजिनेंद्रदेवकी प्रतिमाएं विराजमान हैं और जो धर्मके कल्पवृक्षके समान जान पड़ते हैं ॥ ९३ ॥ ए मनोहर क्रीड़ा पर्वत हैं जो सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं। ए जलसे भरी हुई बावड़ियां हैं जिनमें रत्नोंकी सीढियां लगी हुई हैं ॥ ९४ ॥ ए निर्मल जलसे भरे हुए तालाव हैं और ए मनोहर बड़े २ वन हैं जिसमें सब ऋतुओंके फल फूल फूल रहे हैं ॥ ९५ ॥ मुझे देखकर ए लोग बहुत ही आनन्द मना रहे हैं ए लोग पुण्यकी मूर्ति, बड़े प्यारे, प्रशंसनीय विनीत और अत्यन्त प्रेम करनेवाले जान पड़ते हैं ॥ ९६ ॥ यह महान् देश सुखकी खानिके समान है तीन लोकके नाथ भी इसकी सेवा करते हैं यह अनेक महिमाओंसे शोभायमान है और ऐसा जान पड़ता है मानों समस्त संसार इसकी वंदना करता है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार चिन्तवन करते हुए उस इंद्रके मनमें जबतक पहिले और इस भवकी शुभ बात मालूम नहीं होती तब तक कुछ निश्चय नहीं होता है ॥ ९८ ॥ उसी समय ज्ञानरूप नेत्रोंको धारण करने वाले उसके मंत्री उसके मनकी बात जानकर आते हैं और उसे नमस्कार कर उस समयके योग्य बचन कहते हैं ॥ ९९ ॥ वेकहते हैं कि हे देव ! नमस्कार करते हुए हम लोगोंपर निर्मल दृष्टि डालकर प्रसन्न कीजिए और अगिली पहिली सब बातों को बतलानेवाले हमारे बचन सुनिए ॥ २०० ॥ हे स्वामिन् ! आज हम लोग धन्य हैं और हम लोगोंका जीवन आज सफल हुआ क्योंकि इस स्वर्गमें आपके जन्म लेनेसे हम लोग पवित्र हो गए हैं ॥ १ ॥ हे देव ! आप प्रसन्न हूजिये आपकी सदा जय हो, आप सदा जीते रहें और लक्ष्मीसे सदा बढ़ते रहें। इस समय आप इस समस्त स्वर्गके राज्यके स्वामी बनें ॥ २ ॥ हे देव आपके पुण्योदयसे हो इस स्वर्गमें यह देवोंके द्वारा पूज्य भोग उपभोगोंसे भरपूर और सुखकी खानि ऐसी यह विभूति प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ यह अच्युत नामका सबसे बड़ा स्वर्ग है जो कि सबके मस्तकपर विराजमान है और आनन्द ऋद्धि और कल्याणरूपी समुद्रको सदा बढ़ानेके लिये चंद्रमाके समान है ॥ ४ ॥ जब यहां इन्द्र उत्पन्न होता है तब प्रतींद्र आदि दश प्रकारके सभी देव उस उत्पन्न होनेवाले इन्द्रका महोत्सव मनाते हैं ॥ ५ ॥ यहांपर कल्पना करने मात्रसे ही भोगोंकी प्राप्ति हो जाती है, यौवन सदा नवीन बना रहता है, लक्ष्मी सबसे उत्तम है और सदा एक सी बनी रहती है

तथा यहांके सुख वाणीसे भी नहीं कहे जा सकते ॥ ६ ॥ ए मनोहर स्वर्गके विमान हैं, ए समस्त ऋद्धियोंके समूहके घर हैं और यह आपके चरण कमलोंको नमस्कार करती हुई देवोंकी मंडली है ॥ ७ ॥ ये रत्नोंके बने हुए राजभवन हैं जो दिव्य देवांगनाओंसे भरे हुए हैं जिनकी कांति चंद्रमाके समान है और जो बड़े ही मनोहर हैं तथा ये क्रीड़ा करनेकी नदियां हैं तथा ये क्रीड़ा करनेके पर्वत हैं ॥ ८ ॥ ए अनेक प्रकारके रूपको धारण करनेवाली कामदेवके समान रूपवती और अनेक प्रकार की लीला और रस प्रकट करनेमें तत्पर ऐसी सुन्दर देवियां हैं जो कि आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं ॥ ९ ॥ यह देदिप्यमान छत्र है, यह सिंहासन है, यह चमरोंका समूह है और ये विजय ध्वजाएं हैं ॥१०॥ अनेक सुन्दर देवियां जिनकी सेवा करतीं हैं ऐसी ए अग्र महा देवियां हैं जो कि लावण्यरूपी सागरकी लहरोंके समान हैं और आपके लिए समर्पण की हुई हैं ॥ ११ ॥ यह मन्दोन्मत्त हाथियोंकी सेना है यह मनके समान शीघ्र जानेवाले घोड़ोंकी सेना है, ये ऊंचे सोनेके रथ हैं और यह पैदल चलनेवाली सेना चल रही है ॥ १२ ॥ यह सात प्रकारकी सेना सात जगह बटकर आपसे प्रार्थना करती हुई आपके चरण कमलोंको नमस्कार कर रही है ॥ १३ ॥ जिसे सब देव नमस्कार कर रहे हैं जो समस्त लक्ष्मीका मंदिर है और उत्तम है ऐसा यह समस्त स्वर्गका साम्राज्य आपके पुण्योदयसे आपके सामने है आप इसे ग्रहण कीजिए ॥ १४ ॥

मंत्रियोंके ये वचन सुनते ही उस इन्द्रको अगली पीछली सब बातोंको सूचित करनेवाला अवधिज्ञान प्रगट होगया था ॥ १५ ॥ उस अवधिज्ञानसे उस इन्द्रने पहिले भवको सब बातें जानली थीं और वह पहिले भवमें उपार्जन किए हुए धर्मको चिंतवन करनेलगा था ॥ १६ ॥ वह विचार करने लगा था कि देखो मैंने पहिले जन्ममें अपनी शक्ति प्रगटकर बहुत दिनतक कातर जीवोंको अत्यन्त कठिन ऐसा घोर तपश्चरण किया था ॥ १७ ॥ मैंने पहिले संवेग निर्वेग आदि अग्निसे विषयरूपी वन जलाया था और ब्रह्मचर्यके प्रहारसे कामदेवरूपी शत्रु मारा था ॥ १८ ॥ उत्तम क्षमा, मार्दव आदि कुठारसे मैंने मायारूपी बेलके साथ साथ जिनपर नरकादिक फल लगते हैं ऐसे कषायरूपी वृक्ष काटडाले थे ॥ १९ ॥ राग द्वेष महाशत्रुओंको ध्यान-

रूपी खंभेसे बांध दिया था और जीवित रहनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको अभय दान दिया था ॥२०॥ मैंने पहिले भवमें चारित्ररूपी शस्त्रसे दुर्गति देनेवाला मोहरूपी शत्रु मार गिराया था और मनकी शुद्धतापूर्वक तपश्चरण पालन किया था ॥ २१ ॥ मैंने मन, वचन, कायकी शुद्धि और भक्ति पूर्वक सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान आदि चारों आराधनाओंका आराधन किया था और अपने मनमें तीन लोकके नाथ सर्वज्ञ देव धारण किए थे ॥ २२ ॥ पहिले जन्ममें मैंने आर्त रौद्र आदि अशुभ ध्यानका नाश किया था और कर्मरूप ईंधनको जलानेकेलिये अग्निके समान ऐसे धर्मध्यान आदि ध्यान धारण किये थे ॥ २३ ॥ इसप्रकार, पहिले जन्ममें मैंने महा धर्म धारण किया था उसीने मुझे दुर्गतिसे उठाकर इस स्वर्गके साम्राज्यमें स्थापित किया है ॥ २४ ॥ जीवोंकी राग द्वेषरूपी अग्निकी ज्वाला कभी शांत नहीं होती यदि वह शांत होती है तो कभी सैकड़ो जन्मोंके बाद श्रेष्ठ चारित्ररूपी जलके सींचनेसे शांत होती है ॥ २५ ॥ परन्तु वह चारित्र इस स्वर्गलोकमें सुलभ नहीं है इसलिये मैं अब क्या करूं ? इस स्वर्गलोकमें देवोंको केवल सम्यग्दर्शनकी ही योग्यता है ॥ २६ ॥ इसलिये धर्मकी सिद्धिकेलिये कल्याणकारी तत्वोंका श्रद्धान हो, और श्रीजिनेंद्रदेवके चरण कमलोंमें मेरी निश्चल भक्ति हो ॥ २७ ॥ अब मुझे अकृत्रिम चैत्यालयोंमें तथा भगवानके पंच कल्याणकोंमें सबतरहके कल्याण और विभूतियोंको सिद्धि करनेवाली श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करनी चाहिये ॥२८॥ यही चिंतवनकर दिव्य आभरण और वस्त्रादिकोंसे विभूषित होकर वह देव सब देवोंके साथ श्रीजिनमंदिरमें गया ॥ २९ ॥ जिसका मन भक्तिसे भरा हुआ है ऐसे उस इन्द्रने सबसे पहिले श्रीजिनप्रतिमाकी महा पूजा बड़ी भक्तिके साथकी ॥ ३० ॥ उसने स्वच्छ पवित्र जलसे, दिव्य गंधके विलेपनसे, स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले मोती आदि उत्तम अक्षतोंसे, चंपा आदि उत्तम पुष्पोंसे, अमृतके बने हुए नैवेद्यसे, रत्नोंके दीपकसे, महाधूपसे, और कल्पवृक्षोंके फलसे तथा बाजे गाजेके शब्दोंसे, अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे, और मनोहर नृत्योंसे अपने परिवारके साथ भगवानकी पूजाकी ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर उस अच्युत इन्द्रने बड़ी भक्तिसे स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके द्रव्योंसे चैत्यवृक्षों पर भगवानकी पूजाकी ॥ ३४ ॥ इसके बाद उस इन्द्रने

बड़ी विभूतिके साथ अपने पुण्यकर्मसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गमें साम्राज्यको पट्टबंध पूर्वक स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ वह अच्युतेंद्र धर्मके प्रभावसे देवांगनाओंके साथ मनमें स्त्रीका संकल्प करनेमात्रसे उत्पन्न हुए उपमारहित सुखोंका अनुभव करता था ॥ ३६ ॥ उसके नेत्रोंकी टिमिकार नहीं लगती थी इसलिये वह इन्द्र देवियोंके समूहमें बैठकर बिना टिमिकार लगाए कभी नृत्य देखता था और कभी उनके गीत सुनता था ॥३७॥ कभी वह अपनी देवांगनाओंके साथ जलक्रीड़ा करता था कभी मनोहर क्रोड़ा पर्वतोंपर कभी मनोहर वनोंमें और कभी अपने भवनोंमें क्रीड़ा किया करता था ॥ ३८ ॥ बाईस हजार वर्ष बीत जानेपर वह अमृतमय उत्कृष्ट और तृप्त करनेवाला मानसिक आहार ग्रहण करता था ॥ ३९ ॥ इसीतरह बाईस पक्ष वा ग्यारह महीने बीतनेपर थोड़ासा उच्छ्वास लेता था वह सब प्रकारके रोगोंसे रहित था और सब देव उसकी पूजा करते थे ॥ ४० ॥ अपने अवधिज्ञानसे वह अधोलोककी पांचवी भूमितक (पांचवे नरकतक) स्थूल सूक्ष्म चर अचर सब मूर्तिमान पदार्थोंको जानता था ॥ ४१ ॥ उस इंद्रके पांचवीं भूमि तक ही समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली शरीरसे उत्पन्न होनेवाली मनोहर और सुंदर विक्रिया ऋद्धि थी ॥ ४२ ॥ उस इंद्रके अनेक रूप करनेवाले उत्तम और विशाल ऐसे अणिमा महिमा आदि आठ गुण थे ॥ ४३ ॥ वह धीर वीर इंद्र हार कुंडल केयूर शेखर आदि आभूषणोंसे विभूषित था, दिव्य वस्त्र धारण किये हुए था और अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित था ॥ ४४ ॥ इसप्रकार वह इन्द्र देवोंसे भरे हुए सभा भवनमें सिंहासनपर विराजमान होकर सम्यग्दर्शनका कारण ऐसा धर्मोपदेश दिया करता था ॥ ४५ ॥ वह इन्द्र सम्यग्दर्शनको बढ़ानेकेलिये बड़ी बिभूति और भक्तिसे देवोंके साथ पंच कल्याणकोंमें जाकर पूजा किया करता था ॥४६॥ वह इन्द्र अपने परिवारके साथ ज्ञान और निर्वाण कल्याणक होनेपर बड़ी विभूतिसे केवल ज्ञानियोंकी पूजा किया करता था ॥ ४७ ॥ वह इन्द्र मध्यलोकमें मेरु पर्वतपर, कुंडलपवतपर, रुचकपर्वतपर और नंदीश्वरद्वीप में जाजाकर जिनप्रतिमाओंकी महापूजा किया करता था ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सब देव जिसकी पूजा करते हैं ऐसा धर्ममें लीन हुआ वह इन्द्र बाईस सागर तक सुख सागरमें डूबा रहा था ॥ ४९ ॥ सब देव जिसकी

सेवा करते हैं जो देव देवियोंसे पूर्ण है जिसमें किसी तरहकी कोई बाधा नहीं है जो विक्रिया ऋद्धिसे उत्पन्न हुआ है और सब पापोंसे रहित है ऐसे स्वर्गके राज्यको पाकर वह इंद्र अपने चारित्रके फलके उदय होनेसे प्राप्त हुए उत्तम सुखका उपभोग करता था ॥ ५० ॥ देखो दो भाइयोंने अनेक प्रकारके राज्यका फल भोगा था उनमेंसे धर्मके प्राभावसे एक तो अच्युत स्वर्गका इंद्र हुआ और दूसरा पापके फलसे दुख देनेवाला नरकमें गया यही समझकर ;बुद्धिमानोंको अपने आत्माका हित करना चाहिये ॥ ५१ ॥ यह धर्म परम्परा रूपसे भी सुख देनेवाला है इसलिये बुद्धिमान लोग धर्मका ही सेवन करते हैं। इस धर्मके ही प्रभावसे देव पद प्राप्त होता है इसलिये मैं इस धर्मको सदा नमस्कार करता हूं। इस धर्मसे ही मोक्षका अक्षय सुख प्राप्त होता है इस धर्मका बीज वा कारण मनकी शुद्धि है इसलिये मैं अपने हृदयको धर्ममें ही लगाता हूं। हे धर्म! शीघ्र ही मेरी रक्षा कर ॥ ५२ ॥ जिनके हृदयमें स्त्रीकी अभिलाषा है उनकी यह श्रेष्ठ स्त्री का समागम मिला देता है। जो राज्य चाहते हैं उन्हें राज्य देता है, जो सुख चाहते हैं उन्हें सुख देता है, जो स्वर्ग चाहते हैं उन्हें स्वर्गमें पहुंचाता है और जो मोक्ष चाहते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त कराता है संसार में ऐसा कौनसा पदार्थ है जो धर्मसे प्राप्त न हो सके इस धर्मसे तीनों लोकोंमें उत्पन्न होने वाले समस्त सुख प्राप्त होते हैं ॥ ५३ ॥ श्रीशांतिनाथ जिनेंद्रदेव ही शांतरूप सुखको देनेवाले हैं इसीलिये विद्वान लोग शांतिनाथका ही आश्रय लेते हैं और श्रीशांतिनाथने मोक्षपद प्राप्त किया है इस लिये उन शांतिनाथको मैं नमस्कार करता हूं। शांतिनाथके सिवाय अन्य कोई भी मनुष्योंको शरण नहीं है मोक्ष भी शांतिनाथकी ही प्यारी है इसलिये मैं अपना हृदय श्रीशांतिनाथके ही चरण कमलोंमें धारण करता हूं। हे शांति देनेवाले शांतिनाथ! आप मुझे सदा शांति दीजिये ॥ ५४ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें अनंतवीर्यके दुख और अच्युतेंद्रके सुख वर्णन करनेवाला यह सातवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां अधिकार ।

मैं अपने पाप शांत करनेके लिए शांतामृतरूपी रसके सागर और तीनों लोकोंमें शांति देनेवाले ऐसे श्रीशांतिनाथ स्वामीको मन वचन कायसे मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अथानन्तर—राजा स्तिमितसागरका जीव जो धरणेंद्र हुआ था वह अपने अवधिज्ञानसे अनंतवीर्यको (अपने पुत्रको) नरकमें पड़ा हुआ जानकर समझानेके लिए गया ॥ २ ॥ वह स्तिमितसागरका जीव धरणेंद्र अपने पुत्र अनंतवीर्यको दुखसागरमें निमग्न देखकर उसका उद्धार करनेके लिए कृपापूर्वक नीचे लिखे अनुसार उसके सामने कहने लगा ॥ ३ ॥ हे नारकी ! तूने पहिले भवमें कोई पुण्य नहीं किया था। न तो मुनियोंको उत्तम दान दिया था और न श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजन की थी ॥ ४ ॥ न गृहस्थोंके व्रत धारण किए थे। न सम्यग्दर्शन धारण किया था और न श्रीजिनेंद्रदेवकेचरण कमलोंकी सेवा की थी ॥५॥ विषयरूपी मांसके लोलुपी होकर तुझ मूर्खने बहुत सा आरम्भ धारणकर निरंतर पाप उपार्जन किया था ॥ ६ ॥ उस पापके फलसे ही तुझे यह असह्य अशुभ और प्रतिक्षणमें उत्पन्न होनेवाला अनेक प्रकारका घोर दुख हुआ है ॥ ७ ॥ इस दुखसे छुडानेके लिए इंद्र वा नरेंद्र कोई समर्थ नहीं है यदि समर्थ है तो अपने पाप कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिए अग्निके समान धर्म ही समर्थ है ॥ ८ ॥ यह धर्म ही जीवके साथ जाता है पदपदपर इसका हित करता है स्वर्गका राज्य देता है और जो वचनसे भी नहीं कहा जा सके ऐसा सुख देता है ॥ ९ ॥ जो जीवोंको अधोलोकसे निकाल कर शश्वत मोक्षसुखमें स्थापन कर दे वही धर्म है। यह धर्म स्वयं स्वर्ग मोक्ष देनेवाला है ॥ १० ॥ यह धर्म दिनके इकट्ठे किए हुये पापोंको भी नष्ट कर देता है और तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके कल्याणोंको देता है ॥ ११ ॥ जिस मोक्ष लक्ष्मीको सेवा श्रीजिनेंद्रदेव भी करते हैं और मुनिराज अपने कठिन तपश्चरण और यमके द्वारा सदा जिसकी प्रार्थना करते रहते हैं ऐसी वह मोक्षरूपी लक्ष्मी धर्मात्मा लोगोंको ही प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य

दुखरूपी महासागरमें डूबे हुये हैं उनको पार होनेके लिए मुनिराजने स्वर्ग मोक्ष देने वाली धर्मरूपी नाव ही बतलाई है ॥ १३ ॥ जो मूर्ख धर्मरूपी जहाजपर सवार नहीं होते वे दुखरूपी मछलियोंसे भरे हुए इस संसाररूपी समुद्रमें सदा उछलते डूबते रहते हैं ॥ १४ ॥ यह धर्म ही भाई है, धर्म ही श्रेष्ठ मित्र है, धर्म ही हित करनेवाला स्वामी है, धर्म ही माता पिता है और धर्मही साथ जानेवाला है और कोई ऐसा हित करनेवाला नहीं है ॥ १५ ॥ भाई बंधु इस लोकमें हित करें अथवा न भी करें परन्तु यह धर्म इस लोक वा परलोकमें सब जगह जीवोंका हित करता है ॥ १६ ॥ इसलिए यही समझकर तू जीवोंकी दयासे उत्पन्न होनेवाला सद्धर्म धारणकर और समस्त पापोंको छोड़ दे क्योंकि यह धर्मही दुखरूपी बनको जलानेके लिए अग्निके समान है ॥ १७ ॥ इस धरणेंद्रकी यह बात सुनकर जिसका सब शरीर कंप रहा है और जो पापों से डर रहा है ऐसा वह दीन नारकी उसे नमस्कारकर कहने लगा कि हे तात ! जो नरकोंके दुखोंसे बचानेवाला है, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है, उत्तम है और श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ है ऐसा धर्म कौनसा है आप कृपाकर कहिये ॥ १८-१९ ॥ इसके उत्तरमें वह धरणेंद्र उस नारकी से कहने लगा कि हे पुत्र ! मैं धर्मका स्वरूप कहता हूं तू मन लगाकर सुन ॥ २० ॥ मनुष्योंको सम्यग्दर्शन धारण करनेसे परम पवित्र धर्मकी प्राप्ति होती है । तथा श्रीजिनेंद्रदेवके चरण कमलोंमें भक्ति करनेसे तत्त्वोंका श्रद्धान करनेसे और शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ मुनियोंके व्रत पालन करनेसे पूर्ण धर्मकी प्राप्ति होती है जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है और गृहस्थोंके ब्रत पालन करनेसे एक देश धर्मकी प्राप्ति होती है । यह धर्म स्वर्गका कारण है ॥ २२ ॥ इसके सिवाय सत्पात्रों को दान देनेसे धर्म होता है, श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करने से धर्म होता है कठिन तपश्चरण पालन करने से धर्म होता है और बारह भावनाओं का चिंतवन करनेसे मनुष्यों को धर्मकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ इनमें से दुखरूपी पिशाचसे घिरे हए नारकियों के मुनि वा श्रावकों के व्रतों का तो एक अंश भी नहीं होता है इस नरकमें उत्पन्न होनेवाले जीवों के केवल सम्यग्दर्शनकी ही योग्यता है और यह सम्यग्दर्शन ही धर्मकी जड़ है तथा नरकोंके दुखोंको दूर कर-

नेवाला है ॥ २५ ॥ इसलिये तू मिथ्यात्व आदि सम्यग्दर्शनकी घात करनेवाली सात अशुभ और निंद्य प्रकृतियोंका नाशकर तथा सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर ॥२६॥ श्रीजिनेंद्रदेवके सिवाय अन्य कोई देव नहीं है दयाके बिना अन्य कोई धर्म नहीं है, आत्म तत्त्वके सिवाय अन्य कोई तत्व नहीं है और निर्ग्रंथके सिवाय अन्य कोई गुरु नहीं है ॥ २७ ॥ संसारभरके समस्त तत्वोंको प्रकट करनेवाला जिनागमके सिवाय अन्य कोई आगम नहीं है धर्मात्माओंसे प्रेम करनेके सिवाय अन्य कोई स्नेह नहीं है और मोक्षके समान अन्य कोई सुख नहीं है ॥ २८ ॥ रत्नत्रयके समान अन्य कोई रत्न नहीं और तीनों लोकोंमें सुपात्र दानके समान अन्य कोई दान नहीं है ॥ २९ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवको पूजाके समान अन्य कोई कल्याण करनेवाली पूजा नहीं है। इन सबका निश्चय करना (श्रद्धान करना) सम्यग्दर्शनका मूल कारण है ॥३०॥ मुनिराजोंने तत्वोंका श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन बतलाया है। इसलिये तू मनको निर्मल कर तत्वोंका श्रद्धान कर ॥ ३१ ॥ जीव, अजीव आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व जिनागममें कहे गए हैं ॥ ३२ ॥ अब मैं सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेके लिए अथवा कल्याण करनेके लिए अजर अमर पद देनेवाले और कर्मोंको नाश करनेवाले सम्यग्दर्शनके गुणोंको कहता हूं तू सुन ॥ ३३ ॥ देव गुरु तत्व धर्म और शुभ शंकाका त्यागकर तू सुख देनेवाले निःशंकित अंगको धारण कर ॥ ३४ ॥ तू इस लोक परलोक सम्बन्धी भोगोंकी आकांक्षाओंका तथा स्वर्ग मनुष्योंके राज्यकी आकांक्षाओंका त्यागकर और स्वर्ग मोक्ष देनेवाले निःकांक्षित अङ्गका पालन कर ॥ ३५ ॥ सब संस्कारोंका त्याग करनेके कारण जिनके सब शरीरपर मल लगा हुआ है ऐसे मुनिके शरीरको देखकर ग्लानि मत कर, सदा निर्विचिकित्सा अङ्गका पालन कर ॥ ३६ ॥ देव, गुरु, धर्म, तत्व, दान और जिनपूजनमें मूर्खतारूप भावोंका त्यागकर अमूढ़दृष्टि अङ्गका सेवन कर ॥३७॥ श्रीजिनेन्द्रदेवके पवित्र शासनमें बालक वा अशक्त लोगोंके आश्रयसे किसी प्रकारका दोष लग जानेपर उसको छिपाकर उपगूहन पालन कर ॥ ३८ ॥ व्रत चारित्र वा सम्यग्दर्शनसे चलायमान होनेपर डिगनेपर उसको अपने धर्ममें (सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्रमें) स्थिरकर स्थितिकरण अङ्गका पालन कर ॥ ३९ ॥ अपने साधर्मियोंमें, गुरुमें, धर्मात्मा मनु-

ष्यों में शास्त्रों के जानकारों में वत्समें हालकी प्रसूता गायके समान प्रेमकर वात्सल्य अङ्गका पालन कर ॥४०॥ मिथ्या मतों को दूरकर तपश्चरण दान पूजा और हृदयकी शुद्धिसे तू जिनधर्मकी प्रभावना कर ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार राज्यके सब अङ्गों से सुशोभित राजा संसारमें अपने शत्रुका नाश करता है उसी प्रकार इन ऊपर कहे हुए आठों अङ्गों से सुदृढ किया हुआ सम्यग्दर्शन कर्मरूप शत्रुओं को नष्ट कर देता है ॥ ४२॥ इसलिए तू स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए चंद्रमाके समान निर्मल, उपमा रहित और सुखके स्थान ऐसे सम्यग्दर्शनको आठों अङ्गों के साथ साथ निश्चल कर ॥ ४३ ॥ तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन और आठ शंकादिक (आठों अङ्गों का पालन न करना) ये पच्चीस सम्यग्दर्शन दोष कहलाते हैं ॥ ४४ ॥ तू देव मूढता, लोक-मूढता और शास्त्रमूढता अथवा गुरुमूढताका त्यागकर क्यों कि ये तीनों ही मूढतायें नरककी कारण हैं ॥४५॥ जाति, कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप, बल और बड़प्पन ए आठ सम्यग्दर्शनका घात करनेवाले हैं इसलिए इनका भी तू त्याग कर ॥ ४६ ॥ मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र और इनके आराधन करनेवाले दुर्जन ए छह अना-यतन कहलाते हैं ए संसारके कारण हैं इनका तू त्याग कर ॥४७॥ पहिले जो निःशंकित आदि सम्यग्दर्शनके अङ्ग वर्णन किए हैं उनके विपरीत शंकादिक सम्यग्दर्शनके दोष कहलाते हैं उनका भी तू त्याग कर ॥४८॥ तीनों लोकों में सम्यग्दर्शनके समान और कोई हित करनेवाला नहीं है यह सम्यग्दर्शन तीनों लोकों में मनुष्यों को सब तरहके कल्याण करनेका एक स्थान है ॥४९॥ यह सम्यग्दर्शन मोक्षमहलकी पहिली सीढी है और तीर्थंकर आदिकी विभूतिका मूल कारण है ॥५०॥ मैं तो यही मानता हूं कि इंद्र चक्रवर्ती आदिके पदों को देनेवाला और सुखोंका स्थान ऐसा सम्यग्दर्शन जिसने निर्दोष स्वीकार किया है वही संसारमें पुण्यात्मा है ॥५१॥ इसप्रकार उस धरणेंद्रके बचन और सम्यग्दर्शन महात्म्य सुनकर बुद्धिमान नारकी कहने लगा कि हे तात ! मैंने मन बचन काय की शुद्धतापूर्वक शुभ सम्यग्दर्शन स्वीकार किया ॥ ५२ ॥ मैं अब अरहंत देवका ही आराधन करूंगा, निर्ग्रंथ गुरुका सेवन करूंगा, अहिंसारूप धर्मको मानूंगा और सातों तत्वोंका श्रद्धान करूंगा ॥ ५३ ॥ अब मैं निश्चयरूपसे सम्यग्दर्शनरूप जहाजको ही शरण मानूंगा यही मुझे इस नरकरूप महासागरसे शीघ्र ही पार

नेवाला है ॥ २५ ॥ इसलिये तू मिथ्यात्व आदि सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली सात अशुभ और निंद्य प्रकृतियोंका नाशकर तथा सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर ॥२६॥ श्रीजिनेंद्रदेवके सिवाय अन्य कोई देव नहीं है दयाके बिना अन्य कोई धर्म नहीं है, आत्म तत्त्वके सिवाय अन्य कोई तत्व नहीं है और निर्ग्रंथके सिवाय अन्य कोई गुरु नहीं है ॥ २७ ॥ संसारभरके समस्त तत्वोंको प्रकट करनेवाला जिनागमके सिवाय अन्य कोई आगम नहीं है धर्मात्माओंसे प्रेम करनेके सिवाय अन्य कोई स्नेह नहीं है और मोक्षके समान अन्य कोई सुख नहीं है ॥ २८ ॥ रत्नत्रयके समान अन्य कोई रत्न नहीं और तीनों लोकोंमें सुपात्र दानके समान अन्य कोई दान नहीं है ॥ २९ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवको पूजाके समान अन्य कोई कल्याण करनेवाली पूजा नहीं है। इन सबका निश्चय करना (श्रद्धान करना) सम्यग्दर्शनका मूल कारण है ॥३०॥ मुनिराजोंने तत्वोंका श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन बतलाया है। इसलिये तू मनको निर्मल कर तत्वोंका श्रद्धान कर ॥ ३१ ॥ जीव, अजीव आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व जिनागममें कहे गए हैं ॥ ३२ ॥ अब मैं सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेके लिए अथवा कल्याण करनेके लिए अजर अमर पद देनेवाले और कर्मोंको नाश करनेवाले सम्यग्दर्शनके गुणोंको कहता हूं तू सुन ॥ ३३ ॥ देव गुरु तत्व धर्म और शुभ शंकाका त्यागकर तू सुख देनेवाले निःशंकित अंगको धारण कर ॥ ३४ ॥ तू इस लोक परलोक सम्बन्धी भोगोंकी आकांक्षाओंका तथा स्वर्ग मनुष्योंके राज्यकी आकांक्षाओंका त्यागकर और स्वर्ग मोक्ष देनेवाले निःकांक्षित अङ्गका पालन कर ॥ ३५ ॥ सब संस्कारोंका त्याग करनेके कारण जिनके सब शरीरपर मल लगा हुआ है ऐसे मुनिके शरीरको देखकर ग्लानि मत कर, सदा निर्विचिकित्सा अङ्गका पालन कर ॥ ३६ ॥ देव, गुरु, धर्म, तत्व, दान और जिनपूजनमें मूर्खतारूप भावोंका त्यागकर अमूढ़दृष्टि अङ्गका सेवन कर ॥३७॥ श्रीजिनेन्द्रदेवके पवित्र शासनमें बालक वा अशक्त लोगोंके आश्रयसे किसी प्रकारका दोष लग जानेपर उसको छिपाकर उपगूहन पालन कर ॥ ३८ ॥ व्रत चारित्र वा सम्यग्दर्शनसे चलायमान होनेपर डिगनेपर उसको अपने धर्ममें (सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्रमें) स्थिरकर स्थितिकरण अङ्गका पालन कर ॥ ३९ ॥ अपने साधर्मियोंमें, गुरुमें, धर्मात्मा मनु-

ष्यों में शास्त्रों के जानकारों में वत्समें हालकी प्रसूता गायके समान प्रेमकर वात्सल्य अङ्गका पालन कर ॥४०॥ मिथ्या मतों को दूरकर तपश्चरण दान पूजा और हृदयकी शुद्धिसे तू जिनधर्मकी प्रभावना कर ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार राज्यके सब अङ्गों से सुशोभित राजा संसारमें अपने शत्रुका नाश करता है उसी प्रकार इन ऊपर कहे हुए आठों अङ्गों से सुदृढ किया हुआ सम्यग्दर्शन कर्मरूप शत्रुओं को नष्ट कर देता है ॥ ४२॥ इसलिए तू स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए चंद्रमाके समान निर्मल, उपमा रहित और सुखके स्थान ऐसे सम्यग्दर्शनको आठों अङ्गों के साथ साथ निश्चल कर ॥ ४३ ॥ तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन और आठ शंकादिक (आठों अङ्गों का पालन न करना) ये पच्चीस सम्यग्दर्शन दोष कहलाते हैं ॥ ४४ ॥ तू देव मूढता, लोकमूढता और शास्त्रमूढता अथवा गुरुमूढताका त्यागकर क्यों कि ये तीनों ही मूढतायें नरककी कारण हैं ॥४५॥ जाति, कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप, बल और बड़प्पन ए आठ सम्यग्दर्शनका घात करनेवाले हैं इसलिए इनका भी तू त्याग कर ॥ ४६ ॥ मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र और इनके आराधन करनेवाले दुर्जन ए छह अनायतन कहलाते हैं ए संसारके कारण हैं इनका तू त्याग कर ॥४७॥ पहिले जो निःशंकित आदि सम्यग्दर्शनके अङ्ग वर्णन किए हैं उनके विपरीत शंकादिक सम्यग्दर्शनके दोष कहलाते हैं उनका भी तू त्याग कर ॥४८॥ तीनों लोकों में सम्यग्दर्शनके समान और कोई हित करनेवाला नहीं है यह सम्यग्दर्शन तीनों लोकों में मनुष्यों को सब तरहके कल्याण करनेका एक स्थान है ॥४९॥ यह सम्यग्दर्शन मोक्षमहलकी पहिली सीढी है और तीर्थंकर आदिकी विभूतिका मूल कारण है ॥५०॥ मैं तो यही मानता हूं कि इंद्र चक्रवर्ती आदिके पदों को देनेवाला और सुखोंका स्थान ऐसा सम्यग्दर्शन जिसने निर्दोष स्वीकार किया है वही संसारमें पुण्यात्मा है ॥५१॥ इसप्रकार उस धरणेंद्रके बचन और सम्यग्दर्शन महात्म्य सुनकर बुद्धिमान नारकी कहने लगा कि हे तात ! मैंने मन बचन कायकी शुद्धतापूर्वक शुभ सम्यग्दर्शन स्वीकार किया ॥ ५२ ॥ मैं अब अरहंत देवका ही आराधन करूंगा, निर्ग्रंथ गुरुका सेवन करूंगा, अहिंसारूप धर्मको मानूंगा और सातों तत्वोंका श्रद्धान करूंगा ॥ ५३ ॥ अब मैं निश्चयरूपसे सम्यग्दर्शनरूप जहाजको ही शरण मानूंगा यही मुझे इस नरकरूप महासागरसे शीघ्र ही पार

कर देगा ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार किसी दरिद्रको निधि मिल जानेसे अनन्द होता है उसीप्रकार उस बुद्धिमान नारकीको सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिसे अनंद हुआ तदनन्तर वह धरणेंद्रके चरणोंको नमस्कारकर इसप्रकार कहने लगा ॥ ५५ ॥ कि हे स्वामिन् ! आपके प्रसादसे मैंने सम्यग्दर्शन धारण किया आप पहिले जन्ममें भी हित करने वाले मेरे पिता हैं और इस जन्ममें भी हित करनेवाले पिता हैं ॥ ५६ ॥ इसप्रकार वात चीत कर उस नारकीने अपने पिताको संतुष्ट किया, बार बार उसकी प्रशंसा की और फिर वह चुप हो गया ॥५७॥ अपने कार्यकी सिद्धि होनेसे जिसे आनन्द प्राप्त हो रहा है ऐसा वह धरणेंद्र भी उसे सम्यग्दर्शन स्वीकार कराकर अपने घर चला गया ॥ ५८ ॥ अथानन्तर—इसी जंबूद्वीपके धर्मके स्थानभूत भरत क्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें गगनबल्लभ नामका नगर है ॥ ५६ ॥ उस नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे मेघवाहन नामका विद्याधर राज्य करता था उसकी धर्मात्मा रानीका नाम मेघमालिनी था ॥ ६० ॥ उनदोनोंके मेघनाद नामका पुत्र हुआ था। यह मेघनाथ अनंतवीर्यका जीव था जोकि सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अपनी नरककी आयु पूरीकर यहां आकर उत्पन्न हुआ था ॥ ६१ ॥ वह रूपवान मेघनाद दूध अन्नपान आदि यथायोग्य द्रव्यों के द्वार बालचंद्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त हुआ था ॥ ६२ ॥ कुमार अवस्थाको पाकर उसने जैन शास्त्रोंका अभ्यास किया था और धर्मराज्य चलानेके लिए शास्त्रोंका भी अभ्यास किया था ॥ ६३ ॥ यौवन अवस्था पाकर उसने पिताका स्थान (राज्य) ग्रहण किया था और अपने पुण्य तथा पौरुषसे दोनों श्रेणियोंका आधिपत्य सिद्ध किया था ॥ ६४ ॥ किसी एक दिन वह मेघनाद मंदराचल पर्वतके नंदनवनमें जाकर मंत्र पूजाके द्वारा प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको सिद्धकर रहा था ॥ ६५ ॥ किसी कारणसे वहींपर अच्युतेंद्र (अच्युत-स्वर्गका इंद्र) अपराजितका जीव आया और उसे देखकर प्रेमके संबंधसे कहने लगा कि हे मित्र ! तू मुझे जानता या नहीं मैं अच्युत स्वर्गका इन्द्र हूं ॥ ६६ ॥ पहिले भवमें मैं अपराजित नामका बलभद्र था और तू अनंतवीर्य नामका अर्द्धचक्रवर्ती मेरा छोटा भाई था ॥ ६७ ॥ उस जन्ममें तूने धर्म तो नहीं किया था किंतु बहुतसे आरम्भोंके द्वारा पाप किया था उस पापके फलसे तू अनेक दुखोंसे भरे हुए और असह्य

ऐसे पहिले नरकमें गया था ॥ ६८ ॥ प्रेमके कारण पिताके जीव धरणेंद्रने आकर तुझे उत्तम धर्मोपदेश दिया था और तुझे सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया था ॥ ६९ ॥ उस सम्यग्दर्शनके फलसे तू विजयार्द्ध पर्वतपर पूज्य और श्रेष्ठ कुलमें मेघनाद नामका विद्याधर हुआ है आज अनेक विद्याधर तेरे चरणोंकी बन्दना करते हैं ॥ ७० ॥ मैं तपश्चरणसे अशुभकर्मोंका नाशकर सुखकी खानि और अतिशय विभूतिका एक मात्र स्थान ऐसे अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ हूं ॥ ७१ ॥ क्या तू खोटे मार्गमें ले जानेवाले इन भोगोंका अनुभव अब भी करता है क्या तू बालकके समान नरकोंके दुख भूल गया ? ॥ ७२ ॥ ये भोग घोर नरक देनेवाले हैं दुष्ट हैं, धर्मरूपी मणियोंके घरके चोर हैं, किंपाल फलके समान अंतमें दुख देनेवाले हैं खल हैं, इनसे कभी तृप्ति नहीं होती, ये बिजलीके समान अत्यन्त चंचल हैं, बड़ी कठिनतासे प्राप्त होते हैं मुनि लोग सदा इनकी निंदा करते हैं, ये दुःखसे उत्पन्न होते हैं और अनेक बुरे दुखोंको देनेवाले हैं ॥ ७३-७४ ॥ ये भोग पराधीन हैं शरीर आदिको दुख देनेसे प्रगट होते हैं चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाले हैं रागके कारण हैं और मूर्खलोग ही इनको ग्रहण करते हैं ॥ ७५ ॥ ये भोग सब प्रकारके दोषोंकी खानि हैं, समस्त शरीरको जलानेवाले हैं, तिर्यंच वा म्लेछ ही इनका सेवन करते हैं ये स्वर्गरूपी भवनमें जानेसे रोकनेके लिये जुड़े हुए किवाड़ हैं ॥ ७६ ॥ मोक्षमार्गमें जानेवालोंके लिए ये लुटेरे वा डाकू हैं ये विषय सर्पके समान हैं, तथा रोग क्लेश आदि दुखोंके सागर हैं इसलिये तू शत्रुके समान इनका त्यागकर ॥ ७७ ॥ तीनोंलोकोंमें उत्पन्न हुए भोगोंके सेवन करनेपर भी तृष्णारूपी अग्नि बराबर बढ़ती रहती है और बिना चारित्र रूपी जलके वह कभी शांत नहीं होती कभी नहीं बुझती ॥ ७८ ॥ यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसको पाकर भी जो मूर्ख बिना धर्मके केवल भोगोंका अनुभव करता है वह बहुमूल्य मणिको छोड़कर लोहेको ग्रहण करता है ॥ ७९ ॥ तूने बहुत दिनतक विद्याधरोंके भोग भोगे अब तू इन्हें छोड़ और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये बहुमूल्य तपश्चरण धारणकर ॥ ८० ॥ यदि तू इन विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखको न छोड़ेगा तो फिर पहिलेके समान जो बचनसे भी न कहे जा सकें ऐसे नरकोंके दुख भोगेगा ॥ ८१ ॥ हे विद्याधर

क्या तू नरकके महा दुख भूल गया जो तू चारित्रको छोड़कर आज इन्द्रियोंके सुखोंकी सेवा कररहा है ॥ ८२ ॥ यह राज्यका भार अनेक प्रकारके बैर उत्पन्न करनेवाला है अनेक प्रकारके अशुभ करनेवाला है नरकका कारण है धर्मका नाश करनेवाला है और विद्वान लोग सदा इसकी निंदा करते रहते हैं इसलिए तू इसका त्यागकर ॥ ८३ ॥ यह कुटुम्ब भी महामोह उत्पन्न करनेवाला है, क्रूर है, धर्मको नाश करनेवाला है और पापोंकी प्रेरणा करनेवाला है इसलिये चारित्र धारण करनेके लिए तू इसका शीघ्र त्यागकर ॥ ८४ ॥ तथा सब प्रकारके दुखोंके सागरके समान मोहरूपी महाशत्रुका नाशकर परमेश्वरी दीक्षा धारणकर। यह पारमेश्वरी दीक्षा ही सबप्रकारकी चिंता आदि संकल्प विकल्पोंसे रहित है, समस्त कर्मोंको नाश करनेवाली है सब जीवोंका हित करनेवाली है देवलोग भी इसकी पूजा करते हैं मोक्षकी यह मा है, अनन्तसुख प्रगटकरनेकेलिये यह श्रेष्ठ खानि है, तीर्थंकरको विभूति देनेवाली है, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि सभी इसकी सेवा करते हैं तीनोंलोक इसको नमस्कार करता है अनेक गुणोंसे यह भरपूर है कामरूपी वनको जलाने-के लिए यह अग्निके समान है चतुर और धीर वीर ही इसे धारण कर सकते हैं यह स्वर्गरूपी घरकी सीढ़ी है और सबतरहकी उपमाओंसे रहित है ॥ ८५-८८ ॥ इसप्रकार इन्द्रके उपदेशसे वह विद्याधर काललब्धिके प्राप्त हो जानेसे उसीसमय वैराग्य और रत्नत्रयको प्राप्त हुआ ॥८९॥ वह विद्याधर उसीसमय परिग्रहरहित, धीर वीर और सब जीवोंका हित करनेवाले सुरामरगुरु नामके मुनिराजके पास पहूंचा॥९०॥ उस पुण्यवानने मुनि-राजको नमस्कारकर उनकी आज्ञानुसार वस्त्रादिक बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्वादिक अभ्यंतर परिग्रहका त्याग कर दीक्षा धारणकी ॥९१॥ उसने अनेक जीवोंका हित करनेवाले आगमका अभ्यास और फिर मोक्षरूपी घरके आंगनके समान अनेक प्रकारका तपश्चरण करने लगा॥९२॥ किसी एक दिन वे मुनिराज शरीरसे ममत्व छोड़कर कर्मोंको नाश करनेके लिये तथा मोक्षप्राप्त करनेकेलिये नंदन नामके पर्वतपर प्रतिमा योग धारणकर विराजमान हुए ॥९३॥ पहिले भवके अश्वग्रीवका छोटा भाई सुकंठ संसारमें परिभ्रमणकर अज्ञान तपसे कहींपर दुष्ट असुर हुआ था ॥ ९४॥ उससमय वह कहीं जा रहा था मार्गमें उसने सब तरहके परिग्रहोंसे रहित और

पर्वतके समान अचल ध्यानरूढ ऐसे वे मुनिराज देखे ॥ ९५ ॥ उनके दर्शन करने मात्रसे ही उस पापीको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह दुष्ट उन मुनिको भय उत्पन्न करनेवाला और दुखोंसे भरपूर ऐसा उपसर्ग करने लगा ॥ ९६ ॥ वह दुष्ट चित्तको चलानेवाले (डिगानेवाले) बध बंधन ताडन दुर्वचन और हाव भावोंके अनेक विकारोंसे उपसर्ग करने लगा ॥ ९७ ॥ परन्तु वे मुनिराज घोर उपद्रवोंको जीतकर तथा अपने मनको आत्मध्यानमें लगाकर निर्भय होकर मेरुपर्वतके समान निश्चल विराजमान थे ॥ ९८ ॥ दैवसे कदाचित् पर्वतोंकी मालायें चलायमान हो जांय परन्तु धीरवीर मुनियोंका ध्यानमें लगा हुआ मन किसी समयमें भी चलायमान नहीं हो सकता ॥ ९९ ॥ उस दुष्टने उन मुनिराजको उस महाध्यानसे चलायमान करनेकी प्रतिज्ञाकी थी परंतु वह उन्हें चलायमान कर न सका इसलिये वह लज्जित और लाचार होकर अदृश्य होगया ॥ १०० ॥ संसारमें वे मुनिराज धन्य हैं जो दुर्जनोंके द्वारा घोर उपसर्ग होनेपर भी अपने ध्यानसे कभी चलायमान नहीं होते हैं ॥ १ ॥ ऐसे मुनिराजके चरण कमलोंको इन्द्र चक्रवर्ती आदि सभी नमस्कार करते हैं इसलिए मैं भी उनका पद प्राप्त करनेकेलिए मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ उन मुनिराजने जीवन पर्यंत तपश्चरण किया और अन्तमें अपनी आयु छोड़ी जानकर अपनी शक्ति प्रगटकर सन्यास धारण किया ॥ ३ ॥ उन मुनिराजने श्रीजिनेंद्रदेवके चरण कमलोंमें अपना मन लगाया, शुभ आराधनाओंका आराधन किया और अपने शरीर आदिसे परिणामोंका त्याग किया ॥ ४ ॥ वे मेघनाद मुनि सन्यासकी श्रेष्ठविधिके अनुसार प्राणोंका त्यागकर उत्तम चारित्रके फलसे सुखके स्थानभूत अच्युत स्वर्गमें प्रतींद्र हुए ॥ ५ ॥ उस प्रतींद्रने अपने अवधिज्ञानसे वहांके इन्द्रका किया हुआ उपकार जाना इसलिए उसको नमस्कारकर उसकी पूजाकी ॥ ६ ॥ वह प्रतींद्र पहिले भवके स्नेहसे उस इन्द्रके साथ समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले भोगोंका सदा अनुभव किया करता था ॥ ७ ॥ वह प्रतींद्र उस इन्द्रके साथ जिनालयोंमें जाकर सदा पूजा किया करता था और भगवानके कल्याणकोंमें परमोत्सव मनाया करता था ॥ ८ ॥ सबतरहके अतिशयोंसे सुशोभित और परस्पर प्रेम करनेवाले वे दोनों ही इन्द्र प्रतीन्द्र

पहिले जन्मके किए हुए धर्मके प्रभावसे सुख सागरमें निमग्न हो रहे थे ॥ ९ ॥ अथानन्तर इसी जम्बूद्वीपके गुणोंके सागर ऐसे पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक मंगलावती नामका मनोहर देश है ॥ १० ॥ वह मंगलावती महादेश अनादि निधन है, सीता नदी तथा कुल पर्वतके बीचमें है और वक्षारगिरि तथा बनकी वेदीसे घिरा हुआ है ॥ ११ ॥ उसके मध्यमें विजयार्द्ध पर्वत पड़ा हुआ है उसकी दोनों गुफाओंमेंसे गंगा सिन्धु दो नदियां बहती हैं। उन सबसे अर्थात् गंगा सिन्धु और विजयार्द्ध पर्वतसे उस विशाल देशके छह खण्ड हो गए हैं ॥ १२ ॥ सीता नदी विजयार्द्ध पर्वत और गंगा सिंधु नदियोंके मध्यभागमें आर्यखण्ड शोभायमान है उस आर्यखंडमें सदा आर्य लोग ही निवास करते हैं ॥ १३ ॥ वह मंगलावती देश श्रीजिनेन्द्रदेव तथा मुनियोंकी बंदनाके उत्सवोंसे यात्रा पूजा प्रतिष्ठा आदिके सैकड़ों उत्सवोंसे धर्मध्यानके कारण ऐसे विवाह आदि अन्य अनेक उत्सवोंसे तथा और भी मांगलिक कार्योंसे सदा शोभायमान रहता है। इसलिए उसका मंगलावती यह सार्थक नाम है वह देश पुण्यवान लोगोंसे भरा हुआ है और सदा मांगलिक कार्योंसे सुशोभित है ॥ १४-१६ ॥ वहांके सब जीवोंको सुख देनेवाले सफल (फल सहित) और मनोहर बन, ध्यानमें विराजमान हुए मुनिराजोंसे कायोत्सर्ग धारण किए हुए मुनिराजोंसे और मुनिराजके मुखसे निकले हुए सिद्धान्तशास्त्रके शब्दसमूहसे मुनियोंके श्रेष्ठ चरित्रके समान शोभायमान है ॥ १७-१८ ॥ उस देशके गांव बड़े मनोहर हैं, पास पास हैं, जिनमें अनेक चैत्यालय हैं और धर्मात्मा तथा सज्जन लोग उनमें निवास करते हैं ॥१९॥ उस देशमें न अधिक वर्षा होती है न कम। चोर, चूहे तोते, टोड़ी आदिका भय भी नहीं है न उसमें कुदेवोंके मंदिर हैं, न पाखण्डी और कुधर्म है ॥२०॥ वह देश तीनों वर्णोंसे भरपूर है सैकड़ों मुनि उसमें विहार करते हैं तथा गांव खेट मटंव आदि सभी उस देशमें मौजूद हैं ॥२१॥ उस देशके उत्पन्न हुए कितने ही लोग तपश्चरणके प्रभावसे कर्मोंको नाशकर मोक्ष जाते हैं और कितने ही रत्नत्रयके प्रभावसे स्वर्ग जाते हैं ॥ २२ ॥ चारित्ररूप धर्मको धारण करनेसे कितनेसे कितने ही सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होते हैं और कितने ही पात्रदान देनेसे भोगभूमिमें जाते हैं ॥ २३ ॥ वहांपर असंख्यात तीर्थ-

कर होते हैं जिनकी देव पूजा करते हैं तथा गणधर केवलज्ञानी और मुनिराज प्रातिदिन विहार करते रहते हैं ॥ २४ ॥ वहांपर सद्धर्म (जिनधर्म) सदा विराजमान रहता है अंग पूर्वरूप श्रुतज्ञान सदा रहता है जिनालय जिनप्रतिमा और मोक्षमार्ग सदा बना रहता है ॥ २५ ॥ इत्यादि अनेक गुणोंसे भरे हुए उस देशमें रत्नोंसे भरा हुआ रत्नसंचयपुर नामका नगर है ॥ २६ ॥ वह रत्नसंचयपुर आकाशको प्रकाशित करनेवाले कोटमें लगे हुए करोड़ों रत्नोंसे, चैत्यालयके शिखरोंपर लगे हुए रत्नोंकी किरणोंसे अनेक गुण रत्नोंसे स्त्रीरत्न आदि चौदह रत्नोंसे, अन्तरंगके अन्धकारको नाश करनेवाले सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूप रत्नोंसे, कोटके दरवाजोंपर लगे हुए रत्नोंसे और बाजारोंमें जौहरियोंके द्वारा किए हुए रत्नोंके ढ़ेरोंसे रातदिन शोभायमान रहता है ॥२७—२८॥ उस नगरमें मनुष्योंके पुण्यकर्मके उदयसे पुत्ररूप रत्न, जवाहरात, और सम्यग्दर्शन आदि रत्नोंका समूह सदा बना रहता है इसीलिये उस नगरका सार्थक नाम रत्नसंचयपुर है वह नगर सब प्रकारके रत्नोंके कुलग्रहके समान सदा सुशोभित रहता है ॥ ३०—३१ ॥ स्वर्गके समान वह अकृत्रिम नगर बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा सदा शोभायमान रहता है ॥ ३२ ॥ उसके कोटमें जिनसे रत्नोंकी किरणें छूट रही हैं, जिनपर द्वारपाल (पहरेदार) बैठे हुये हैं ऐसे ऊंचे और मनोहर दरवाजे एक हजार हैं ॥३३॥ इसीप्रकार सोने और रत्नोंके बने हुए पांच सौ छोटे दरवाजे प्रतिदिन खुले रहते हैं ॥३४॥ अनेक लोगोंसे भरे हुए, बड़ी शोभा करनेवाले और सदा एकसे रहनेवाले ऐसे एक हजार चौराये हैं ॥३५॥ इसीप्रकार हाथी घोड़े रथ पदाति आदि लोगोंसे भरे हुये बारह हजार मार्ग हैं ॥३६॥ उस नगरमें कितने ही जिनालय रत्नमय हैं कितने ही सुवर्णमय हैं, कितने ही शुद्ध स्फटिकके समान हैं और कितने ही वैडूर्यमणिके समान हैं ॥ ३७ ॥ वे चैत्यालय ऊंचे हैं अनेक प्रकारके हैं नृत्य गीतके शब्दोंसे शब्दायमान रहते हैं, शिखरपर लगी हुई ध्वजाओंसे शोभायमान हैं और मनुष्य स्त्रियोंसे सदा भरे रहते हैं ॥ ३८ ॥ वे जिनालय पुष्पोंके समूहसे व्याप्त रहते हैं, बाजे गाजेके शब्दोंसे गर्जना करते रहते हैं और सैकड़ों प्रतिमाओंसे धर्म महासागरके समान जान पड़ते हैं ॥ ३९ ॥ उन चैत्यालयोंमें श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करनेके लिये वस्त्र

आभूषणोंसे सुशोभित ऐसे स्त्री पुरुष जाते हैं और इंद्र इंद्रानीके समान सुन्दर जान पड़ते हैं ॥ ४० ॥ उन जिनालयोंमें कितने ही स्त्री पुरुष तो पूजाकी सामग्री लेकर धर्म करनेके लिये आते हैं और कितने ही पूजा कर उसमें से बाहर निकलते चले जाते हैं ॥ ४१ ॥ दोपहर के समय कितने ही लोग पात्रोंको उत्तम दान देते हैं और कितने ही द्वारपर खड़े मुनियोंकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ४२ ॥ कितने ही लोगोंके घर महादान देनेसे पंचाश्चर्य होते हैं और कितनेही लोगोंके हृदयमें उन पंचाश्चर्योंको देखकर दान देनेके भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ शुभ कर्मके उदयसे वहांके गृहस्थोंके भवन बड़े ऊंचे हैं और धन धान्य पुत्र तथा सुन्दर स्त्रियों से भरे हुए हैं ॥ ४४ ॥ वहांपर जो प्रजा निवास करती है वह सब धनी है, धर्मात्मा है, दान शील विवेक सहित है पुण्यवती है और मनोहर है ॥ ४५ ॥ ऊपर लिखी हुई शोभाओंसे सुशोभित ऐसे नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे सब जीवोंका कल्याण करनेवाले क्षेमंकर नामके राजा राज्य करते थे ॥ ४६ ॥ वे राजा क्षेमंकर धीर वीर थे, देवगण उनकी सेवा करते थे, सब राजा उनको नमस्कार करते थे, वे तीर्थंकर थे, चरम शरीरी थे और न्याय मार्गकी प्रवृत्ति करनेवाले थे ॥ ४७ ॥ वे तीर्थंकर स्वर्गलोकमें होनेवाले समस्त आभूषणोंसे सुशोभित थे, चतुर थे, वज्रवृषभ नाराच उनका संहनन था और उनके शरीरपर सब शुभ लक्षण और व्यंजन थे ॥ ४८ ॥ संसारकी सब उपमावोंसे वे रहित थे, बड़े रूपवान थे, पसीना आदि दोषों से रहित थे, मति श्रुत अवधि तीनों ज्ञान उनके प्रकट थे, और तीनों लोकोंके सब इन्द्रोंके द्वारा वे सदा पूज्य थे ॥ ४९ ॥ उनकी अनन्त महिमा थी और पंच कल्याणोंके वे स्वामी थे। ऐसे वे श्रीजिनेंद्रदेव संसार में धर्मकी मूर्तिके समान सुशोभित होते थे ॥ ५० ॥ उनके कनकचित्रा नामकी रानी थी जो बड़ी सुन्दरी थी। हाव भाव विलासोंको जानती थी और बड़ी ही पुण्यवती तथा गुणवती थी ॥ ५१ ॥ अच्युत स्वर्गका इन्द्र अपनी आयु पूरी कर पुण्य कर्मके उदयसे इन दोनोंके वज्रायुध नामका पुत्र हुआ था जो कि बुद्धिमान था महा रूपवान था और दिव्य शरीरको धारण करनेवाला था ॥ ५२ ॥ पिताने बड़ी प्रसन्नतासे उस अपने पुत्रकी आधान प्रीति सुप्रीति धृति मोद प्रियोद्भव आदि कियायें की थीं ॥ ५३ ॥ उसके जन्मसे माता

के समान सबको संतोष हुआ था तथा स्वामीके उत्पन्न होनेसे कुटुंबी प्रजा और सेवकोंको भी संतोष हुआ था ॥ ५४ ॥ उसके योग्य अमृतके समान दूध आदि उत्तम पीने के पदार्थोंसे उसका सुन्दर शरीर बाल चंद्रमाके समान बढ़ता था ॥ ५५ ॥ अनुक्रमसे कुमार अवस्थाको पाकर उसने जैन सिद्धांत शास्त्र, राजनीति और शस्त्रविद्या आदि सब विद्याएं पढ़ ली थीं ॥ ५६ ॥ वह राजकुमार हारशेखर केयूर कुंडल आदि आभूषणोंसे, दिव्य वस्त्रोंसे, यौवन अवस्थासे और गुणोंसे शोभायमान था ॥ ५७ ॥ उसके मति श्रुत अवधि तीन ज्ञान थे, वह धीर था, चतुर था, त्यागी था और विवेकी था। उसने कांतिसे चन्द्रमाको जीत लिया था और दीप्तिसे सूर्यको जीत लिया था ॥ ५८ ॥ अनेक राजा लोग उसकी सेवा करते थे, सब दिशाओंमें उसका यश फैल गया था वह सदा न्याय मार्गमें लीन था और राजनीति की प्रवृत्ति करनेवाला था ॥ ५६ ॥ वह अत्यन्त मधुर भाषण करनेवाला था, रूपसे कामदेवको जीतनेवाला था, श्री जिनेन्द्रदेवके चरण कमलों का भक्त था और जैन धर्मकी प्रभावना करनेवाला था ॥ ६० ॥ वह राज्यके भारको धारण करता था, ज्ञानी था, सूक्ष्मदर्शी था, विद्वानोंमें श्रेष्ठ था, तत्त्ववेत्ता था बुद्धिमानोंके द्वारा पूज्य था और गुरुजनोंकी सेवा करने में तत्पर था ॥ ६१ ॥ वह बुद्धिमान सम्यग्दर्शनसे सुशोभित था, श्रावकोंके व्रतोंको पालन करता था, धर्मध्यानमें तत्पर था और उसके शरीरमें सब शुभ लक्षण और व्यंजन थे ॥ ६२ ॥ इसप्रकार वह वज्रायुध राजकुमार अनेक प्रकारकी संपदा से भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंके साथ संसारमें नागकुमारके समान शोभायमान था ॥ ६३ ॥ पुण्य कर्मोंके करनेसे और त्याग आदि गुणोंसे बढ़ा हुआ उसका कुंद पुष्पके समान निर्मल यश सब दिशाओंमें फैल गया था ॥ ६४ ॥ पिताने बड़े उत्सव और विधिके साथ रूप और गुणकी एक स्थान ऐसी लक्ष्मीवतीके साथ उसका विवाह किया था ॥ ६५ ॥ संसार सुखमें आसक्त रहनेवाले उन दोनोंके वह प्रतीन्द्र स्वर्गसे चयकर सहस्रायुध नामका पुत्र हुआ था ॥ ६६ ॥ अपने योग्य पदार्थ और संप्रदाओंसे वह अनुक्रमसे वृद्धिको प्राप्त हुआ था और कुमार अवस्थाको पाकर देवकुमारोंके समान शोभायमान होता था ॥ ६७ ॥ उसने जैनशास्त्र और शस्त्रविद्याका अभ्यास किया था, वह पूर्ण बुद्धिमान था, रूप

लावण्य और शोभासे सुशोभित था और बहुत ही रूपवान था ॥ ६८ ॥ गुणोंके साथ २ उसे यौवन अवस्था भी प्राप्त हुई थी, वह जिनभक्त था, सदाचारी था, त्यागी था, भोगी था और शुभ कर्मोंका समुद्र था ॥ ६९ ॥ पिताने गृहस्थधर्म धारण करनेके लिये लक्ष्मीसे विभूषित ऐसी श्रीषेणा नामकी कन्याके साथ बड़ी विभूतिसे उसका विवाह किया था ॥ ७० ॥ भोगोंमें आसक्त रहनेवाले उन दोनोंके शांतिकनक नामक पुत्र हुआ था जो कि चरमशरीरी था, रूपवान था और ज्ञानादि गुणोंका समुद्र था ॥ ७१ ॥ इसप्रकार अत्यन्त पुण्य कर्मके उदयसे पुत्र पौत्र आदि परिवारसहित वे क्षेमंकर तीर्थंकर कल्पवृक्षके समान सुशोभित होते थे ॥ ७२ ॥ अथानन्तर--किसी एक दिन पुण्यवान ईशान नामका दूसरे स्वर्गका इन्द्र देवोंसे भरी हुई सभामें सिंहासनपर बैठकर कहने लगा ॥ ७३ ॥ कि हे देवगणो ! मैं एक बात कहता हूं उसे सुनो, वह बात कानों को सुख देनेवाली है उत्तम है, पुण्य उपार्जन करनेवाली है, गुणोंकी कारण है और धर्म यशसे उत्पन्न होने वाली है ॥ ७४ ॥ देखो ! पूर्वविदेहक्षेत्रके मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरमें महाराज क्षेमंकरका पुत्र वज्रायुध कुमार है वह बड़ा ही बुद्धिमान है, असंख्य गुणोंका सागर है, तत्वोंका जानकार है धर्मात्मा है और मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंसे सुशोभित है ॥ ७५--७६ ॥ वह अनेक सुखोंकी खानि है, निःशंकित आदि गुणोंसे सुशोभित है शंका आदि दोषोंसे रहित है और उसने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि प्राप्त की है ॥ ७७ ॥ उसकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर विचित्रशूल नामके देवके मनमें शंका उत्पन्न हुई और वह उसकी परीक्षा करनेके लिये पृथ्वीपर आया ॥ ७८ ॥ वह देव अपना रूप बदलकर वज्रायुधके पास पहुंचा और उसकी परीक्षा करनेके लिये एकांत मतका आश्रय लेकर उस बुद्धिमानसे कहने लगा ॥ ७९ ॥ कि आप जीवादि पदार्थोंके विचार करने में चतुर हैं इसलिये तत्वोंके स्वरूप को सूचित करनेवाले मेरे वचनों पर विचार कीजिये ॥ ८० ॥ क्या जीव क्षणिक है अथवा नित्य है अथवा नित्य नहीं है ? क्या वह सब कर्मों का कर्ता है अथवा किसी का कर्ता नहीं है ॥ ८१ ॥ क्या वह कर्मोंके फलोंका भोक्ता है अथवा नहीं है ? जो जीव कर्मोंका करता है वही उसका फल भोगता है अथवा अन्य कोई और उसका फल भोगता ॥८२॥

यह जीव सर्वव्यापी है अथवा तिलके बारीक छिलकेके समान सूक्ष्म है ? वह ज्ञानी है अथवा जड़ है ? आप इन सब बातोंका निरूपण कीजिये ॥ ८३ ॥ उस देवकी इन बातोंको सुनकर वह वक्ता राजा वज्रायुध अनेकांत मतका आश्रय लेकर मीठे और श्रेष्ठ बचन कहने लगा ॥ ८४ ॥ वह कहने लगा कि देव ! तू अपने मनको निश्चलकर सुन । मैं जीवादि पदार्थोंका लक्षण पक्षपातरहित कहता हूं ॥ ८५ ॥ यदि जीवको क्षणिक माना जाय तो पुण्य पापका फल चिंता आदिसे उत्पन्न होनेवाला कार्य, चोरी आदि बिचार पूर्वक किए हुए कार्य, ज्ञान चारित्र आदिका अनुष्ठान और कठिन तपश्चरण आदि कुछ भी नहीं बन सकेंगे तथा शिष्योंको अन्य जीवोंसे ज्ञानकी प्राप्ति भी नहीं हो सकेगी ॥ ८६—८७ ॥ यदि जीवको सर्वथा नित्य माना जाय तो कर्मोंका बंध मोक्ष आदि कुछ नहीं बन सकेगा ॥ ८८ ॥ इत्यादि दोषोंके भयसे बुद्धिमान पुरुषोंको परीक्षाकर एकांतसे दूषित सब मतोंके पक्षोंको दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥ ८९ ॥ बुद्धिमानोंको अनेकांत जैनधर्मका ही पक्ष स्वीकार करना चाहिये क्योंकि यही सत्य है, तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपको सूचित करनेवाला है और नयोंसे कथन करनेवाला है ॥ ९० ॥ व्यवहार नयसे यह जीव अनित्य है क्योंकि जन्म मरण बुढ़ापा रोग आदि सहित है और कर्मोंसे बंधा हुआ है ॥ ९१ ॥ तथा परमार्थनयसे (निश्चय नयसे) यह जीव सदा नित्य है क्योंकि निश्चयसे यह जीव जन्म मरण बुढ़ापा बंध मोक्ष संसार आदि सबसे रहित है ॥ ९२ ॥ त्याग करने योग्य उपचरितासद्भूत (व्यवहार) नयकी अपेक्षासे यह जीव शरीर कर्मोंका कर्ता है तथा घट पट आदि सांसरिक कार्योंका कर्ता है । अशुद्ध निश्चय नयसे यह जीव रागादि भावोंका कर्ता है । परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे न तो यह कर्मोंका कर्ता है न रागादि भावोंका कर्ता है ॥ ९३--९४ ॥ व्यवहार नयसे यह जीव सुख दुख देनेवाले कर्मोंके फलको सदा भोगता है परन्तु निश्चय नयसे किसीका भोक्ता नहीं है ॥ ९५ ॥ पर्यायार्थिक नयसे जो जीव कर्मोंको करता है वह उसके फलको नहीं भोगता किंतु दूसरे जन्म में उसकी दूसरी पर्याय ही उसके फलको भोगती है परन्तु निश्चय नयसे जो जीव कर्मोंको करता वही उसके सुख दुख फलको भोगता है अन्य कोई नहीं भोगता ॥९६-९७॥

निश्चय नयसे इस जीवके असंख्यात प्रदेश हैं और केवलिसमुद्घातके समय यह जीव जगतव्यापी हो जाता है। परन्तु समुद्घातके बिना यह जीव व्यवहार नयसे छोटा बड़ा जैसा शरीर पाता है उसीके बराबर होता है। इसका भी कारण यह है कि दीपकके प्रकाशके समान इस जीवमें संकोच विस्तार होने की शक्ति है उसीसे यह जीव छोटे बड़े शरीरके बराबर हो जाता ॥ ९८-९९ ॥ शुद्ध निश्चय नयसे यह जीव केवलज्ञान और केवलदर्शन से अभिन्न है अर्थात् तन्मय है परन्तु व्यवहार नयसे यह मतिज्ञानी वा श्रुतिज्ञानी ही है ॥ २०० ॥ इसप्रकार जीवके बंध मोक्ष कर्मोंका कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि सब अनेक नयोंसे ही बन सक्ता है। एकांत नयसे तो कर्तृत्व भोक्तृत्व बंध मोक्ष आदि सब धर्म सर्वथा मिथ्या सिद्ध होते हैं ॥ १--२ ॥ इसप्रकार तत्वोंके स्वरूपसे भरे हुए अमृतके समान उस राजाके बचन सुनकर वह देव मोक्षपद पानेके समान बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ ३॥ तदनन्तर उसने अपना निजी स्वरूप प्रकट किया और स्वर्गमें इन्द्रने जो उसकी प्रशंसा आदि की वह सब समाचार कह सुनाया॥ ४ ॥ उस देवने दिव्य वस्त्र आदि पहनाकर बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की बार बार उनकी प्रशंसा की, उनको नमस्कार किया और फिर अपने स्वर्गको चला गया ॥ ५ ॥ संसारमें वे पुरुष धन्य हैं जिनकी इन्द्र भी स्तुति करता है जिनकी देव लोग आकर परीक्षा करते हैं और जो सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे सुशोभित हैं ॥ ६ ॥ अथानन्तर—राजा क्षेमंकर पृथ्वीका पालन करते थे, जो प्राप्त था उसकी रक्षा करते थे और जो नहीं था उसके उत्पन्न करनेका उपाय करते थे। किसी एक दिन काललब्धि प्राप्त होनेसे उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे इसप्रकार चिन्तवन करने लगे ॥ ७ ॥ आश्चर्य है कि बिना चारित्रके मेरा बहुतसा काल बीत गया और मोहनीय कर्मके उदयसे इन्द्रियोंके सुखोंके आधीन रहनेवाले मुझे वह मालूम भी नहीं हुआ ॥ ८ ॥ इस संसारमें इन तीनों ज्ञानोंसे क्या सिद्ध हो सक्ता है क्योंकि इन ज्ञानोंसे तो मोक्षरूपी स्त्रीका मुखकमल भी दिखाई नहीं देता ॥ ९ ॥ मैं तीर्थंकर हूं और ज्ञान नेत्र मेरा खुला हुआ है फिर भी मैं व्यर्थ ही बहुत दिनतक मोहरूपी सागरमें डूबा, ही रहा फिर भला अन्य मूर्ख लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ १० ॥ जिनके हाथमें दीपक है और फिर भी कूएमें पड़ते हैं उन

प्रमादियोंका हाथमें दीपक लेना व्यर्थ है उसीप्रकार जिनका ज्ञानरूपी दीपक प्रज्वलित है और फिर भी अपने आत्माको मोहरूपी अन्धकूपमें डाल रहे हैं उनके ज्ञानादिकका अभ्यास करना व्यर्थ ही है ॥ ११-१२ ॥ इस संसारमें अज्ञानी जीवही राज्य पुत्र कुटुम्ब आदि जालोंसे, विषयरूपी सांकलोंसे और दुख देनेवाले कर्मोंसे बन्धते हैं परन्तु ज्ञानी जीवोंको सदा ये सब राज्यादिके सुख और कुटुम्बादिका समूह सब स्वप्नके राज्यके समान जान पड़ते हैं ॥ १३-१४ ॥ इसलिए जबतक यमराज लेनेके लिए नहीं आता तबतक चतुर पुरुषोंको धर्मका सेवन कर लेना चाहिये। क्योंकि पीछे यह जीव कुछ नहीं कर सक्ता है ॥ १५ ॥ इसप्रकारके चिन्तवन करनेसे उन क्षेमंकर तीर्थंकरका मोक्षरूपी स्त्रीके समागमका कारण ऐसा संवेग (संसारसे डर) गुण दूना बढ़ गया ॥ १६ ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकार तीर्थंकरको नमस्कार किया और उनके गुण वर्णन करनेवाले बचनोंसे उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया॥ १७ ॥ वे स्तुति करने लगे कि हे देव ! आप तीनों लोकोंके नाथ हैं और मोक्षके स्वामी भी आप हैं॥ १८ ॥ हे जिन ! सन्मार्गमें चलनेवाले भव्य रूपी पथिकोंके लिये आप नायक हैं ॥ १९ ॥ हे जिनेन्द्रदेव भक्तिमें डूबे हुए इन्द्रलोग भी आपको नमस्कार करते हैं आपके श्रेष्ठ गुणोंकी इच्छा रखते हुये मुनिराज भी आपका ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ हे स्वामिन् आज आपका धर्मोपदेश सुन कर भव्य जीवोंका मोह नष्ट हो जायगा और आज अनेक भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥ २० ॥ हे नाथ ! आज आपके संवेगरूपी तलवार धारण करनेपर तीनों लोकोंके नायकोंको जीतनेवाला यह मोह अपनी काम आदि सेनाके साथ खड़ा खड़ा कांप रहा है ॥ २१ ॥ आप तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले हैं इसलिये आपको कौन बोध कर सकता है आप संसारके सब जीवोंको बोध करानेवाले हैं आपके सिवाय अन्य कोई तीर्थकी प्रवृत्ति कर ही नहीं सकता॥ २२॥ इसलिये हे देव ! आप मोहरूपी महायोद्धाको नाशकर मोक्षको सिद्ध करनेवाली और अपने आत्माका तथा अन्य जीवोंका कल्यान करने-वाली दीक्षा शीघ्र ही धारण कीजिए॥ २३ ॥ इसप्रकार वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली स्तुतिकर तथा बार २ उनको नमस्कार कर वे लोकांतिक देव अपना कार्य कर अपने स्थानको चले गये ॥ २४ ॥ उन क्षेमंकर

तीर्थंकरने वज्रायुध कुमारको राज्याभिषेककर बड़ी विभूतिके साथ अपना पद दिया और वे स्वयं दीक्षा धारण करनेके लिये उद्यम करने लगे ॥ २५ ॥ पहिले देवोंने उनका अभिषेक किया फिर वस्त्र आभूषणोंसे विभूषित होकर वे उत्तम पालकीमें बैठकर घरसे बनको गये ॥ २६ ॥ बनमें जाकर उन्होंने सिद्धपद प्राप्त करनेके लिये सिद्धोंको नमस्कार किया और फिर पांच मुष्टियोंसे कुटिल केशोंको उत्पाटन किया अर्थात् पंच मुष्टि लोच किया ॥ २७ ॥ इसप्रकार इन्द्रसे पूजा प्राप्तकर उन्होंने विरक्त भावोंसे अन्तरंग बहिरंग उपाधियोंका (परिग्रहोंका) त्याग किया और मोक्ष प्राप्त करनेकेलिये दीक्षा धारण की ॥ २८ ॥ तदनंतर वे बारह प्रकारका घोर तपश्चरण करने लगे अपने प्राणोंकी रक्षा करनेकेलिये कृत कारित आदि दोषोंसे रहित शुद्ध आहार ग्रहण करने लगे ॥२६॥ वे सब प्रमादोंको नष्टकर चित्तको स्थिर करनेकेलिये समस्त इंद्रियोंको वश करनेकेलिये सिंहके समान निरंतर श्रुतज्ञानका अभ्यास करनेलगे ॥ ३० ॥ उन्होंने ध्यानादिकी सिद्धि-केलिये अपने चित्तको, मोहरहित, अहंकाररहित, सब इन्द्रियोंको जीतनेवाला, क्रोधरहित और निर्मल बना डाला ॥ ३१ ॥ उन घोर वीरने क्षपकश्रेणी चढ़कर शुक्लध्यानरूपी तलवारसे मोहरूपी शत्रुको गिरा दिया और वे स्वयं निर्विकल्प पदमें जा विराजमान हुए ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपने ध्यानरूपी तेजसे बारहवां गुणस्थान प्राप्त किया और घातिया कर्मोंको एकसाथ नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ३३ ॥ उनके केवलज्ञान प्राप्त होते ही इन्द्रोंके आसन कंपायमान हुए, उन्होंने अपने अवधि ज्ञानसे केवलज्ञानका प्रगट होना जाना। भक्तिमें तत्पर रहनेवाले वे इन्द्र और सब देव अपने अपने परिवारके साथ बड़ी विभूति लेकर आए और जलादिक अनेक प्रकारके दिव्य द्रव्योंसे भगवानकी पूजाकी ॥ ३४-३५ ॥ तदनन्तर वे भगवान समवशरण और चारों प्रकारके संघके साथ भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेकेलिये बहुतसे देशोंमें विहार करने लगे ॥ ३६ ॥ अथान-न्तर—राजा वज्रायुध कुमार बड़ी विभूतिके साथ राज्य करने लगे और पुण्यकर्मके उदयसे अपनी देवियोंके साथ भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ ३७ ॥ किसी एक दिन वे राजा बसंत ऋतुमें अपनी धारिणी आदि रानियोंके साथ अपने देवरमण नामके बनमें क्रीड़ा करनेके लिये गए थे ॥ ३८ ॥ वहांपर वे सुदर्शन नामके

सरोवरमें कपनी रानियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए बड़े आनन्द और सुखसे ठहरे हुए थे ॥ ३९ ॥ इतनेमें एक विद्याधर आया उनसे एक शिलासे सरोवरको ढक दिया और नागपाशसे उसको बांध दिया परंतु राजाने अपने हाथकी हथेलीसे ही उस शिलाको दबाया जिससे उस शिलाके सैकड़ों टुकड़े हो गये यह देखकर वह दुष्ट विद्याधर भाग गया ॥ ४०-४१ ॥ यह विद्याधर पहिले जन्मका शत्रु था यह दमितारि विद्याधरका पुत्र विद्युद्दंष्ट्रका जीव था इसने पहिले जन्ममें भी इनके साथ बैर किया था ॥ ४२ ॥ यह अपने कर्मके वशसे संसाररूपी बनमें परिभ्रमण कर तथा किसी समय कुछ पुण्यकी प्राप्तिकर दुष्ट विद्याधर हुआ था ॥ ४३ ॥ राजा वज्रायुध भी अपने पुण्य और पौरुषसे विघ्नको दूरकर उसी समय अपनी रानियोंके साथ अपने नग- आगए थे ॥ ४४ ॥ इसप्रकार पुण्य कर्मके उदयसे उन राजा वज्रायुधका समय बड़े सुखसे व्यतीत होता । उनके छहो खंडोंकी लक्ष्मीको प्रकट करनेवाला चक्र रत्न उत्पन्न हुआ था ॥ ४५ ॥ उनके अत्यन्त पुण्य कर्मके उदयसे सजीव अजीवके भेदसे दंडरत्न आदि सब ही रत्न (चौदह-सात सजीव सात निर्जीव) उत्पन्न हुए थे ॥ ४६ ॥ तदनंतर वे महाराज वज्रायुध कुमार अपनी छहों प्रकारकी सेना लेकर दिग्विजय कर- नेके लिये इन्द्रके समान निकले थे ॥ ४७ ॥ उन्होंने आर्य म्लेच्छ आदि सब देशोंमें परिभ्रमण किया था और सब राजाओंको तथा मागध आदि व्यंतरोंको अपने वश किया था ॥ ४८ ॥ तदनंतर वे उनकी सार वस्तुओंको तथा कन्यारत्नोंको लेकर अनेक देव और विद्याधरोंके साथ अपने नगरको लौट आये थे ॥ ४९ ॥ राज नौ निधि और चौदह रत्नोंको पाकर स्त्री रत्नके साथ २ चक्रवर्तीके भोगोंका अनुभव करते थे । उनके पुण्य कर्मके उदयसे रूप लावण्य और शोभाकी निधि छ्यानवे हजार रानियां थी ॥ ५१ ॥ ज्ञाको माननेवाले बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उन चक्रवर्तीके चरण कमलोंको नमस्कार करते उनके चौरासी लाख रथ थे, चौरासी लाख हाथी थे, और वायुके समान तेज चल- ह करोड घोड़े थे ॥ ५३ ॥ उन चक्रवर्तीके घरमें पैदल चलनेवालोंकी, सेवक लोगोंकी, श्रेष्ठ ऋद्धियों की संख्या कौन कर सकता है ॥ ५४ ॥ वे महाराज वज्रायुध दशप्रकारकी भोगोप-

भोग सामग्रीके द्वारा मानो मूर्ख लोगोंको साक्षात् पुण्यका फल प्रतिदिन दिखलाते थे ॥ ५५ ॥ इस प्रकार वे महाराज वज्रायुध अपने पुण्यकर्मके उदयसे कुटुम्ब परिवारके साथ तथा चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे उत्पन्न होने-वाले अनेक प्रकारके सुखके कारणोंके साथ निर्भय होकर क्षण क्षणमें होनेवाले अत्यन्त मनोहर और समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करने वाले उत्तम सुखोंका अनुभव करतेथे ॥ ५६ ॥ वे चक्रवर्ती मुक्तरूपी लक्ष्मीको वश कर-नेके लिये तीनों समय श्री जिनमंदिरमें जाकर बड़ी भक्तिसे जल चन्दन आदि अनेक द्रव्योंसे सबतरहके अनिष्टोंको दूर करनेवाली, स्वर्ग मोक्षका एक अद्वितीय कारण और सुखकी खानि ऐसी श्री जिनेन्द्रदेवकी अनेक प्रकारसे पूजा करते थे तथा इसीप्रकार अपने घर भी भगवान की पूजा करते थे ॥ ५७ ॥ वे चक्रवर्ती बड़ी भक्तिसे मुनियोंको अत्यन्त कल्याण करनेवाला दान सदा देते रहते थे, सिद्धपद प्राप्त करनेके लिये मुनि और योगियोंके चरण कमलोंको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते थे और वैराग्य प्राप्त करनेके लिये मुनि-योंकी कही हुई धर्मकथा सुनते थे इसप्रकार वे धर्ममय होकर भी प्रतिदिन मोक्ष देनेवाले धर्मका सेवन करते थे ॥ ५८ ॥ वे महाराज पर्वके दिनोंमें घर और राज्यसम्बन्धी सब पापोंको छोड़कर धर्मकी प्राप्ति और मोक्षका समागम करानेवाला प्रोषधोपवास करते थे ॥ ५९ ॥ वे चक्रवर्ती दान पूजन और सदाचरणोंके द्वारा सब दोषोंसे रहित, पापरहित सुखकी खानि और इन्द्र तीर्थंकर आदि पदोंके देनेवाले जिनधर्मका अनेक प्रका-रसे सेवन करते थे ॥ ६० ॥ वे चक्रवर्ती अपना और दूसरोंका कल्याण करनेके लिये तथा मोक्ष प्राप्त कर-नेके लिये सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भाई बंधुवोंको मित्रोंको राजाओंको और सेवकोंको सदा धर्मोपदेश दिया करते थे ॥ ६१ ॥ यह श्रीसर्वज्ञदेवका कहा हुआ धर्म सुखका घर है, मोक्षपद देनेवाला है, स्वर्गकी सीढ़ी है, तीर्थंकर सरीखी उत्तम गतिको देने वाला है, सब पापोंको नाश करने वाला है, चतुरोंके द्वारा सेवनीय है, गुणोंके समूहकी निधि है, इन्द्रकी विभूति देने वाला है और सब तरहके संदेहोंसे रहित है ऐसा यह धर्म तुम लोगोंको मोक्ष प्रदान करे ॥ ६२ ॥ श्रीशांतिनाथ भगवान समस्त इन्द्र नरेंद्रों द्वारा पूज्य हैं, मुनिराज शांतिनाथका ही आश्रय लेते हैं और शान्तिनाथने ही समस्त कर्मोंके समूहको नाश किया

है ऐसे शान्तिनाथके लिये मैं नमस्कार करताहूं । संसारमें शान्तिनाथसे ही धर्मकी प्रवृत्ति होती है, शान्तिनाथका ही सुख निर्दोष है, चक्रवर्ती कामदेव और तीर्थंकर की विभूति भी शान्तिनाथमें ही विराजमान है ऐसे वे शांतिनाथ भगवान तुम लोगों का कल्यान करें ।

इसप्रकार श्रीशातिनाथ पुराणमें अनन्तवीर्यको सम्यक्त्वकी प्राप्ति और वज्रायुध चक्रवर्तीका भव वर्णन नाम आठवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवमा अधिकार ।

जो शान्तिनाथ भगवान शान्ति करनेवाले हैं सर्वज्ञ हैं सुखके सागर हैं और जिनाधीश हैं उनको मैं उनका पद प्राप्त करनेके लिये मस्तक झुकाकर सदा नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अथानन्तर—किसी एक दिन राजा वज्रायुध सभामें सिंहासनपर विराजमान थे और उनपर चमर ढुल रहे थे इसलिये वे उससमय इन्द्रके समान जान पड़ते थे ॥ २ ॥ उससमय एक विद्याधर डरसे घवड़ाता हुआ आया और उसने अपनी रक्षाके लिये चक्रवर्तीकी शरण ली ॥ ३ ॥ उसके पीछे पीछे सभाभवनको कंपाती हुई एक विद्याधरी आई क्रोधरूपी अग्निसे वह जाज्वल्यमान होरही थी और हाथमें नंगी तलवार लिये उसे मारना चाहती थी ॥ ४ ॥ उस विद्याधरीके पीछे एक बूढ़ा विद्याधर आया, गदा उसके हाथमें थी और उन दोनोंके बैरका वह जानकार था ॥ ५ ॥ वह बूढ़ा विद्याधर राजाको नमस्कार कर कहने लगा कि हे स्वामिन्! आप दुष्टोंको निग्रह करनेमें और सज्जनोंको पालनेमें तत्पर हैं ॥ ६ ॥ दुष्टोंका निग्रह करना और सज्जनोंका प्रतिपालन करना क्षत्रियोंका धर्म है और उस धर्मको आप सदा पालन करते रहते हैं ॥ ७ ॥ इसलिये आप सरीखे धर्मात्माको इसका निग्रह अवश्य करना चाहिये क्योंकि यह अन्यायका कारण है और पापी है इसलिए अवश्य निग्रह करने योग्य है ॥ ८ ॥ यदि आपको इसके अन्यायको सुननेकी इच्छा हो तो हे देव! मैं कहता हूं आप मन लगाकर सुनिए ॥ ९ ॥ यह जंबूद्वीप धर्मका स्थान है, तथा देव विद्याधर और मनुष्यों से भरा हुआ है। उसमें एक कच्छ नामका मनोहर देश है और उसमें एक विजयार्द्ध पर्वत है ॥ १० ॥

उसकी उत्तर श्रेणीके शुक्रप्रभ नगरमें अपने पहिले इकट्ठे किये हुए धर्मके प्रभावसे इन्द्रदत्त नामका वि-
धर राज्य करता था ॥ ११ ॥ उसके यशोधरा नामकी शुभलक्षणोंवाली रानी थी उनका मैं वायुवेग नामका
पुत्र हूं और सब विद्याधर मुझे मानते हैं ॥ १२ ॥ उसी श्रेणीके किन्नरगीत नामके नगरमें चित्रचूल नामका
विद्याधर राज्य करता था उसके सुकांता नामकी पुत्री थी ॥ १३ ॥ वह मैंने विवाहकी विधिसे विवाही थी।
उससे मेरे यह शांतिमती नामकी शीलवती पुत्री हुई है ॥ १४ ॥ यह धर्म और भोगकी सिद्धिके लिए पूजा-
की सामग्री लेकर मुनिसागर पर्वतपर विद्या सिद्ध करनेकेलिए गई थी ॥ १५ ॥ जब यह विद्या साधरही थी
उस समय यह दुष्ट कामातुर पापी उस विद्याके सिद्ध करनेमें विघ्न करनेके लिये उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥ पर-
न्तु पुण्यकर्मके उदयसे सब कार्योंको सिद्ध करनेवाली और सुख देनेवाली सारभूत वह विद्या मेरी इस पुत्री-
को उसी समय सिद्ध होगई ॥ १७ ॥ उस विद्याके भयसे यह पापी आपके शरण आया है और क्रोधसे यह
पुत्री भी इसे मारनेके लिए इसके पीछे पीछे चली आई है ॥ १८ ॥ विद्याकी पूजा सामग्री लेकर जब मैं वहां
पहुंचा और वहांपर पुत्रीको नहीं देखा तब मैं भी इसी मार्गसे शीघ्रही इनके पीछे यहां आ पहुंचा हूं ॥१९॥
हे नाथ ! इसप्रकार मैंने अपना यह समाचार आपको कह सुनाया। अब आप इस दुष्टके लिए जो उचित
समझें सो करें ॥ २० ॥ उसकी यह बात सुनकर वे अवधिज्ञानी महाराज कहने लगे कि इसने जो विद्या
सिद्ध करनेमें भारी विघ्न किया था उसको मैं जानता हूं ॥ २१ ॥ मैं अपने अवधिज्ञानसे जानकर तुम लो-
गोंके पहिले भवकी कथा कहता हूं तुम मन लगाकर सुनो ॥ २२ ॥ इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें गंधार
देशके विंध्यपुर नगरमें विंध्यसेन नामका राजा राज्य करता था ॥ २३ ॥ उसके अच्छे लक्षणोंवाली सुलक्षणा
नामकी रानी थी उन दोनोंके नलिनकेतु नामका पुत्र था ॥ २४ ॥ उसी नगरमें धनदत्त नामका धनी वैश्य
रहता था और उसके प्रभावसे श्रीदत्ता नामकी उसकी स्त्री थी ॥ २५ ॥ उन दोनोंके सुदत्त नामका पुत्र था
और प्रीतिंकरा नामकी उसकी स्त्री थी। वह स्त्री रूप लावण्य और गुणकी निधि थी ॥ २६ ॥ किसी एक
दिन वह प्रीतिंकरा वनमें विहार करनेकेलिए गई थी वहांपर नलिन केतुकी दृष्टि पड़गई और पापकर्मके

उद्यपर वह उसपर कामासक्त होगया ॥ २७ ॥ वह बिना उसके विकल होगया और उस कामाग्निको वह सह नही सका इसलिए उस मूर्खने न्याय मार्गका उल्लंघनकर जवर्दस्ती वह हर ली ॥ २८ ॥ उसके वियोगसे सुदत्तका हृदय भी शोकसे व्याकुल होगया और वह अपनेको पुण्यहीन समझकर अपनी निंदा करने-लगा ॥ २९ ॥ वह विचार करने लगा कि मैंने पहिले भवमें न तो धर्मको पालन किया था, न तप किया था, न चारित्र पालन किया था न दान दिया था और न भगवान जिनेंद्रदेवका पूजन किया था ॥ ३० ॥ इसीलिए मेरे पापकर्मके उदयसे पुण्यवान न होनेसे इसने मेरी रूपवती अच्छी स्त्री जवर्दस्ती हर ली है ॥ ३१ ॥ संसारमें सुख देनेवाले इष्ट पदार्थोंका जो वियोग होता है तथा स्त्री पुत्र धन आदिका वियोग होता है तथा दुष्ट शत्रु चोर रोग क्लेश दुख आदि अनिष्ट पदार्थोंका संयोग होता है अथवा और भी जो कुछ प्राणियोंको अनिष्ट होता है वह सब पापरूप शत्रुके द्वारा ही किया हुआ होता है और किसी तरह नहीं हो सकता ॥ ३२-३४ ॥ मनुष्योंके जबतक पहिले भवमें उपार्जन किया हुआ और अनेक दुख देनेवाले पाप कर्मोंका उदय है तबतक उन्हें उत्तम सुख कभी नहीं मिलसकता ॥ ३५ ॥ यदि पापरूप शत्रु कोई चीज न हो तो फिर मुनिराज घर छोड़कर बनमें जाकर तपश्चरणरूपी तलवारसे किसको मारते हैं ॥ ३६ ॥ संसारमें वे ही सुखी हैं जिन्होंने अलौकिक सुख प्राप्त करनेकेलिये चारित्ररूपी शस्त्रके प्रहारसे पापरूपी महाशत्रु मार डाला है ॥ ३७ ॥ इसलिये मैं भी सम्यक्चारित्ररूपी धनुषको लेकर ध्यान रूपी बाणसे अनेक दुखोंके सागर ऐसे पापरूपी शत्रुको मारूंगा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार हृदयमें विचार कर वह वैश्य काललब्धिके प्राप्त होनेसे स्त्रीभोग शरीर और संसार सबसे विरक्त हुआ ॥ ३९ ॥ तदनन्तर वह दीक्षा लेनेकेलिये सुदत्त नामके तीर्थंकरके समीप पहुंचा और शोकादिक छोड़कर तपश्चरण करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ४० ॥ समस्त जीवोंका हित करनेवाले उन तीर्थंकरको नमस्कारकर उसने मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाला संयम धारण किया ॥ ४१ ॥ वह विरक्त होनेके कारण बहुत दिनतक शरीरको क्लेश पहुंचानेवाला कायोत्सर्ग आदि अनेक प्रकारका घोर तपश्चरण करने लगा ॥ ४२ ॥ उन मुनिराजने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये बिना किसी प्रमादके जन्मपर्यन्त

ध्यानका अभ्यास किया और धर्म ध्यानादिक किया ॥ ४३ ॥ अन्तमें उन्होंने सन्यास धारणकर मन शुद्ध किया, सब आराधनाओंका आराधन किया, हृदयमें श्रीजिनेंद्रदेव विराजमान किए और बड़े प्रयत्नसे प्राणों का त्याग किया इसलिए उनका जीव उस चारित्ररूप धर्मके प्रभावसे ईसान स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाला देव हुआ ॥ ४४-४५ ॥ उसकी एक सागरकी आयु थी, वहांपर वह देवांगनाओंके सुख भोगता था, और अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करता था ॥ ४६ ॥ वह देव स्वर्गलोक मनुष्यलोक और तिर्यंच लोककी जिन प्रतिमाओंकी पूजा बड़ी विभूतिके साथ किया करता था ॥ ४७ ॥ अथानन्तर—इसी जंबद्वीपके सुकच्छ देशमें शिखरोंपर देवियोंके भवनोंसे शोभायमान विजयार्द्ध पर्वत है ४८ ॥ उसकी उत्तर श्रेणीके कांचन-तिलक नगरमें पुण्यमें कर्मके उदयसे महेंद्रविक्रम नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ ४९ ॥ उसको सुख देनेवाली रानीका नाम अनलवेगा था उन दोनोंके वह देव स्वर्गसे चयकर अजितसेन नामका पुत्र हुआ ॥ ५० ॥ इधर राजपुत्र नलिनकेतुको भी उल्कापात देखकर आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और काललब्धि प्राप्त होनेसे उसे संवेग प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ पहिले उसने जो अपना दुश्चरित्र किया था उसकी वह निन्दा करने लगा और हृदयमें परस्त्री छोड़नेके पापका पश्चात्ताप करने लगा ॥ ५२ ॥ वह विचार करने लगा कि मैं बड़ा पापी हूं, परस्त्री लंपट हूं, पापी हूं, विषयांध हूं और सैकड़ों अन्याय करनेवाला हूं ॥ ५३ ॥ स्त्रियोंके शरीरमें अच्छापन ही क्या है वह चमड़ा हड्डी और अंतड़ियोंका समूह है संसारमें जितने अमनोज्ञ पदार्थ हैं उन सबका आधार और विष्ठा आदि दुर्गंध चीजोंका घर है ॥ ५४ ॥ यह शरीर सात धातुओंसे बना है निंद्य है दुर्गंधमय है घृणा करने योग्य है, और इसके नौ छिद्रोंसे सदा मल मूत्र आदि बहा करते हैं ॥ ५५ ॥यह केवल बाहरसे गोरे चमड़ेसे ढ़का हुआ है और ऊपरसे वस्त्र आभूषणोंसे सुशोभित है यह किंपाकफल नामके विषफलके समान है अंतमें यह बहुत ही दुख देनेवाला है ॥ ५६ ॥ स्त्रियोंका शरीर करोड़ों कीड़ोंसे भरा हुआ है और विषके समान है संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो इसका सेवन करे। जो ज्ञानी होकर भी इसका सेवन करे तो समझना चाहिये कि उसकी बुद्धि ही बिगड़ गई है ॥ ५७ ॥ यह स्त्री नरकरूपी

घरका दरवाजा है और दीपक है और स्वर्ग मोक्षरूपी घरके लिये बड़ा भारी अर्गल है। यह स्त्री सब पापों की खानि है ॥ ५८ ॥ चंचल हृदयवाली यह स्त्री धर्मरत्नोंके खजानेको चुरानेके लिये चोर है यह पापिनी मनुष्योंको भक्षण करनेके लिये दृष्टिविष (जिसको देख ले वही मर जाय) सर्पिणीके समान है ॥ ५९ ॥ ये मूर्ख स्त्रियोंके समागमसे नरक देनेवाले और अनेक जीवोंको नष्ट करनेवाले पापोंको प्रतिदिन व्यर्थ ही उपार्जन किया करते हैं ॥ ६० ॥ संसारमें कितने ही पुण्यवान तो ऐसे हैं जो अपनी स्त्रीको भी छोड़कर संयम धारण करते हैं परन्तु मेरे समान कुछ ऐसे भी नीच हैं जो परस्त्रियोंको चाहते हैं ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अपनी निंदाकर उसने पहिले इकट्ठे किये हुए पापोंको नष्ट किया और पापरूपी वनको जलानेके लिये अग्निके समान संवेगको दूना किया ॥ ६२ ॥ तदनन्तर चारित्र धारण करनेकी इच्छा करता हुआ वह नलिनकेतु उस स्त्रीको और राज्य भोगोंको छोड़कर सीमंकर मुनिके समीप पहुंचा ॥ ६३ ॥ उसने दुखरूपी दावानलको बुझानेके लिये वर्षाके समान उन मुनिराजके दोनों चरण कमलोंको नमस्कार किया और बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर दीक्षा धारण की ॥ ६४ ॥ उसका संवेग गुण बहुत बढ़ा हुआ था इस लिए उसने घोर तपश्चरण किया और समस्त तत्त्वोंसे भरे हुए आगमका खूब अभ्यास किया ॥ ६५ ॥ उन मुनिराजने क्षपकश्रेणी चढ़कर पृथकत्ववितर्क नामके शुक्लध्यानरूपी तलवारसे दुष्ट कषायरूपी शत्रुओंको मारा और फिर तीनों वेदोंको नष्ट किया। फिर उन्होंने दूसरे शुक्लध्यानरूपी वज्रसे बाकीके घातियाकर्मरूपी पर्वतको चूर चूर किया और इसप्रकार साक्षात् केवलज्ञान प्रकट किया ॥ ६६ ॥ इन्द्रादिकोंने उसी समय आकर उनकी पूजा की और फिर वे सुखके सागर जिनराज अघातियारूपी शत्रुओंको नष्टकर शाश्वत मोक्षपदमें जा विराजमान हुए ॥ ६८ ॥ प्रीतिंकराने भी अपने दुराचरणकी निन्दा की और मोक्ष प्राप्त करनेके लिए संवेग धारणकर सुव्रता नामकी आर्जिकाके समीप पहुंची ॥ ६९ ॥ उसने घर सम्बन्धी सब परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारण किया और कर्मरूपी तिनकोंको जलानेवाली अग्निको शुद्ध करनेके लिए चांद्रायणतप किया ॥ ७० ॥ अन्तमें सन्यास धारणकर विधिपूर्वक प्राणोंका त्याग किया और उस पुण्यसे अनेक सुख

और गुणके समुद्र ऐसे ईशान स्वर्गमें उत्पन्न हुई ॥ ७१ ॥ वहांके निरन्तरके दिव्य भोगोंसे आयु पूरीकर वहांसे चयकर शुभकर्मके उदयसे यह तेरी पुत्री हुई है ॥ ७२ ॥ इसलिए पूर्व जन्मके स्नेहसे जिसका मन रागसे अन्धा हो रहा है ऐसे इस अजितसेनने इस विद्याधारीके जबर्दस्ती विकार उत्पन्न करना चाहा था ॥ ७३ ॥ पहिले जन्मके संस्कारसे इस लोकमें भी जीवोंके स्नेह बैर गुण दोष राग द्वेष आदि सब बराबर चले आते हैं ॥७४॥ यही समझकर बुद्धिमान शत्रुके लिए कभी विषाद नहीं करते हैं इसलिये इस अन्याय करनेवालेका बैर इस पुत्रीके साथ तू भी छोड़ ॥७५॥ वह शांतिमति विद्याधरी राजा बज्रायुधसे अपने पहिले भवके विचित्र समाचार जानकर संसारसे विरक्त हुई ॥ ७६ ॥ उसने अपने विवाह आदिके सब कार्य छोड़ दिये और पिताका भी त्यागकर देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप पहुंची ॥ ७७ ॥ उस सतीने उन जिनेंद्रदेवकी तीन प्रदक्षिणा दीं उन्हें नमस्कार किया और धर्मामृतके पीनेकी इच्छासे सभामें बैठ गई ॥ ७८ ॥ उसने अपने कानोंसे जन्म मरण और बुढ़ापाको जलनको दूर करनेवाला आत्मरस प्रकट करनेवाला और मुनियोंके समझने योग्य ऐसा उन तीर्थंकरके मुखरूपी चंद्रमासे झरनेवाला धर्मामृतरूपी उत्तम रस पिया और अजर अमर होनेके समान संतोष धारण किया ॥ ७९-८० ॥ तदनन्तर वह सुलक्षणा नामकी गुणशालिनी श्रेष्ठ गणिनीके समीप पहुंची और उसे नमस्कारकर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए उसने मोक्षको वश करनेवाला चारित्र धारण किया ॥ ८१ ॥ उस शांतिमती विद्याधरीने एक साड़ीके बिना अनेक प्रकारके बाह्य परिग्रहका त्याग किया और मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रहका भी त्याग किया ॥ ८२ ॥ संवेग गुणसे सुखका सागर ऐसा तीव्र तपश्चरण किया और शास्त्रोंका अभ्यासकर सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि धारण की ॥८३॥ अन्तमें चार प्रकारका सन्यास धारण किया, एकाग्रचित्तसे भगवान जिनेंद्रदेवका स्मरण किया, भावनाओंका चिन्तवन किया, समाधिपूर्वक प्राणोंका त्याग किया और सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्त्रीलिंगका नाशकर धर्मके प्रभावसे वह ईशानस्वर्गमें बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाला देव हुई ॥ ८४-८५ ॥ अवधिज्ञानसे अपने पहिले भवको जान कर वह देव अपने शरीरकी पूजा करनेके लिये और मुनि तथा जिनप्रतिमाकी पूजा कर-

नेके लिये पृथ्वीपर आया ॥८६॥ उस देवने आते ही मुनिराज अजितसेन (जो विद्याधर शांतिमतीकी विद्या-सिद्धिमें विघ्न कर रहा था) और वायुवेग (शांतिमतीका पिता) के दर्शन किए अतिशय वैराग्यके सम्बंधसे घरका त्याग कर संयम धारण करनेसे तथा तपश्चरण और ध्यानसे उन दोनोंको केवलज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त हुए थे और वह केवलज्ञान उन दोनोंको उसी समय प्राप्त हुआ था। वे दोनों ही सिंहासनपर विराजमान थे, उनपर चमर ढुल रहे थे, अनेक प्रकारकी विभूति प्रगट हो रही थी, प्रातिहार्योंके बीचमें वे विराजमान थे, असंख्य देवगण उनकी सेवा कर रहे थे, चारों संघोंसे वे सुशोभित थे, अनंत गुण सहित विराजमान थे, समस्त जीवोंका हित करनेके लिए वे तत्पर थे, उनकी अनेक प्रकारकी महिमा फैल रही थी, सब इन्द्र मिलकर उनकी पूजा कर रहे थे, अनन्त सुख उन्हें प्राप्त हो चुका था, और अनेक मुनिराज उन्हें नमस्कार कर रहे थे ॥ ८७-९१ ॥ उन दोनोंके दर्शनकर वह देव विचार करने लगा कि आश्चर्य, कि कहां तो भयसे व्याकुल हुआ विषयांध विद्याधर और कहां देवोंके द्वारा पूज्य तीनों लोकोंके एक सर्वज्ञ देव ! कहां तो मेरा वृद्ध पिता और कहां सब पदार्थोंके एक साथ देखनेवाले केवली भगवान ! संसारमें बड़े पुरुषोंको भी अत्यन्त आश्चर्य करनेवाली बात है ॥ ९२-९३ ॥ पहिले मुनियोंने बतलाया था कि जीवोंमें अनंत शक्ति है वह झूठ कैसे हो सकती है क्योंकि इससमय वह शक्ति मैंने साक्षात् देख ली ॥ ९४ ॥ इस प्रकार मनमें चिन्तवनकर उसने उन केवलीकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार किया और गुण वर्णन कर उनकी स्तुति की ॥ ९५ ॥ स्वर्गलोकके द्रव्योंसे बड़ी भक्तिपूर्वक उनकी पूजाकी और आश्चर्य करनेवाले धर्मसे प्रसन्न होकर वह स्वर्गको चला गया ॥ ९६ ॥ चक्रवर्ती अपने मनमें जिनधर्मको स्थापनकर पुण्यकर्मके उदयसे छहों ऋद्धिओंसे उत्पन्न होनेवाले भोगोंको सदा भोगने लगा ॥ अथानन्तर—चैत्यालयोंसे सुशोभित स्वेतवर्ण रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें सुन्दर शिवमन्दिर नामका नगर है ॥ ९८ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे उसमें मेघवाहन नामका राजा राज्य करता था। उसके बिमला नामकी रूपवती और निर्मल स्त्री थी ॥ ९९ ॥ उन दोनोंके सुवर्णाभरणोंसे विभूषित, सती शीलवती और शुभ लक्षणोंवाली कनकमाला नामकी पुत्री थी

॥ १०० ॥ वह सहस्रायुधके पुत्र कनकशांतिने विधिपूर्वक विवाही थी और शुभादेयसे वह उसे सब तरहके सुख देती थी ॥१०१॥ तथा पुण्यकर्मके उदयसे स्वोकसार नामके नगरमें जयसेन नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम जयसेना था। उनके बसन्तसेना नामकी पुत्री थी वह भी रूपवान कनक-शांतिने विधिपूर्वक विवाही थी और वह उसकी छोटी स्त्री थी ॥ १०२—३ ॥ जिसप्रकार काम रतिसे संतुष्ट होता है उसीप्रकार वह कनकशांति उसके कटाक्षोंसे, हास्यसे, कामसेवासे, कोयलके समान मधुर शब्दोंसे संतुष्ट होता था। शुभकर्मके उदयसे किसी एक दिन वह कनकशांति अपनी स्त्रियोंके साथ कौतूहलसे बुलाए हुएके समान विहार करनेके लिये बनमें गया ॥ ४-५ ॥ जिस प्रकार कन्द मूल फल ढूंढनेवालेको निधि मिल जाय उसी प्रकार पुण्यकर्मके उदयसे कुमारने उस बनमें बिमलप्रभ नामके मुनिके दर्शन किए। वे मुनिराज ज्ञानकी प्रभासे घिरे हुए थे, पापकर्मरूपी मलसे रहित थे और सब जीवोंका हित करनेवाले थे, वह बुद्धिमान उनको नमस्कार कर और उनको तीन प्रदक्षिणा देकर उनके समीप बैठ गया ॥ ६-७ ॥ उन मुनिराजने धर्मवृद्धि देकर आशीर्वाद दिया और फिर कृपापूर्वक श्रेष्ठ धर्मका निरूपण करना प्रारम्भ किया ॥ ८ ॥ श्रावकोंका धर्म एक देश है परन्तु वह जीवोंकी दयासे भरपूर और अणुव्रत शिक्षाव्रतोंको धारणकर सिद्ध किया जाता है ॥९॥ इसी प्रकार दान पूजा आदिसे भी वह सिद्ध किया जाता है वह धर्म स्वर्ग लोकको देनेवाला है और सम्यग्दर्शन सहित होनेकर अनुक्रमसे निर्वाणको सिद्ध करता है ॥ १० ॥ पापरहित श्रेष्ठ संपूर्ण धर्म अत्यन्त कठिन है, उपमा रहित है और मोक्ष प्राप्त होने पर्यन्त कल्याण करनेवाला है उसे घर आदि परिग्रहोंका त्याग करनेवाले, और परीषहोंको जीतनेवाले धीरवीर मुनिराज ही तपश्चरण, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र और विनयके द्वारा पालन कर सकते हैं ॥ ११-१२ ॥ जो दीन मनुष्य विषयासक्त हैं और स्त्री आदिसे घिरे हुए हैं वे कभी स्वप्नमें भी श्रेष्ठ मुनिधर्मको धारण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥ इसलिये हे राजन् गृहस्थ धर्मको छोड़कर तीर्थंकर और गणधरोंके द्वारा सेवनीय तथा सुख देनेवाले मुनिधर्मको शीघ्र धारण कर ॥ १४ ॥ गृहस्थ कभी सामायिक आदिके द्वारा धर्म करता है तो कभी घरमें रहनेवाले बहुतसे आरंभ आदिसे केवल पाप ही करता है तथा कभी चैत्यालय आदि बनाकर पुण्य पाप दोनों करता है। इस प्रकार

श्रावक सदा कर्मोंको बांधता और नष्ट करता रहता है ॥ १५-१६ ॥ इसलिए बुद्धिमान पुरुषोंको घर छोड़कर अत्यन्त निर्मल, सारभूत, सब चिन्ताओंसे रहित और सब तरहके पाप योगोंसे रहित ऐसा मुनिधर्म धारण करना चाहिये ॥ १७ ॥ मुनिधर्मको धारण करनेसे यह जीव इस लोकमें भी देव और चक्रवर्तियोंद्वारा पूज्य हो जाता है फिर भला परलोककी तो बात ही क्या है ॥ कुमार कनकशांति भी उन मुनिराजके बचन सुनकर तथा शरीर भोग और संसारसे विरक्त होकर मुनिराजके धर्मको देनेवाले परम संवेगको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ वह विचार करने लगा कि जिनके हृदय विषयोंमें आसक्त हैं ऐसे मनुष्योंके बहुतसे दुर्लभ दिन बिना धर्मके व्यर्थ ही चले जाते हैं ॥ २० ॥ जो दिन निकल जाते हैं वे सैकड़ों सुवर्णके खंड देनेपर भी फिर कभी नहीं लौट सकते। इस लिए जबतक वे दिन कुछ बाकी रहें तबतक ही बुद्धिमानोंको अपना हित कर लेना चाहिए ॥ २१ ॥ जिसप्रकार निधिके नष्ट होनेपर दरिद्रोंको हाथ ही मलना पड़ता है उसीप्रकार दैवसे आयु पूरी हो जानेपर मृत्युके समय सज्जन लोगोंको हाथ ही मलना पड़ता है ॥ २२ ॥ इसलिये चतुर पुरुषोंको बालकपनमें भी धर्म सेवन करना चाहिये क्योंकि यमराज लेनेके लिए कब आ जायगा यह किसीको मालूम नहीं है ॥२३॥ जो जीव बालकपनमें कठिन तपश्चरण और चारित्र पालन नहीं करता वह पीछे उसका पालन नहीं कर सकता जैसे बृद्धावस्थामें बैल कुछ नहीं कर सक्ता ॥ २४ ॥ इसप्रकार विचारकर दोनों स्त्रियोंका और भोग लक्ष्मीका त्याग किया और स्वयं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वैराग्य धारणकर दीक्षालक्ष्मी स्वीकार की ॥ २५ ॥ कनकशांतिके तपश्चरण धारण कर लेनेपर विवेकरूप निर्मल नेत्रोंको धारण करनेवाली उन रानियोंने भी शीघ्र ही शरीर भोग और संसारसे वैराग्य धारण किया ॥ २६ ॥ वे दोनों ही अपने कुलकी आई हुई स्त्रियोंके साथ विमलमती नामकी गणिनीके समीप पहुंची और उनको नमस्कारकर सबके साथ उन्होंने दीक्षा धारण की ॥ २७ ॥ इधर वे कनकशांति नामके मुनिराज सदा श्रुत ज्ञानका अभ्यास करने लगे, ध्यानका अभ्यास करने लगे, दोनो प्रकारका कठिन तथा घोर तपश्चरण करने लगे और परीषहोंको जीतने लगे ॥ २८ ॥ वे मुनिराज वनमें, पर्वतपर, किसी पर्वतकी गुफा आदि शून्यस्थानमें और भयंकर श्मशानोंमें सिंहके समा-

न सदा निर्भय होकर रहते थे ॥ २६ ॥ वे धीर वीर मुनिराज कर्मोंको नाश करनेकेलिये बिना किसी प्रमाद-के जंगल गांव और वन आदिकोंमें अकेले विहार किया करते थे ॥ ३० ॥ जिन्होंने अपने शरीरसे ममत्व आदि सब परिग्रह छोड़ दिये हैं और जिनकी बुद्धि विशुद्ध है ऐसे वे धीर वीर मुनिराज किसी एक दिन सिद्धाचल पर्वतपर कायोत्सर्ग धारण कर विराजमान हुए ॥ ३१ ॥ वहांपर उन निस्पृह मुनिराजको बसंतसेना-के भाई चित्रचूलने देखा । पहिले बंधे हुए वैरके कारण और पाप कर्मके उदयसे उन्हें देखते ही क्रोधसे उस-के नेत्र लाल होगए और उस मूर्खने उन मुनिराजपर उपसर्ग करनेका विचार किया ॥ ३२-३३ ॥ परन्तु उसी समय उन मुनिराजके तपश्चरणके प्रभावसे पुण्यवान विद्याधर राजाओंने उसे ललकारा इसलिए वह पापी असमर्थ होनेके कारण वहांसे भाग गया ॥ ३४ ॥ किसी दूसरे दिन वे मुनिराज अपने योग्य समयपर आहारके लिए ईर्यापथ शुद्धिसे रत्नपुर नामके नगरमें पहुंचे ॥ ३५ ॥ वहांपर जिसका शरीर श्रेष्ठधर्मसे वि-भूषित होरहा है ऐसे राजा रत्नसेनने उनका पड़गाहन किया उन्हें नमस्कार किया और निधि पानेके समान वह प्रसन्न हुआ ॥ ३६ ॥ उन कनकशांति मुनिराजके लिए उस राजाने दाताके सातों गुणोंसे परिपूर्ण होकर नवधा भक्तिसे विधिपूर्वक मन वचन कायको शुद्धकर बड़ी भक्तिसे प्रासुक मधुर, चिकना, रसीला, धर्मको बढ़ानेवाला और कृतादि दोषोंसे रहित शुद्ध आहार दिया ॥ ३७-३८ ॥ उसी समय उपार्जन किए हुए पुण्यके प्रभावसे राजाके घर देवोंने रत्नवृष्टि आदि उत्तम पंचाश्चर्य किए ॥ ३९ ॥ देखो ! मुनियोंके दान देनेसे जब इस लोकमें ही अनेक तरहकी संपत्ति मिल जाती है फिर भला परलोकमें भोगकार्य और देवोंकी संपदा क्यों नहीं मिल सकती ॥ ४० ॥ जिसप्रकार बुद्धिमान लोग सोने और रत्नोंके थोड़ेसे व्यापारसे बहु-तसी लक्ष्मी कमा लेते हैं उसीप्रकार सत्पात्रोंको थोड़ासा दान देकर भी यह मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें सुखोंसे भरे हुए समुद्रके समान श्रेष्ठ पुण्य उपार्जन करता है ॥ ४१-४२ ॥ किसी एक दिन वे मुनिराज घातिया कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिए सुरनिपात नामके वनमें प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हुए ॥ ४३ ॥ उनको देखकर वही चित्रचूल क्रोधरूपी अग्निसे जाज्वल्यमान होगया और पाप

कर्मके उदयसे उस मूर्खने उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥ ४४ ॥ शरीरसे ममत्व न रखनेवाले उन मुनिराज पर उस दुष्टने कातर लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाला अत्यन्त घोर और असह्य उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥४५॥ उसने दुःख देनेवाली ताड़नाको, धर्मच्छेद करनेवाले कड़वे, और विकार उत्पन्न करनेवाले दुर्वचन कहे तथा विद्या और बल सबसे उपसर्ग किया ॥ ४६ ॥ परन्तु उन मुनिराजने संवेग गुणसे सुगंधित हुए और संकल्प विकल्पोंसे रहित ऐसे अपने चित्तको शरीरसे अलग कर आत्मध्यानमें लगाया ॥ ४७ ॥ चित्तको स्थिर कर उन्होंने तीव्र परीषहोंको जीता और मृत्युके भयसे रहित होकर वे मेरु पर्वतके समान निश्चल विराजमान हुए ॥ ४८ ॥ उन्होंने उसपर क्रोध न कर उत्तम क्षमा धारण की और वे संवर धारण कर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढ़ गए ॥ ४९ ॥ उन्होंने पहिले शुक्लध्यान रूपी तलवारसे मोहरूपी दुर्जय शत्रुको मारा और एकत्व वितर्क शुक्लध्यानरूपी तलवारसे बाकीके घातिया कर्मोंको नाश किया ॥ ५० ॥ तदनन्तर उन मुनिराजने उसीसमय समस्त संसारको दिखलानेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि क्षमासे (उत्तम क्षमासे) क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इसलिए मुनिराजोंको किसी दुष्ट शत्रु पर भी कभी क्रोध नहीं करना चाहिए किंतु आत्माकी शुद्धताकी सिद्धिके लिए सदा क्षमा धारण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ जिसप्रकार बिना तृणके स्थानमें पड़ी हुई अग्नि व्यर्थ हो जाती है उसीप्रकार वह विद्यधर भी व्यर्थ हो गया कुछ न कर सका सो ठीक ही है क्योंकि जिनके कभी क्रोध उत्पन्न नहीं होता उनका दुष्ट लोग क्या कर सकते हैं ॥ ५३ ॥

मुनिराज कनकशांतिको केवलज्ञान प्राप्त होनेसे उनकी पूजाकेलिए सब देव आए उन्हें देखकर वह पापी डरगया, भयसे उसका सब शरीर कांपने लगा और वह वैरभाव छोड़कर भव्य जीवोंके रक्षा करनेवाले और तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे उन्हीं अरहंतदेवके शरण आया सो ठीक ही है क्योंकि नीचोंकी वृत्ति ही ऐसी होती है ॥ ५४-५५ ॥ तदनन्तर जय जय शब्दोंसे कोलाहल करते हुए बहुतसे बाजे बजाते हुए और पूजाकी सामग्री लिए हुए इन्द्रादि अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ आए, उन्होंने बड़ी भक्तिसे स्वर्ग लोकके द्र-

ठ्योंसे श्रीकनकशांति जिनराजकी अनेक प्रकारसे पूजा की, उनकी तीन प्रदक्षिणाएं दी और उन्हें नमस्कार किया ॥ ५६-५७ ॥ अपने पोतेको (पुत्रके पुत्रको) केवलज्ञानकी प्राप्ति सुनकर वज्रायुध चक्रवर्तीने आनन्द नामक गंभीर भेरी दिलाई ॥ ५८ ॥ वे चक्रवर्ती प्रसन्नचित्त होकर अपने रणवासके साथ, सेनाके साथ और भाई बंधुओंके साथ पूजा करनेकेलिए उन जिनराजके समीप पहुंचे ॥ ५९ ॥ उन्होंने वहां पहुंचकर उनकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, मस्तक झुकाकर उन्हे नमस्कार किया, पूजाकी और फिर बड़ी भक्तिसे उन जिनराजाकी स्तुतिकरना आरम्भ किया ॥ ६० ॥ हे देव ! हे जिनाधीश ! आप तीनों लोकोंके स्वामी है इसलिए आपकी जय हो, आप तीनों लोकोंमें वृद्धिको प्राप्त होनेतक बराबर बढ़ते रहें ॥ ६१ ॥ हे नाथ ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं, हे स्वामिन् ! आप बुद्धिमानोंमें भी गुरु हैं आप मनुष्योंके बिना ही कारणके हित करनेवाले भाई हैं और आप ही उनकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्रादि भी मस्तक झुकाकर आपको नमस्कार करते हैं और अपने आत्माका हित चाहनेवाले मुनिराज भी आपके दोनों चरण कमलोंकी सेवा करते हैं ॥ ६३ ॥ हे देव ! यह पापी कामदेव बड़ा ही पहलवान है, इस दुष्टने तीनों लोक जीत लिए हैं परन्तु आपने ब्रह्मचर्यरूपी प्रबल शस्त्रसे बालकपनमें ही इसे जीत लिया है ॥ ६४ ॥ हे भगवान् ! सज्जन लोग आपकी सेवा करते हैं भव्य जीवोंको आप शरण देनेवाले हैं मुक्तिरूपी स्त्री आपपर आसक्त है और मुनीश्वर लोग सदा आपकी प्रर्थना करते हैं ॥ ६५ ॥ हे देवोंके द्वारा पूज्य ! आपने बालकपनमें ही चारित्ररूपी तलवार लेकर तीनों लोकोंको जीतनेवाले और अत्यन्त भयंकर ऐसे मोहरूपी महाशत्रुको मारडाला ॥ ६६ ॥ हे जगन्नाथ ! आपका गुणरूपी महासागर अनन्त है उसको इन्द्र अथवा अत्यन्त बुद्धिमान विद्वान् कोई भी पार नहीं कर सकता और न कोई आपकी स्तुति कर सकता है ॥ ६७ ॥ इसलिये हे देव आप मेरी रक्षा कीजिए, प्रसन्न हूजिए और धर्मोपदेश दीजिए, मैं संसारसे डरकर आपके चरणकमलों की शरण आया हूं ॥ ६८ ॥ इसप्रकार स्तुतिकर वे चक्रवर्ती धर्म श्रवण करनेके लिए उनके चरणोंमें दृष्टि रखकर उनके चरणोंके सपीप बैठगए ॥ ६९ ॥ तदनन्तर वे जिनराज कृपापूवक अपने बाबाका उपकार करने

के लिए अपनी दिव्य ध्वनिके द्वारा समस्त जीवोंका हित करनेवाले धर्मका स्वरूप कहने लगा ॥ ७० ॥ वे कहने लगे कि हे चक्रवर्ती, तू मनको स्थिरकर सुन। मैं संसारका स्वरूप बतलाता हूं धर्मका स्वरूप बतलाता हूं और उसके कारणोंको भी बतलाता हूं ॥ ७१ ॥ यह संसार अनंत है अभव्य जीव इसका पार कभी नहीं पा सकते यह अनादि है दुखोंसे भरा हुआ है और चतुर्गतिमय है ॥ ७२ ॥ यद्यपि अनादि है तथापि रत्नत्रयको प्रगट करनेवाली काल लब्धिको पाकर तुम सरीखे भव्य जीवोंको यह शांत भी हो जाता है अर्थात् इसका अंत भी हो जाता है ॥ ७३ ॥ यह संसाररूपी महासागर अत्यन्त घोर है दुःखरूपी सैकड़ों लहरोंसे भरपूर है जन्म मरण और बुढ़ापारूपी मगर मच्छोंसे भरा हुआ और अत्यन्त भयानक है। इसमें जो जीव रत्नत्रयी रूपी श्रेष्ठ पात्रोंसे भरी हुई धर्म नावको नहीं पाते हैं वे ही अनंतवार डूबते और उछलते रहते हैं ॥ ७४--७५ ॥ इसलिये संसारको नाश करनेके लिए चतुर पुरुषोंको धर्म का सेवन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि धर्मही मुक्तिस्त्रीका पिता है जो लोग मुक्तिस्त्रीमें आसक्त हैं उन्हें उसकी प्राप्तिके लिए उसके पिता धर्मका सेवन अवश्य करना चाहिए ॥ ७६ ॥ तीनों लोकोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाली, पंच कल्याणकोंसे सुशोभित तथा तीर्थंकर भी जिसके लिये सेवा करते हैं ऐसी समवसरणादि लक्ष्मी मनुष्योंको धर्मके ही प्रभाव से होती है ॥ ७७ ॥ सम्यग्दृष्टी जीवोंको इन्द्रका राज्यपद धर्मसे ही मिलता है जिसमें सब देवगण सेवा करते हैं और जो समस्त भोगोंका एक स्थान गिना जाता है ॥ ७८ ॥ हे चक्रवर्ती! तुझे जो यह चक्रवर्ती की लक्ष्मी प्राप्त हुई है वह पहिले जन्मके धर्मके प्रभावसे ही हुई है इस लक्ष्मीकी देव विद्याधर सभी सेवा करते हैं और यह संसारकी सब उपमाओंसे रहित है ॥ ७९ ॥ संसारमें जो कुछ वस्तु दुर्लभ है जो कुछ सुख है और जो कुछ उत्तम पद है वह सब चतुरपुरुषोंको धर्मके प्रभाव से तीनों लोकोंमें से स्वयं आकर उपस्थित हो जाता है ॥ ८० ॥ धर्म ही बंधु है, धर्म ही परम मित्र है धर्म ही स्वामी है, धर्मही पिता है धर्मही माता है धर्मही हितकारक है और धर्म ही परजन्मके लिए पाथेय (टोसा-रास्तेमें खानेकी चीज) है ॥ ८१ ॥ धर्म ही मृत्युके बचाने लिये शरण है, धर्मही बुढ़ापारूपी व्याधिकी औषधि है और उत्तम धर्मही

नरकरूपी कूपसे रक्षा करनेवाला है, मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाला है, वह धर्म महाव्रत धारणकर, घोर और दुष्कर तपश्चरण कर, रत्नत्रय, यम, नियम, योग, महाध्यान आदिके द्वारा निर्मल हृदयवाले धीरवीर मुनियोंके द्वारा धारण किया जाता है ॥ ८३-८४ ॥ तथा स्वर्गोंके सुख देनेवाला एकदेश धर्म सम्यग्ज्ञान, अणुव्रत, दान, पूजन, गुरुसेवा प्रोषधोपवास, निरंतर व्रतोंकी भावना, और तीर्थंकरोंकी भक्ति आदिके द्वारा सदा आराधन किया जाता है ॥ ८५-८६ ॥ इसप्रकार अरहंत भगवानका उपदेश सुनकर वह राजा वज्रायुध काललब्धि प्राप्त हो जानेके कारण शरीर भोग और संसारसे विरक्त हुआ ॥ ८७ ॥ तदनंतर वह बुद्धिमान अपने मनमें विचार करने लगा कि संसारमें अपने भोगोंकी लंपटता भी बड़ी ही विचित्र है ॥ ८८ ॥ आश्चर्य है कि ये मेरे पोते हैं आज इनको धीरवीरता और तपश्चरण गुणके कारण बालकपन में ही केवलज्ञानकी संपदा प्राप्त हो गई है। इसलिये संसारमें इन्हींका आत्मा धन्य है ॥ ८९ ॥ देखो, मुझे तीन ज्ञान प्राप्त हैं तो भी मैं मूर्खके समान भाई बंधुरूपी सांकलसे बंधा हुआ राज्यरूपी कारागार में पड़ा हूं ॥ ९० ॥ जिन धीरवीरता आदि गुणोंसे धीर वीर पुरुष मोक्ष प्राप्त करकेलिये कर्मरूपी शत्रुओंको न नाश करसकें उन धीर वीरता आदि गुणोंसे भी संसारमें क्या सिद्ध हो सक्ता है? ॥ ९१ ॥ इस शरीरमें भी क्या सार है जिसके लिये मूर्ख लोग इसको पुष्ट वा पालन पोषण करनेके लिये नरक देनेवाले अनेक प्रकारके पाप उत्पन्न करते हैं ॥ ९२ ॥ यह शरीर शुक्र शोणितसे उत्पन्न हुआ है सात धातुओंसे भरा हुआ है विष्ठा आदिसे भरपूर है मल मूत्रका पात्र है और कीड़ोंसे भरा हुआ है। इसकी हड्डियोंका समूह केवल चमड़ेसे आदि केवल एक भवमें ही दुख देते हैं परन्तु ये भोग अनन्त जन्मोंमें दुख देते हैं ॥ ४ ॥ इस लिये बुद्धिमान लोगोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए क्रोधित हुए सर्पके समान इन भोगोंका त्याग अवश्य कर देना चाहिए और प्राण नाश होनेपर भी इनका ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ये धर्मका नाश करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ यह संसार सब तरहके दुखोंकी खानि है, घोर है, विषम है, विनश्वर है, अनन्त है, और भयानक है। इसमें भला कौन बुद्धिमान प्रेम करेगा ॥ ६ ॥ विषयोंमें अन्धा हुआ यह जीव कर्मोंके उदयसे इस

संसाररूपी बनमें घूमता रहता है और दुखरूपी पर्वतपर चढ़ता उतरता रहता है ॥७॥ यदि संसार ही कल्याणकारी होता तो श्रीजिनेन्द्रदेवने इसका क्यों नाश किया और मोक्षकी राज्यलक्ष्मीके साथ साथ मुक्तिरूपी स्त्री क्यों ग्रहण की ॥ ८ ॥ इस प्रकार चिंतवन करनेसे उन चक्रवर्तीका वह अनेक प्रकारके सुख देनेवाला और ज्ञानका कारण ऐसा उत्तम वैराग्य दूना बढ़ गया ॥ ९ ॥ तदनन्तर वे चक्रवर्ती श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कारकर, उनके वचनामृतको पीकर और भोग तृष्णा आदिसे उत्पन्न हुए दाहको नष्टकर अपने घर चले गए ॥ १० ॥ संसारसे विरक्त हुए उन बुद्धिमानने बड़े उत्सवके साथ सज्जनोंके द्वारा त्याग करने योग्य राज्य सहस्रायुधको दिया और इस प्रकार वे निश्चिन्त हुए ॥ ११ ॥ तदनंतर वे :चक्रवर्ती दीक्षा लेनेकी इच्छासे छहो खंडकी राज्य लक्ष्मी, नौ निधि, चौदह रत्न, और छ्यानवे हजार स्त्रियोंको छोड़कर अपने पिता क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप पहुंचे ॥ १२-१३ ॥ वे भगवान तीनो लोकोंके स्वामी थे, गुणोंके समुद्र थे, और अनन्त महिमा सहित विराजमान थे। चक्रवर्तीने उनको बड़ी भक्तिसे मस्तक झुकाकर तीन बार नमस्कार किया और तीन प्रदक्षिणाएं दीं ॥ १४ ॥ उन्होंने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये उनकी आज्ञानुसार वस्त्रादि बाह्य परिग्रहोंका त्याग किया, मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रहका त्याग किया और दीक्षा धारण की ॥ १५ ॥ उन्होंने अहिंसा आदि पांच महाव्रत धारण किए, ईर्या समिति आदि पांच उत्तम समितियां धारण की, स्पर्श आदि पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको रोका, सामायिक आदि छह आवश्यक धारण किए, केशलोच किया, नग्न अवस्था धारण की, स्नानका त्याग किया, सदा पृथ्वीपर सोनेका नियम लिया, दन्त धावन करनेका त्याग किया और मध्याह्नके समय दूसरेके घरपर सुख देनेवाला एकबार खड़े होकर पवित्र प्रासुक भोजन लेनेका नियम लिया ॥ १६-१८ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवने दीक्षा देते समय बज्रायुध चक्रवर्तीको ये ऊपर लिखे अट्ठाईस मूलगुण दिये थे ॥ १९ ॥ मुनियोंको ये अट्ठाईस मूलगुण प्राणनाश होनेपर भी कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि ये मूलगुण ही समस्त गुणोंके मूलभूत हैं सबकी जड़ हैं ॥ २० ॥ मुनिराज बिना किसी अतिक्रमके समस्त प्रमादोंको छोड़कर इन मोक्ष देनेवाले अट्ठाईस मूलगुणोंको सदा पालन करते रहते हैं ॥ २१ ॥ वे

मुनिराज तृष्णारूपी तापको शांत करनेके लिए तत्वरूपी शीतल जलसे भरे हुए आगमरूपी महासागरका अवगाहन करते थे उसमें स्नान करते थे अर्थात् उसका खूब मनन करते थे ॥ २२ ॥ वे मुनि पन्द्रह दिन एक महीना एक वर्ष आदिकी मर्यादासे प्रोषधोपवास आदि धारणकर अनेक प्रकारका घोर और दुष्कर पूर्ण तप करते थे ॥२३॥ वे चित्तको एकाग्र कर सूने मकानोंमें, पर्वतपर, वृक्षोंके कोटरोंमें और गुफामें उत्तम ध्यान धारण करते थे ॥ २४ ॥ वर्षाकालके चार महीनेतक वे मुनिराज वृक्षके नीचे लकड़ीके खम्भेके समान खड़े होकर पापकर्मोंको नाश करनेवाला योग धारण करते थे ॥ २५ ॥ शीतकालमें रात्रिके समय चौराहेमें कायोत्सर्ग धारणकर बरफसे जले हुए पर्वतके समान भयरहित होकर खड़े रहते थे ॥ २६ ॥ ग्रीष्मऋतुमें वे मुनिराज पसीनेकी बूंदोंसे विभूषित होकर धूपसे जलती हुई पर्वतके ऊपरकी शिलापर सूर्यके सामने कायोत्सर्ग धारणकर खड़े होते थे ॥२७॥ इसप्रकार वे मुनिराज अनन्त सुख प्राप्त करनेके लिये तथा शरीर और कर्मोंके नष्ट करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार तीनो ऋतुओंसे उत्पन्न हुए कायक्लेशको धारण करते थे ॥ २८ ॥ किसी एक दिन वज्रवृषभ नाराच संहननको धारण करनेवाले वे धीर वीर मुनिराज पापोंको नाश करनेकेलिए सिद्धगिरि पर्वतपर प्रतिमा योग धारणकर बड़ी स्थिरतासे विराजमान हुये ॥ २९ ॥ उन्हें देखकर आकाशमार्गसे जाते हुये विद्याधर हृदयमें आश्चर्य करते हुये इस प्रकार कल्पना करते थे क्या यह पर्वतका शिखर है अथवा कोई बनाया हुआ खम्भा है अथवा मस्तकपरके काले केशोंके भ्रमरोंसे घिरा हुआ कोई वृक्ष हो है अथवा शरीरसे ममत्व छोड़े हुये कोई मुनिराज हैं ॥ ३०-३१ ॥ वे मुनिराज इतने निश्चल थे कि उन्हें वृक्ष समझकर अनेक प्रकारके दुष्ट भयंकर सर्प भी मस्तकतक उनके शरीरपर चढ़ जाते थे ॥ ३२ ॥ उन मुनिराजके दोनों चरणोंका सहारा लेकर सांपोंके बिले भी खूब बढ़ गये थे सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके चरण कमलोंमें लगकर शत्रु भी बढ़ जाते हैं ॥ ३३ ॥ कितनी ही वेलोंने मानों मार्दव गुणको (कोमलताको) प्राप्त करनेकी इच्छासे ही कंठतक उन मुनिराजके शरीरको घेरकर खूब अच्छी तरह ढक लिया था ॥ ३४ ॥ वे मुनिराज उत्कृष्ट आत्माका ध्यान धारणकर समस्त परीषहोंको जीतकर ऐसे निश्चल विराजमान हो गये

थे मानों बेलोंसे ढका हुआ कोई वृक्ष ही है ॥ ३५ ॥ इधर रत्नकंठ और रत्नायुध नामके अश्वग्रीवके पुत्र थे वे अपने पापकर्मके उदयसे संसारमें परिभ्रमण कर कुछ धर्मके सेवन करनेसे असुर (व्यंतर) देव हुये थे अतिबल महाबल उनका नाम और वे बड़े ही दुष्ट थे। वे उन मुनिराजको देखकर पहले जन्मके वैरके संस्कारसे तथा पाप कर्मके उदयसे शरीरसे ममत्व छोड़ देनेवाले उन मुनिराजपर भयंकर उपसर्ग करने लगे ॥ ३६-३८ ॥ संसारमें जो मुनिराजकी निंदा करते हैं उनकी भव भवमें निंदा होती है तथा जो मुनिराजको दुख देते हैं उन्हे नरकमें अनेक दुख होते हैं ॥ ३६ ॥ इतनेमें रंभा और तिलोत्तमा नामकी दो देवियां वहां आ पहुंची उन्होंने दुष्ट देवोंको समझाया कि इन मुनिराजका तपश्चरणका बल बहुत अधिक बढ़ा हुआ है यदि अकस्मात् उन्हें भी क्रोध आ जाय तो फिर संसारमें ऐसा कौन है जो इनके सामने क्षणभर भी ठहर सके, इसप्रकार समझानेके बाद उन्होंने उन दोनोंको धमकाया उनकी ताड़नाकी और उन्हें रोका, इसप्रकार मुनिराजमें भक्ति रखनेवालीं उन दोनों दुष्टोंको रोका और दोनों लोकमें दुख देनेवाले पापोंसे डरकर वे दोनों देव कुछ पुण्यकर्मके उदयसे अपने स्थानको चले गये ॥ ४०-४२ ॥ उन दोनों पुण्यवती देवियोंने बड़ी भक्तिसे उन मुनिराजको नमस्कार किया स्वर्गलोकके पुष्प गंध आदि द्रव्योंसे उनकी पूजाकी और फिर वे स्वर्गको चली गईं ॥ ४३ ॥ देखो कहां तो वे देव और कहां वे देवियां ! पुण्यसे क्या नहीं होता है संसारमें जो कुछ कठिन है, सार है और दुर्लभ है वह सब कुछ धर्मात्माओंको प्राप्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ अथानन्तर वज्रायुधके पुत्र सहस्रायुधको राज्य करते ही किसी कारणसे वैराग्य प्राप्त हुआ और वे संवेग गुणका चिंतवन करने लगे ॥ ४५ ॥ वे अपने मनमें सत्पुरुषोंसे भरे हुए, पवित्र और मोक्ष प्राप्त करने तथा दान देनेमें चतुर ऐसे अपने कुलक्रमका चिंतवन करने लगे ॥ ४६ ॥ वे विचार करने लगे कि देखो मेरे बाबा तीर्थंकर हैं। उन्होंने दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त किया है और देव विद्याधर मनुष्य आदि सब उनकी पूजा करते हैं ॥ ४७ ॥ मेरे पिता भी मोक्ष प्राप्त करनेके लिए चक्रवर्तीकी राज्यलक्ष्मीको छोड़कर तथा संयम धारण कर प्रतिदिन कठिन घोर तपश्चरण करते हैं ॥ ४८ ॥ अनंत सुखकी इच्छा करनेवाले अन्य कितने हो राजा लोग

विद्वानोंके द्वारा पूज्य ऐसी जिनमुद्रा धारणकर मेरे सामने ही वनको चले गए ॥४९॥ परन्तु मोहरूपी पिशाचसे घिरा हुआ, विषयोंसे अन्धा और नष्टबुद्धि मैं अबतक मीनके समान घररूपी जालमें जकड़ा हुआ पड़ा हूं ॥ ५० ॥ इस संसारमें इन श्रेष्ठ आत्माओंको जबतक कर्मोंके नाश होनेसे उत्पन्न होनेवाला अनन्त सुख प्राप्त नहीं होता तबतक उन्हें सांसारिक सुखोंसे कभी तृप्ति नहीं होती ॥ ५१ ॥ मनुष्योंको क्षुधा रोगके समय अथवा कामदाहके समय अन्न और औषध लेकर जो सुख प्राप्त होता है वह सुख नहीं है किन्तु दुख है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ५२ जिसप्रकार कोई उन्मत्त जीव बुद्धिके भ्रमसे माताको भी स्त्री समझ लेता है उसीप्रकार यह जीव अपनी बुद्धिके भ्रमसे बड़ी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, दुखसे उत्पन्न होनेवाले और आगे भी दुख देनेवाले कामजन्य सुखको यह जीव सुख मान लेता है ॥ ५२-५३ ॥ जो सुख पराधीन है, चंचल है और विषयोंसे उत्पन्न हुआ है वह पशुओंने ही स्वीकार किया है फिर भला ज्ञानी लोग उसकी इच्छा कैसे करते हैं ॥ ५४ ॥ जो कामजन्म सुख है वह अनेक जीवोंका नाश करनेवाला है, रागसे परिपूर्ण है और परंपरारूप नरकके दुखोंका कारण है, विद्वान लोगोंने भी उसे ऐसा ही माना है ॥ ५५ ॥ जो सुख विषयोंसे रहित है अपने आत्मासे उत्पन्न हुआ है, स्त्री आदिसे रहित है, सदा रहनेवाला है और तपश्चरणसे उत्पन्न हुआ है वह सुख मुनियोंके द्वारा मान्य गिना जाता है ॥ ५६ ॥ यदि वह अनन्त सुख कठिन तपश्चरणसे भी मिल जाय तो फिर ऐसा कौन बुद्धिमान है जो अत्यंत दुख देनेवाले सुखोंसे आत्माको विडंबित करे ॥ ५७ ॥ इसप्रकार चिंतवन कर वे राजा सहस्रायुध काम राज आदि सबका त्यागकर अपने मनमें संयम लेनेके लिए तैयार हुए ॥ ५८ ॥ तदनन्तर जिनकी इच्छा नष्ट हो गई है और संवेग गुणसे जिनका आत्मा सुशोभित हो रहा है ऐसा राजा सहस्रायुधने बड़ी विभूतिके साथ अपना राज्य शतबलको दिया ॥५९॥ इसके पश्चात् पुण्यकर्मके उदयसे वे राजा सहस्रायुध सब दोषोंसे रहित, धर्मके स्थान और कर्मोंके आस्रवसे रहित ऐसे पिहिताश्रव मुनिके समीप पहुंचे ॥ ६० ॥ उन्होंने उन मुनिराजको मस्तक झुकाकर नमस्कार किया, बाह्य अंतरंग परिग्रहका त्याग किया और दुखोंको नाश करनेवाली तथा मोक्ष देनेवाली उत्तम दीक्षा

धारणकी ॥ ६१ ॥ वे सहस्रायुध मुनि रात दिन शरीरको क्लेश पहुंचाने वाला असह्य घोर तपश्चरण करने लगे और अपने योगके अन्तमें बज्रायुध मुनिके समीप पहुंचे ॥ ६२ ॥ वे दोनों (वज्रायुध और सहस्रायुध) मुनिराज कातर लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाला और कठिन तपश्चरणका पालनकर वैभार पर्वतपर पहुंचे ॥ ६३ ॥ उन्होंने अपने ज्ञानसे अपनी आयु थोड़ी बाकी समझकर समस्त आहार और शरीरसे ममत्व छोड़कर सन्यास धारण किया ॥ ६४ ॥ उन दोनों मुनियोंने उत्तम क्षमा संतोष आदिकी तलवार बनाकर कर्मोंमें स्थितिबन्ध करनेवाले कषायरूपी शत्रुओंका निग्रह किया ॥ ६५ ॥ उन्होंने जन्म पर्यंत धारण किए हुए घोर और कठिन प्रोषधोपवासोंसे तथा शीत उष्ण आदिके सब तरहके दुख देनेवाले घोर परीषहोंसे अपने शरीरको रुधिर मांससे रहित केवल हड्डी और चमड़ेसे ढका हुआ सूका, भयानक, कृश और इसलिये बहुत छोटा बना दिया था ॥ ६६-६७ ॥ वे दोनों ही मुनि सब दोषोंसे रहित और मुक्तिरूपी पुत्रीकी माताएं ऐसी दर्शन ज्ञान आदि चारों उत्तम आराधन करते थे ॥ ६८ ॥ वे दोनों ही चतुर मुनि अशुभ ध्यानोंको छोड़कर कभी तो एकाग्र चित्तसे श्रीजिनेंद्रदेवका ध्यान करते थे और कभी अपने आत्माका ध्यान करते थे ॥ ६९ ॥ उन्होंने शरीर रहित पद (सिद्ध पद) प्राप्त करनेके लिए सब प्रकारके दुखोंका निधान और फिर भी शरीरका कारण ऐसा अपने शरीरका ममत्व सर्वथा छोड़ दिया था ॥ ७० ॥ उन्होंने वैराग्यसे भरा हुआ अपना मन श्रेष्ठ धर्म ध्यानके द्वारा मरण पर्यंत अपने आत्मध्यानमें सर्वथा लगाया था ॥७१॥ इसप्रकार पूर्ण प्रयत्न और पूर्णसमाधिके साथ रत्नत्रयको शुद्धकर उन्होंने सूक्ष्म जीवोंको अभय देनेवाले अपने प्राण छोड़े थे और धर्मके प्रभावसे ऊर्ध्व ग्रैवेयकके सुखके सागर ऐसे सौमनस नामके अधो बिमानमें वे दोनों ही अहमिन्द्र हुए ॥ ७२-७३ ॥ वे दोनों ही अहमिन्द्र शुद्ध स्फटिकके समान रत्नोंके बने हुये अनेक ऋद्धियोंसे परिपूर्ण ऐसे उत्पाद गृह नामके बिमानमें दो शिलाओंके बीच मणियोंसे जड़े हुए सोनेके आसनपर (पलंगपर) उत्पन्न हुए थे, और अन्तर्मुहूर्तमें ही यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गए थे ॥ ७४-७५ ॥ उत्पन्न होते समय वे दिव्यमाला और वस्त्र पहिने हुए थे और सब आभूषणोंसे सुशोभित थे उत्पन्न होते ही वे उठकर

बैठ गये और सब दिशाओंको देखने लगे॥ ७६ ॥ वे देखने लगे कि सब तरहके रत्नोंके बने हुए बड़े ऊंचे
चैत्यालय हैं बड़े अच्छे घर हैं और सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली संसारमें सारभूत बड़ी २ ऋद्धियां हैं ॥७७॥
उन्होंने तेजके समूहके समान अथवा धर्मोदयके समान सब अहिमिन्द्रोंको एकसा देखा उसी समय बड़ी
ऋद्धिको धारण करनेवाले उन दोनोंको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ७८ ॥ उस अवधिज्ञानसे उन्होंने अपने
पहले भवके सब समाचार जान लिए तथा तप और ज्ञानका उत्तम फल भी जान लिया, तदनंतर उन
दोनोंने जिनालयमें जाकर अनेक प्रकारसे भगवानकी पूजा की ॥ ७६ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों ही अहमि-
द्र धर्मके प्रभावसे प्राप्त हुए प्रवीचाररहित, तृप्ति करनेवाले और आत्मामें अनुभव होनेवाले अनेक प्रकारके
सुख भोगने लगे ॥ ८० ॥ स्वर्गोंमें देवोंको देवांगनाओंसे जो सुख प्राप्त होता है उससे बहुत ही अधिक
सुख उन अहमिन्द्रोंको होता है ॥ ८१ ॥ उन अहमिन्द्रोंकी सबकी विभूति एकसी होती है, सब चतुर होते
हैं, सबका समान पद रहता है, भोगोंपभोग आदि सामग्री समान होती है, विमानोंकी ऋद्धियां समान
होती हैं मान सन्मान सब समान होता है, सब परस्पर प्रेम रखते हैं सबके हृदय शुद्ध रहते हैं, हीनाधिक पद
किसीका नहीं होता और सबके हृदयमें प्रेम रहता है ॥ ८२-८३ ॥ मैं इन्द्र हूं, मैं ही इन्द्र हूं मेरे सिवाय
और कोई इन्द्र नहीं है इसप्रकार मानकर वे अपने हृदयमें सदा संतुष्ट और सुखी रहते हैं ॥ ८४ ॥ सब
अहमिन्द्रोंकी लेश्या शुक्ल रहती है, वे सब उपमारहित होते हैं, और विषाद तथा मदसे सब रहित होते हैं
इसप्रकार वे सब अहमिन्द्र समान ही होते हैं ॥ ८५ ॥ वे दोनों ही अहमिन्द्र कभी तो दूसरे अहमिन्द्रोंके
साथ रत्नत्रयको प्रगट करनेवाली धर्मको सूचित करनेवाली और शुभकर्मोंका बंध करनेवाली गोष्ठी वा धर्मचर्चा
करते थे कभी अवधिज्ञानसे भगवानके कल्याणोंको जानकर उस पदको (तीर्थंकर पदको) प्राप्त करनेके
लिए बड़ी भक्तिसे अपने स्थानपर बैठे ही मस्तक झुकाकर नमस्कार करते थे ॥८६-८७॥ वे दोनो ही अह-
मिंद्र प्रसन्न होकर अपने विमानके जिनालयमें सदा श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजन करते रहते थे ॥ ८८ ॥
वे दोनों ही अहमिन्द्र कामरूपी अग्निके दाहसे रहित थे कहीं आने जानेकी इच्छा उन्हें थी

ही नहीं और आत्मासे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके मनको प्रसन्न करनेवाले सुख भोगते थे ॥ ८९ ॥ उन्हें सातवीं पृथ्वीतक अवधिज्ञान था, वहींतक विक्रिया ऋद्धि थी और वहीं तक प्रताप और गमन करनेकी शक्ति थी ॥ ९० ॥ उनका डेढ़ हाथका शरीर था, उनकी मूर्ति सौम्य थी, वे दोनों ही बड़े बलवान थे उनका सम चतुरस्रसंस्थान था और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों पुण्यकासमूह ही हो ॥९१॥ उनकी उन्तीस सागरकी आयु थी, उन्हें कभी रोग होता था न क्लेश, न अनिष्ट संयोग होता था न इष्टवियोग ॥ ९२ ॥ उन्तीस हजार वर्ष बीत जानेपर वे तृप्त करनेवाला अमृतमय मानसिक आहार करते थे ॥ ९३ ॥ उन्तीस पक्ष अर्थात् साढ़े चौदह महीने बीतनेपर सब दिशाओंको सुगंधित करनेवाला उच्छ्वास लेते थे और इस प्रकार वे सुखके सागरमें डूबे हुए थे ॥ ९४ ॥ इसप्रकार धर्मके प्रभावसे वे दोनों ही अहमिन्द्र आत्मासे उत्पन्न हुए, रागरहित सब दोषोंसे रहित, स्वर्गके सुखोंसे उत्तम, उपमारहित, अत्यन्त सार और स्त्री आदिके समागमसे रहित सुखोंका सदा अनुभव किया करते थे ॥ ९५ ॥ वे दोनों ही अहमिन्द्र निःशंकित आदि गुणोंसे परिपूर्ण तत्वोंका श्रद्धान करते थे, भगवान अरहन्तदेवकी भक्ति करते थे, चारित्रधर्मकी भावना करते थे, श्रुतज्ञानका पाठ करते थे, मुक्तिरूपी स्त्रीमें आसक्त रहते थे और धर्मके श्रेष्ठ गुणोंकी चर्चा किया करते थे ॥ ९६ ॥ वह चक्रवर्तीका जीव धारण किये हुए चारित्रके फलसे, घोर तपश्चरणसे सम्यग्दर्शन ज्ञानके बलसे और शुद्धमनसे जो कुछ पहिले पुण्य संचय किया था उसके उदयसे पुत्रके साथ अहमिन्द्र होकर उस बिमानमें अत्यन्त निर्मल और सारभूत सुखका अनुभव करते थे यही समझकर बुद्धिमानोंको चारित्र धारण कर सदा धर्मको पालन करना चहिये ॥ ९७ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है सज्जनोंको मनुष्य जन्म और श्रेष्ठकुल पाकर बड़े प्रयत्नसे सब प्रकारके कल्याण देनेवाले धर्मका पालन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ संसारमें धर्म ही श्रेष्ठ पिता है, धर्म ही भाई है, धर्म ही परजन्मकी माता है धर्म ही धन आदिके सुख देनेवाला है और धर्म ही जीवका हित करनेवाला है, आत्माके गुणोंको बढ़ानेवाला धर्मके सिवाय और कोई नहीं है ॥ ९९ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ धर्म ही तीर्थंकर पद देनेके लिये प्रबल कारण है, धर्म ही

चक्रवर्ती और इन्द्रकी विभूतिका हेतु है धर्म ही अनन्त सुख देनेवाला है और धर्म ही सबसे उत्तम है इस-लिये उत्तम पुरुष ही उस धर्मका पालन करते हैं ॥ ३०० ॥ संसारमें धर्म ही स्वर्गरूपी घरका आंगन है धर्म ही हित करनेवाला है, धर्म ही मोक्ष सुख देनेवाला है धर्म ही अनन्त गुणोंका समुद्र है श्रीजिनेन्द्रदेव भी इसका सेवन करते हैं यह धर्म चारित्रको धारण करनेसे प्रगट होता है और सबतरहके पापोंको नाश कर-नेवाला है । जो बुद्धिमान रातदिन इस धर्मका पालन करते हैं मोक्ष भी उनकी स्त्री हो जाती है, फिर भला स्वर्गकी लक्ष्मीकी तो बात ही क्या है ॥ ३०१ ॥ श्री शांतिनाथ भगवान उत्तमक्षमा आदि शांत गुणोंको धारण करनेवालोंको शांति करनेवाले हैं, शांतिके स्थान हैं शांतिको धारण करनेवाले है, एक शांतिरूपी रसमें ही डूबे हुए हैं, अत्यन्त निर्मल हैं, अशुभकर्मोंको शांत करनेवाले हैं धीर वीर हैं अशांतिको दूर करनेवाले और मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको दुष्ट लोगोंके द्वारा प्राप्त हुए धर्मके विघ्नोंमें सब तरहकी शांति करनेवाले हैं। ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ।

इसप्रकार शांतिनाथ पुराणमें अहमिन्द्र भवका निरूपण करनेवाला नवमा अधिकार समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

दशवां अधिकार ।

मैं अपने अशुभ कर्मोंको शांत करनेके लिये विघ्नोंको दूर करनेवाले, समस्त संसारको शांति देनेवाले, कर्मरूप शत्रुओंके समूहको शांति करनेवाले और समस्त संसार जिन्हें नमस्कार करता है ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवानको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अथानन्तर—जम्बू वृक्षसे सुशोभित ऐसे जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्र में एक पुष्कलावती नामका देश है ॥ २ ॥ तीन ज्ञानको धारण करनेवाले देव भी मोक्षपद पानेके लिए उस देशमें जन्म लेनेके लिये लालायित रहते हैं ॥ ३ ॥ उस देशमें भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिये और तीर्थ यात्राके करनेकेलिये धीर वीर दयालु मुनि सदा विहार करते रहते हैं ॥४॥ उस देशमें बिना जिनालयके न ग्राम थे न द्वीप थे न खेट थे न मटंब थे न कर्वट थे और न पत्तन थे ॥ ५ ॥ वहांपर भोगोपभोगोंसे

परिपूर्ण पुण्यशाली जिन्हें देव मनुष्य सब नमस्कार करें ऐसे असंख्यात शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥६॥ हंस आदि उत्तम पक्षियोंसे शोभायमान और निर्मल जलसे भरे हुए मनोहर तलाव. बावड़ी नदी और कूआ सब ओर शोभायमान हैं ॥ ७ ॥ वहांके खेत प्राणियोंको तृप्त करनेवाले मुनियोंके तपश्चरणके समान सदा सफल बने रहते हैं ॥ ८ ॥ वहांके ऊंचे वन वृक्ष पुष्पफलोंसे शोभायमान बड़े अच्छे जान पड़ते हैं जिनके नीचे ध्यान धारण किये मुनिराज विराजमान हैं और जो दूसरे कल्पवृक्षके समान जान पड़ते हैं ॥ ९ ॥ वहांपर स्थान स्थानपर देव विद्याधर और मनुष्योंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर और गणधरोंकी उत्तम निर्वाण भूमियां विद्यमान हैं ॥ १० ॥ वहांपर आदि अंत रहित, श्रीजिनेंद्र देवका कहा हुआ हिंसासे रहित, सब जीवोंका हितकरनेवाला और सदा रहनेवाला धर्म सदा विद्यमान रहता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार शरीरके मध्यभागमें नाभि रहती है उसी प्रकार ऊपर लिखे गुणोंसे परिपूर्ण देशके मध्यभागहै पुंडिरीकिणी नामकी शुभ नगरी है ॥ १२ ॥ वह नगरी सोने व रत्नोंके बने हुए सदा रहनेवाले कोटसे और उसके ऊंचे दरवाजेसे सदा शोभायमान रहती है ॥ १३ ॥ वहांके अकृत्रिम जिनालय धर्मके सागरके समान शोभायमान हैं वह जिनालय सुमेरु पर्वतके शिखरके समान ऊंचे हैं, अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान हैं, उनमें मणियोंके मंडप बने हुए हैं, उनके चारों ओर कोट खिचे हुये हैं उनपर बहुतसी ध्वजायें फहरा रही हैं धर्मात्मा स्त्रीपुरुषोंसे वे भरे हुए हैं धर्मके उपकरण तथा सोने वा माणिक आदिकी बनी हुई अनेक प्रकारकी श्रीजिनेंद्र देवकी प्रतिमाओंसे सुशोभित हैं देव भी उनकी सेवा करते हैं अनेक प्रकारकी शोभासे वे शोभायमान हैं और गीत, नृत्य, बाजे और स्तुतिके सैकड़ों शब्दोंसे सदा शोभायमान रहते हैं ॥ १४-१७ ॥ ऊंचे मकानोंकी शिखरोंपर लगी हुई ध्वजाओंसे वह नगरी ऐसी अच्छी जान पड़ती है मानो मोक्षसुख प्राप्त करनेके लिये देवोंको ही बुला रही हो ॥ १८ ॥ वहांपर पुण्यवान मनुष्य ही केवल अपने इकट्ठे किये हुये पुण्यका फल भोगनेके लिये ही श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न होते हैं पापी लोग वहांपर कभी उत्पन्न नहीं होते ॥ १९ ॥ कितने ही पुण्यवान लोग अनेक प्रकारके भोग भोगते हुये भी दान पूजा तप और व्रतोंको पालनकर महापुण्य

उपार्जन करते हैं ॥ २० ॥ जिसप्रकार धर्मके प्रभावसे मनुष्य द्रव्यसे ही द्रव्य कमाते हैं उसीप्रकार वहांके मनुष्य धर्मसे ही धर्मकी वृद्धि करते हैं ॥ २१ ॥ उस नगरीमें जो उत्तम मनुष्य उत्पन्न होते हैं वे अपने पूर्व भवके पुण्य कर्मके उदयसे त्यागी, भोगी, धीरवीर अनेक शास्त्रोंमें निपुण, सुन्दर मधुरभाषी, व्रती, शीलवान, सम्यग्दृष्टी बुद्धिमान्, विद्वान अत्यन्त चतुर, विवेकी, सदाचारी अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित, दुराचार और पापोंसे रहित, न्यायमार्गमें चलनेवाले, श्रीजिनेंद्रदेवके चरणकमलोंके भक्त, नीच देवोंसे विमुख निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा करनेमें आसक्त, कुगुरुओंकी सेवा रहित, विनयवान् अच्छी भावनावाले और धर्मध्यानमें तत्पर पुरुष उत्पन्न होते हैं तथा ऊपर लिखे सब गुणोंसे सुशोभित और सुख देनेवाली स्त्रियां उत्पन्न होती हैं ॥ २२—२६ ॥ उस नगरीमें उत्पन्न हुए कितने हो चरमशरीरी चतुर पुरुष संयमरूपी तीक्ष्ण शस्त्रसे कर्मरूपी शत्रुओंको जबर्दस्ती नाश कर मुक्त होते हैं ॥ २७ ॥ कितने ही पुरुष चारित्र धारणकर स्वर्ग जाते हैं कितने ही इन्द्रकी विभूति प्राप्त करते हैं और कितने ही धर्मात्मा ग्रैवेयकके सुख भोगते हैं ॥ २८ ॥ कितने ही उत्तम मुनि पुण्यकर्मके उदयसे रत्नत्रयका आराधनकर सर्वार्थसिद्धि आदि पंचोत्तर विमानोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥ उस नगरीके कितने ही भद्र पुरुष अपने शुद्ध भावोंसे उत्तमपात्रोंको दान देकर भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं और वहांपर अनेक प्रकारके भोग भोगते हैं ॥ ३० ॥ उस नगरीमें असंख्यात तीर्थंकर गणधर केवलज्ञानी और धीरवीर चरमशरीरी मुनि उत्पन्न होते रहते हैं जिनकी इंद्र चक्रवर्ती और विद्याधर पूजा करते हैं बंदना करते हैं और स्तुति करते हैं फिर भला उस नगरीका वर्णन करनेसे क्या लाभ है ॥३१-३२॥ इस प्रकार अनेक गुणोंसे भरी हुई उस नगरीमें सब राजाओंके शिरोमणि ऐसे घनरथ नाम के तीर्थंकर राज्य करते थे ॥ ३३ ॥ उनके उत्पन्न होनेके पहिले ही पिताके घरके आंगनमें कुवेरने छह महीने तक रत्नोंकी वर्षा की थी ॥ ३४ ॥ उनके गर्भावतारके समय इंद्रने देव देवियोंके साथ आकर बड़ी भक्तिसे माता पिताको पूजा की थी और स्तुति की थी ॥ ३५ ॥ उनके उत्पन्न होते ही सब देवोंके साथ इंद्र उन्हें मेरुपर्वतपर लेगए थे और बड़ी भक्तिसे क्षीर सागरके जलसे उनका अभिषेक किया था ॥ ३६ ॥ उसी वालक

अवस्थामें इन्द्राणीने स्वयं स्वर्गमें उत्पन्न हुए वस्त्र माला आभूषण आदि उत्तम पदार्थोंसे उनको विभूषित किया था ॥ ३७ ॥ उनकी बालक अवस्थामें ही इंद्र पुण्य उपार्जन करनेकेलिये अपनी इंद्रानीके साथ उनकी सेवा करते थे ॥ ३८ ॥ उनके रूपको देखकर इन्द्रके मनमें भी आश्चर्य हुआ था और अतृप्त होकर उसने उस रूपको देखनेके लिए एक हजार नेत्र बनाए थे ॥ ३९ ॥ उनका रूप महादिव्य था दिव्य गुणोंसे विभूषित था, उपमारहित था और कलाओंसे सुशोभित था उसका वर्णन भला कौन बुद्धिमान कर सकता है ॥ ४० ॥ उनके शरीरमें पसीना नहीं आता था दूधके समान उनका रुधिर था, प्रथम समचतुरस्रसंस्थान था वज्रवृषभ नाराच संहनन था, अर्थात् बज्रमय हड्डियोंसे बना हुआ बज्रमय शरीर था, उस शरीरमें सम्पूर्ण पुण्यरूप परमाणुओंसे बना हुआ उत्तम सौरूप्य (सुन्दरता) गुण था उनके श्वासमें इतनी सुगन्धता थी कि सब दिशाओंमें उसकी सुगंधित फैल जाती थी, वह शरीर महादिव्य लक्षणों और व्यञ्जनोंसे सुलक्षित था शुक्लध्यानके योग्य अप्रमाण महावीर्य (शक्ति) था और उनको वाणी शुभप्रिय और सब जीवोंका हित करनेवाली थी ए दश दिव्य अतिशय भगवान्के शरीरके, साथ प्रगट हुए थे फिर फला उनके गुणोंका अलग वर्णन करनेसे क्या लाभ हैं ॥ ४१-४५ ॥ जब वे धीर वीर राज्यगद्दीपर बिराजमान थे तभी देव विद्याधर सब उनकी सेवा करते थे फिर भला राजाओंकी तो बातही क्या हैं ॥४६॥ वे भगवान स्वर्गमें उत्पन्न वानेवाले गीत नृत्य आभूषण वस्त्र आदि उत्तमसे उत्तम भोगोंके द्वारा प्रतिदिन सुखका अनुभव किया करते थे ॥ ४७ ॥ इस संसारमें समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले उन घनरथ तीर्थकरके सुखका प्रमाण भला कौन जान सकता है ॥ ४८ ॥ उनके मनोहरा नामकी रानी थी जो गुणवती सौभाग्यवती पुण्यवती और अनेक लक्षणोंसे सुशोभित थी ॥ ४९ ॥ उन दोनोंके वह वज्रायुधके जीव ग्रैवेयकसे चयकर पुण्यकर्मके उदयसे मेघरथ नामका पुत्र हुआ था ॥ ५० ॥ उन्हीं घनरथ तीर्थंकरकी मनोरमा रानीसे सहस्रायुधका जीव ग्रैवेयकसे चयकर पुण्यकर्मके उदयसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ था ॥ ५१ ॥ पिता घनरथने प्रसन्न होकर सब भाई बंधुओंके साथ बड़े उत्सवसे उन दोनोंकी आधानादि सब क्रियाएं की थीं ॥ ५२ ॥ उन दोनोंके जन्मके समय

अपने कुटुम्बके साथ जिनालयमें जाकर बड़ी विभूतिके साथ भगवानका महाभिषेक किया और उनकी वृद्धिके
लिए भगवानकी पूजा की थी ॥ ५३ ॥ उन दोनोंके जन्म समयके उत्सवमें भाई बन्धुओंने मांगनेवाले दीन
अनाथ और याचक सब संतुष्ट किए थे ॥ ५४ ॥ वे दोनोंही भाई उनके योग्य वस्त्र आभूषण और अमृतके
समान दूध मिश्री आदि पदार्थोंके द्वारा पालन पोषण किए जाते थे और इसलिए वे चन्द्रमाके समान बढ़ने
लगे थे ॥ ५५ ॥ वे दोनों ही भाई मुग्धावस्थाको बिताकर माता पिताको आनंदित करते थे और कुमार
अवस्थाको पाकर सब कुटुंबियोंके प्यारे मालूम होते थे ॥ ५६ ॥ उन दोनों भाइयोंने थोड़े ही समयमें राज-
नीति, शस्त्रविद्या और जैन सिद्धान्तका रहस्य अध्ययन कर लिया था ॥ ५७ ॥ वे दोनों ही भाई पुण्यकर्मके
उदयसे अनुक्रमसे यौवन और गुणोंके साथ साथ लक्ष्मी कला बुद्धि और कांतिसे भी विभूषित होगए थे
॥ ५८ ॥ उन दोनोंका मस्तक रत्नोंके जड़े हुए मुकुटसे शोभायमान था, हृदय माला और दिव्य हारसे
शोभायमान था और कान कुंडलोंसे शोभायमान थे ॥ ५९ ॥ वे दोनों ही भाई केयूर, अङ्गद श्रेष्ठ आभू-
षण और सुन्दर दिव्य वस्त्रोंसे शोभायमान थे और नागकुमार देवोंके समान जान पड़ते थे ॥ ६० ॥ वे
दोनोंही भाई धीर वीर थे शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थे कलाओंसे परिपूर्ण सुन्दर विद्वान थे, लोगोंको
प्रिय और मान्य थे प्रसिद्ध थे और शुद्ध हृदयवाले थे ॥ ६१ ॥ उनका यश संसारमें व्याप्त था, वे राजनी-
तिकी प्रवृत्ति करनेवाले थे, प्रतापी थे, चतुर थे और उनका शरीर कांतिसे सुशोभित था ॥ ६२ ॥ वे दोनों
ही भाई न्यायमार्गमें लीन थे, पूज्य थे, दानी थे, गुणी थे, श्रीजिनेंद्रदेवके चरणकमलोंके भक्त थे और
निर्ग्रंथ गुरुओंके सेवक थे ॥ ६३ ॥ वे दोनों ही भाई सुशील थे, धर्मात्मा थे, विद्या और विनयके परगामी
थे अनेक राजा उनकी सेवा करते थे इसलिए वे इन्द्र प्रतींद्रके समान सुशोभित होते थे ॥ ६४ ॥ पहिले
भवोंको निरूपण करनेवाला और तत्वोंको प्रत्यक्ष प्रगट करनेवाला अनुगामी अवधिज्ञान (ग्रैवेयकसे साथ
आया हुआ) केवल मेघरथके ही था (दृढरथके नहीं था)॥ ६५ ॥ वे दोनों ही भाई यौवन अवस्थाको प्राप्त
हो गए थे और सब ऐश्वर्योंको प्राप्त हो गए थे इसलिए हाथीके समान उनको देखकर घनरथ तीर्थंकरको

उनके विवाह करनेकी चिंता हुई थी ॥ ६६ ॥ उन्होंने बड़े पुत्रका विवाह प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ कर दिया था और छोटे पुत्र दृढरथका विवाह सुमतिके साथ कर दिया था ॥ ६७ ॥ मेघरथके रूप आदि गुणोंसे सुशोभित प्रियमित्रा रानीसे शुभ लक्षणोंवाला नंदिवर्धन नामका पुत्र हुआ था और दृढरथके अनेक सौभाग्योंसे भरपूर ऐसी सुमति रानीसे अनेक गुणोंसे सुशोभित बरसेन नामका पुत्र हुआ था ॥ ६८-६९ ॥ इसप्रकार वे घनरथ तीर्थंकर पुत्र पौत्रआदि सब प्रकारकी सुख: सामग्रियोंका अनुभव करते हुए सिंहासनपर बिराजमान होकर इन्द्रकीसी लीला करते थे ॥ ७० ॥ किसी एक दिन प्रियमित्राकी दासी सुषेणा एक घन-कुण्ड नामके मुर्गेको लेकर आई और सबको दिखाकर कहने लगी कि जिस किसीका मुर्गा जीत लेगा उसको एक हजार दीनार दूंगी ॥ ७१-७२ ॥ सुषेणाकी यह बात सुनकर छोटी रानीकी दासी कांचना उससे लड़नेके लिए वज्रतुँड नामके मुर्गेको ले आई ॥ ७३ ॥ ऐसे जीवोंके युद्ध करने वा लड़नेमें परस्पर दोनोंको दुख होता है और देखनेवालोंको भी हिंसामें आनन्द माननेसे रौद्र ध्यान होता है। रौद्रध्यानसे महापाप होता है, पापसे नरक मिलता है और नरकमें दुख सहना पड़ता है। इसलिये धर्मात्मा लोगोंको ऐसा युद्ध देखना भी अयोग्य है ॥ ७५ ॥ इसी बातको स्मरण करते हुए वे घनरथ तीर्थंकर बहुतसे भव्यजीवोंको सम-झानेके लिये तथा अपने पुत्रकी महिमा प्रगट करनेके लिए अपने पुत्र पौत्रादिकोंके साथ बिना मनके उन दोनोंके युद्धको देख रहे थे ॥ ७६,७७ ॥ वे दोनों ही दुष्ट मुर्गे पूर्वजन्मकी शत्रुताके कारण परस्पर क्रोध करते हुए आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला और दुख देनेवाला महायुद्ध करने लगे ॥७८॥ इसी बीचमें घनरथ तीर्थंकरने अपने पुत्र मेघरथसे पूछा कि इन दोनोंका युद्ध क्यों हो रहा है ? क्या इसमें कोई पहिले जन्मकी शत्रुता कारण है ? ॥७९॥ पिताकी यह बात सुनकर अवधिज्ञानी मेघरथ सब जीवोंको हित करनेवाली और कानोंको सुख देनेवाली अच्छी वाणी कहने लगे ॥ ८० ॥ कि हे कुटुंबी लोगो ! अपने मनको स्थिरकर सुनो, मैं इन दोनोंके पहिले जन्मकी शत्रुताकी कथा कहता हूं ॥ ८१ ॥ इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रके रत्नपुर नगरमें दो भाई थे, वे वैश्य थे परन्तु मूर्ख थे गाडीवानका काम करते थे भद्र और धन उनका नाम था। किसी एक

दिन वे दोनों निर्दयी भाई लोभमें पड़कर एक बैलके लिए लड़ने लगे ॥ ८२-८३ ॥ वे दोनों ही पापी श्रीनदीके किनारे लड़ने लगे परस्पर एक दूसरेको बड़ी भारी चोट पहुंचाने लगे। परस्पर एक दूसरेकी असह्य चोटसे वे बहुत दुखी हुए और दोनों ही मर गये ॥ ८४ ॥ वे दोनों भाई आर्तध्यानरूपी महापापको करते हुए मरे थे, इसलिये वे कांचन नदीके किनारे श्वेतकर्ण और ताम्रकर्ण नामके हाथी हुए थे। वे दोनों ही हाथी क्रोधी थे, सदोन्मत्त थे, बलवान थे और पहिले जन्मकी शत्रुता उनके हृदयमें भरी हुई थी। देखो! जो महाक्रोध करते हैं उनकी क्या क्या दुर्गति नहीं होती है ॥ ८५-८६ ॥ वहांपर भी पहिले जन्मके वैरके संस्कारसे वे दोनों क्रोधित होकर लड़ने लगे और अपने अपने मजबूत दांतोंसे एक दूसरेको चोट पहुंचाने लगे तथा परस्पर एक दूसरेकी चोटसे दुखी होकर दोनोंही मर गए॥ ८७॥ अयोध्या नगरके रहनेवाले नंदिमित्र नामके ग्वालिएको भैंसोंमें वे दोनों ही मरकर पापकर्मके उदयसे भैंसा हुए ॥८८॥ वहांपर भी पहिले जन्मके बैरके संस्कारसे उन दोनोंने परस्पर दुख देनेवाला युद्ध किया बहुत देरतक परस्पर एकने दूसरेको सींगोंकी चोट पहुंचाई और दोनों ही लड़ते २ मर गए ॥ ८९ ॥ वे दोनों ही मरकर उसी नगरके राजपुत्र शक्तिसेन और वरसेनके यहां वज्र सरीखे मजबूत मस्तकवाले भेड़ा हुए ॥ ९० ॥ वहांपर भी पहिले जन्मके क्रोधके कारण बहुत देरतक परस्पर लड़े और मरकर पापकर्मके उदयसे ये दोनों मुर्गे हुए हैं ॥९१॥ इसलिए हे राजन यह निश्चित है कि पहिले जन्मके संस्कारसे मनुष्योंका वैर और मित्रता दोनों ही अनेक भवोंतक बराबर साथ चली आती हैं ॥ ९२ ॥ इसलिए हे राजन्! बुद्धिमान लोगोंको प्राण नाश होनेपर भी किसी भी हीन वा दीनके साथ अनेक दुख देनेवाला बैर कभी नहीं करना चाहिये ॥ ९३ ॥ इसप्रकार उन विद्वान मेघरथने उन दोनों मुर्गोंके पहिले जन्मकी कथा कहकर सब सभासदोंको आश्चर्य उत्पन्न किया और सबको संतुष्ट किया ॥ ९४ ॥ इसके बाद वे मेघरथ कहने लगे कि इन दोनों मुर्गोंके लड़ते समय अनेक विद्याओंमें निपुण ऐसे दो विद्याधर आपके स्नेहसे प्रसन्न होकर यहां आकर बैठे हैं। वे विद्याधर कौन हैं और क्यों आए हैं? यह सब सुनना चाहें तो हे राजन्! सुनिए, मैं उन दोनोंकी कथा कहता हूं ॥ ९५-९६ ॥ इ-

सी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी शुभ उत्तर श्रेणीमें एक कनकपुर नगर है उसमें पुण्यकर्मके उदयसे गरुड़वेग नामका विद्याधर राज्य करता था उसकी सुन्दरमुखी रानीका नाम धृतिषेणा था ॥ ९७-९८ ॥ उन दोनोंके देवतिलक और चंद्रतिलक नामके दो पुत्र थे जो दोनों ही प्रतापी थे, धीर वीर थे और मोक्षगामी थे ॥ ९९ ॥ किसी एक दिन वे दोनों ही भाई अपने अशुभ कर्मोंको दूर करनेके लिए भगवान जिनेंद्रदेवकी प्रतिमाओंकी बंदनाके निमित्त सिद्धकूट चैत्यालयमें गये थे ॥ १०० ॥ वहांपर उन्होंने भगवानकी पूजा की, स्तुति की, नमस्कार किया और फिर धर्मश्रवण करनेके लिये वहांपर विराजमान दो चारण मुनियोंके समीप पहुंचे ॥ १ ॥ वे दोनों ही मुनि अवधिज्ञानी थे, चतुर थे और देव भी उनकी पूजा करते थे उन दोनों विद्याधरोंने बड़ी भक्तिसे उनकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, मस्तक झुकाकर नमस्कार किया और उनके समीप जाकर बैठ गए ॥ २ ॥ उनमेंसे बड़े मुनिने स्वर्ग देनेवाले गृहस्थ धर्मका तथा मोक्षके कारण मुनिधर्मका दोनोंका निरूपण किया और कृपापूर्वक बतलाया कि यह धर्म ही सुखोंकी खानि है मनुष्योंको परलोकके लिए यही पाथेय (साथ ले जाने योग्य) है और यही पापोंको नाश करनेवाला तथा उत्तम है ॥ ३-४ ॥ मुनिके द्वारा कहे हुये और संसारसे पारकर देनेवाले उस धर्मको सुनकर उन दोनोंने मुनिको नमस्कारकर अपने पहिले जन्मके भव पूछे ॥ ५ ॥ उन्होंने पूछा कि हे भगवन् ! हम दोनोंने पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा तप किया था, अथवा दान दिया था, अथवा व्रत पालन किया था अथवा भगवानका पूजन किया था जिससे हम दोनोंको विद्याधरोंकी विभूति प्राप्त हुई है। हे देव ! हमें सुखी करनेके लिये यह सब कृपापूर्वक निरूपण कीजिए ॥ ६-७ ॥ उन दोनोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे मुनिराज कहने लगे कि हे विद्याधरो ! मैं पहिली कथा कहता हूं तुम चित्त लगाकर सुनो ॥ ८ ॥ धातकी खण्ड द्वीपके पूर्व मेरुके उत्तर दिशाकी ओर ऐरावत क्षेत्रमें तिलकपुर नामका नगर है ॥ ९ ॥ उसमें धर्मात्मा अभयघोष नामका राजा राज्य करता था और उसके शुभहृदयवाली सुवर्णतिलका नामकी रानी थी ॥ १० ॥ उन दोनोंके दो पुत्र हुए थे विजय और जयंत उनका नाम था वे दोनों ही भाई धीर वीर थे, शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थे और नीतिमान् तथा

पराक्रमी थे ॥ ११ ॥ उसी देशके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मंदर नामका एक नगर है उसमें शंख नामका विद्याधर राज्य करता था उसकी रानीका नाम जया था ॥ १२ ॥ उन दोनोंके पृथिवीतिलका नामकी पुत्री हुई थी। वह बड़ी रूपवती थी, पुण्यकर्म करनेवाली थी और अनेक लक्षणोंसे सुशोभित थी ॥ १३ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे वह सुन्दर विद्याधरी विधिपूर्वक अभयघोषने विवाही थी ॥ १४ ॥ वह राजा अभयघोष एक वर्षतक बराबर उसमें आसक्त रहा इसलिए पुण्यकर्मके उदयसे सुवर्णतिलका (पहिली रानी) बहुत दुखी हुई ॥ १५ ॥ किसी एक दिन वसन्त ऋतुके समय सुवर्णतिलकाकी दूती चंचतिलकाने राजासे आकर कहा कि हे देव ! सुवर्णतिलकाका वाग बहुत ही सुन्दर और मनोहर है पुण्यके फलके समान उसमें बहुत-से फल फले हुए हैं इसलिये आप उसे देखनेके लिये चलिये ॥ १६-१७ ॥ उस दासीको यह वात सुनकर पहिली रानीके स्नेहसे जब राजा उस वागमें चलनेके लिये तैयार हुआ उसी समय पृथिवीतिलकाने अपनी विद्यासे वहींपर सब ऋतुओंके फल पुष्पोंसे भरा हुआ वाग बनाकर दिखला दिया और राजासे कहा कि हे देव ! आप इस अच्छे वागको देखिए आप कहीं दूसरी जगह मत जाइए। इसप्रकार कहकर उसे जानेसे रोका। परन्तु उसकी वातका उल्लंघनकर वह राजा उस वनको देखनेके लिये चला ही गया। मानभंग होनेके कारण विद्याधरीको बहुत दुख हुआ ॥ १८-२१ ॥ वह विचार करने लगी कि इस पराधीन रहनेवाली स्त्री जातिको धिक्कार है। यह स्त्रीपर्याय दुखका कारण है मोक्ष इस पर्यायसे मिलती नहीं, यह पर्याय निंद्य अपवित्र और सदा अशुभ है ॥२२॥ जो भोग विना सन्मानके भोगे जाते हैं और दुखके सागर है तथा चारों गतियोंमें परिभ्रमण करनेवाले हैं वे भोग आज मेरे पूरे हों अर्थात् अब मैं उनको भोगना नहीं चाहती।२३। इसप्रकार चिंतवनकर वह वैराग्यको प्राप्त हुई और घर भोग तथा पतिको छोड़कर सुमति नामकी गणिनीके समीप पहुंची ॥ २४ ॥ उस सतीने वहां जाकर उसको नमस्कार किया, एक साड़ीके विना अन्य सब परिग्रहोंका त्याग किया और सब तरहके सुख देनेवाली उत्तम दीक्षा धारण की ॥ २५ ॥ देखो ! संयम धारण करनेके लिये कभी मान करना भी अच्छा है क्योंकि निकट भव्य जीवोंका वह मान आत्माकी हित सिद्धि-

का कारण हो जाता है ॥ २६ ॥ अथानन्तर—किसी एक दिन राजा अभयघोषने मध्याह्नके समय श्रेष्ठ धर्मको उपार्जन करनेवाली परम प्रसन्नताके साथ दमवर नामके श्रेष्ठपात्र मुनिराजका पड़गाहन किया। जिनधर्मका विचार करनेवाले उस राजाने अशुभ कर्मोंको नाश करनेके लिये दाताके सातो गुणोंसे विभूषित होकर बड़ी भक्तिसे नौ प्रकारकी विधिपूर्वक उन मुनिराजको प्रासुक, मिष्ट सरस और उत्तम आहार दिया। उसी समय प्राप्त हुए पुण्यसे राजा अभयघोषके घर रत्नवृष्टि आदि उत्तम पंचाश्चर्य हुये॥ २७-३० ॥ पात्रदानके फलसे जिसप्रकार इसलोकमें भारी विभूति प्राप्त होती है उसी प्रकार स्वर्ग मोक्ष देनेवाली अनेक प्रकारकी लक्ष्मी परलोकमें भी प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ वह राजा अभयघोष दानके प्रभावसे प्राप्त हुए पंचाश्चर्यों को देखकर तथा काल लब्धिके प्राप्त हो जानेसे उसी समय संवेगको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ वह विचार करने लगा कि देखो ! जिन मुनियोंको दान देनेसे यह मनुष्य क्षणमात्रमें ही देवोंके द्वारा प्रकट हुई बहुमूल्य उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है फिर भला उन उत्तम मुनियोंको तपश्चरणके प्रभावसे स्वर्ग मोक्ष आदि परलोक में कौनसी उत्तम लक्ष्मी प्राप्त होती होगी उसको मैं नहीं जान सकता ॥ ३३-३४ ॥ पापरूप समुद्रके मध्यमें रहनेवाली इस गृहस्थीसे क्या सिद्ध हो सकता है क्योंकि इस गृहस्थीके द्वारा मनुष्योंको मोक्षरूपी स्त्रीका मुखकमल कभी दिखाई ही नहीं दे सकता ॥ ३५ ॥ इसका भी कारण यह है कि गृहस्थ कभी कभी दान पूजा आदिके द्वारा थोड़ासा पुण्य संपादन करता है परन्तु फिर हिंसा आदि पाप कार्योंके द्वारा बहुतसा पाप संचय कर लेता है ॥ ३६ ॥ यह गृहस्थ घरके व्यापाररूपी कार्योंके समुद्रमें सदा डूबा रहता है और बहुतसी चिंताओंमें घिरा रहता है इसलिये वह कभी सुखी नहीं हो सकता उसे सदा दुख ही भोगने पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ यदि गृहस्थधर्म कल्याण करनेवाला ही होता तो तीर्थंकर ही इसे क्यों छोड़ते और मोक्ष प्राप्त करनेकेलिये चक्रवर्तीकी लक्ष्मीको छोड़कर क्यों दीक्षा धारण करते ? ॥ ३८ ॥ इस संसारमें केवल मुनियोंको ही अनेक प्रकारका सुख प्राप्त होता है क्योंकि वही सुख सब तरहकी चिंताओंसे रहित है आत्मासे उत्पन्न हुआ है और ध्यानसे प्रगट हुआ है ॥ ३९ ॥ संसारमें वे मुनिराज ही धन्य हैं जो

आत्मानन्द रूपी अंजुलिके पात्रसे हृदयरूपी घरसे निकालकर ध्यानरूपी उत्तम अमृतको सदा पीते रहते हैं ॥ ४० ॥ यह संसार अनेक दुःखोंसे भरा हुआ है यदि इसमें कहीं सुख है तो वह केवल मुनियोंको जो केवल आत्मासे प्रगट होता है। इस संसारमें और किसी प्राणीको सुख नहीं है ॥४१॥ यदि मुनियोंको इस संसारमें विषयोंसे रहित उत्तम सुख न हो तो फिर चक्रवर्ती लोग अपनी इतनी भारी विभूतिको छोड़कर तपश्चरण क्यों धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये मैं जानता हूं कि आत्मासे प्रगट हुआ उपमारहित पूर्ण सुख है तो वीतराग मुनियोंको ही है अन्य रागी द्वेषी जीवोंको वह सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ४३ ॥ इसप्रकार विचारकर उस राजा अभयघोषने शीघ्र ही तृणके समान राज्यका त्याग किया और वह अपने दोनों पुत्रोंके साथ अनङ्गसेन गुरुके समीप पहुंचा ॥ ४४ ॥ वहां जाकर उस राजाने तीनों लोकोंका हित करने-वाले उन मुनिराजको नमस्कार किया उनकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, वाह्याभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग किया और मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अपने दोनो पुत्रोंके साथ एकाग्रचित्तसे समस्त कर्म रूपी अग्नि-को जलानेके लिए अग्निके समान संयम धारण किया ॥ ४२-४६ ॥ तदनन्तर वे तीनों ही मुनिराज स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मीके चित्तको मोहित करनेवाला बारह प्रकारका घोर और असह्य तपश्चरण करने लगे ॥ ४७ ॥ मुनिराज अभयघोषने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिधारणकी और तीर्थंकर पदको देनेवाली सोलह कारण भाव-नाएं भावन कीं ॥ ४८ ॥ पहिली भावना सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि है, दूसरी मन बचन कायसे मुनियोंकी विनय है, व्रत और शीलोंको अतिचार रहित पालन करनेकी भावना तीसरी है, अपना उपयोग सदा ज्ञानमय बनाये रखनेकी भावना चौथी है, संसार शरीर आदिसे ग्लानि प्रगट करनेवाली संवेग रूप भावना पांचवीं है, छठी शक्तिके अनुसार चारों प्रकारके दान देनेकी भावना है, सातवीं शक्तिके अनुसार बारह प्रकारकी तपश्चरण करनेकी भावना है, आठवीं भावना धर्मध्यान और शुक्लध्यान को प्रकट करनेवाली साधु समाधि है। दशप्रकारके मुनियोंकी सेवा चाकरी कर वैयावृत्य करना नौवीं भावना है। स्वर्गमोक्ष देनेवाली अरहंत-देवकी भक्ति करना दशवीं भावना है। आचार्यकी भक्ति करना ग्यारहवीं भावना है मोक्षका मार्ग दिखाने-

कहा कि अच्छा तुम्हारा कहा स्वीकार है ॥ ९४ ॥ यह सुनकर उन दोनों देवोंने अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे शोभायमान एक विमान बनाया और उसमें गुरुजनोंके साथ देवके समान उन मेघरथ राजकुमारको बिठाया ॥ ९५ ॥ उन्होंने वह विमान ज्योतिषी देवोंसे विभूषित आकाश मार्गमें पहुंचाया और फिर वे दोनों देव वहांसे सुन्दर और मनोहर देशोंको दिखाने लगे ॥ ९६ ॥ वे दिखाने लगे कि हे देव ! देखिए छह कालोंसे शोभायमान यह पहिला भरतक्षेत्र है और यह जघन्य भोगभूमिके सुख देनेवाला हिमवत क्षेत्र है ॥ ९७ ॥ उसके बाद मध्यम भोगभूमिके सुख देनेवाला यह हरि वर्ष क्षेत्र है और धर्म, तीर्थंकर गणधर आदिसे भरा हुआ यह विदेह क्षेत्र है ॥ ९८ ॥ यह जीवोंको पात्र दानका फल भोगोपभोग सामग्रीको देनेवाला पांचवां रम्यक क्षेत्र है और दशप्रकारके कल्पवृक्षोंसे सुशोभित यह हैरण्यवत क्षेत्र है ॥ ९९ ॥ यह भरतके समान ऐरावत क्षेत्र है हे देव ! मेरुसहित सात पर्वतोंसे विभाजित किए हुए ये सात क्षेत्र हैं ॥ १०० ॥ श्रीजिनालयसे सुशोभित यह हिमवान पर्वत है । यह ऊंचा महाहिमवान पर्वत है और यह सुंदर निषिध पर्वत है ॥ १ ॥ यह दिव्य सुमेरु पर्वत है जो चारों वनोंसे शोभायमान है देव भी जिसकी सेवा करते हैं जो सोलह चैत्यालयोंसे विभूषित है और भगवानके स्नान करनेसे पवित्र है ॥ २ ॥ यह नील पर्वत है यह रुक्मी है और यह शिखरी है ये छह प्रसिद्ध कुल पर्वत हैं इनके पूर्व कूटपर भगवान श्रीजिनेन्द्रदेवके चैत्यालय हैं और अपनी कांतिसे ये सुशोभित हैं ॥ ३ ॥ इधर देखिये, ये समुद्रमें गमन करनेवाली चौदह सुन्दर महा नदियां हैं दरवाजा और वेदिकासे शोभायमान हैं, नित्य हैं, जलसे भरी हैं, बहुत चौड़ी हैं, शीतल हैं, दिव्य हैं, इनके दोनों किनारोंपर वन हैं ये पद्म महापद्म आदि सरोवरोंसे निकली हैं और अनेक नदियां आकर इनमें मिली हैं । गंगा, सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकांता, सीता आठवीं सीतोदा, नारी, नरकांता, महानदी सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा ये इन नदियोंके नाम हैं ॥ ४-७ ॥ देखिए ये सोलह सरोवर हैं जो कमल और कमलोंपर बने हुए भवनोंसे शोभायमान हैं । यह पद्म है, महापद्म है, यह तिगंच्छ है, केशरी है, महापुण्डरीक है, पुण्डरीक है, यह निषध है, यह देवकुरु है,

अनन्त गुणोंका समुद्र तथा लोकालोक सबको प्रकट करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रोंने उसी समय
आकर उनकी पूजा की॥ ७९-८० ॥ उन्होंने अन्तमें अन्तके शुक्लध्यानरूपी अग्निसे बाकीके कर्मरूपी ईंधनको
जलाया और एक समयमें ही अनन्त सुखके स्थानभूत लोकके शिखर पर जा विराजमान हुए ॥ ८१ ॥ इधर
दोनों मुर्गे भी पापकर्मके उदयसे प्राप्त हुए अनेक प्रकारके दुख देनेवाले पहिले भवके सब बैरको सुनकर
अपने मनमें ही अपनी निंदा करने लगे ॥ ८२ ॥ उन दोनोंने सुख देनेवाला वैराग्य धारण किया परस्परका
बैर छोड़ा और जीवनपर्यंत शुभ अनशन व्रत (उपवास) धारण किया ॥ ८३ ॥ उन दोनोंने अपनी शक्तिके
अनुसार भूख प्यास आदि परीषहोंको सहन किया और वे दोनों ही हृदयमें श्रीजिनेन्द्रदेवका स्मरण करते
हुए धर्मको धारणकर रहने लगे ॥८४॥ उन्होंने प्रतिदिनके काय क्लेशसे शरीरको दुर्बल किया और शुभ ध्यान-
पूर्वक विधिपूर्वक प्राणोंका त्याग किया वे दोनों ही मुर्गे मरकर धर्मके प्रभावसे भूतारण्य और देवारण्य वनमें
ताम्रचूल और कनकचूल नामके भूत जातिके देव हुए॥८५-८६॥ दिव्य गुणोंसे सुशोभित उन दोनों देवोंने अपने
अवधिज्ञानसे उसी समय अपने पहिले भवके सब समाचार जान लिए और परस्परका अपना सम्बन्ध भी
जान लिया ॥ ८७ ॥ वे दोनों ही विचार करने लगे कि कहां तो हम मांस भक्षी, निंद्य और हीन पक्षी थे और
कहां हमें राजकुमार मेघरथने जीवोंकी दया पालन करनेवाले धर्मका उपदेश दिया ॥ ८८ ॥ यदि हम वहां
जाकर उन धर्मात्माका प्रत्युपकार न करें तो फिर इस संसारमें हमारे समान अन्य नीच कौन होगा ॥ ८९ ॥
इसप्रकार कहकर वे दोनों ही देव आए, आकर उन्होंने बड़े प्रेमसे मेघरथको प्रणाम किया और वस्त्र माला
आभूषण आदिसे उनकी पूजाकी ॥ ९० ॥ उन्होंने उनकी बार बार प्रशंसाकी स्तुतिकी और भक्तिपूर्वक
कहा कि हे नराधीश ! आप धन्य हैं, और ज्ञान गुणसे शोभायमान हैं ॥ ९१ ॥ हे देव ! हम आपके ही प्रसा-
दसे तिर्यंच योनिको नष्टकर अत्यन्त सुखी और दिव्य शरीरको धारण करनेवाले ऐसे देव हुए हैं ॥ ९२ ॥
अब हम आपका केवल यही उपकार करना चाहते हैं कि आप मानुषोत्तर पर्वतके भीतरका सब संसार
देख लें ॥ ९३ ॥ इसप्रकार कहकर वे दोनों ही देव भक्तिपूर्वक खड़े रहे, तब कुमार मेघरथने उन दोनोंसे

इसप्रकार उन मुनिराजके बचनोंको सुनकर उन दोनोंको बहुत संतोष हुआ और देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे उन भगवान मुनिराजको भक्ति पूर्वक नमस्कार कर वे फिर पूछने लगे कि हे प्रभो ! हमारे पहिले जन्मके पिता अभयघोष कहां उत्पन्न हुए हैं ? हे दयालु ! कृपाकर यह सब और बतला दीजिये ॥ ६६-६७ ॥ इसके उत्तरमें शांत परिणामोंको धारण करनेवाले वे मुनिराज अनुग्रह करनेके लिए उन दोनोंके सामने सब संदेहोंको दूर करनेवाले बचन कहने लगे ॥ ६८ ॥ कि हे विद्याधरो ! मैं तुम्हारे पिताके तीर्थंकर होनेवाली कथा कहता हूं। तुम मन लगाकर सुनो ॥ ६९ ॥ मनुष्योंसे भरे हुए जम्बूद्वीपमें धर्मका स्थानभूत पूर्व विदेहक्षेत्र है उसके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरी है ॥ ७० ॥ उसमें पुण्यकर्मके उदयसे हेमांगद नामका राजा राज्य करता था और उसकी रूपवती सुन्दर रानीका नाम मेघमालिनी था ॥ ७१ ॥ अभयघोषका जीव सोलहवें स्वर्गमें बचनोंके अगोचर सुखोंका अनुभवकर आयुके अन्तमें वहांसे चयकर उन दोनोंके तीनों लोकोंका हित करनेवाले घनरथ नामके तीर्थंकरकी पर्यायमें आया है॥ ७२ ॥ इस समय वे श्रीमान् राजा घनरथ अपनी रानी और पुत्रोंके साथ दो मुर्गोंका युद्ध देखते हुए विराजमान हैं ॥ ७३ ॥ इन सब बातोंको सुनकर उन दोनों विद्याधरोंने उन मुनिराजको नमस्कार किया और पहिले जन्मके प्रेमके कारण वे दोनों ही विद्याधर आपको देखनेकेलिए बड़ी शीघ्रतासे यहां आए हैं ॥ ७४ ॥ इसप्रकार मेघरथसे उस सब कथाको सुनकर उन दोनों विद्याधरोंने अपना स्वरूप प्रगट किया और सबके प्रत्यक्ष हुए ॥ ७५ ॥ उन दोनों विद्याधरोंने तीर्थंकर भगवान घनरथको और राजकुमार मेघरथको नमस्कार किया, पहिले जन्मके स्नेहके कारण भक्तिपूर्वक दिव्यवस्त्र आभूषणोंसे बार बार उनकी पूजाकी और स्तुति की। तदनन्तर वे दोनों ही विद्याधर शरीर भोग और संसारसे विरक्त हुए तथा संयम धारण करनेके लिए गोवर्द्धन मुनिराजके समीप पहुंचे ॥७६-७७॥ मन बचन कायसे उन मुनिराजको नमस्कारकर और परिग्रहोंका त्यागकर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए सदा रहनेवाली मोक्षरूप लक्ष्मीकी श्रेष्ठ माताके समान दीक्षा धारण की ॥ ७८ ॥ उन दोनोंने अनिंद्य, घोर और असह्य तपश्चरण किया, शुक्लध्यानरूपी तलवारसे घातिया कर्मरूपी अनादिके शत्रुओंको नाश किया और

वाले उपाध्यायकी भक्ति करना बारहवीं भावना है, शास्त्रोंमें सदा भक्ति रखना तेरहवीं भावना है, छहों आवश्यकोंको पूर्ण रीतिसे पालन करना चौदहवीं भावना है जैन धर्मके माहात्म्यको प्रगट करनेवाली मार्ग-प्रभावना पंद्रहवीं भावना है और सब गुणोंकी खानिके समान धर्मात्माओंमें प्रेम करना सोलहवीं भावना है ॥ ४९-५३ ॥ सम्यग्दर्शनके प्रभावसे बुद्धिमान पुरुषोंको तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करनेवाली ये ही ऊपर लिखी हुई सोलह कारण भावनायें है ॥ ५४ ॥ तीर्थंकर अबतक हुए है अथवा आगे होंगे अथवा जो हैं वे सब इन भावनाओं को चिंतवनकर ही हुए हैं और इसी प्रकार होंगे ॥ ५५ ॥ यदि केवल सम्यग्दर्शनकी ही विशुद्धि प्राप्त होजाय तो बलवती भावना तीर्थंकर नामकर्मका बंध करती है सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके बिना मनुष्योंको कभी तीर्थंकर नामकर्मका बंध नहीं होता ॥ ५६॥ अल्पशक्तिवाला भी जीव सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होकर इन भावनाओंके प्रभावसे तीर्थंकर हो जाता है और सब कर्मोंसे रहित होकर सिद्ध पद प्राप्त करता है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ इसलिये चारों प्रकारके सब संघको मोक्षरूपी स्त्री प्राप्त करनेके लिये मोक्षरूपी लक्ष्मीको उत्तम सखीके समान इन भावनाओंका चिंतवन प्रतिदिन करना चाहिए ॥ ५८ ॥ उन अभयघोष मुनिराजने एकाग्र चित्तसे सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके साथ २ सब भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपनी शक्तिको प्रगटकर जीवन पर्यंत विधिपूर्वक द्रव्य-भाव दोनों प्रकारसे उत्तम संयमका पालन किया ॥ ६० ॥ आयुके अन्त समयमें चारों प्रकारके आहारका त्याग किया, सन्यास धारण किया, पवित्र चारों आराधनाओंका आराधन किया, बिना किसी संकल्प विकल्पके अपना मन परमेष्टीके चरण कमलोंमें लगाया और सब तरहके प्रयत्नोंके साथ समाधि पूर्वक प्राणोंको छोड़कर असंख्यात सुखोंके सागर ऐसे अच्युत नामके सोलहवें शुभस्वर्गमें वे तीनों ही तपश्चरणके उदयसे बड़ी ऋद्धिके धारी देव हुए ॥ ६१-६३ ॥ वहांपर उन्होंने अपनी अपनी देवियोंके साथ बाईस सागर तक धर्मके प्रभावसे प्राप्त हुए, उपमारहित अत्यन्त सुख देनेवाले स्वर्गके उत्तम भोग भोगे और फिर बाकी बचे पुण्यकर्मके उदयसे आयुके अन्तमें वहांसे च्युत होकर तुम दोनों राजपुत्र हुए हो ॥६४-६५॥

का एक स्थान ऐसा यह शरीर तो कहां ? और तीन लोकका नाथ, सर्वज्ञ, सुखकी खानि, पवित्र, ज्ञानी पूज्य, शुद्ध, और कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला यह आत्मा कहां ? ज्ञानी पुरुषके शरीर और आत्मा इन दोनोंका सम्बन्ध कैसे हो सकता है यह संबंध तो केवल कर्मोंका किया हुआ है क्योंकि ज्ञानी पुरुष तो अपने उत्कृष्ट आत्माको अपने शरीरसे पृथक् समझता है ॥ ४३-४५ ॥ जिसप्रकार किट्टिकालिमाको जलाकर उससे शुद्ध सुवर्ण अलग ग्रहणकर लिया जाता है उसी प्रकार कर्मरूपी काठसे भरे हुए और अशुभ कर्मों से उत्पन्न हुए इस शरीररूपी घरको ध्यानरूपी अग्निसे जलाकर इस शरीरसे ही पवित्र आत्माको अलग ग्रहण कर लिया जाता है ॥ ४६ ॥ फिर यह जीव समस्त कर्मों के क्षय होजाने से सर्वज्ञ होकर आत्माका कल्याण करनेवाले, अनंत सुखसे भरे हुए, नित्य और निरामय (रोग आदि दोषोंसे रहित) मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥ ४७ ॥ इसलिये जबतक शरीरमें जीवों की ममता (ममत्व बुद्धि) बनी है तबतक वह शरीर भव भवमें प्राप्त होता है। इसलिये चतुर पुरुषोंको वह ममत्व अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ४८ ॥ इसलिये अपने आत्माका हित चाहनेवाले पुरुष दुखोंके निधि और रोग क्लेश करनेवाले शत्रुके समान इस शरीरसे क्या सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४९ ॥ जो धीर वीर पुरुष शरीर पाकर शारीरिक सुख छोड़कर और तपश्चरणकर अपने आत्माका हित सिद्ध करते हैं उन्हींका शरीर सफल समझना चाहिये ॥ ५० ॥ जिसप्रकार ईंधनसे अग्नि बढ़ती है घटती नहीं, उसी प्रकार जो मनुष्य भोगोंसे इस शरीरका लालन पालन करते हैं उन्हें कभी संतोष नहीं हो सकता। उनकी तृष्णा दिन दूनी बढ़ती जाती है ॥ ५१ ॥ इसलिये अनेक प्रकारके भोगोंसे तथा भोगोपभोगकी सामग्रियोंसे क्या लाभ है क्योंकि उनसे सुख देनेवाला संतोष कभी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥ ये भोग विनश्वर हैं सर्पके फणके समान दुख देनेवाले हैं इनसे कभी तृप्ति नहीं होती ये शरीरकी विडंबना करनेवाले हैं और दुखसे उत्पन्न होनेवाले हैं इसलिए ऐसा कौन बुद्धिमान है जो इनका सेवन करे ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य कामज्वरसे संतप्त होकर उसकी शांतिके लिए स्त्री-[illegible] करते हैं वे तेलसे अग्निकी लौको रोकना चाहते हैं ॥ ५४ ॥ यह कामज्वर ब्रह्मचर्य-

वाले उपाध्यायकी भक्ति करना वारहवीं भावना है, शास्त्रोंमें सदा भक्ति रखना तेरहवीं भावना है, छहों आवश्यकोंको पूर्ण रीतिसे पालन करना चौदहवीं भावना है जैन धर्मके माहात्म्यको प्रगट करनेवाली मार्ग-प्रभावना पंद्रहवीं भावना है और सव गुणोंकी खानिके समान धर्मात्माओंमें प्रेम करना सोलहवीं भावना है ॥ ४९-५३ ॥ सम्यग्दर्शनके प्रभावसे बुद्धिमान पुरुषोंको तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करनेवाली ये ही ऊपर लिखी हुई सोलह कारण भावनायें है ॥ ५४ ॥ तीर्थंकर अवतक हुए है अथवा आगे होगे अथवा जो हैं वे सव इन भावनाओं को चिंतवनकर ही हुए हैं और इसी प्रकार होगे ॥ ५५ ॥ यदि केवल सम्यग्दर्शनकी ही विशुद्धि प्राप्त होजाय तो वलवती भावना तीर्थंकर नामकर्मका वंध करती है सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके बिना मनुष्योंको कभी तीर्थंकर नामकर्मका बंध नहीं होता ॥ ५६ ॥ अल्पशक्तिवाला भी जोव सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होकर इन भावनाओंके प्रभावसे तीर्थंकर हो जाता है और सव कर्मोंसे रहित होकर सिद्ध पद प्राप्त करता है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ इसलिये चारों प्रकारके सव संघको मोक्षरूपी स्त्री प्राप्त करनेके लिये मोक्षरूपी लक्ष्मीको उत्तम सखीके समान इन भावनाओंका चिंतवन प्रतिदिन करना चाहिए ॥ ५८ ॥ उन अभयघोष मुनिराजने एकाग्र चित्तसे सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके साथ २ सव भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपनी शक्तिको प्रगटकर जीवन पर्यंत विधिपूर्वक द्रव्य-भाव दोनो प्रकारसे उत्तम संयमका पालन किया ॥ ६० ॥ आयुके अन्त समयमें चारों प्रकारके आहारका त्याग किया, सन्यास धारण किया, पवित्र चारों आराधनाओंका आराधन किया, बिना किसी संकल्प विकल्पके अपना मन परमेष्ठीके चरण कमलोंमें लगाया और सब तरहके प्रयत्नोंके साथ समाधि पूर्वक प्राणोंको छोड़कर असंख्यात सुखोंके सागर ऐसे अच्युत नामके सोलहवें शुभस्वर्गमें वे तीनों ही तपश्चरणके उदयसे वड़ी ऋद्धिके धारी देव हुए ॥ ६१-६३ ॥ वहांपर उन्होंने अपनी अपनी देवियोंके साथ वाईस सागर तक धर्मके प्रभावसे प्राप्त हुए, उपमारहित अत्यन्त सुख देनेवाले स्वर्गके उत्तम भोग भोगे और फिर वाकी वचे पुण्यकर्मके उदयसे आयुके अन्तमें वहांसे च्युत होकर तुम दोनों राजपुत्र हुए हो ॥६४-६५॥

का एक स्थान ऐसा यह शरीर तो कहां ? और तीन लोकका नाथ, सवज्ञ, सुखकी खानि, पवित्र, ज्ञानी पूज्य, शुद्ध, और कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला यह आत्मा कहां ? ज्ञानी पुरुषके शरीर और आत्मा इन दोनोंका सम्बन्ध कैसे हो सकता है यह संबंध तो केवल कर्मोंका किया हुआ है क्योंकि ज्ञानी पुरुष तो अपने उत्कृष्ट आत्माको अपने शरीरसे पृथक् समझता है ॥ ४३-४५ ॥ जिसप्रकार किट्टिकालिमाको जलाकर उससे शुद्ध सुवर्ण अलग ग्रहणकर लिया जाता है उसी प्रकार कर्मरूपी काठसे भरे हुए और अशुभ कर्मोंसे उत्पन्न हुए इस शरीररूपी घरको ध्यानरूपी अग्निसे जलाकर इस शरीरसे ही पवित्र आत्मा को अलग ग्रहण कर लिया जाता है ॥ ४६ ॥ फिर यह जीव समस्त कर्मोंके क्षय होजाने से सर्वज्ञ होकर आत्माका कल्याण करनेवाले, अनंत सुखसे भरे हुए, नित्य और निरामय (रोग आदि दोषोंसे रहित) मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥ ४७ ॥ इसलिये जबतक शरीरमें जीवोंकी ममता (ममत्व बुद्धि) बनी है तबतक वह शरीर भव भवमें प्राप्त होता है। इसलिये चतुर पुरुषोंको वह ममत्व अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ४८ ॥ इसलिये अपने आत्माका हित चाहनेवाले पुरुष दुखोंके निधि और रोग क्लेश करनेवाले शत्रुके समान इस शरीरसे क्या सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४९ ॥ जो धीर वीर पुरुष शरीर पाकर शारीरिक सुख छोड़कर और तपश्चरणकर अपने आत्माका हित सिद्ध करते हैं उन्हींका शरीर सफल समझना चाहिये ॥ ५० ॥ जिसप्रकार ईंधनसे अग्नि बढ़ती है घटती नहीं, उसी प्रकार जो मनुष्य भोगोंसे इस शरीरका लालन पालन करते हैं उन्हें कभी संतोष नहीं हो सकता। उनकी तृष्णा दिन दूनी बढ़ती जाती है ॥ ५१ ॥ इसलिये अनेक प्रकारके भोगोंसे तथा भोगोपभोगकी सामग्रियोंसे क्या लाभ है क्योंकि उनसे सुख देनेवाला संतोष कभी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥ ये भोग विनश्वर हैं सर्पके फणके समान दुख देनेवाले हैं इनसे कभी तृप्ति नहीं होती ये शरीरकी विडंबना करनेवाले हैं और दुखसे उत्पन्न होनेवाले हैं इसलिए ऐसा कौन बुद्धिमान है जो इनका सेवन करे ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य कामज्वरसे संतप्त होकर उसकी शांतिके लिए स्त्रीरूपी औषधिकी इच्छा करते हैं वे तेलसे अग्निकी लौको रोकना चाहते हैं ॥ ५४ ॥ यह कामज्वर ब्रह्मचर्य-

रूपी औषधिसे ही नष्ट होता है इसलिए मनुष्योंको ब्रह्मपद (सिद्धपद) प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मचर्यका ही पालन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ मनुष्योंका जीवन (आयु वा आयुकर्मके निषेक) संख्यात्मक है नियमित है और वह हाथमें रक्खे हुए पानीके समान प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है फिर भला ऐसा बुद्धिमान मनुष्य कौन है जो दीक्षा धारण करनेमें आत्माका हित करनेमें, और धर्म पालन करनेमें देर करे क्योंकि मृत्यु कब आवेगी यह किसीको मालूम नहीं है ॥ ५६-५७ ॥ ये भाई बंधु सब बंधनके समान हैं, चंचल संपदा विपत्ति के समान है राज्य पापकी खानि है और जालके समान फंसानेवाली स्त्रियां पाप उत्पन्न करनेवाली हैं ॥५८॥ ये विषय विषके समान हैं, भोग रोगके समान हैं और मनुष्योंका जीवन सवेरेके समय दाभकी अनीपर लगी हुई पानीकी (ओसकी) बूंदके समान शीघ्रही नष्ट होनेवाला है ॥ ५९ ॥ यदि ऐसा नहीं है तो फिर तीर्थंकर आदि पहिलेके सज्जन लोग घरको छोड़कर तपश्चरण करनेके लिए वनमें क्यों चले गए ॥ ६० ॥ वे घनरथ तीर्थंकर अपने हृदयमें इसप्रकार चिंतवन कर गृहनिवास आदि सब पदार्थोंसे विरक्त हुए और जब वह दीक्षा लेनेके लिए तैयार हुए उसी समय लौकांतिकदेव अपने अवधिज्ञानसे तीर्थंकरकी दीक्षाका समय जानकर उनकी इच्छानुसार प्रार्थना करनेके लिए शीघ्रही भक्तिपूर्वक स्वर्गसे आये ॥ ६१-६२ ॥ उन्होंने पहिलेही मस्तक झुकाकर तीर्थंकरको नमस्कार किया और फिर वे अपनी बुद्धिके अनुसार बड़े भावोंसे सार्थक स्तुति करने लगे ॥ ६३ ॥ हे देव ! आप जगतके स्वामी हैं हे नाथ ! आप तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं। हे समस्त गुणोंके एक स्थान। जिनके कोई आश्रय नहीं है उनके आप भाई हैं ॥ ६४ ॥ आप पूज्योंके भी महापूज्य हैं नमस्कार करनेयोग्योंके भी नमस्कार करने योग्य हैं, स्तुति करने योग्योंके भी स्तुति करने योग्य हैं और सेवा करने योग्य लोगोंके भी सेवा करने योग्य हैं ॥ ६५ ॥ आप देवोंमें महादेव हैं मुनियोंमें महामुनि हैं गुरुओंमें सबसे बड़े गुरु हैं और मान्य जीवोंमें जगतमान्य हैं ॥ ६६ ॥ हे नाथ, आप जानकारोंमें संसारके जानकार हैं ज्ञानियोंमें ज्ञानी हैं बुद्धिमानोंमें महाबुद्धिमान हैं, और व्रतियोंमें उत्तम व्रती हैं ॥ ६७ ॥ आप धर्मात्माओंमें महा धर्मात्मा हैं तपस्वियोंमें महा तपस्वी हैं पवित्रोंमें महा पवित्र हैं और धीर वीर प्राणि-

यह सूर्य है, दशवां सुसम है, यह विद्युत्प्रभ है, यह नीलवाक है यह उत्तरु कुरु है, यह चन्द्र है, यह ऐरावत है और यह प्रसिद्ध माल्यवान् है ॥ ८-१० ॥ इनमेंसे पहिलेके छह सरोवरोंपर (सरोवरोंमें कमलोंपर बने हुए भवनोंमें) श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ये छह व्यंतरी देवी रहती हैं। ये व्यंतरी सौधर्म और ऐसान इन्द्रकी नियोगिनी हैं। बाकीके सरोवरोंमें उसी नामके नागकुमार देव सदा निवास करते हैं। हे महामित्र ! अब मैं आपको दर्शनीय वक्षार पर्वत दिखलाता हूं ॥ ११-१२ ॥ यह चित्रकूट वक्षार पर्वत है, यह पद्मकूट है, यह नलिन है, यह एकशैल है, यह त्रिकूट है, यह वैश्रवणकूट है, यह अंजन है, यह आत्मांजन है, यह शब्दवान् है, यह विकृतवान् है, यह आशीविष है, यह सुखावह है, यह चन्द्रमाल है, यह सूर्यमाल है, यह नागमाल है और यह देवमाल है। इसप्रकार ये सोलह वक्षार पर्वत हैं ॥ १३-१५ ॥ ये वक्षार पर्वत बहुत ऊंचे हैं क्षेत्रोंकी सीमाको विभक्त करनेवाले हैं एक एक पर्वतपर चार २ कूट हैं उनमेंसे एक एक कूटपर श्रीजिनमन्दिर शोभायमान हैं इसप्रकार ये वक्षार पर्वत बहुत ही मनोहर हैं ॥ १६ ॥ ये चार गजदंत हैं जो मेरु पर्वतसे विदिशाओंकी ओर चले गए हैं। गंधमादन, माल्यवान, विद्युत्प्रभ, और सौमनस इनका नाम है इनके शिखरपर अकृत्रिम जिनमंदिर शोभायमान हैं और ये बड़े ही अच्छे जान पड़ते हैं ॥ १७-१८ ॥ ह्रदा, ह्रदवंती, पंकवती, तप्तजला, मत्तजला, महोन्मत्तजला, क्षीरोदा, सीतोदा, श्रोतवाहिनी, गंभीरमालिनी, फेनमालिनी, ऊर्मिमालिनी ये बारह विभंगा नदी हैं ये विदेहके पृथक् पृथक् क्षेत्रोंकी सीमाएं हैं। ए सुन्दर नदियां कुंडोंसे निकलकर महानदियोंमें गिरती हैं ॥ १९-२१ ॥ हे राजन् ! ए कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लांगलावती, पुष्कला, पुष्कलावती, वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, रम्यका, रमणीया, मंगलावती, पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखनलिनी, कुमुदा, सरिदा, वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गंधा, सुगंधा, गंधावती, गंधमालिनी ए विदेहक्षेत्रके बत्तीस क्षेत्र हैं ए सदा बने रहते हैं, धर्मसे विभूषित रहते हैं और स्वर्ग मोक्षके कारण हैं ॥ २२-२६ ॥ हे महाभाग ! इधर देखिए धर्मात्मा लोगोंसे भरी हुई, बहुत ही शोभायमान और चक्रवर्तियोंके निवास करने योग्य ऐसी बस्ती-

स इन देशोंकी राजधानी हैं। क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरी, खड्गा, मंजूषा, औषधि, पुण्डरीकिणी, सुसीमा, कुंडला, अपराजिता, प्रभाकरी, अंकावती, पद्मावती, शुभा, रत्नसंचयपुरी, अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजा, विरजा, अशोका, वीतशोका, विजया, बैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या, अवध्या ए इनके नाम हैं वक्षार पर्वत विभंगा नदी देश राजधानी आदि जो ऊपर बतलाए गए हैं वे सब सीता नदीके उत्तरकी ओर मेरु पर्वतसे लेकर प्रदक्षिणा रूपसे बतलाए गए हैं। इन-के सिवाय राजा मेघरथने भूतारण्य देवारण्य आदि वन देखे, समुद्र देखे तथा मानुषोत्तर पर्वतके भीतर भीतरकी और भी सब चीजें उन्होंने स्वयं देखी और देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ २७-३४ ॥ उन्होंने उत्त-म सामग्री लेकर अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा की, बहुत देरतक भक्तिपूर्वक सैकड़ों स्तुतिओंसे उनकी स्तुति की और उनको नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ इसीप्रकार हृदयमें भक्तिको धारण करनेवाले उन राजा मेघरथने गणधरोंकी तीर्थंकरोंकी और मुनियोंकी पूजा स्तुति की और अनेक प्रकारसे पुण्य उपार्जन किया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्रको देखकर और बहुतसा पुण्य उपार्जन कर राजा मेघरथ अपने नगरको लौट आए ॥ ३७ ॥ उन दोनों व्यंतर देवों ने दिव्य आभरण देकर और सुन्दर मोती भेटकर राजाकी पूजा की और फिर वे अपने स्थानको चले गए ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य प्रत्युपकारकर उपकाररूपी समु-द्रसे पार नहीं होता वह गंधरहित फूलके समान जीता हुआ भी निर्जीवके समान है ॥ ३९ ॥ जब मूर्ग के जीव ही इसप्रकार उपकारको जानते हैं तब फिर मनुष्य अपने शरीरमें क्यों घूनता रहता है यदि वह उपका-र नहीं करसक्ता तो वह अवश्य ही दुष्ट है ॥ ४० ॥ अथानन्तर—किसी एक दिन काल लब्धिसे प्रेरित हुए बुद्धिमान राजा घनरथ अपने मनमें शरीरादिकके लिये इसप्रकार विचार करने लगे ॥ ४१ ॥ कि देखो, यह जीव इस शरीरको इष्ट मानकर इसमें निवास करता है, यह शरीर विष्ठाका घर है और अत्यन्त घृणा करने योग्य है इस बातको यह नहीं जानता है। यह कितने बड़े दुखकी बात है ॥ ४२ ॥ देखो, अत्यन्त घृणा करने योग्य, निंद्य, शुक्र शोणितसे उत्पन्न हुआ सप्त धातुओंसे बना हुआ और समस्त अशुद्ध द्रव्यों

योंमें महा धीर वीर हैं ॥६८॥ आप तीनों लोकोंके स्वामियोंमें स्वामी हैं, चक्रवर्तियोंके भी चक्रवर्ती हैं, सहन शीलोंमें भी सहनशील हैं और जिनेन्द्रोंमें भी परम जिनेंद्र हैं ॥ ६९ ॥ जीतनेवालोंमें सबसे उत्तम जीतनेवाले हैं, विरागियोंमें परम विरागी हैं, रक्षक हैं और ईश्वरोंमें महेश्वर हैं ॥ ७० ॥ जिसप्रकार सूर्यको दीपक चढाते हैं समुद्रको जलांजलि देते हैं और बनस्पतिको पुष्प चढ़ाते हैं उसी प्रकार यह हमारा आपको बोध कराना है ॥ ७१ ॥ आप पहिलेके तीन ज्ञानरूपी (मति श्रुत अवधि) नेत्रोंसे समस्त हेय उपादेयको जानते हैं गुण दोषोंको जानते हैं और बन्ध मोक्ष तथा संसारको जानते हैं ॥ ७२ ॥ आप अन्तरंग वहिरंग लक्ष्मीसे सुशोभित हैं अनंत गुणोंके स्वामी हैं मुक्तिके पति हैं जगतके बांधव हैं और सबके स्वामी हैं इसलिये मन बचन कायसे आपको नमस्कार है ॥ ७३ ॥ इसप्रकार भक्तिपूर्वक उन्होंने उन तीर्थंकरका स्तवन किया, कल्प वृक्षके पुष्पोंसे तथा दिव्य गंधादिकसे उनकी पूजा की, मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार किया, अपना नियोग (कर्त्तव्य) पालन किया और महा पुण्य उपार्जन कर वे आकाश मार्गसे अपने स्थान चले गये ॥ ७४–७५ ॥ इन्द्रोंके साथ साथ चतुर्निकायके देव अपने अपने चिन्होंसे तीर्थंकरके दीक्षा कल्याणको जानकर बड़ी भक्तिसे आये दीक्षा धारण करनेके लिये उन्होंने बड़ी विभूतिसे उनका अभिषेक किया, तथा आभरणादिकोंसे उनकी पूजा की, ॥ ७६-७७ ॥ तदनन्तर उन घनरथ तीर्थंकरने मेघरथका राज्याभिषेक किया, और अपनी विभूतिके साथ साथ बुद्धिमानोंको त्याग करने योग्य राज्य उनको समर्पण किया ॥ ७८ ॥ फिर वे भगवान अनेक प्रकारको शोभासे सुशोभित दिव्य पालकीमें विराजमान होकर सब देवोंके साथ बनमें गये ॥ ७९ ॥ वहां जाकर उन भगवानने मन बचन कायकी शुद्धि और सिद्ध भगवानकी साक्षी पूर्वक वस्त्रादिक वाह्य परिग्रहोंका त्याग किया और मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रहोंका त्याग किया ॥ ८० ॥ उन्होंने मस्तक पर पंचमुष्टि लोंच किया और इन्द्रोंके द्वारा की हुई पूजासे पूज्य होकर उत्तम संयम धारण किया ॥ ८१ ॥ वे जितेंद्रिय बुद्धिमान भगवान मन बचन कायकी शुद्धि धारण करने लगे और क्षमा द्वारा कषायरूपी विषका नाश करने लगे ॥ ८२ ॥ शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले उन धीर वीर भगवानने शुक्ललेश्या, महाध्यान और मौन-

व्रत धारणकर तथा चारों ज्ञानोंसे परिपूर्ण होकर तपश्चरण करना प्रारम्भ किया ॥ ८३ ॥ उन्होंने कभी तो आत्मासे प्रगट हुआ ध्यान धारण किया कभी तत्वोंका चिंतवन किया, कभी व्युत्सर्ग धारण किया और कभी दृढ़ वज्रासन धारण किया ॥ ८५ ॥ उन्होंने क्षपकश्रेणीका आश्रय लेकर दूसरे शुक्लध्यानरूपी वज्रसे अशुभघातिया कर्मरूपी पर्वतोंका चकनाचूर कर डाला और शीघ्र उसी समय समस्त तत्वोंको प्रकाशित करने-वाला, तीनों कालोंकी पर्यायोंको जाननेवाला,, सदा रहनेवाला और मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाला केव-लज्ञान प्राप्त किया ॥ ८५-८६ ॥ तदनन्तर केवलज्ञान प्राप्त होनेके प्रभावसे इन्द्रादि सब देवोंके आसन कंपायमान हुए, अवधिज्ञानसे जानकर वे सब आए, उन्होंने आते ही भगवानकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, उन्हें नमस्कार किया समवसरणमें बिराजमान किया और प्रसन्न होकर मन वचन कायसे भक्तिपूर्वक उत्तम सामग्रीसे उन भगवानकी पूजा की ॥ ८७-८८॥ तदनन्तर वे भगवान अरहंतदेव भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिये देवोंके साथ और चार प्रकारके सब संघके साथ विहार करने लगे ॥ ८९ ॥ अथानन्तर-राजा मेघरथ नवीन राज्य लक्ष्मीको पाकर तथा मनमें धर्मको धारणकर निरंतर भोग भोगने लगे ॥ ९० ॥ वे राजा मेघरथ सत्पात्रोंके लिए भक्ति पूर्वक सदा स्वर्ग मोक्ष देनेवाला और गुणोंकी खानि ऐसा चार प्रकारका दान देने लगे॥ ९१ ॥ जिन मंदिरमें जाकर वे अनेक प्रकारसे समस्त दुखोंको दूर करनेवाली सब प्रकारके सुख देनेवाली और विघ्नोंको नाश करनेवाली भगवानकी पूजा करने लगे ॥ ९२ ॥ इसप्रकार धर्मके प्रभा-वसे सब दुखोंसे रहित वे राजा मेघरथ शत्रुरहित विशाल और प्रबल राज्यको पाकर भाई बन्धुओंके साथ तथा सुन्दर स्त्रियोंके साथ सदा उत्तम सुखका अनुभवन करने लगे ॥९३॥ वे राजा मेघरथ समस्त गुणोंका समुद्र स्वर्गकी सीढ़ी, सब सुखोंका निधान मुक्तिरूपी स्त्रीको देनेवाला, सब दोषोंसे रहित, पूज्य, आठ अंग सहित, उपमारहित और सबमें सार ऐसे सम्यग्दर्शनका पालन करने लगे ॥ ९४ ॥ वे मेघरथ यद्यपि तीनों ज्ञानोंसे विभूषित थे तथापि वैराग्य प्राप्त करनेकेलिये प्रति दिन श्रीगुरुदेवके मुखसे श्रेष्ठधर्मके एक स्थान इन्द्रके द्वारा पूज्य अशुभ कर्मोंको नाश करनेवाले मोक्षमार्गको दिखलानेकेलिए दीपकके समान अज्ञानरूपी

घने अन्धकारको नाश करने वाले और सारभूत श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुये शास्त्रोंको सुनते थे ॥ ९५ ॥ वे राजा मेघरथ स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेकेलिये गृहस्थोंके द्वारा सेवन करने योग्य सारभूत श्रेष्ठपुण्यके द्वारा अतिशय सुख देनेवाले निर्मल शुद्ध स्वर्गकी विभूति देनेवाले और पाप कर्मोंको प्रत्यक्ष नाश करनेवाले बारह प्रकारके व्रतोंको अतिचार रहित और सम्यग्दर्शनसहित पालन करते थे ॥ ९६ ॥ वे महाराज मेघरथ निर्मल मोक्ष सुख प्राप्त करनेके लिये पर्वके दिनोंमें घरके समस्त कर्मोंको त्यागकर अशुभ कर्मोंको दूर करनेवाले और सुख उत्पन्न करनेकेलिए खानिके समान सदा प्रौषधोपवास करते थे ॥ ९७ ॥ इसीप्रकार मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए वे राजा मेघरथ बड़ी भक्ति पूर्वक उत्तम सामग्रीसे देव शास्त्र गुरुकी पूजा करते थे समस्त कर्तव्योंको पालन करनेवाले धर्मात्माओंकी पूजा करते थे और सबकी बन्दना करते थे ॥ ९८ ॥ वे राजा मेघरथ मोक्ष सुख प्राप्त करनेके लिये प्रेमपूर्वक दान व्रत आदिके द्वारा समस्त सुखोंके सागर और दोष भय शोक आदि सबको दूर करनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुये धर्मका सदा पालन करते थे ॥ ९९ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है भव्य जीवोंको इतनेमें ही समझ लेना चाहिये कि राजा मेघरथको धर्म उपार्जन करनेसे धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंका देनेवाली सुखकी खानि और पुण्य उत्पन्न करनेवाली तीनों लोक सम्बन्धी देव मनुष्यों की बिभूति प्राप्त हुई थीं, यही समझ कर बुद्धिमानोंको स्वर्ग मोक्षको वश करनेवाले और सब तरहके सुख देनेवाले धर्मका सदा पालन प्रयत्नपूर्वक करते रहना चाहिये ॥ ३०० ॥ जो श्रीशांतिनाथ पांचवें चक्रवर्ती थे अत्यन्त सुन्दर थे, इन्द नरेन्द्र सब जिनको नमस्कार करते थे, जो कामदेव थे, जो अत्यन्त रूपके सारसे बने हुये थे, लावण्यके समुद्र थे, तीर्थंकर थे, अत्यन्त गुणोंसे भरे हुए थे और तीनों लोकोंमें पूज्य थे, ऐसे श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर सब संघको और मुझको शान्ति प्रदान करें ॥ ३०२ ॥

इसप्रकार शांतिनाथ पुराणमें राजा मेघरथके भवको वर्णन करनेवाला यह दशवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवां अधिकार ।

मैं शांतिरूप गुणको प्राप्त करनेकेलिए संसारकी समस्त अशांतिको दूर करनेवाले और शांतिरूपी गुणके समुद्र ऐसे श्रीशांतिनाथको मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अथानन्तर—किसी एक दिन राजा मेघरथ अपनी देवियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए अनेक वृक्षोंसे भरे हुए देवरमण नामके उद्यानमें गए ॥ २ ॥ वहां जाकर उहोंने उस वनको देखा, क्रीड़ाकी और फिर अपनी देवियोंके साथ एक चंदकांत शिलापर विराजमान हुए ॥ ३ ॥ उसी समय कोई एक विद्याधर विमानमें बैठा हुआ उनके ऊपरसे जा रहा था परन्तु उनके ऊपरसे जानेके कारण वह विमान रुक गया और बड़े पत्थरके समान भारी होगया ॥४॥ विमानको रुका हुआ देखकर वह सब दिशाओंकी ओर देखने लगा और नीचेकी ओर किरणोंसे व्याप्त और राजा मेघरथसे शोभायमान एक शिला देखी ॥ ५ ॥ उसे देखते ही वह उस शिलाके नीचे घुस गया और अपनी विद्यासे क्रोधपूर्वक अपने हाथसे ही उसे जवर्दस्ती उठानेका प्रयत्न करने लगा ॥ ६ ॥ तब राजा मेघरथने उस शिलाको अपने पैरके अगूंठेसे दावकर उसी समय उस विद्याधरको दवाया, दुखी किया ॥ ७ ॥ पैरके दबानेसे उस शिलाका बोझ उस विद्याधरपर बहुत पड़ा वह उस दुखको सह नहीं सका इसलिये कातर होकर दीन मनुष्यके समान शीघ्र ही करुणा भरे शब्दोंमें रोने लगा ॥ ८ ॥ उसके रोनेकी आवाज सुनकर विद्याधरी विमानसे उतरी शोकसे उसका मुख सूख गया और वह महाराज मेघरथसे कहने लगी ॥ ९ ॥ कि हे नाथ ! मुझपर दया कीजिए। हे प्रभो ! इस मेरे पतिको छोड़िए और शीघ्र ही मुझे पतिकी भीख दीजिए, नहीं तो आज मैं अनाथ हो जाऊंगी ॥ १० ॥ उस विद्याधरीकी यह बात सुनकर धर्मात्मा मेघरथने कृपा पूर्वक उसी समय उस शिलासे अपना पैर उठा लिया ॥ ११ ॥ यह सब देखकर रानी प्रियमित्रा कहने लगी कि हे नाथ ! यह विद्याधर कौन है ? और इसने ऐसा क्यों किया ? ॥ १२ ॥ तब राजा मेघरथ कहने लगे कि हे भार्ये ! तू अपना चित्त एकाग्र कर सुन, मैं इस विद्याधरकी

क्रोध और अहंकारसे उत्पन्न होनेवाली कथा कहता हूं ॥१३॥ इसी मनोहर विजयार्द्ध पर्वतपरकी अलकापुरी नगरीमें राजा विद्युद्दंष्ट्र राज्य करता था उसकी सुन्दर रानीका नाम अनिलवेगा था ॥ १४ ॥ उन दोनोंका यह सिंहरथ नामका पुत्र है। आज यह केवल ज्ञानसे विभूषित होनेवाले श्रीअमितवाहन तीर्थंकरकी बन्दना करके लौटा है। आकाशमार्गसे मेरे ऊपर होकर जा रहा था परन्तु किसी कारणसे आकाशमें ही इसका विमान रुक गया ॥ १५—१६ ॥

विमानको रुका हुआ देखकर सब ओर देखने लगा, मुझे देखकर अभिमान और क्रोधसे इस शिलाके नीचे घुस गया और इस शिलासहित मुझे उठानेका प्रयत्न करने लगा ॥ १७ ॥ तब मैंने इस कुमार्गगामीको अपने अंगूठेसे दबाया। इसको छुड़ानेके लिए यह इसकी स्त्री आई है इसप्रकार राजा मेघरथने उस विद्याधरकी कथा सुनाई ॥ १८ ॥ यह सुनकर प्रियमित्रा बोली कि इसके क्रोधका कारण यही है या और कुछ है ? यह भी आप बतलाईये ॥ १९ ॥ इसके उत्तरमें राजा मेघरथ कहने लगे कि इसके क्रोधका कारण यही है और कुछ नहीं है मैं इस विद्याधरके पूर्व भव कहता हूं तू सुन ॥ २० ॥ धातकीखंड द्वीपमें पूर्व मेरुके उत्तर दिशाकी ओर मनोहर ऐरावत क्षेत्र है उसमें एक शंखपुर नगर है जो जैनधर्मके उत्सवोंसे शोभायमान है। उसमें पुण्यकर्मके उदयसे शुद्ध हृदयवाला राजा राजगुप्त राज्य करता था ॥ २१—२२ ॥ उसकी सदाचारिणी रानीका नाम शंखिका था। किसी एक दिन वे दोनों मुनिराजकी बन्दना करनेके लिए शंख नामके पर्वतपर गए थे ॥ २३ ॥ वहांपर सर्वगुप्त नामके मुनि बिराजमान थे उनकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं नमस्कार किया और धर्मश्रवण करनेके लिए भक्तिपूर्वक उनके चरणोंके समीप बैठ गये ॥ २४ ॥ मुनिराजने मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अनेक सुखोंका समुद्र ऐसा मुनि और श्रावकोंका अहिंसा लक्षणरूप धर्मका स्वरूप निरूपण किया ॥२५॥ तथा उन्होंने उन दोनोंके सामने सुख देनेवाली जिनेन्द्र पदको प्रदान करनेवाली और सार गुणसंपति नामकी उपवासकी विधि कही ॥ २६ ॥ उस व्रतका नाम सुनकर राजाने उस मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! वह व्रत किसप्रकारसे किया जाता है आप कृपाकर कहिये ॥ २७ ॥ मुनिराजने कहा कि हे राजन्,

सुन—मैं जिनगुणसंपत्ति नामके शुभ व्रतको कहता हूं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य श्रीजिनेन्द्रदेवकी विभूति देनेवा-
ले इस व्रतको मन वचन कायकी शुद्धतासे पालन करता है वह मनुष्य और देवोंके सुख भोगकर अनुक्रम-
से मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥ २९ ॥ पहिले जिनालयमें बड़े उत्सवसे भगवानका अभिषेक करना चाहिये
और फिर भव्य जीवोंको विधिपूर्वक उसका विधान करना चाहिये ॥ ३० ॥ तीर्थंकर पदको देनेवाले सोलह
कारणोंको उद्देश्य कर बुद्धिमानोंको सोलह उपवास करने चाहिये । फिर पांचों महाकल्याणोंको उद्देशकर
भक्तिपूर्वक सब कल्याणोंको करनेवाले पांच प्रोषधोपवास करने चाहिये फिर आठों प्रातिहार्योंका निमित्त
लेकर भक्तिपूर्वक प्रातिहार्यादिककी विभूति देनेवाले आठ उपवास करने चाहिये ॥ ३१-३३ ॥ फिर जिनेन्द्र-
देवकी विभूति देनेवाले चौंतीस अतिशयोंको उद्देश्य कर भावपूर्वक चौंतीस उपवास करने चाहिये ॥ ३४ ॥
इसप्रकार भव्य जीवोंको अनेक सुख देनेवाले और कर्मोंको नाश करनेवाले सब प्रोषधोपवासोंकी संख्या
तिरेसठ होती है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार व्रतोंके पूर्ण होनेपर बुद्धिमानोंको अपनी शक्तिके अनुसार भगवानका
महाअभिषेक कर और धर्मोपकरण चढ़ाकर उद्यापन करना चाहिये ॥ ३६ ॥ जिनके पास धन नहीं है अथवा
किसी भी कारणसे जिनमें उद्यापन करनेकी शक्ति नहीं है उनको भक्तिपूर्वक अनेक सुख देनेवाले इस उत्तम
व्रतका विधान दूना करना चाहिए । और दूने प्रोषधोपवास करने चाहिए ॥ ३७ ॥ राजाने अपनी रानीके
साथ एकाग्रचित्त होकर विधिपूर्ठक उस व्रतका पालन किया और अपनी शक्तिके अनुसार उसका उद्यापन
किया ॥ ३८ ॥ मुनिराजकी बंदना करनेके बाद राजाने मुनिराजको नमस्कार किया, श्रावकके व्रत स्वीकार
किए और भक्तिपूर्ठक व्रतोंको लेकर प्रसन्न होकर अपने घर गया ॥ ३९ ॥ किसी एक दिन द्वारापेक्षण करते
हुए राजाने स्वयं आए हुए और गुणोंके घर ऐसे धृतिषेण मुनिके दर्शन किए, भक्तिपूर्ठक उनका प्रतिगाहन
किया, और सुखका सागर, तृप्ति करनेवाला, मिष्ट, रसीला, और और सारभूत शुद्ध आहार दिया ॥ ४०-४१ ।
उसी समय प्राप्त हुए पुण्य कर्मके उदयसे उसके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई सो ठीक ही
है सुदानसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ किसी एक दिन राजाको

मालूम हुआ कि मेरी दुर्लभ आयु थोड़ी रह गई है यह जानकर वह प्रसन्न होकर समाधिगुप्त मुनिके निकट पहुंचा ॥ ४३ ॥ मनमें वैराग्य धारण करते हुए उस राजाने उन मुनिराजको नमस्कार किया और पाप शांत करनेके लिए व्रतपूर्वक संन्यास धारण किया ॥ ४४ ॥ उसने भूख प्यास आदि सब घोर परीषह सहन कीं और समाधिपूर्वक धर्मध्यानसे प्राणोंका त्याग किया ॥ ४५ ॥ वह राजा राजगुप्त व्रत दान और सन्यास आदि से प्राप्त हुए पुण्यकर्मके उदयसे ब्रह्मस्वर्गमें ब्रह्म नामका इन्द्र हुआ ॥ ४६ ॥ वहांपर वह पहिले उपार्जन किए हुए पुण्यकर्मके उदयसे इन्द्राणीके साथ इन्द्रकी लक्ष्मीका उपभोग करने लगा और इसप्रकार दश सागरकी आयु पूरी की ॥ ४७ ॥ आयु पूरी होनेपर वहांसे च्युत हुआ और बाकी बचे हुए पुण्यकर्मके उदयसे विद्याधर कुलमें यह श्रीमान् सिंहरथ विद्याधर हुआ है ॥ ४८ ॥ शंखिका भी संसारमें परिभ्रमणकर तपश्चरणके प्रभावसे विमानादिकोंसे सुशोभित और सुखके स्थान ऐसे देवलोकमें जाकर उत्पन्न हुई ॥ ४९ ॥ वहांसे चयकर विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके अवस्वालपुर नगरके राजा इन्द्रकेतुकी रानी सुप्रभावतीसे पुण्यकर्मके उदयसे यह मदनवेगा नामकी सती और सुलक्षणोंवाली पुत्री हुई है ॥ ५०-५१ ॥ इसप्रकार अपने पहिले भव सुनकर वह विद्याधर बहुत संतुष्ट हुआ, राजा मेघरथके पास आकर उन्हें नमस्कार किया, योग्य पदार्थोंसे उनकी पूजा की और घर भोग संसार शरीरसे विरक्त होकर दीक्षा लेनेकी इच्छासे स्त्रीके साथ अपने घरको चला गया ॥ ५२-५३ ॥ उसने घर जाकर सज्जनोंके द्वारा त्याग करने योग्य ऐसे राज्यका कठिन भार अपने सुवर्णतिलक नामके पुत्रको दिया और चारित्रसे उत्पन्न हुआ उत्तम सुगम भार ग्रहण करनेके लिए मुक्तिरूपी स्त्रीके पति और जगतके स्वामी, ऐसे घनरथ तीर्थंकरके समीप पहुंचा ॥ ५४-५५ ॥ वहांपर जाकर उस सिंहरथ विद्याधरने मस्तक झुकाकर उन तीर्थंकरकी वंदना की और मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अनेक राजाओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक दीक्षा धारण की ॥ ५६ ॥ विद्याधरी मदनवेगाने भी गुणोंकी स्थानभूत प्रियमित्रा नामकी गणिनीके पास जाकर दीक्षा धारण की और सबप्रकारका तपश्चरण करने लगी ॥ ५७ ॥ देखो, काललब्धि पाकर भव्यजीवोंका क्रोध भी कभी कभी चारित्र आदिको धारण करनेमें पापकर्मोंके दूर

करनेका कारण माना जाता है ॥ ५८ ॥ तदनन्तर अखण्ड महिमाको धारण करनेवाले बुद्धिमान राजा मेघर
थ भी अपनी रानियोंके साथ निर्विघ्न रीतिसे अपने घर पहुंचे ॥ ५६ ॥ अथानन्तर—किसी एक दिन राजा
मेघरथ महापूजाकी योग्य सामग्रीसे पापोंको नाश करनेवाली नन्दीश्वरको पूजाकर उपवास करते हुए विरा-
जमान थे, उस दिन उन्होंने घरका सब आरम्भ आदि छोड़ दिया था, अपने पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए
राज्यके महोदयसे धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होनेसे उनके मनोरथ सब पूर्ण हो गए थे,
तत्वोंकी यथार्थ श्रद्धासे वे सुशोभित थे, शास्त्रोंके पारगामी थे, व्रत शील आदि गुणोंसे विभूषित थे, श्रेष्ठ
धर्मका पालन करते थे, करुणादान आदि करनेमें तत्पर थे, वे भव्योंके लिये सूर्यके समान थे, उनके ज्ञानरू-
पी नेत्र सदा खुले रहते थे, पुत्र, भाई, स्त्री आदि सब कुटुम्ब उनकी सेवा करते थे और वे सदा जैन धर्मका
उपदेश दिया करते थे। जिस समय वे उपवास करते हुए विराजमान थे और सब कुटुम्बी जन उनके समी-
प बैठे हुए थे उसीसमय भयसे घबड़ाता हुआ और कांपता हुआ एक कबूतर जीवित रहनेकी इच्छासे उन-
के पास आया ॥ ६०-६४ ॥ उसके पीछे ही उसके मांसके खानेका लोलुपी, महाक्रूर और दुष्ट ऐसा बूढ़ा गीध
आया ॥ ६५ ॥ वह गीध महाराज मेघरथके सामने खड़ा होकर दीन वाणीसे कहने लगा कि हे देव ! मैं
अत्यन्त दुर्बल हूं और भूखकी बड़ी भारी वेदनासे घबड़ाया हुआ हूं इसलिये यह कबूतर जो मेरा भक्ष्य
है और आपकी शरण आया है इसे मुझे दे दीजिये क्योंकि आप दानशूर हैं। यदि आप इसे मुझे न देंगे
तो बस, मुझे यहांपर ही मरा हुआ समझिये ॥ ६६-६७॥ इसप्रकार दीन बचन कहकर वह भूखा पक्षी खड़ा
होगया। उस पक्षीकी बात सुनकर मेघरथका भाई दृढ़रथ कहने लगा। कि हे पूज्य! इस गीधकी बात सुनकर मुझे
बड़ा आश्चर्य हुआ है, यह इस प्रकार किस कारणसे कहता है पहिले भवके किसी बैरसे अथवा केवल जातिबै-
रसे आप यह सब भेद बतलाइए।६६। तब मेघरथ कहने लगे कि हे भाई मन लगाकर सुन, मैं इनके पहिले जन्म
बैरसे उत्पन्न होनेवाली और लोभियोंको भय उत्पन्न करनेवाली इन दोनोंकी कथाको कहता हूं ॥ ७० ॥ इसो
जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें ऐरावत क्षेत्र है उसके मनोहर पद्मिनीखेट नामके नगरमें एक साग-

रसेन नामका बणिक रहता था, उसकी स्त्रीका नाम अमितमती था, उनके दो पुत्र थे, बड़े लोभी थे, धनके बड़े लालची थे, धनमित्र और नंदिषेण उनका नाम था वे बड़े क्रूर थे, सदा द्रव्य पानेकी इच्छा रखा करते थे और इसीलिए सदा आर्तध्यानमें लीन रहते थे, ॥ ७१-७३ ॥ किसी एक दिन वे दोनों ही दुष्ट व मूर्ख किसी धनके लिये परस्पर लड़ने लगे, दोनोंने एक दूसरेको मारा, दोनोंको भारी चोट पहुंची और उस तीव्र दुखसे दोनों मर गये ॥ ७५ ॥ वे दोनों आर्तध्यानसे मरे थे, कुमार्गगामी थे, दोनोंने आपसमें बैर बांध रक्खा था इसलिये वे मरकर अनेक दुखोंसे दुखी ऐसे वे दोनों पक्षी हुए हैं ॥ ७५ ॥ उस गोधके पीछे एक देवको आते हुए देखकर छोटे भाई दृढरथने पूछा कि हे भाई ! कहिये यह देव कौन है और क्यों आया है ॥ ७६ ॥ इसके उत्तरमें मेघरथ कहने लगे कि हे भाई ! ध्यान देकर सुन मैं इसके पहिले भवकी कथा कहता हूं और इसके आनेका कारण भी बतलाता हूं ॥ ७७ ॥ पहिले तेने विजयार्द्ध पर्वतपर दमतारिके साथ युद्ध करते समय क्रोधपूर्वक राजपुत्र हेमरथको मारा था वह मरकर संसारमें परिभ्रमणकर शुभकर्मके उदयसे जिन चैत्यालयोंसे सुशोभित कैलाश पर्वतके किनारे पर्णकांता नदीके तटपर एक सोम नामका तापसी रहता था, श्रीदत्ता उसकी स्त्रीका नाम था उनके चन्द्र नामका पुत्र हुआ था ॥ ७९-८० ॥ कुशास्त्रोंको जानकर और कुमार्गगामी वह मूर्ख भोगादिकोंकी इच्छा करता हुआ प्रतिदिन पंचाग्नि तप तपता था ॥ ८१ ॥ अज्ञानपूर्वक कष्ट सहनेके कारण आयु पूरी होनेपर वह ज्योतिर्लोकमें जाकर यह नीच ज्योतिषी देव हुआ ॥ ८२ ॥ किसी एक दिन यह देव विनोद पूर्वक चैत्यालयोंसे सुशोभित और महामनोहर ऐसे ऐशान स्वर्गको देखनेके लिये गया था ॥ ८३ ॥ वहांपर ईशान इन्द्रकी सभाके सभासद देवोंने कुछ मेरी प्रशंसा की थी और कहा था कि इस पृथ्वीपर दान देनेवाला एक मेघरथ ही है इस समय उसके समान अन्य कोई नहीं है वह दान आदिका विचार करनेवाला है और व्रती है उस प्रशंसाको सुनकर हृदयमें डाह उत्पन्न होनेके कारण मेरी परीक्षा लेनेकेलिये आया है ॥ ८४-८५ ॥ इसलिए हे भाई ! अब तू मन लगाकर दानादिकका लक्षण सुन। मैं पात्र, देने योग्य द्रव्य और विधि आदि सब कहता हूं ॥ अनुग्रह वा उपकार करनेके लिए अपना धन या और कोई

पदार्थ देना दान है। उपकार भी अपना उपकार और: दूसरेका उपकार ऐसे दो प्रकारका होता है ॥ ८७ ॥ दान देनेसे जो विशेष पुण्य होता है, जो कि भोगभूमि और स्वर्गका कारण है तथा उससे जो निर्मल यश फैलता है वह अपना उपकार कहलाता है ॥ ८८ ॥ उस दानसे लेनेवाले पात्र लोगोंके प्राणोंकी रक्षा होती है उससे वह धर्मध्यान व्युत्सर्ग, छह आवश्यक तप और व्रत पालन करता है उसका चित्त स्थिर रहता है, उसकी भूखका नाश होता है, उससे सुख पहुंचता है और वह उससे शास्त्रोंका पठन पाठन करता है वह सब परोपकार कहलाता है ॥ ८९-९० ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने श्रद्धा, भक्ति निर्लोभता, शक्ति, ज्ञान, दया, क्षमा ये दाताओंके सात गुण बतलाये हैं ॥ ९१ ॥ संसारमें इन ऊपर लिखे गुणोंसे सुशोभित, सम्यग्दृष्टी, व्रती, जिनभक्त और सदाचारी उत्तम दाता गिना जाता है ॥ ९२ ॥ अब देने योग्य पदार्थ बतलाते हैं सद्गृहस्थोंको पात्रोंके लिये आहार दान देना चाहिए। वह आहार कृतकारित आदि दोषोंसे रहित होना चाहिए मनोहर, निर्दोष, प्रासुक, शुभ किसी प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न न करनेवाला, दाता पात्र दोनोंके गुणोंको बढाने वाला, अनुक्रमसे मोक्षका साधन उद्गमादि दोषों से रहित, प्रासुक, मधुर, पात्रके ज्ञान चारित्र आदिको बढाने वाला, तृप्ति करनेवाला और अत्यन्त निर्दोष होना चाहिये और वह विधिपूर्वक दिया जाना चाहिए ॥ ९३-९५ ॥ इसीप्रकार पात्रों के शरीरमें कोई व्याधि जानकर बुद्धिमानों को हिंसा आदि पाप कर्मोंसे रहित तैयार की गई और समस्त रोग क्लेश आदिको दूर करनेवाली औषधि उन पात्रों के लिए देना चाहिए ॥ इसीप्रकार ज्ञानी मुनियों के लिए बुद्धिमानोंको ज्ञानदान वा शास्त्रदान देना चाहिए। वे शास्त्र सर्वज्ञ प्रणीत, पदार्थोंके सत्यार्थ स्वरूपको कहनेवाले दीपकके समान समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेवाले, अज्ञानको दूर करनेवाले, ज्ञानके कारण, धर्मका उपदेश देनेवाले, पूर्वापर विरुद्धता आदि दोषों से रहित और गुणों को प्रगट करनेके लिए खानिके समान होने चाहिए ॥ ९७-९८ ॥ चतुर पुरुषों को दयादान सब जीवों में करना चाहिए क्यों कि यह दयादान ही धर्मकी जड़ है, गुणों का स्थान है और सब जीवों का हित करनेवाला है ॥ ९९ ॥ हे भाई। इस संसारमें मुनिराज ही सब तरहके परिग्रहों से रहित हैं रत्नत्रयसे विभूषित हैं, सब जीवों का हित करने वाले हैं, धीर वीर हैं,

लोभ आदि सब विकारोंसे रहित हैं, ज्ञानध्यानमें लीन रहते हैं, चतुर हैं, संसाररूपी समुद्रके पारगामी हैं, भव्य दाताओंको संसारसे पारकर देनेवाले हैं, समस्त परीषहोंको जीतनेवाले हैं, बारह प्रकारका तपश्चरण करनेवाले हैं, शरीरके संस्कारसे रहित हैं, काम और इंद्रियरूपी मदोन्मत्त हाथियोंकी सेनाके लिये सिंहके समान हैं, सातों ऋद्धियोंसे विभूषित हैं इंद्र नरेंद्र आदि सबके द्वारा पूज्य हैं, द्वादशांग श्रुतज्ञानरूपी महासागरके मध्यमें क्रीड़ा करनेवाले हैं, तीनों समय योगोंमें आसक्त रहनेवाले हैं, मोक्षकी इच्छा रखते हैं, वनमें निवास करते हैं, संसारसे भयभीत हैं, सुवर्ण और तृण सबको समान समझते हैं, अनेक गुणोंसे विभूषित हैं और सब दोषोंसे रहित हैं ऐसे मुनिराजोंको ही उत्तम सत्पात्र समझना चाहिये ॥ १००-१०५ ॥ जो मुनि अत्यन्त दुस्तर ऐसे इस संसाररूपी महासागरसे स्वयं पार हों और दातओंको पार कर दें उन्हींको उत्तम पात्र समझना चाहिये ॥ ६ ॥ पात्रदानका फल भोगभूमि में प्राप्त होता है जहां कि मिथ्यादृष्टी भी अनेक प्रकारके सुख प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ वहांपर उन्हें दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुये इच्छानुसार सुख प्राप्त होते हैं और फिर देवियोंके समूहसे उत्पन्न होनेवाले देवगतिके सुख मिलते हैं ॥ ८ ॥ सम्यग्दृष्टी जीव सुपात्रोंको दान देनेसे अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे भरे हुये और सुखके सागर ऐसे सोलहवें स्वर्गमें जाकर उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ पात्रदानकी अनुमोदना करनेसे मनुष्य तथा पशु भी अनेक सुखोंसे भरी हुई भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ हे भद्र ! पात्रोंको दान देना गृहस्थोंके लिए महापुण्य का कारण है इस लोक परलोक दोनों लोकोंमें अनेक प्रकारकी विभूति देनेवाला है और यशका हेतु है ॥ ११ ॥ इसलिये गृहस्थोंको स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये मन वचनकायकी शुद्धिपूर्वक सुपात्रोंको चारों प्रकारका दान सदा देते रहना चाहिये ॥ १२ ॥ मांस वा सुवर्ण आदिका दान कभी नहीं देना चाहिये क्योंकि वह कुदान है पापोंका सागर है और दाता दोनोंके लिये नरकका कारण है ॥ १३ ॥ लोभके कारण जो दुष्ट विषयी, मांस आदि कुदान लेनेकी इच्छा करता है वह कभी पात्र नहीं हो सकता ॥ १४ ॥ जो मूर्ख मांस आदि कुदानोंको देता है वह कभी दाता नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह उस पापसे अपनेको

और दूसरोंको भी नरकमें गिराता है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख कुदान देता है और लेता है वे दोनों ही पापकर्मके उदयसे नरकके स्वामी होते हैं ॥ १६ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको कंठगत प्राण होनेपर भी नरकका मार्ग और पापोंका घर ऐसा कुदान कभी नहीं देना चाहिये ॥ १७ ॥ अतएव यह गीध सत्पात्र नहीं है क्योंकि यह दूसरे जीवोंके मांसका लोलुपी है, दुष्ट है, विषयांध है और अनेक जीवोंकी हिंसा करनेवाला है ॥ १८ ॥ यह कबूतर भी देने योग्य नहीं है क्योंकि यह भद्र है, केवल दाने चुगता है भयसे इसका सब शरीर कंप रहा है यह क्षुद्र जीव है और अपने शरण आया है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य शरण आए हुये और भयसे घबराये हुये पशु मित्र वा शत्रुको दे देते हैं संसारमें वे सबसे नीच हैं उनके समान और कोई नीच नहीं है ॥ २० ॥ भयसे घबड़ाया हुआ यह कबूतर अपने शरण आया है इसलिये इस गीधको यह कभी नहीं देना चाहिये ॥ २१ ॥ अत्यन्त रौद्र परिणामोंको धारण करनेवाले इस गीधका जीना व मरना जो कुछ इसके कर्म के उदयके अनुसार होनहार होगा वही होगा। क्योंकि इस संसारमें पुण्यपापको धारण करनेवाले जीव सदा अपने कर्मके उदयसे मरते हैं और अपने कर्मके उदयसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ २२-२३ ॥ रौद्र परिणामोंको धारण करनेवाले कितने ही जीव पाप कर्मके उदयसे परस्पर एक दूसरेको खाते हैं अथवा जाति वैर अथवा अत्यन्त बैरके कारण परस्पर युद्ध करते हैं॥ २४ ॥ इसलिये धर्मात्मा जीवोंको धर्मकी प्राप्ति और दया पालन करनेके लिये भयसे डरे हुए जीवोंकी प्रतिदिन शुभ रक्षा करनी चाहिये ॥ २५ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने जीवों पर दया करना ही धर्म बतलाया है, इसलिए इस कबूतरकी हमें रक्षा ही करनी चाहिये ॥ २६ ॥ इसप्रकार राजा मेघरथकी वाणी सुनकर उस देवको निश्चय होगया और उसने आकर भक्तिपूर्वक उनके चरणोंको नमस्कार किया तथा उनकी स्तुति की ॥ २७ ॥ वह कहने लगा कि हे देव ! आप महान् पुरुषोंके द्वारा भी पूज्य हैं, दानकी विधि आदि जाननेवाले आपही हैं आप देवोंके द्वारा स्तुति करने योग्य हैं और तीनों ज्ञानरूपी नेत्रोंसे विभूषित हैं ॥ २८ ॥ हे देव ! हे नराधीश ! आपकी कीर्ति स्वर्गमें भी देवोंके कानोंमें कुंडलोंके समान सुशोभित होती है इसलिये आपको धन्य है ॥ २९ ॥ इसप्रकार उस ज्योतिषी देवने महाराज

मेघरथकी स्तुति की, उनसे अपनी स्वर्गकी सब कथा कही, दिव्य वस्त्र भूषण माला आदिसे उनकी पूजा की, नम्र और शुभ वचनोंसे बारबार उनकी प्रशंसा की अरौ फिर वह उनको नमस्कारकर प्रसन्नताके साथ अपने स्थानको चला गया। उन दोनों गीध और कबूतरने भी अपने पहिले भवके बैरकी कथा सुनकर और उसे समझकर शीघ्र ही परस्पर दोनोंने अपना २ बैर छोड़ दिया। उन दोनोंने अनेक प्रकारसे आत्माकी निंदा की, संसारसे विरक्तता धारण की, और सब प्रकारके आहारको त्यागकर सदाके लिये अनशन (उपवास) ब्रत धारण किया। उन्होंने अपनी धीरवीरताकी शक्ति प्रगटकर संन्यास धारण किया, श्रीजिनेंद्रदेवको हृदयमें विराजमानकर बिधिपूर्वक प्राण छोड़े। संन्यास धारण करनेके कारण प्राप्त हुए पुण्यकर्मके उदयसे वे दोनों ही पक्षीके जीव देवारण्य बनमें अच्छी विभूतिको धारण करनेवाले सुरूप और अतिरूप नामके देव हुये ॥ ३४—३५ ॥ वे दोनों ही अपने अवधिज्ञानसे पहिले भवकी सब बात जानकर राजा मेघरथके पास आये और उनको नमस्कार कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ हे विद्वानोंमें श्रेष्ठ! आप धर्मकी प्राप्ति करानेमें बड़े ही चतुर हैं और मेघके समान परोपकार करनेके कारण हैं ॥ ३७ ॥ हे देव, आप श्रीजिनेंद्रदेवके आगमके ज्ञाता हैं, तत्त्वोंके जानकार हैं, सम्यग्दर्शन आदि रत्नोंसे विभूषित हैं और शीलके सागर हैं ॥ ३८ ॥ हे देव! आपके प्रसादसे ही हम दोनों तिर्यंचयोनिको छोड़कर शुभ उदय और दिव्य गुणोंको धारण करनेवाले ऐसे देव हुए हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये अनेक गुणोंको धारण करनेवाले आप ही हम लोगोंके इस जन्मके गुरु हैं आप ही हम लोगोंको नमस्कार करने योग्य हैं और आप ही विद्वानोंके द्वारा पूज्य हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार मनोहर और सार्थक वाक्योंसे उनकी स्तुतिकर बहुमूल्य दिव्यमाला वस्त्र आभूषणोंसे उनकी पूजा की भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया, बार २ उनकी प्रशंसा की, और फिर मस्तक झुकाकर उनको नमस्कारकर वे दोनों देव अपने स्थानको चले गये।

अथानन्तर—किसी एक दिन सब परिग्रहोंसे रहित दमवर नामके चारण मुनि आहार लेनेके लिए महाराज मेघरथके घर पधारे ॥ ४३ ॥ महाराज मेघरथने दुर्लभ निधानके समान उन्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता

से तिष्ठ तिष्ठ कहकर उनको स्थापन किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर दाताके सातों गुणोंसे सुशोभित राजा मेघरथने भक्तिपूर्वक प्रतिग्रह आदि पुण्य उपार्जन करनेवाली नौ प्रकारकी विधिसे वृद्धि करनेवाला, शुद्ध, प्रासुक मधुर, उत्तम, निर्दोष, और तृप्ति करनेवाला आहार उन मुनिराजको दिया ॥ ४५-४६ ॥ उसी समय उस दानसे प्राप्त हुए पुण्य कर्मके उदयसे अनेक गुणोंके स्थानभूत उन राजा मेघरथके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ४७ ॥ पात्रोंको दान देनेसे जिसप्रकार इसलोकमें अनेक रत्नोंकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार परलोकमें भी बुद्धिमानोंको भोगभूमि स्वर्ग मोक्षकी महाविभूति प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥ यही समझकर गृहस्थों को मुनिराजके लिये लक्ष्मीका स्थान और इसलोक परलोक दोनोंमें सुखका सागर ऐसा दान सदा देते रहना चाहिये ॥ ४९ ॥ इसप्रकार श्रीजिनेन्द्रदेवकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले वे महाराज मेघरथ दान पूजाकर तथा पर्वके दिनोंमें प्रोषधोपवासकर अनेक प्रकारसे धर्मका उपार्जन करते थे ॥ ५० ॥ किसी एक दिन नंदीश्वर पर्वतपर उन्होंने प्रोषधोपवास किया बड़ी विभूतिसे जिनविम्बोंकी महापूजा की और फिर रातमें वे धीरवीर स्वयं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वनमें एकाग्रचित्तसे श्रीजिनेन्द्रदेवके गुणोंका स्मरण करते हुए प्रतिमायोग धारणकर मेरु पर्वतके समान स्थिर विराजमान हुए ॥ ५१-५२ ॥ ऐसेही समयमें देवोंके द्वारा पूज्य ऐसान स्वर्गका इन्द्र देवोंकी सभामें विराजमान था, उसने धीरवीर महाराज मेघरथको इसप्रकार विराजमान जानकर आश्चर्यके साथ कहा कि आप धन्य हैं, आपही गुणोंके सागर हैं ज्ञानी हैं, पुण्यवान हैं, विद्वान् हैं, और धैर्यशाली हैं आज आपको देखकर आश्चर्य होता है। इसप्रकार प्रसन्न होकर उसने कहा ॥५३-५४॥ अपने मनमें ही इसप्रकारकी स्तुति करते देख देवोंने इन्द्रसे पूछा कि हे नाथ! आपने इससमय किस सज्जनकी यह दिव्य स्तुति की है ॥ ५५ ॥ तब इंद्रने कहा कि देवो! सुनो जो स्तुति करने योग्य हैं और जिनकी सार्थक स्तुति मैंने की है उनको मैं उत्तम कथा सुनाता हूं ॥ ५६ ॥ राजा मेघरथ बड़े धीर वीर हैं, शुद्ध सम्यग्दृष्टी हैं, राजाओंके शिरोमणि हैं, तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले हैं आसन्न भव्य हैं और अनेक गुणोंकी खानि हैं। आज उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया है इसलिये

उन्होंने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया है वे महा त्यागी हो गये हैं और शीलरूपी आभरणसे सुशोभित हो रहे हैं इससमय मैंने उन्हींकी स्तुति की है ॥ ५७-५८ ॥ इन्द्रकी कही हुई इस बातको सुनकर अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियां उनकी परीक्षा करनेके लिये पृथ्वीपर आईं ॥ ५९ ॥ उस समय महाराज मेघरथ शरीरसे ममत्व छोड़े हुए, क्रोधादि कषाय रहित, समता व्रतको धारण किए हुए, क्षमावान्, महाधीरवीर और सब विकारोंसे रहित विराजमान थे। उस समय वे समुद्रके समान गंभीर थे पर्वतके समान शरीर उनका निश्चल था, वे एकांतमें विराजमान थे, शांत परिणामोंको धारण किये हुये थे, ध्यानमें लगे हुए थे, और अत्यंत निस्पृह थे। सब चिन्ताओंसे रहित थे, निर्भय, ज्ञानी, बुद्धिमान थे, कायोत्सर्ग धारण किये हुये थे और व्रत शील आदिसे सुशोभित थे ॥ ६०—६२ ॥ इसप्रकार गुणोंके घर उपसर्गके कारण वस्त्रोंसे ढके हुए मुनिराजके समान महाराज मेघरथको उन देवियोंने देखे ॥६३॥ उन देवियोंने अत्यंत धीर वीरता धारण करनेवाले उन महाराज मेघरथपर कातरोंको भय उत्पन्न करनेवाला असह्य और भारी उपसर्ग करना प्रारंभ किया। ध्यानमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले मनोहर भाव, विलास, विभ्रम, गीत, नृत्य कामको बढ़ानेवाली रागरूप चेष्टायें, दृढ़ आलिंगन, वीणा आदिके मधुर शब्द, कामरूपी अग्निको बढ़ानेके लिए ईंधनके समान अनेक प्रकारके वचनालाप, भय आदिको उत्पन्न करनेवाले घृणित वाक्य, तथा और भी कातरोंको भय उत्पन्न करनेवाले ध्यानका नाश करनेवाले अनेक प्रकारके ऐसे ही ऐसे घोर दुखोंके कारणों से उन देवियोंने उपसर्ग किया ॥ ६४—६८ ॥ तब महाराज मेघरथने संवेगसे सुगंधित रागरहित अपना निश्चल मन श्रीजिनेंद्रदेवके चरण कमलोंमें लगाया ॥ ६९ ॥ उन देवियोंके द्वारा की हुई तीव्र घोर और रौद्र परीषहोंको जीतकर सिंहके समान वे महाराज मेघरथ मेरु पर्वतके समान निश्चल विराजमान रहे॥७०॥ जिस प्रकार विजलीकी लहर सुमेरु पर्वतको नहीं हिला सक्ती उसीप्रकार वे दोनों देवियां मेघरथके मनरूपी पर्वतको चलायमान करनेमें असमथ हुईं और उनका सब परिश्रय व्यर्थ गया ॥ ७१ ॥ तब उन दोनों देवियोंने कहा कि ईशान इन्द्रका कहा हुआ सब सच है यह कहकर उन्होंने उनको प्रणाम किया उनकी

पूजा की और वे प्रसन्नताके साथ अपने स्थानको गईं ॥ ७२ ॥ रात्रिके व्यतीत होनेपर महाराज मेघरथने निर्विघ्न रीतिसे कायोत्सर्गका त्याग किया और फिर वे धर्मध्यानका सेवन करते हुए निरंतर भोग भोगने लगे ॥ ७३ ॥ किसी दूसरे दिन देवियोंके साथ देवोंकी सभामें इच्छानुसार सिंहासनपर विराजमान हुए ईशान स्वर्गका इन्द्र कहने लगा कि इस संसारमें प्रियमित्राका रूप सबसे उत्तम है बाहरी हाव भाव आदि उत्तम गुणोंसे पूर्ण है अद्वितीय है उपमारहित है सब रूपोंसे बढ़कर है वह मानों पुण्यरूप परमाणुओंसे ही बनाया गया है। संसारमें उसका सा रूप और किसीका नहीं है। इसप्रकार प्रियमित्रासे रूपकी प्रशंसा-कर वह इन्द्र चुप हो गया॥ ७४-७६ ॥ इन्द्रकी यह बात सुनकर रतिषेणा और रतिवेगा नामकी देवांगनाएं उसका रूप देखनेके लिये पृथ्वीतलपर आईं जिस समय वे आईं थीं उस समय प्रियमित्राके स्नान करनेका समय था उस भद्राके शरीरपर गंध तेल लगा हुआ था और शृंगार कुछ था नहीं। उसे देखकर उन दोनों देवियोंको इन्द्रके वचनोंपर विश्वास हुआ और उस रानीके साथ बात चीत करनेके लिये उन देवियोंने वैश्य कन्याका रूप धारण किया ॥ ७७-७९ ॥ उन दोनों कन्याओंने प्रियमित्राकी सखीसे कहा कि तुम जाकर प्रियमित्रासे कहो कि आपको देखनेके लिए दो वैश्य कन्याएं आई हैं। उस सखीने जाकर प्रियमित्रासे कह दिया। प्रियमित्राने कहा कि मैं नहा धोकर शृंगार कर आती हूं तब तक वे ठहरें ॥ ८०-८१ ॥ इसके बाद रानीने रागियोंको क्षोभ उत्पन्न करनेवाला अपना शृंगार किया और उन दोनोंको बुलाकर अपना रूप दि-खाया ॥ ८२ ॥ उसे देखकर देवियोंने कहा कि शरीरकी कांति जो पहिले थी वह अब नहीं रही उससे कुछ कम हो गई है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥८३॥ देवियोंकी इस बातको सुनकर प्रियमित्रा उस बातका निश्चय करनेके लिए महाराज मेघरथका मुंह देखने लगी ॥ ८४ ॥ महाराज मेघरथने कहा कि हे कांते ! कर्मोंके उदयसे तेरे मुखकमलकी कांति पहिले कीसी नहीं है पहिलेसे अवश्य कुछ कम हुई है ॥ ८५ ॥ यह सुनकर देवियोंने अपना रूप प्रगट किया, अपने आनेके समाचार कहे और मनमें विचार करने लगीं कि इस क्षणभंगुर रूपको धिक्कार है ॥ ८६ ॥ इस संसारमें कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है रूप, लावण्य, शौभाग्य शरीर

और सम्राज्य सब कालके मुखमें पडकर पूरा हो जाता है। इसप्रकार चित्तमें विचार कर और विरक्त होकर उन देवियोंने दिव्य वस्त्र आभूषण और मालासे प्रियमित्राकी पूजा की और फिर अपनी कांतिसे दिशाओंको व्याप्त करती हुई स्वर्गको चली गई ॥ ८७-८८ ॥ महा रानी प्रियमित्रा इस बातसे बहुत खेदखिन्न हुई और उस सतीके हृदयमें बहुत शोक हुआ तब महाराजने बड़े प्रेमसे कहा कि हे प्रिये। क्या तू नहीं जानती है कि यह चर अचर संसार नित्यानित्यात्मक है इसमें कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है ॥ ८९-९० ॥ यही समझकर तुझे शोक नहीं करना चाहिए। इसप्रकार महाराजने उसे आश्वासन दिया और राज्यभोग स्त्री आदि सबसे वे बहुत विरक्त हुए ॥९१॥ किसी दूसरे दिन महाराज मेघरथ अपने सब परिवारके साथ अपने पिता तीर्थंकर घनरथकी बन्दना करनेके लिए मनोहर नामके उद्यानमें गए ॥९२॥ वहांपर सुर असुर सबसे घिरे हुए पूज्य घनरथ तीर्थंकर सिंहासनपर विराजमान थे ॥९३॥ महाराज मेघरथने सब परिवारके साथ उनकी तीन प्रदिक्षाणाएं दी उनको नमस्कार:किया बड़ी भक्तिसे उनकी पूजनकी और उत्तम स्त्रोत्रोंसे उनकी स्तुतिकी ॥९४॥ फिर महाराज मेघरथने सब जीवोंके हितकी इच्छा रखते हुए श्रावकोंकी क्रियाएं पूछी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंकी चेष्टाएं प्राय: कल्पवृक्षोंके समान परोपकारके ही लिए होती हैं ॥ ९५ ॥ तीर्थंकर घनरथने भव्य पुत्रोंको धर्मकी प्राप्ति करानेके लिए अपनी सब भाषामयी ध्वनिसे उपदेश दिया और कहा कि हे पुत्र। सुन मैं श्रावकोंके आचरणको सूचित करनेवाले उपासकाध्ययन नामके सातवें अङ्गको पूर्ण रीतिसे कहता हूं ॥ ९६-९७ ॥ सबसे पहिले श्रावकोंको शंकादि दोषोंसे रहित तत्वोंके यथार्थ श्रद्धान करनेरूप सम्यग्दर्शनको धारण करना चाहिए क्योंकि यही सम्यग्दर्शन समस्त श्रेष्ठ व्रतोंका मूल कारण है ॥ ९८ ॥ पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत ए बारह व्रत कहलाते है ॥ ९९ ॥ इनके सिवाय श्रावकोंको धर्मध्यान धारण करनेके लिए आर्तध्यानको छोडकर तीनों समय व्रतरूप उत्तम सामायिक करना चाहिए ॥ १०० ॥ चतुर पुरुषोंको अपने कर्म नष्ट करनेकेलिए घरके व्यापार छोडकर सब पर्वके दिनोंमें नियमपूर्वक सदा प्रोषधोपवास करना चाहिए ॥ १ ॥ बुद्धिमानोंको सचित्त छाल पत्ते, कन्द, मूल, फल, बीज, नहीं खाना चाहिए तथा अग्निपर नहीं पका

हुआ अप्रासुक जलका त्याग कर देना चाहिये ॥ २ ॥ सूक्ष्म जीवोंकी दया पालन करनेकेलिये अन्नपान स्वाद्य और खाद्य यह चारों प्रकारका आहार रात्रिमें कभी नहीं खाना चाहिये ॥ ३ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवने धर्म-सेवन करनेकेलिये जघन्य श्रावकोंकेलिये ये छह प्रतिमायें निरूपणकी हैं ये प्रतिमायें सुगम हैं और स्वर्गकी सीढ़ी हैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष सब स्त्रियोंको अपनी माता बहिन और पुत्रीके समान देखता है उसके निर्मल ब्रह्मचर्य प्रगट होता है ॥ ५ ॥ असि मसि कृषि वाणिज्य आदि सब प्रकारका आरम्भ पापका कारण है इस-लिये मन वचन कायसे उसका त्याग कर देना चाहिये ॥ ६ ॥ द्रव्य धान्य सुवर्ण आदिसे उत्पन्न होने वाला परिग्रह सब अनेक प्रकारके अशुभोंकी खानि है इसलिये वस्त्रोंको छोड़कर बाकीके सब वस्त्रोंका त्यागकर देना चाहिए ॥ ७ ॥ गृहस्थोंकी ये तीन प्रतिमायें मध्यम कहलाती हैं। प्रतिमायें हृदयमें वैराग्य धारण करनेवालोंको मोक्ष सुख देनेवाली हैं ॥ ८ ॥ आहार घरके व्यापार और विवाहादि कार्योंमें चतुर पुरुषोंको कभी सम्मति नहीं देनी क्योंकि इनमें सम्मति देना पापका समुद्र है ॥ ९ ॥ पापोंको शांत करनेके लिए और धर्मकी सिद्धिके लिए दूसरेके घरपर कृत आदि दोषोंसे रहित स्वादिष्ट रहित पापरहित शुद्ध भिक्षा भोजन करना चाहिए ॥ १० ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने ये दोनों ही मनोहर प्रतिमायें उत्कृष्ट बतलाई हैं श्रावकोंको ये ही दो प्रतिमायें स्वर्ग मोक्षकी कारण हैं ॥ ११ ॥ जो बुद्धिमान् इन ऊपर कही हुई ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करता है वह सोलहवें स्वर्गको प्राप्त होता है और अनुक्रमसे मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥१२॥ इस कथनके बाद श्रीजिनेंद्रदेवने अपने पुत्रके सामने कृपापूर्वक इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख देने-वाली गृहस्थोंकी सब क्रियायें कहीं ॥ १३ ॥ गर्भान्वय क्रिया दीक्षान्वय क्रिया और कर्त्रन्वय क्रिया ये तीन प्रकारकी क्रियाएं होती हैं अब आगे इनकी संख्या बतलाते हैं ॥ १४ ॥ गर्भाधानसे लेकर निर्वाण पर्यंत जो क्रियाएं सम्यग्दर्शन पूर्वक की जाती हैं उन्हें गर्भान्वय क्रियाएं कहते हैं उनकी संख्या तिरेपन है ॥ १५ ॥ अवतारसे लेकर मोक्ष प्राप्त होनेसे पर्यंत जो मोक्ष सिद्ध करनेवाली क्रियाएं हैं उन्हें दीक्षान्वय क्रियाएं कहते हैं उनकी संख्या अड़तालीस है ॥ १६ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने पूर्ण कल्याण प्राप्त करनेके लिये सद्गृहित्व

से लेकर सिद्ध पर्यंत सात कर्त्रन्वय क्रियायें बतलाई हैं ॥ १७ ॥ श्रीघनरथ जिनेंद्रदेवने इन सब क्रियाओं का स्वरूप विधि और फल संक्षेपसे कहा तथा और भी सद्धर्मका किया ॥ १८ ॥ महाराज मेघरथने उन घनरथ तीर्थंकरका कहा हुआ क्रियाओं का स्वरूप और स्वर्ग मोक्ष देनेवाला गृहस्थोंके धर्मका स्वरूप सुना ॥ १६ ॥ फिर उन्होंने भक्तिपूर्वक उनको नमस्कार किया और मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए हृदयको अत्यंत शांत-कर वे संसार देहका भोगका स्वरूप बार बार चिंतवन करने लगे ॥ २० ॥ वे विचार करने लगे कि संसार एक समुद्रके समान है, यह अत्यन्त दुःसह है, भीम है, विषम है, दुखरूपी मगर मच्छों से भरा हुआ है, जन्म मरण और बुढ़ापा ही इसके आवर्त (भंवर) हैं, चारों गतियां ही इसकी चंचल लहरें हैं, नरक ही इसके बड़वानल कुम्भ हैं, यह अत्यन्त निस्सार है, अपार है, समस्त पापों का समूह ही इसका जल है, जीवों का परिभ्रमण ही इसका फैन है, यह अनादि है, अनंत है घोर है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है, सबतरहके दुःखों का निधान है अत्यन्त निंद्य है और भव्यजीवों को अत्यन्त ही भयंकर है। इसमें अशुभ कर्मरूपी सांकलसे जकड़े हुए जीव धर्मरूपी जहाज को न पाकर ही सदा उछलते और डूबते रहते हैं ॥ २१-२४ ॥ धर्मके बिना ये जीव अनादि कालसे कर्मोंके द्वारा जबर्दस्ती ठगे गए हैं इसीलिए दुखरूपी बाघों से भरे हुए संसाररूपी वनमें सदा घूमा करते हैं ॥ २५ ॥ इस संसारमें मुनियों के बिना और कोई मनुष्य सुखी नहीं है। किन्हींको कोढ़ आदि रोगों से उत्पन्न होनेवाला तीव्र घोर दुख है किन्हींको दरिद्रताका दुख है, किन्हींको अत्यन्त शोकसे दुख हो रहा है, किन्हींको भयसे दुख हो रहा है, किन्हींको मानभंग होनेका दुख है, जोकि वचनसे भी नहीं कहा जा सकता और किन्हींको पुत्र स्त्री आदिके वियोगसे उत्पन्न होने-वाला शोकका दुख है ॥ २६-२८ ॥ किन्हींके पुत्र दुराचारी और दुर्व्यसनी हैं और किन्हींकी स्त्री दुष्ट, दुरा-चारिणी और भयानक है ॥ २६ ॥ किन्हींके भाई दुष्ट शत्रुओं के समान हैं किन्हींका पिता दुष्ट है और किन्हींकी माता व्यभिचारिणी है ॥ ३० ॥ किन्हींके गोत्रमें कलंक लगानेवाली व्यभिचारिणी पुत्रियां हैं और किन्हींके सेवक ही वैरी हो रहे हैं और मारनेके लिऐ सदा तैयार रहते हैं ॥ ३१ ॥ किन्हींके नरकके

दुखोंसे भी बढ़कर मानसिक पीड़ा है और किन्हींके क्रोध लोभ आदिकी बाधा सदा बनी रहती है ॥३२॥ देखो ! भरत चक्रवर्ती चरमशरीरी था तथापि उसे छोटे भाईके द्वारा मानभंगका महा दुख प्राप्त हुआ था ॥ ३३ ॥ जब चक्रवर्तीकी हो यह बात है तब फिर कर्मोंके आधीन रहनेवाले अशुभ कर्मोंसे घिरे हुए जन्म बुढापा आदि दोषसहित तुच्छ पुण्यवाले अन्य लोग भला कैसे सुखी हो सकते हैं ॥३४॥ जिसप्रकार केलेके खंभेमें कुछ सार नहीं है और न इन्द्रजालमें कुछ सार है उसी प्रकार तीनों लोकोंमें कुछ सार नहीं है ॥३५॥ इस संसारमें घर, राज्य, शरीर, स्त्री, लक्ष्मी, पुत्र सेवक आदि कुछ भी वस्तु नित्य नहीं है ॥ ३६ ॥ जो घर अग्नि आदिके संयोगसे क्षणभरमें नष्ट हो जाता है उस बादलके समान थोड़ी देरतक रहनेवाले घरमें भला कौन बुद्धिमान विश्वास करेगा ॥ ३७ ॥ राज्य भी सवेरेके समय दाभके पत्तेकी अनीपर रक्खी हुई ओसकी बूंदके समान चंचल है पापोंसे भरा हुआ है और शत्रुके दुखोंका एक स्थान है ॥ ३८ ॥ स्त्री भी इस समयमें प्राणियोंको मोहादिरूपी जलसे सीचीं हुई और नरकादि फलोंको देनेवाली विषकी अशुभ वेलके समान है ॥ ३९ ॥ प्राणियोंके लिए भाई बन्धनके समान हैं और पापके कारण हैं तथा धन धान्य आदिकी क्षय करनेवाले पुत्रभी फंसानेके लिये जालके समान हैं ॥ ४० ॥ जो भाई विरादरीके लोग, अपने मरे हुए कुटु-म्बीको स्मशानमें छोड़कर चले आते हैं और फिर कभी फिरकर भी नहीं देखते वे भला अपने कैसे हो सकते हैं ॥ ४१ ॥ चक्रवर्ती आदिकी राज्यलक्ष्मी बिजलीकी रेखाके समान चंचल है महामोह करनेवाली है और मनुष्योंको नरकरूपी घरके दरवाजेके समान है ॥ ४२ ॥ इसप्रकार संसारकी विचित्रता और पदार्थोंको अनित्य समझकर बुद्धिमान लोग संसारको छोड़कर तपश्चरण कर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥ इस शरी-रसे नौ द्वारोंके द्वारा दुर्गंध अशुभ मल स्वयं वहता रहता है, यह विष्टाका घर है, और सब ओर सैकड़ों कीड़ोंसे भरा हुआ है ॥ ४४ ॥ यह शरीर नरकके समान असार है, शुक्र शोणितसे उत्पन्न हुआ है, सप्त धातु-ओंसे बना हुआ है, निंद्य है घृणाके योग्य है और दुखका स्थान है ॥ ४५ ॥ तथा सब अशुभ रोगरूपी सर्पोंका बिल है, अशुभ कर्मोंका कारण है सब प्रकारके दुखोंका निधान है और भूख प्यास आदिसे सदा

दुखी रहता है ॥४६॥ यह शरीर कामरूपी अग्निसे सदा जलता रहता है समस्त पापोंका कारण है और कर्मसे उत्पन्न हुआ है फिर भला इस संसारमें प्राणियोंको इससे सुख कैसे मिल सकता है ॥ ४७ ॥ यह शरीर अत्यन्त अशुद्ध है अशुद्ध द्रव्योंसे भरा हुआ है। इसमें केवल मलमूत्र ही नहीं भरा है किन्तु यह अशुद्ध पदार्थोंका घर ही है ॥ ४८ ॥ यह शरीर अन्न पान ताम्बूल आदि पुष्ट करनेवाले पदार्थोंको भी अपने संसर्गसे अपवित्र और घृणाके योग्य, बना देता है ॥ ४६ ॥ यह मनुष्योंका शरीर इन्द्रधनुषके समान अनित्य है, पापकी खानि है और जल अग्नि शस्त्र वा मृत्युके संयोगसे क्षणभरमें नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥ इस शरीररूपी घरमें भूख, प्यास, काम, रोग, क्रोधरूपी अग्नियां सदा जलती रहती हैं फिर भला चतुर पुरुष इसमें किस प्रकार प्रेम कर सकता है ॥ ५१ ॥ यह मनुष्योंका शरीर वस्त्र आभरण आदिसे सुशोभित हुआ बाहर से ही मनोहर दिखता है यदि इसे भीतरसे देखा जाय तो शराबके घड़ेके समान अत्यंत वीभत्स और अशुभ जान पड़ता है ॥ ५२ ॥ जिसप्रकार चाडालके घरमें कुछ सार दिखाई नहीं देता उसी प्रकार हड्डी चमड़ा और विष्टा आदिसे भरे हुए इस शरीरमें भी कभी सार दिखाई नहीं दे सकता ॥ ५३ ॥ यदि उसको एक दिन भी अन्नादिक भोजन न मिले तो फिर यह अग्निमें पड़े हुए सूके पत्तेके समान शीघ्र ही क्षीण हो जाता है ॥ ५४ ॥ अन्न पान आदि पदार्थोंसे प्रति दिन इस शरीरका पालन पोषण किया जाता है तथापि यह शरीर जीवके साथ नहीं जाता, दुष्टके समान यहां ही रह जाता है ॥ ५५ ॥ जो रागी मूर्ख प्रति दिन इस शरीरका पोषण करते हैं उनको यह शरीर शत्रुके समान केवल रोगोंका समूह ही देता है ॥ ५६ ॥ अथवा परलोकमें यह शरीर उनको नरकयोनि अथवा तिर्यंचयोनि देता है जो कि समस्त अशुद्धताकी खानि है और काम इंद्रियोंकी लालसा और क्रोधरूपी शत्रुओंसे भरी हुई है ॥ ५७ ॥ परन्तु जो लोग तपश्चरण, व्रत और कायक्लेश आदि परीशहोंसे इसको सोखते हैं कृश करते हैं उनको स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं इससे बढ़कर भला और आश्चर्य क्या होगा ॥ ५८ ॥ इसलिए जबतक यह भूखा यमराज इस शरीरको जबर्दस्ती नहीं खा लेता तबतक चतुर पुरुषोंको इस शरीरसे तप यम धर्म आदि कर लेना चाहिए ॥ ५९ ॥ जबतक

रोगरूपी अग्नि इस शरीररूपो झोंपड़ीको नहीं जला देती तबतक जीवोंको अपना हित कर लेना चाहिए क्योंकि फिर इस शरीरसे कुछ नहीं हो सकता ॥ ६० ॥ जबतक बुढ़ापीरूपी राक्षसी इस शरीरको नहीं खा जाती तबतक जीवोंको दीक्षा धारणकर स्वर्ग और मोक्ष सिद्ध कर लेना चाहिए ॥ ६१ ॥ जबतक इन्द्रियां अपने कार्यमें समर्थ हैं तबतक बुद्धिमानोंको तपश्चरणके बलसे मुक्तिरूपी स्त्री अपने हाथमें कर लेनी चाहिए ॥ ६२ ॥ जबतक आयु पूरी न हो जाय तबतक भारी तपश्चरण कर लेना चाहिए क्योंकि मकानमें अग्नि लग जानेपर फिर कूंआ खोदना व्यर्थ ही है ॥ ६३ ॥ जिन्होंने शारीरिक सुखोंसे विरक्त होकर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए तपश्चरण चारित्र व्युत्सर्ग आदिके द्वारा शरीरको कृश किया उन्हींका शरीरः सफल समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ यही समझकर अत्यन्त निस्सार और क्षणभंगुर इस शरीरको पाकर सारभूत तपश्चरण करना चाहिये इसीसे यह शरीर सफल हो सकता है ॥ ६५ ॥ बुद्धिमानोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए तथा तप ध्यान आदि अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये थोड़ा अन्न पान आदि देकर सेवकके समान इसकी रक्षा करनी चाहिए ॥ ६६ ॥ इन भोगोंसे भी कभी तृप्ति नहीं होती, ए शरीरको कृश करनेवाले हैं, दुष्ट हैं, पहिले तो मनोहर जान पड़ते हैं परन्तु हैं पापके समुद्र और फल देते समय अत्यंत भयानक ॥ ६७ ॥ ये भोग पराधीन हैं, क्षणक्षणमें नष्ट होनेवाले हैं, नरकरूपी घरके मार्गको दिखलानेवाले हैं, पशुओंने ही इनको स्वीकार किया है तथा मोक्षगामी मुनियोंने सदा इनकी निंदा की है ॥ ६८ ॥ ए भोग धर्मरूपी राजाके महाशत्रु हैं, मोक्ष-रूपी घरके किवाड़ हैं, सब प्रकारके दुखोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, घोर हैं और स्वर्गरूपी घरको बन्द करनेके लिए आर्गल (बेंडा, आगल) के समान हैं ॥ ६९ ॥ व्याधि, क्लेश, दाह, भय, चिंता आदिके ये सागर हैं क्रूर हैं मूर्ख लोग ही इनका आदर करते हैं और धीर सज्जन लोग इनका त्याग कर देते हैं ॥ ७० ॥ ए भोग बड़ो कठिनतासे प्राप्त होते हैं, दुखोंसे उत्पन्न होते हैं और मानभंग आदि दुखके कारण हैं इसलिए इस संसारमें ऐसा कौन बुद्धिमान है जो धर्मको छोड़कर इन भोगोंको सेवन करें ? ॥ ७१ ॥ जिसप्रकार तेलके सींचनेसे अग्नि और अधिक बढ़ती है उसी प्रकार बुरी जलन उत्पन्न करनेवाली मनुष्यों

की कामाग्नि स्त्रियोंपर प्रेम करनेसे और अधिक बढ़ती है ॥ ७२ ॥ जिसप्रकार अग्नि जलसे ही शांत होती है उसी प्रकार अनेक अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाली मनुष्योंकी कामरूपी अग्नि ब्रह्मचर्यरूपी जलसे ही शांत हो सकती है ॥ ७३ ॥ मनुष्योंके हृदयमें जबतक कामरूपी अग्नि जलती रहती है तबतक उस हृदयमें चारित्र तप ध्यानरूपी वृक्ष किस प्रकार जम सकते हैं ? ॥ ७४ ॥ मनुष्योंको विषयोंसे उत्पन्न हुए सुख विषसे भी घोरतर विष हैं क्योंकि विष तो एक ही जन्ममें मनुष्योंके प्राण लेता है दूसरे भवमें नहीं परन्तु विषयोंसे उत्पन्न हुआ महा निंद्य सुखरूपी विष मनुष्योंको जन्म जन्ममें नरक तिर्यंचके अनेक दुख देता है ॥ ७५-७६ ॥ पापकी ओर ले जानेवाले ये सब भोग सर्पसे भी महादुष्ट हैं क्योंकि सर्प तो इसी भवमें प्राणोंका हरण करता है परलोकमें नहीं परन्तु अनन्त दुख और क्लेश देनेवाले ये भोग नरकादि दुर्गतियों-में अनन्त भवोंतक प्राणियोंके प्राणोंका हरण किया करते हैं ॥ ७७-७८ ॥ जबतक मनुष्योंको आशा सांसारिक सुखोंसे बनी हुई है तबतक उनको मोक्षसुख किस प्रकार मिल सकता है ? ॥ ७९ ॥ समस्त दुखोंके कारण ये भोग रोगोंसे भी अधिक शत्रु हैं क्योंकि रोग तो मनुष्योंको थोड़े दिन तक ही दुख देते हैं परन्तु ये दुष्ट और नीच भोग प्राणियोंको चारों गतियोंमें बहुतसे दुख, शोक, भय, क्लेश, अपयश और पाप दिया करते हैं ॥ ८०-८१ ॥ जिनका हृदय भोगोंमें आसक्त है वे अशुभ कर्मोंसे ठगे हुए जीव अकेले ही सब प्रकारके दुख देनेवाले अनादि संसाररूपी मार्गमें सदा परिभ्रमण किया करते हैं ॥ ८२ ॥ जो तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पहिले मोक्षमें जा चुके हैं वे केवल तपश्चरणसे ही गये हैं और भोगादिकोंको छोड़कर ही गए हैं ॥ ८३ ॥ जो सत्पुरुष इस संसारमें अब मोक्ष जायेंगे भोगोंको त्यागकर चारित्रका पालन करनेसे ही जायेंगे ॥ ८४ ॥ यही समझ कर मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको कर्मोंका नाश करने और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये रोग सर्प और शत्रुके समान सबसे पहिले इन सब भोगोंका त्याग करना चाहिये ॥ ८५ ॥ बिना दीक्षा धारण किये तीर्थंकरोंको भी सदा रहनेवाली मोक्ष कभी नहीं होती है यही समझकर मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको शीघ्र ही वह दीक्षा धारण कर लेनी चाहिये ॥ ८६ ॥ इस प्रकार बहुत

तरहसे चिंतवनकर महाराज मेघरथ वैराग्यको प्राप्त हुए और दीक्षा लेनेकी इच्छा रखते हुए उन्होंने अपने पूज्य पिता तीर्थंकरको नमस्कार किया ॥ ८७ ॥ मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वे अपने हृदयमें अनित्य अशरण आदि बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे और अनेक राजाओंके साथ अपने घर पहुंचे ॥ ८८ ॥ स्वयं संयम धारण करनेके लिये वे महाराज मेघरथ अपने छोटे भाई दृढ़रथसे कहने लगे कि हे भाई ! आज तू समस्त विभूतिके साथ इस राज्यको स्वीकार कर ॥ ८९ ॥ इसके उत्तरमें मोक्षकी इच्छा रखनेवाला वह दृढ़रथ कहने लगा कि हे भाई ! मेरी बात सुनिये, यदि राज्य अच्छा है तो फिर आप ही इसे क्यों छोड़ते हैं ॥ ९० ॥ पापोंको उत्पन्न करनेवाला राज्यका जो दोष आपने देखा है वही दोष बुद्धिके बलसे मैंने भी विशेष रीतिसे देख लिया है ॥ ९१ ॥ जिसप्रकार बड़े पुरुष इस संसारसें वमन किये हुए आहार की इच्छा नहीं करते हैं उसीप्रकार आपके द्वारा छोड़े हुए राज्यको मैं भी कभी नहीं भोग सकता ॥ ९२ ॥ दीक्षा धारण करनेके लिये यह राज्य ग्रहण करके भी तो फिर छोड़ना पड़ेगा इसलिये तपश्चरण करनेवा-लोंको पहिलेसे ही इसका ग्रहण न करना सबसे अच्छा है ॥ ९३ ॥ क्या आपसे डरनेवाले बुद्धिमान विवेकी पुरुष पहिले अपने शरीरको कीचड़में लपेटकर फिर स्वयं स्नान करते हैं ॥ ९४ ॥ इसलिये मैं मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए चिरकालसे आए हुए मोहको नाशकर आज आपके साथ ही पापोंको नाश करनेवाले उत्तम संयमको धारण करूंगा ॥ ९५ ॥ तब महाराज मेघरथने अपने छोटे भाईको राज्यसे पराङ्मुख जानकर अपने पुत्र मेघनादको विधिपूर्वक राज्य दिया ॥९६॥ फिर शीघ्र ही वे मोक्ष प्राप्त करनेके लिए बड़ी विभूति, सहित अनेक राजा और छोटे भाईके साथ प्रसन्न होकर अपने पिता घनरथ तीर्थंकरके समीप पहुंचे ॥९७॥ वहां जाकर उन्होंने बड़ी भक्तिसे मस्तक झुकाकर तीर्थंकरको नमस्कार किया और जिनवाणीके अनुसार मन वचन कायसे वाह्य अभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग किया ॥ ९८ ॥ इसप्रकार महाराज मेघरथने मोक्ष प्राप्त करनेके लिए सात हजार राजाओंके साथ और छोटे भाईके साथ देवोंके द्वारा पूज्य ऐसी जिनमुद्रा धार-ण की ॥ ९९ ॥ इसप्रकार महाराज मेघरथने पुण्य कर्मके उदयसे तीर्थंकरकी कही हुई जिनमुद्रा धारण की

थी और वे सबको बांटकर (सबको धर्मोपदेश देते हुए वा दूसरोंसे चारित्र पालन कराते हुए) निर्मल चारित्रसे उत्पन्न हुये धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके सारभूत सुराज्यका (मुनि अवस्थाका) प्रतिदिन अनुभव करते थे ॥ ३०० ॥ महाराज मेघरथको धर्मके प्रभावसे ही अमुक राजा जिसकी सेवा करते हैं और जो सुखका घर है ऐसा राज्य प्राप्त हुआ था, धर्मके ही प्रभावसे चंद्रमाके समान निर्मल रागरहित चारित्र धारण किया था और धर्मके ही प्रभावसे उन्हें ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त हुआ था यही समझकर विद्वान् लोगोंको मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए पापोंको नाश कर परंपरासे सुख देनेवाले धर्मको ही सदा पालन करते रहना चाहिये ॥ ३०१ ॥ यह धर्म संसारमें सब जीवोंका हित करनेवाला है, विद्वान् लोग धर्मका ही पालन करते हैं, धर्मसे ही सब प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं, उसी धर्मको मैं सिद्धपद प्राप्त करनेकेलिए नमस्कार करता हूं धर्मके सिवाय असंख्यात गुण देनेवाला मित्र इस संसारमें और कोई नहीं है, धर्मकी जड़ दया है इसलिये मैं अपना चित्त धर्ममें ही लगाता हूं, हे धर्म ! संसारके भयसे मेरी रक्षा कर ॥ ३०२ ॥ भगवान शांतिनाथ इंद्र नरेंद्र आदि सबके द्वारा पूज्य हैं, ज्ञानी पुरुष शांतिनाथका ही आश्रय लेते हैं, संसारी जीवोंको मोक्ष को प्राप्ति श्रीशांतिनाथ भगवानसे ही होती है, इसलिये मैं शांति प्राप्त करनेके लिये भगवान शांतिनाथको ही नमस्कार करता हूं । भगवान शांतिनाथसे ही यह मोक्ष मार्ग सदा वृद्धिको प्राप्त होता रहता है, श्रीशांतिनाथके अनंत गुण हैं, इस संसारमें मेरी आत्मा श्रीशांतिनाथमें ही निवास करती है, हे शांतिनाथ भगवन आप मेरे समस्त पापोंके समूहको शांत कीजिये ॥ ३०३ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें महाराज मेघरथके वैराग्य प्रगट होने दीक्षा धारण करनेवाला यह ग्यारहवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

बारहवां अधिकार ।

मैं अपने अशुभ कर्मोंको शांत करनेकेलिये संसारमात्रको शांत करनेवाले, समस्त पापोंको शांत करनेवाले और तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव इन तीनों पदोंसे सुशोभित श्रीशांतिनाथको नमस्कार करता हूं

॥ १ ॥ अथानन्तर—मुनिराज मेघरथ छह प्रकारके बाह्य तपश्चरण करने लगे और लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाला छह प्रकारका उत्कृष्ट अभ्यंतर तपश्चरण सदा पालन करने लगे ॥ २ ॥ यह बारह प्रकार तपश्चरण जो मुनिराज मेघरथने पालन किया था उसे मैं अपनी शक्तिके अनुसार संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥३॥ अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन. कायक्लेश, यह छह प्रकारका बाह्य तपश्चरण कहलाता है यह तपश्चरण अभ्यंतर तपश्चरणका कारण है ॥ ४-५ ॥ अन्न, पान, खाद्य, स्वाद्य, इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करना अनशन (उपवास) तप कहलाता है ॥ ६ ॥ तपश्चरण पालन करने के लिये अपनी भूखसे कुछ कम आहार लेना अवमोदर्य तप है, यह अवमोदर्य तप अनेक प्रकारसे होता है ॥७॥ मैं आहार लेनेके लिए एकही घर जाऊंगा अथवा एक ही गलीमें जाऊंगा अथवा चौराये तक जाऊंगा, इसप्रकार विलक्षण नियम करना वृत्तिपरिसंख्यान तप है यह तप आशाका सर्वथा नाश करता है ॥ ८ ॥ इन्द्रियोंको वश करनेके लिए दूध, दही, घी, तेल, मीठा आदि रसोंका त्याग करना रस परित्याग व्रत है ॥ ९ ॥ पशु, पक्षी, स्त्री आदिसे रहित गुफा आदि एकांत स्थानमें शयन आसन करना विविक्तशय्यासन तप है ॥ १० ॥ व्युत्सर्गके द्वारा अथवा वृक्षके नीचे आतापन योग धारण कर विद्वानोंके द्वारा जो दुख सहन किया जाता है उसे कायक्लेश तप कहते हैं ॥ ११ ॥ अब अतरंग तपका वर्णन करते हैं-प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकारका अन्तरंग तप कहलाता है ॥ १२ ॥ पापोंका नाश करनेवाला आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, कायोत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना, और श्रद्धान यह दश प्रकारका शुद्ध करनेवाला प्रायश्चित्त कहलाता है ॥ १३-१४ ॥ बुद्धिमानोंको ज्ञान दर्शन चारित्र तप मुनि आदि गणधरोंकी मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक विनय करनी चाहिये ॥ १५ ॥ कर्मोंको नष्ट करनेके लिए सज्जनोंको आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ साधु और मनोज्ञ इन दश प्रकारके मुनियोंकी सेवा सुश्रुषा कर वैयावृत्य करना चाहिये। यह वैयावृत्य ही गुणोंका समुद्र है ॥ १६-१७ ॥ इन्द्रियोंको दमन करनेके लिए मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा,

धर्मोपदेश यह पांच प्रकारका स्वाध्याय करना चाहिए ॥ १८ ॥ धीरवीर पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करनेकेलिये अपनी शक्तिके अनुसार बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंका त्यागकर कायोत्सर्ग करना चाहिये क्योंकि यह कायोत्सर्ग ही मोक्षरूपी स्त्रीका पिता है ॥ १९ ॥ इसी प्रकार इष्ट वियोगसे उत्पन्न होनेवाला, अनिष्ट करना चाहिये ॥ २४-२५ ॥ शुक्ल ध्यानके भी चार भेद हैं पहिला पृथक्त्ववितर्क विचार, दूसरा एकत्ववितर्कविचार, तीसरा सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति। यह चारों प्रकारका महाध्यान समस्त कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिए अग्निके समान हैं। इसलिये मुनिराजको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए मनको शुद्धकर इनका ध्यान करना चाहिये ॥ २६-२८ ॥ विवेकी पुरुषोंको समस्त पूर्ण सुख प्राप्त करनेके लिए अपनी शक्ति प्रकटकर यह बारह प्रकारका पूर्ण तपश्चरण करना चाहिये ॥ २९ ॥ जो मनुष्य पापोंको शांत करनेके लिए मन बचन कायकी शुद्धि पूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार पापरहित पूर्ण तपश्चरणका पालन करते हैं वे अनन्त सुख सागरको प्राप्त होते हैं और मुक्तिके स्वयं स्वीकार किए हुए पति बनते हैं ॥ ३० ॥ मुनिराज मेघरथने अपने छोटे भाई दृढ़रथकेसाथ मोक्ष प्राप्तिके लिए जो ऊपर लिखा तपश्चरणका अनुष्ठान किया था उसको मैं अब संक्षेपसे कहता हूं ॥ ३१ ॥ उन मुनिराजने मनुष्योंके लिए असह्य ऐसा पन्द्रह दिनका, एक महीना, दो महीना, छह महीना और एक वर्ष आदिका अनेक प्रकारका अनशन तप किया था इसीप्रकार वे मेघरथ मुनिराज निद्रा और परिश्रम दूर करनेके लिए एक गास दो ग्रास आदि लेकर अवमोदर्य तप करते थे ॥ ३३ ॥ वे मुनिराज वृत्तिपरिसंख्यान नामका श्रेष्ठ तपश्चरण करनेके लिए भिक्षाके समय अमुक दाताके मिलेगा तो आहार लूंगा, अमुक आहार मिलेगा तो लूंगा चतुर्मासमें नहीं लूंगा इत्यादि कठिन प्रतिज्ञाएं करते थे ॥ ३४ ॥ वे मुनिराज अपने छोटे भाई के साथ और इंद्रियां आदि को दमन करनेके लिए गर्म जलके साथ अनन्त सुख देनेवाला पवित्र और नीरस आहार लेते थे। (अथवा गर्म जलसे धोया हुआ आहार लेते थे) ॥ ३५ ॥ वे चतुरमुनि-ध्यानकी सिद्धिके लिए श्मशान, निजनवन, सूने घर गुफा और वृक्षोंके कोटर आदिमें शय्यासन धारण करते थे ॥ ३६ ॥ वे मुनि काय क्लेश सहन

करनेके लिए असह्य ग्रीष्म समयमें सूर्यकी किरणोंसे संतप्त हुए पर्वतके ऊपरकी शिलापर सूर्यके सामने मुंहकर विराजमान होते थे ॥ ३७ ॥ वर्षाऋतुकी रातोंमें पापोंको नाश करनेके लिए पक्षियोंके घोसलोंसे भरे हुए, घोर और तेज वायुसे हिलते हुए वृक्षके नीचे विराजमान होते थे ॥ ३८ ॥ वे धीर मुनिराज जाड़ेके दिनोंमें अपने भाईके साथ वर्फसे ढके हुए घोर ठंडे चौहटेमें कायोत्सर्ग धारणकर विराजमान होते थे ॥३८॥ यदि उनके चरित्रमें कोई अकस्मात् भी दोष लग जाता था तो वे उसकी शुद्धिके लिये विना किसी आलसके उसी समय प्रायश्चित्त देते थे ॥ ४० ॥ वे बुद्धिमान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप मुनि आदि कोंमें मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक विद्या आदि अनेक गुण देनेवाला विनय धारण करते थे ॥ ४१ ॥ वे अपने भाईके साथ दश प्रकारके ज्ञानी तपस्वी मुनियोंको आत्मिक अनेक गुण देनेवाला वैयावृत्य करते थे ॥ ४२ ॥ वे मुनि अज्ञानको दूर करने और ज्ञान संपादन करनेके लिये स्वाध्यायकी शुद्धताको प्राप्त होकर अङ्ग पूर्व और प्रकीर्णकोंका सदा पाठ किया करते थे। वे शरीरसे ममत्व छोड़कर समस्त अशुभ कर्म रूपी अग्निको बुझानेके लिए मेघके समान पक्ष, महीना, छह महीना, एक वर्ष आदिका व्युत्सर्ग धारण करते थे ॥ ४४ ॥ अपने हृदयको धर्म और शुक्लध्यानमें लगानेवाले शुद्ध बुद्धिवाले वे मुनिराज निंद्य आर्त और रौद्र ध्यानको स्वप्नमें भी कभी हृदयमें धारण नहीं करते थे ॥ ४५ ॥ किंतु वे मुनि अपने मनमें पदार्थ और नयसे परिपूर्ण तथा शास्त्रोंसे उत्पन्न हुए चारों प्रकारके उत्कृष्ट धर्मध्यानको सदा चिन्तवन करते थे ॥ ४६ ॥ कभी वे अपने मनके संकल्प विकल्पोंको छोड़कर रत्नके दीपकके समान, स्वच्छ और कर्मरूपी वनको जलानेके लिए अग्निके समान प्रथम शुक्लध्यान धारण करते थे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार वे मुनिराज अपने भाईके साथ अपनी भक्तिको न छिपाकर अत्यंत घोर तीव्र और पापरहित बारह प्रकारका तपश्चरण करते थे ॥ ४८ ॥ उन बुद्धिमानने हिंसा झूठ चौरी अब्रह्म और परिग्रह इन पांचों पापोंका मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जन्म पर्यंत तक त्याग कर दिया था ॥ ४९ ॥ वे दयालु मुनिराज ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदा-ननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पांचों समितियोंको बड़े प्रयत्नसे पालन करते थे ॥ ५० ॥ तीनों गुप्तियोंके पालन

करनेमें तत्पर रहनेवाले वे संयमी मुनिराज अपने ध्यानयोगके बलसे ही मन वचन कायकी प्रवृत्तियोंका निग्रह करते थे ॥ ५१ ॥ भूख, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, बध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये बाईस परीषह कहलाती हैं। ये परीषह दुर्धर हैं, असह्य हैं, मनुष्योंके लिए अत्यंत कठिन हैं कातरोंको भय उत्पन्न करनेवाली हैं और अत्यन्त दुख देनेवाली हैं परन्तु वे मुनिराज अपने भाईके साथ इन सब परीषहोंको सहन करते थे ॥५२-५५॥ वे धीर वीर अपने ध्यानरूपी शस्त्रके बलसे एक बारमें आई हुई अत्यन्त कठिन और रौद्र उनईस परीषहोंको जीतते थे ॥ ५६ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपने गुरुके समीप तीर्थंकर नाम कर्मको देनेवाले सोलह कारणोंका चिंतवन किया था ॥ ५७ ॥ उन्होंने सम्यग्दर्शनको नाश करनेवाली देव मूढ़ता आदि तीनों मूढ़ताएं नष्टकी थी, और बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाले जाति कुल आदिके आठ मद नष्ट किए थे ॥ ५८ ॥ इसीप्रकार मिथ्यात्व आदिसे उत्पन्न हुए छह अनायतनोंका त्याग किया था और शंका आदि आठों दोषोंका त्याग किया था इसप्रकार उन्होंने सम्यग्दर्शनके पच्चीसों दोषोंका त्याग किया था ॥ ५९ ॥ चिंतवन करनेमें तत्पर रहनेवाले उन मुनिराजने अपने मनमें निःशंकित आदि आठों अङ्गोंको धारण कर सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि धारण की थी ॥ ६० ॥ मन बचन कायकी शुद्धिपूर्वक मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाली तीर्थंकर, मुनि तप और रत्नत्रयकी विनयको चिंतवन उन्होंने किया था ॥ ६१ ॥ स्वप्नमें भी प्रमादोंका त्याग कर मोक्ष देनेवाले अठारह हजार शीलोंमें कोई अतिचार नहीं लगाते थे ॥ ६२ ॥ लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले अङ्ग पूर्व आदिके ज्ञानको वे सदा पढते रहते थे और भव्य जीवोंको पढ़ाते रहते थे ॥ ६३ ॥ वे परमज्ञानी मुनिराज समस्त अकल्याण करनेवाले शरीर संसार और भोगोंमें मोक्षके कारणभूत संवेगका चिंतवन करते थे ॥ ६४ ॥ वे मुनिराज सब प्राणियोंके लिए ज्ञान दान अभयदान आदि दान दिया करते थे और मुनियोंको विशेषकर सदा दिया करते थे ॥ ६५॥ वे मुनिराज समस्त कर्मोंको नाश करनेवाली बारह प्रकारके तपश्चरणकी भावना सदा किया करते थे ॥ ६६ ॥ वे संयमी मुनिराज किसी रोग आदिके कारण दुखी हुए साधुओंको धर्मोप-

देश देकर उनका दुख निवारण किया करते थे ॥ ६७ ॥ वे चतुर मुनि अपने और दूसरोंके गुणोंकी वृद्धिको-
लिये मोक्षकी इच्छा करनेवाले रोगी मुनियोंका वैयावृत्य किया करते थे ॥ ६८ ॥ अरहंतोंकी भक्ति करनेमें
तत्पर वे मुनिराज अपने मनमें सदा "अर्हन्" इन दो अक्षरोंका ध्यान करते थे और वचनसे भी सदा
इन्हीं दो अक्षरोंका जप किया करते थे ॥ ६९ ॥ जो ज्ञान दर्शन चारित्र तप और वीर्य इन पंचा-
चारोंका स्वयं पालन करते हैं और शिष्योंसे पालन कराते हैं उनको आचार्य कहते हैं उन आचा-
र्यकी भक्ति भी वे सदा किया करते थे ॥ ७० ॥ जो स्वयं श्रुतज्ञानरूपी अमृतका पान किया करते हैं और
भव्योंको उस श्रुतज्ञानरूपी अमृतका पान करानेकेलिये सदा उद्यत रहते हैं उनको उपाध्याय कहते हैं वे
मुनि ऐसे उपाध्यायोंकी भक्ति भी सदा किया करते थे ॥ ७१ ॥ आप्तके कहे हुए, अनेक तत्वोंसे भरपूर,
और इन्द्र नरेन्द्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे शास्त्रोंमें भी सदा गाढ़ भक्तिधारण करते थे ॥ ७२ ॥ वे मुनिराज तृण,
सुवर्ण, सुख दुख, निंदा स्तुति और जीने मरनेमें उत्कृष्ट समता भाव रखते थे ॥ ७३ ॥ तीर्थंकरोंके गुणोंमें
अनुरक्त हुए वे मुनिराज सिद्ध पद प्राप्त करनेकेलिये प्रतिदिन चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति किया करते थे
॥ ७४ ॥ वे मुनि तीनों समय मन वचन कायसे मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी ऐसे पांचों परमेष्ठियोंकी वंदना
सदा किया करते थे ॥ ७५ ॥ अपनी निंदा गर्हा आदिमें तत्पर रहनेवाले बुद्धिमान और प्रमादरहित वे
मुनि व्रतोंके अतिचार दूर करनेकेलिये प्रतिक्रमण किया करते थे ॥ ७६ ॥ वे मुनि तपश्चरण पालन करनेके
लिये योग्य पदार्थोंका भी त्यागकर अपने शरीरमें भी वैराग्य धारण करते थे ॥ ७७ ॥ वे मुनि अपने शरीर-
से ममत्व छोड़कर तथा दृढ़ स्तंभके समान निश्चल होकर अपनी शक्तिके अनुसार मोक्षके कारणभूत कायो-
त्सर्गको धारण करते थे ॥ ७८ ॥ जो मुनि मोक्ष प्राप्त करनेकेलिये नियमपूर्वक इन छहों आवश्यकोंका पाल-
न करते हैं उनकी स्वप्नमें भी कभी कोई हानि नहीं हो सकती ॥ ७९ ॥ वे मुनि तप ज्ञान आदि सद्गुणोंके
द्वारा श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्गको सदा प्रकाशित किया करते थे ॥ ८० ॥ धर्ममें प्रेम
रखनेवाले वे मुनि अपने पापोंको नाश करनेकेलिये जैनियोंके साथ अधिक प्रेम करते थे और श्रुतज्ञानको

धारण करनेवाले मुनियोंके साथ और अधिक प्रेम करते थे ॥८१॥ महाधीर वीर उन मुनिने इसप्रकार तीर्थंकर नाम कर्मकाबंध करनेवाली सोलह कारण भावनाओंका भावन किया था ॥ ८२ ॥ इसप्रकार इन भावनाओंकी अच्छी तरह भावना करते हुए उन मुनिराजके उसके फल स्वरूप तीर्थंकर नाम कर्मका बंध हुआ था ॥ ८३ ॥ इस तीर्थंकर नाम कर्मको अनन्त महिमा है, यह महान पुण्यका कारण है, मनुष्य देव विद्याधर सब इसे नमस्कार करते हैं और यह तीनों लोकोंको क्षोभित करनेका कारण है ॥ ८४ ॥ उन मुनिराजको निर्मल कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पादानुसारिणी बुद्धि और संभिन्नश्रोतृ बुद्धि ऋद्धियां प्राप्त हुई थीं। जिसप्रकार राजर्षि अपनी राजविद्याओंके द्वारा सब धर्म अधर्मको जान लेते हैं उसीप्रकार पूज्य ऋद्धियोंको धारण करनेवाले उन मुनिराजने उन बुद्धि ऋद्धियोंके द्वारा सब संसारको और धर्म अधर्मको जान लिया था ॥ ८५-८६ ॥ परमार्थको जाननेवाले, महा ऋद्धियोंको धारण करनेवाले और कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेमें तत्पर ऐसे वे मुनिराज दीप्ततपसे दीप्यमान थे, उत्कृष्ठ तप्ततप, महातप, घोरतप, घोरपराक्रम तप और उग्रतपको सदा पालन करते थे ॥ ८७-८८ ॥ मोक्षरूप महा इच्छाको धारण करनेवाले उन मुनिराजके विना इच्छाके ही केवल आत्म शुद्धिसे ही अणिमा महिमा आदि आठों विक्रिया नामकी रिद्धियां प्राप्त हुई थीं ॥ ८९ ॥ मामर्ष रिद्धि, क्षेत्ररिद्धि, जल्ल, विट्, सर्वौषधि आदि समस्त रोगोंको नाश करनेवाली और संसार भरका उपकार करनेवाली रिद्धियां भी उनको प्राप्त हुई थीं ॥ ९० ॥ उन मुनिराजके रसपरित्याग नामके तपके प्रभावसे अमृतस्रावी रिद्धियां, मधुस्रावी, क्षीरस्रावी और सर्पिस्रावी नामकी रिद्धियां प्राप्त हुई थीं ॥ ९१ ॥ उन धीर वीर मुनिराजको परीषहोंको जीतनेसे हो असंख्य बल प्रगट करनेवाली मनोबल वचनबल और कायबल नामको रिद्धियां प्राप्त हुई थीं ॥ ९२ ॥ अक्षीण रिद्धिके प्रभावसे उनके अक्षीण अन्न और अक्षीण आलाय ऋद्धियां प्राप्त हुइ थीं सो ठीक ही है क्योंकि किए हुए भारी तपश्चरणका फल अक्षय होता ही है ॥ ९३ ॥ वे मुनिराज अनुक्रमसे अनेक देशोंमें विहार करते हुए आहारके लिये श्रीपुर नगरके राजा श्रीषेणके घर पधारे ॥ ९४ ॥ राजा श्रीषेणने भी दुर्लभ निधानके समान उन्हें

देखकर भक्तिपूर्वक तिष्ठ तिष्ठ कहकर उन्हें स्थापन किया ॥ ६५ ॥ उनने बड़ी भक्तिसे विधिपूर्वक उन मुनिराजको प्रासुक और मिष्ट आहार दिया जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ६६ ॥ फिर किसी दिन वे मुनि आहारके लिए ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक दत्तपुर नगरके राजा नंदनके घर पधारे ॥ ६७ ॥ राजा नंदनने भी भक्तिपूर्वक उनको स्थापन किया और विधिपूर्वक उत्तम शुभ रसीला मधुर आहार उनको दिया ॥ ६८ ॥ शुभकर्मके उदयसे उसके घर भी परलोक फलको सूचित करनेवाली और देवोंके द्वाराकी हुई रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्योंको वर्षा हुई ॥ ६६ ॥ तदनंतर किसी एक दिन इच्छारहित वे मुनिराज संयमकी वृद्धिके लिए पुन्डरोकिणी नगरीके राजा सिंहसेनके घर पधारे ॥१००॥ उस राजा सिंहसेनने भी उनके चरण कमलोंको नमस्कारकर उन्हें स्थापन किया और उन्हें मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक चारित्र बढ़ानेवाला उत्तम मधुर आहार दिया ॥१०१॥ उसी समय प्राप्त हुये पुण्यके प्रभावसे उनके घर बहुतसे द्रव्यसे भरी हुई रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चार्योंकी वर्षा हुई थी सो ठीक है क्योंकि मनुष्योंको दानसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सब कुछ होता है ॥ २ ॥ वे मुनिराज तपश्चरणके द्वारा समयकी परम कोटिपर पहुंच गये थे और दृढ़रथके साथ साथ नभस्तिलक पर्वतपर जा विराजमान हुये थे ॥ ३ ॥ शुद्ध बुद्धिवाले उन मुनिराजने अपनी एक महीनेकी आयु जानकर प्रायोपगमन नामका सन्यास धारण किया था ॥ जिसमें प्रायः चारों आराधनाओंका और तीनों रत्नत्रयोंका आराधन प्राप्त हो उसको प्रायोपगमन कहते हैं अथवा जिस शुभ प्रायोपगमनमें पहिलेके हिंसा आदिसे उत्पन्न हुये समस्त पापोंके समूह पायः नष्ट हो जांय उसको प्रायोपगमन कहते हैं। अथवा जिसमें मनुष्योंके निवासस्थान हटकर वनमें जाना पड़े उसको बुद्धि-मानोंने तथा श्रीजिनेंद्रदेवने प्रायोपगमन कहा है ॥ ५-७ ॥ वे मुनिराज अपने शरीरका न तो स्वयं कुछ प्रतिकार करते थे और न कभी दूसरेसे करानेकी इच्छा करते थे इस प्रकार शरीरसे ममत्व छोड़कर वे निश्चल विराजमान थे ॥ ८ ॥ वे मुनिराज अपनी शक्तिके अनुसार बलका आश्रय लेकर ध्यान और अध्ययनके साथ साथ अनशन तप करते थे ॥९॥ तपश्चरणसे उनके सब शरीरपर केवल हड्डी चमड़ा रह गया था

था, उनका उदर अत्यन्त कृश हो गया था, शरीरके अंग उपांग सूख गए थे और नेत्ररूपी कमल अत्यन्त गहरे हो गए थे ॥ १० ॥ महाक्षमाको धारण करनेवाले वे मुनिराज महा धैर्य धारणकर और प्रसन्न चित्त होकर क्षुधा तृषा आदि सब परीषहोंको जीतते हुए विराजमान थे ॥ ११ ॥ उन्होने क्रोधका नाशकर महा-क्षमा धारण की थी, कठिनताको छोड़कर मार्दव धारण किया था, मायाका नाशकर आर्जव धारण किया था और अधिक बोलनेका त्यागकर सत्यधर्म धारण किया ॥ १२ ॥ लोभको छोड़कर शौच धर्म धारण किया था, प्रमादका त्यागकर संयम तप त्याग धारण किया था, शरीरसे ममत्व छोड़कर आकिंचन्य धर्म धारण किया था और ब्रह्मचर्यके सब दोषोंको नष्टकर दृढ ब्रह्मचर्य धारण किया था। इसप्रकार वे मुनिराज अपने मनमें इस दश धर्मको सदा पृथक् २ चिंतवन करते थे ॥ १३—१४ ॥ वे मुनिराज अपने मनमें शरीर, सवारी, लक्ष्मी, घर, राज्य, भोग आदि पदार्थोंमें तथा संसारमें सदा अनित्यता का चिंतवन किया करते थे ॥ १५ ॥ इस जीवको सिवाय धर्मके और कोई भी व्याधि, जन्म, जरा, मरण, दुख, शोक आदिसे बचानेवाला नहीं है इसप्रकार वे सदा स्मरण किया करते थे ॥ १६ ॥ यह अनादि संसाररूपी वन महाभयानक है, घोर है और अनेक दुखोंसे भरा हुआ है इसमें यह प्राणी पंच परावर्तनोंके द्वारा सदा परिभ्रमण किया करता है इसप्रकार वे अपने मनमें सदा चिंतवन किया करते थे ॥ १७ ॥ यह जीव संसाररूपी समुद्रमें पुण्यपापके फल सुख दुखको अकेला ही अनेक प्रकारसे भोगा करता है सुख दुखके बांटनेमें कोई साथी वा मित्र नहीं है इसप्रकार भी वे चिंतवन किया करते थे ॥ १८ ॥ यह आत्मा शरीरसे सर्वथा भिन्न है फिर भला वह अन्य पदार्थमें मिलकर एक कैसे हो सक्ता है इसप्रकार वे मुनिराज अपने हृदयमें सदा स्मरण किया करते थे ॥ १९ ॥ यह अपना शरीर सब दुखोंकी खानि है, अपवित्र है और अशुद्ध पदार्थोंका मन्दिर है ऐसा यह शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकता, सदा अशुद्ध ही रहेगा इसप्रकार भी वे मुनिराज विचार करते थे ॥ २० ॥ जिसप्रकार जलके आनेसे समुद्रमें नाव डूब जाती है उसीप्रकार कर्मोंके आनेसे यह प्राणी संसाररूपी समुद्रमें डूब जाता है इसप्रकार भी वे अपने हृदयमें चिंतवन करते

थे ॥ २१ ॥ जिसप्रकार उस आते हुए पानीके रोक देनेसे वह नाव अपने द्वीपको अच्छी तरह पहुंच जाती है उसीप्रकार कर्मोंके संवर होनेसे यह जीव मोक्षमें जा विराजमान होता है । इसप्रकार भी वे अपने हृदयमें धारण करते थे ॥ २२ ॥ जिसप्रकार अजीर्ण रोगसे दुखी मनुष्य मलके निकल जानेसे सुखी होता है इसप्रकार वे मनसे चिंतवन करते थे ॥ २३ ॥ यह लोक ऊर्ध्व मध्य और अधो भागके भेदसे तीन प्रकारका है और सदा दुखसे भरा हुआ है और नित्य तथा अनित्य दोनों स्वरूप है इसप्रकार वे हृदयमें धारण करते थे ॥ २४ ॥ इस जीवको मनुष्य जन्म अच्छा कुल, निरोग शरीर पूरी आयु और उत्तम धर्मकी प्राप्ति उत्तरोत्तर दुर्लभ है इस प्रकार भी वे हृदयमें चिंतवन करते थे ॥ २५ ॥ धर्म हिंसासे रहित है, सवतरहके सुख देनेवाला है, मुक्तिका कारण है और क्षमा मार्दव आदिके भेदसे दश प्रकारका है इसप्रकार भी वे मुनिराज अपने हृदयमें धारण करते थे ॥ २६ ॥ इसप्रकार अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करनेसे उनका वैराग्य दूना होगया था और परलोकमें समस्त कार्य करनेवाला विवेक उनके हृदयमें जाज्वल्यमान होगया था ॥ २७ ॥ वे मुनिराज मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक आज्ञाविचय अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, यह चारों प्रकार का धर्मध्यान धारण करते थे ॥ २८ ॥ उन मुनिराजने वैराग्यसे सुगंधित हुए अपने मनसे सब संकल्प विकल्प छोड़ दिये थे, और प्रमादको छोड़कर कर्मोंको नाश करनेवाली श्रेणी आरोहण की थी ॥ २९ ॥ वे धीरवीर मुनिराज सुखके सागर, कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिये अग्नि और दुखरूपी दावानलके लिये मेघ के समान प्रथम शुक्लध्यानका चिंतवन करते थे ॥ ३० ॥ उन मुनिराज मेघरथने अपने भाईके साथ उस प्रथम शुक्लध्यानसे अशुभ कर्मोंका नाशकर उत्तम धर्मका संपादन किया था ॥ ३१ ॥ उन मुनिराजने अतिचार रहित स्वर्ग मोक्ष देनेवाली चारों आराधनाओंका विधिपूर्वक आराधन किया था ॥ ३२ ॥ तथा वे उस आत्मध्यानसे प्रयत्नपूर्वक प्राणोंका त्यागकर रत्नत्रयके फलसे सर्वार्थसिद्धिमें जा विराजमान हुये थे ॥ ३३ ॥ यह सर्वार्थसिद्धि विमान मुक्तिशिलासे बारह योजन नीचा है तथा अन्य सब विमानोंसे ऊपर है यह सबसे उत्तम है इसलिये इसको अनुत्तर विमान कहते हैं ॥ ३४ ॥ यह विमान एक लाख योजन चौड़ा है, सूर्य-

मंडलके समान है और समस्त पटलोंके अन्तमें चूड़ारत्नके समान शोभायमान है ॥ ३५ ॥ उस सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले पुण्यवान लोगोंके सुख और धर्मादिक बिना प्रयत्नके सिद्ध हो जाते हैं इसीलिये उसका सर्वार्थसिद्धि यह सार्थक नाम है। यह विमान सब विमानोंके मस्तकपर विराजमान होता हुआ बहुत ही अच्छा जान पड़ता है ॥ ३६-३७ ॥ इस संसारमें इस विमानसे और कोई उत्तम विमान नहीं है, यह विमान दिव्य है, सब ऋद्धियोंसे भरपूर है, और असंख्य सुखोंका सागर है, इसीलिये संसारमें यह विमान अनुत्तर कहलाता है, यह इसका नाम सार्थक है क्योंकि संसारमें इसकी कोई उपमा नहीं है ॥ ३८-३९ ॥ यह विमान बहुत बड़ा है और बहुत ऊंचा है तथा जो मुनि रत्नत्रय सहित हैं, मुक्तिरूपा स्त्रीमें आशक्त हैं, महा तपस्वी हैं, धीर हैं, और संसारके पार पहुंचानेवाले हैं उन मुनियोंको महा सुख देनेकी इच्छा से अपनी शिखरपर फहराती हुई ध्वजाओंसे बुला रहा ही सा जान पड़ता है ॥ ४०-४१ ॥ देवोंके प्रतिबिंबों को धारण करती हुई उसकी मणियोंकी दीवालें ऐसी अच्छी जान पड़ती हैं मानों कोई दूसरा अपूर्व स्वर्ग ही बनाना चाहती हो ॥ ४२ ॥ यह विमान रत्नोंकी किरणोंसे भरा हुआ है इसलिये उसमें दिन रातका संकल्प कभी नहीं होता वहांपर मणियोंकी किरणोंसे सदा दिनकी शोभा बनी रहती है ॥ ४३ ॥ वह विमान सब प्रकारके सुख देनेवाला है इसलिये उसमें कभी भी ऋतुओंका परिवर्तन नहीं होता उसमें समस्त सुख देनेवाला समान काल ही सदा बना रहता है ॥ ४४ ॥ वहांकी अत्यन्त कोमल और सुगन्धित लटकती हुई पुष्पमालायें ऐसी अच्छी जान पड़ती हैं मानों इन्द्रोंकी सज्जनताको ही बतला रही हों ॥ ४५ ॥ वहांपर स्थान स्थानपर मोतियोंकी मालायें शोभायमान हैं और ऐसी जान पड़ती हैं मानों अपनी शोभासे उत्तम दांतों की किरणोंकी ओर हँस ही रही हों ॥ ४६ ॥ इसप्रकार जिसमें स्वाभाविक सर्वोत्तम रचना हो रही है जो समस्त सुन्दरताकी खानि है और सब जगह सुख देनेवाला है, ऐसे सर्वार्थ सिद्धि विमानकी अत्यन्त कोमल उपपाद शय्यामें वे दोनों ही अहमिंद्र क्षणभरमें ही छहों प्रकारकी पर्याप्तिको प्राप्त करते हो गए ॥४७-४८॥ वे दोनों ही अहमिंद्र अन्तर्मुहूर्तमें ही समस्त अवयवों सहित पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गये थे ॥४९॥

उन दोनोंके शरीर सप्त धातु मल नख केश आदिसे रहित थे, पसीना खेद आदिसे रहित थे, सुन्दर लक्षणोंसे सुशोभित थे स्वाभाविक सुन्दर थे, व्याधि नेत्रस्पंद (आंखोंकी टिमिकार) आदिसे रहित थे, नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले थे, मनोहर उपमा रहित, और सुखकी खानि थे। समस्त शुभ और चिकने परमाणुओंसे बने हुए थे, अत्यन्त कोमल थे और शय्यापर चंद्रकुण्डलके समान मनोहर जान पड़ते थे ॥ ५०-५२ ॥ अपने शरीरकी कांतिसे ढके हुए सिंहासनपर बिराजमान हुए वे दोनों ही इन्द्र सूर्य चंद्रमाके समान शोभायमान होते थे ॥ ५३ ॥ उनके गलेमें दिव्य हार था मस्तकपर सुन्दर मुकुट था, कानोंमें कुण्डल थे, भुजाओंमें केयूर थे और किरणोंकी मूर्तिके समान वे शोभायमान थे ॥ ५४ ॥ स्वाभाविक वस्त्र माला, केयूर आदि दिव्या आभूषणोंसे और अपनी कांतिसे वे दोनों अहमिंद्र पुण्यको राशिके समान शोभायमान थे ॥ ५५ ॥ उन दोनोंका वैक्रियक शरीर अणिमादि गुणोंसे प्रशंसनीय था, सब दिशाओंको सुगंधित करता था और स्वाभाविक सुन्दर था ॥ ५६ ॥ वे दोनों ही अहमिंद्र असंख्यात ऋद्धियोंके सागरके समान रत्न सुवर्णमयी अकृत्रिम जिनभवनोंमें समस्त अभ्युदयोंकी सिद्धिके लिए संकल्पमात्रसे ही उत्पन्न हुए दिव्य गंध अक्षत आदि द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक श्रीजिनप्रतिमाओंका सुख देनेवाला पूजन किया करते थे ॥५७-५८॥ वे दोनों ही अहमिन्द्र मोक्ष प्राप्त करनेके लिए वहां बैठे ही बैठे अपने अवधिज्ञानसे तीनों लोकोंमें विराजमान सब प्रतिमाओंको देखकर सदा नमस्कार किया करते थे ॥ ५९ ॥ अपने अवधिज्ञानसे भगवानके पंच कल्याणकोंको जानकर बड़ी भक्तिसे मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार करते थे ॥ ६० ॥ भगवानके गुण समूहोंमें अनुरक्त हुए वे दोनों ही अहमिन्द्र भगवानके यथाथ गुणसमूहोंका वर्णनकर वचनोंके द्वारा सदा उनकी स्तुति किया करते थे ॥ ६१ ॥ वे दोनों ही विद्वान अहमिन्द्र श्रीजिनेन्द्रदेवका पद प्राप्त करनेके लिये अथवा पापोंके नाश करनेके लिये अपने मनमें प्रतिदिन अनन्त गुणोंसे सुशोभित श्रीजिनेंद्रदेवका स्मरण किया करते थे ॥ ६२ ॥ जो अहमिन्द्र बिना बुलाए स्वाभाविक रीतिसे आ जाते थे उनके साथ वे दोनों अहमिन्द्र मोक्ष प्राप्त करनेके लिये पुण्य देनेवाली धर्मगोष्ठी परस्पर किया करते थे ॥ ६४ ॥ बड़ी ऋद्धिको

धारण करनेवाले वे अहमिन्द्र केवल मोक्षकी इच्छासे पुण्य प्राप्त करनेवाली, तत्त्वज्ञानसे भरी हुई और सारभूत श्रीजिनेंद्रदेवकी कथा सदा किया करते हैं ॥ ६४ ॥ यदि वे अहमिन्द्र अपनी इच्छानुसार चले गए तो अपने रहनेके समीपके उद्यानमें सुन्दर सरोवरोंके किनारेको भूमिपर क्रीड़ा किया करते हैं ॥ ६५ ॥ परक्षेत्रमें उनका विहार कभी नहीं होता क्योंकि शुक्ललेश्याके प्रभावसे उन्हें अपने भोगोंमें ही संतोष होता हैं ॥६६॥ उनका स्थान अनेक प्रकारकी विभूतिसे भरा हुआ है और कभी न नाश होनेवाले सुखकी खानि है इसलिये उन्हें अपने स्थानमें जो प्रेम है वह दूसरी किसी जगह नहीं है ॥ ६७ ॥ इस जगहमें ही इन्द्र हूं मेरे सिवाय और कोई इन्द्र नहीं है इस प्रकारके सुखको प्राप्त हैं इसीलिए वे वहांके उत्तम देव अहमिन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६८ ॥ उनमें ईर्षा, मत्सर, आत्मप्रशंसा, आठ प्रकारका मद, दीनता, बैर, द्वेष, शोक, भय, अरति, मानसिक, दुख, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, दुर्भगता और कामाग्नि आदि दोष सर्वथा नहीं हैं ॥६९-७०॥ वे अहमिन्द्र सब मन्द कषायी होते हैं और धर्मध्यानमें सदा तत्पर रहते हैं इसलिए उनमें परस्पर स्वाभाविक उपमा रहित प्रेम सदा बना रहता है ॥७१॥ वे प्रेमसे केवल अरहंतोंकी पूजा किया करते हैं और सब तरह आनन्दित और सुखी होते हुए क्रीडा किया करते हैं ॥ ७२ ॥ उनके चिंतारहित, प्रमाणरहित, आत्मासे तथा परमानन्दसे उत्पन्न हुआ और मुनियोंके द्वारा जानने योग्य सुख सदा बना रहता है ॥ ७३ ॥ प्रवीचार रहित (कामवेदनासे रहित) रागरहित और स्वभावसे उत्पन्न होनेवाला सुख उन्हें सदा बना रहता है ॥७४॥ अहमिन्द्रोंके कामवेदनासे रहित जो स्वाभाविक सुख होता है वह प्रवीचार से होनेवाले सुखसे भी असंख्यातगुणा है ॥ ७५ ॥ इस संसारमें समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला जो उत्कृष्ट सुख है वह सब पुण्यकर्मके उदयसे उन विरागी देवोंको होता है ॥ ७६ ॥ एक हाथ ऊंचा, महा दैदीप्यमान उनका उत्तम शरीर समचतुरस्र संस्थानसे बहुत ही सुन्दर जान पड़ता है ॥ ७७ ॥ उन दोनों अहमिन्द्रोंकी तेतीस सागरकी आयु थी और धर्मध्यानकी कारणभूत उत्कृष्ट शुक्ललेश्या थी ॥ ७८ ॥ तेतीस हजार वर्ष बीतनेपर वे दोनों तृप्ति करनेवाला, अमृतमय, मानसिक दिव्य आहार ग्रहण करते थे ॥ ७९ ॥ तीस पक्ष अर्थात् साढ़े सोलह महीने

बीतनेपर वे दोनों ही अहमिन्द्र समस्त दिशाओंको सुगंधित करनेवाला थोड़ासा उच्छ्वास लेते थे ॥ ८० ॥ वे दोनों ही अहमिन्द्र अपने अवधिज्ञानरूपी दीपकसे लोकनाड़ी तकके मूर्त योग्य द्रव्योंको पर्याय सहित देखते थे ॥ ८१ ॥ उनकी श्रेष्ठ विक्रिया ऋद्धि भी लोकनाडी तक समस्त कार्य करने और अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ थी ॥ ८२ ॥ परन्तु वे दोनों ही अहमिन्द्र वीतराग थे इस लोकमें मुनिराजके समान इच्छा-रहित थे इसलिए वे कभी विक्रिया नहीं करते थे ॥८३॥ मुनियोंका जिसप्रकार ऋद्धिसे उत्पन्न हुआ आभ-रणरहित दैदीप्यमान आहारक शरीर होता है उसीके समान उन दोनोंका शरीर था ॥ ८४ ॥ भगवान जिने-न्द्रदेवने जो अत्यन्त शांत और उत्तम सुख बतलाया है वह सब मिलकर उन दोनोंके शुभकर्मके उदयसे प्रगट हुआ था ॥ ८५ ॥ इसप्रकार पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए सुखामृतरूपी सागरके मध्यमें वे दोनों ही अहमिंद्र डूब रहे थे ॥ ८६ ॥ अथानन्तर—छह खंडोंसे शोभायमान नदी और विजयार्द्ध पर्वतसे विभूषित इसी मनोहर भारतवर्षमें आर्यखण्ड शोभायमान है ॥ ८७ ॥ उसके मध्यभागमें सब धान्योंकी खानि और अनेक धर्मात्मा पुरुषोंसे भरा हुआ कुरु जांगल नामका देश है ॥ ८८ ॥ वहांके मनोहर बनोंमें वृक्षोंके नोचे बज्रासनसे विराजमान हुए कितने ही मुनि अनेक प्रकारका ध्यान करते हैं कितने ही सिद्धांतका पाठ करते हैं कितने ही शरीरसे ममत्व छोड़कर कायोत्सर्ग धारण करते हैं और कितनेही धर्मोपदेश करते हैं ॥ ८९-९० ॥ वहांकी नदियोंके मनोहर और शीतल किनारोंपर ध्यान अध्ययनमें तत्पर रहनेवाले और आर-म्भरहित कितने ही मुनि सदा विराजमान रहते हैं ॥ ९१ ॥ जिसप्रकार चारित्र मुनियोंको फल देता है उसी प्रकार वहांके आम आदिके ऊंचे वृक्ष चाहनेवालोंको अपने अपने अच्छे फल देते हैं ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार मुनियोंका चारित्र सब प्रकारकी तृप्ति करनेवाला होता है उसी प्रकार वहांके चावलोंके पके खेत मनुष्योंको बहुतसे फल देते हैं ॥९३॥ वहांके गांवोंसे जिनके सफेद शिखरोंपर ध्वजाएं फहरा रही हैं ऐसे ऊंचे जिना-लय धर्मकी खानिके समान शोभायमान होते हैं ॥ ९४ ॥ वहांपर धर्मात्मा लोग ही समस्त कर्मोंको नाश करनेके लिए स्वर्गसे आकर, जन्म लेते हैं क्योंकि वहांपर प्रतिदिन कोई न कोई मोक्ष जाता ही रहता है

॥ ९५ ॥ वहांके मुनिगण निर्ममत्वकी प्राप्ति करनेके लिए और भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिए प्रत्येक गांव खेट और नगरमें बिहार किया करते हैं ॥ ९६ ॥ वहांपर पुण्यवान, दानी जिनपूजा करनेमें तत्पर और सदा श्रावकोंके विभूषित करनेवाले गृहस्थ ही निवास करते हैं ॥ ९७ ॥ देवांगनाओंके समान वहांकी चतुर स्त्रियां दान देनेवाली हैं, शील पालन करनेवाली हैं, धर्म धारण करनेवाली हैं तथा रूपवती और लावण्यवती हैं ॥ ९८ ॥ उत्तम नरेशका शासन होनेसे वहांकी प्रजाको चोर आदिका कुछ भय नहीं है अपने पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए बहुतसे सुखको सदा भोगती रहती हैं ॥ ९९ ॥ कर्मके प्रभावसे वहाँके लोगोंके पास अनेक प्रकारकी लक्ष्मी है वे दान पुण्यमें सदा तत्पर रहते हैं और सदा उत्सव मनाते रहते हैं ॥ २०० ॥ वहांपर उत्पन्न हुए कितने ही लोग दानके फलसे भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं और कितने ही तपश्चरणके प्रभावसे स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ तथा कितने ही भव्य जीव चारित्र धारण कर और कर्मसमूहको नाश कर बन्धनरहित हो जानेके कारण मोक्षमें ही जा विराजमान होते हैं ॥ २ ॥ वहांपर तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसी निर्वाण भूमियां हैं जो पुण्य कर्मोंकी जननी हैं और मुनियोंकेलिये वसतिकाके समान हैं ॥ ३ ॥ उस देशमें केवलज्ञानी भी धर्म वृद्धिकेलिये चारों संघोंके साथ, देवों सहित लोगोंकी इच्छानुसार विचार करते हैं ॥ ४ ॥ इत्यादि वर्णन करने योग्य उस देशके मध्यभागमें नाभिके समान हस्तिनापुरी नामकी एक नगरी है जो कि स्वर्गपुरीके समान शोभायमान है ॥ ५ ॥ ऊंचे कोट, और ऊंचे दरवाजोंसे तथा खाई और अटारि-योंकी पंक्तियोंसे वह नगरी शोभायमान है और उसे शत्रु भी कभी उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ राज-भवनोंकी शिखर पर फहराती हुई ध्वजाओंसे वह नगरी ऐसी अच्छी जान पड़ती है मानों पुण्यवान देवोंको धर्म साधन करनेके लिये ही बुला रही है ॥ ७ ॥ उत्तम पदार्थोंसे भरे हुए राजमार्ग ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो सुन्दर चारित्रवालोंसे चलता हुआ स्वर्ग मोक्षका मार्ग ही हो ॥ ८ ॥ उस नगरीमें मुनि और गृहस्थोंके द्वारा श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ अहिंसारूप धर्म ही प्रतिदिन धारण किया जाता है ॥९॥ वहांपर इस लोक तथा परलोक संबंधी कार्योंमें मंगल कार्योंमें तथा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए गृहस्थोंके द्वारा श्रीतीर्थंकर ही माने

जाते हैं और वे ही पूजे जाते हैं ॥१०॥ उस नगरीके जन्तुरहित बनोंमें ध्यानादिक की सिद्धिके लिए इच्छा-
रहित योगी चतुर मुनि निवास किया करते हैं ॥ ११ ॥ कोटसे, तोरणोंसे, मनोहर धर्मोपकरणोंसे, शिखरों-
पर लगी हुई ध्वजाओंके समूहसे, गीत नृत्य बाजे, सैकड़ों स्तोत्रोंके शब्द, और धर्मात्मा स्त्री पुरुषोंके द्वारा
वहांके जिनमन्दिर धर्मके सागरके समान उत्तम जान पड़ते हैं ॥ १२-१३ ॥ धुले हुए वस्त्र पहने, हाथमें पूजा-
की सामग्री लिए जिनमन्दिरोंकी ओर जाती हुई वहां की स्त्रियां देवांगनाओंके समान जान पड़ती हैं
॥ १४ ॥ कितनी ही रूपवती स्त्रियां भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजाकर घरको आती हुई अप्सराओंके समान
शोभायमान होती हैं ॥ १५ ॥ रूप लावण्यसे सुन्दर दिखनेवाली कितनी ही स्त्रियां जिन मन्दिरमें
गीत नृत्य करती हुई किन्नरियोंके समान अच्छी जान पड़ती हैं ॥ १६ ॥ वहांके रहनेवाले
गृहस्थ सवेरे ही चारपाईसे उठ कर सदा जप सामायिक आदि धर्म ध्यान किया करते हैं ॥ १७ ॥
पात्रदान देनेमें तत्पर रहनेवाले सब दानी गृहस्थ, मुनियोंको दान देनेके लिये दो पहरके समय द्वारापेक्षण
किया करते हैं ॥ १८ ॥ दृढ़व्रती वे पुरुष संध्याके समय प्रतिदिन पंच नमस्कार मंत्रका जप किया करते हैं
सामायिक किया करते हैं और कायोत्सर्ग किया करते हैं ॥ १६ ॥ धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाले वहांके पुरुष
मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अष्टमी और चतुर्दशीके दिन घरसंबन्धी सब आरम्भ छोड़कर प्रोषधोपवास किया
करते हैं ॥ २० ॥ वहांके स्त्री पुरुष सब धर्म पालन करनेकेलिये गृहस्थोंके योग्य सब व्रतोंका पालन करते हैं
और सब शीलव्रतोंको पालन करते हैं ॥ २१ ॥ वहांके रहनेवाले धर्मात्मा हैं, दानी हैं, सुन्दर हैं, धीर वीर हैं
शीलव्रतोंको पालन करनेवाले हैं, सम्यग्ज्ञानी हैं और सम्यग्दृष्टी हैं ॥ २२ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे वहांकी
स्त्रियां रूपवती हाव भाव आदिमें चतुर लावण्यरूपी समुद्रकी बेलाके समान जान पड़ती हैं ॥ २३ ॥ उस
शहरके मध्यभागके उत्तरकी ओर उत्तम राजमन्दिर है वह राजमन्दिर पर्वतके शिखरके समान बहुत ऊंचा
है, कोट दरवाजे आदिसे शोभायमान है, बहुत बड़ा है, परिवार और सेवकोंसे भरा है, सुन्दर है, अनेक
रिद्धियोंसे सुशोभित है, आवाज और वाजोंके सैकड़ों शब्दोंसे व्याप्त है, और उसमें सब आवश्यक पदार्थ

यथा स्थानपर रक्खे हुए हैं। उसके चारों ओर और भी छोटे छोटे सफेद भवनहैं जो ऐसे जान पड़ते हैं मनों चन्द्रमाके चारों ओर तारे ही हों ॥ २४-२६ ॥ उस राजधानीमें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाले और काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए महाराज अजितसेन राज करते थे ॥ २७ ॥ उनकी रानीका नाम प्रियदर्शना था वह बड़ी ही सुन्दरी थी, अनेक गुणोंसे सुशोभित थी और बाल चन्द्रमा आदि शुभ स्वप्नोंको देखनेवाली थी ॥ २८ ॥ उन दोनोंके पुण्य कर्मके उदयसे ब्रह्मस्वर्गसे आकर अनेक श्रेष्ठ गुणोंके सागर ऐसे विश्वसेन नामके पुत्र हुये थे ॥ २९ ॥ वे महाराज विश्वसेन तीन ज्ञानधारी थे, अनेक राजा उनके चरण कमलोंकी सेवा करते थे, और धर्मात्मा तथा ज्ञानी गुरुओंकी वे विनय करते थे ॥ ३० भगवान तीर्थंकरके वे भक्त थे, लोगोंको प्रिय दाता थे, और कुटुम्बी लोगोंको सुख देते थे ॥ ३१ ॥ वे राज्यका सब भार धारण करते थे, बड़े सुन्दर थे, धर्मात्मा थे, ज्ञानी विज्ञान सहित थे, बुद्धिमान थे, और विद्वान थे ॥ ३२ ॥ उन्हें अनेक ऋद्धियां प्राप्त थीं वे बड़े वक्ता थे उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैली हुई थी तीनों लोकोंमें वे प्रसिद्ध थे और देव मनुष्य विद्याधर सब उनकी सेवा करते थे ॥ ३३ ॥ मुकुट कुंडल हार अंगद केयूर कंकण आभूषणोंसे तथा दिव्य माला और वस्त्रोंसे वे महाराज इन्द्रके समान शोभायमान थे ॥ ३४ ॥ अथानन्तर गांधार देशके गांधार नगरमें धर्मके प्रभावसे श्रीमान् महाराज अजितंजय राज्य करते थे ॥ ३५ ॥ उनकी सौभाग्यशालिनी रानीका नाम अजिता था। उन दोनोंके सनत्कुमार स्वर्गसे आकर ऐरा नामकी पुत्री हुई थी ॥ ३६ ॥ यौवन अवस्थामें उस रूपवती सुन्दरीका विवाह विवाहविधिसे महाराज विश्वसेनके साथ हुआ था ॥ ३७ ॥ वह महादेवी महाराज विश्वसेनकी पट्टरानी थी, उनकी बहुत प्यारी थी, सब लोग उसे मानते थे और लावण्यरसकी वह कुई थी ॥ ३८ ॥ समस्त सुन्दर अंग प्रत्यगोंको धारण करनेवाली वह रानी रूप लावण्य, कांति, लक्ष्मी, बुद्धि, दीप्ति और विभूतिसे प्रतिदिन इन्द्रानीके समान शोभायमान थी ॥ ३९ ॥ वह अपनी कांतिसे चन्द्रमाकी कलाके समान लोगोंको आनन्द देती थी और ऐसी जान पड़ती थी मानों देवांगनाओंके रूपका सार लेकर ही बनाई हो ॥ ४० ॥ वह मनोहर थी, मनोज्ञ थी, सरस्वतीके समान

उसका मुख सदा प्रसन्न लोगोंको प्यारी थी, विज्ञानमें कुशल थी, चतुर थी, कलाओंकी जानकार थी। रहता था और स्वर उनका बहुत ही मीठा था ॥ ४१ ॥ धर्मके कामोंमें चलते समय सुन्दर लक्षणोंसे सुशोभित हुए उसके दोनों चरण ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों अशोक वृक्षके पत्ते ही हों ॥ ४२ ॥ वे चरण मणियोंके बने हुए बिछुओंके झंकारोंसे शब्दायमान थे, देव उनकी सेवा करते थे वे बड़े कोमल थे और नखरूपी चन्द्रमासे प्रगट हुई सैकड़ों किरणोंसे वे व्याप्त थे ॥ ४३ ॥ केलेके खंभेके समान उसके जंघा बहुत ही अच्छे जान पड़ते थे और कांची देशके बने हुए शालसे ढका हुआ उसका कटिमंडल बहुत ही सुन्दर जान पड़ता था ॥ ४४ ॥ उसका हृदय यौवनकी लक्ष्मीके घरके दो स्तन कुम्भोंसे शोभायमान था और उसपर पड़ा हुआ दिव्य हार बहुत ही सुशोभित होता था ॥ ४५ ॥ उसके दोनों हाथ कंकणोंसे शोभायमान थे भगवानकी सेवा करनेमें तत्पर थे कमलोंको जीतते थे और बड़े ही मनोहर थे ॥ ४६ ॥ उसका कंठ गीत स्वर, और कंठाभरणसे सुशोभित था, कोमल था, मनोहर था और पुत्रके आलिंगन करनेमें तत्पर था ॥ ४७ ॥ उसके मुखकी कांति चन्द्रमंडलके समान तथा सरस्वतीके घरके समान वह संसारमें शोभायमान था ॥ ४८ ॥ उसके दोनों कान श्रुतज्ञानसे सुशोभित थे और श्रुतदेवताकी पूजन सामग्रीके समान कानोंमें पहने हुए आभरणोंकी रचनासे बड़े ही अच्छे जान पड़ते थे ॥ ४९ ॥ उसके नेत्र स्निग्ध थे, मनोहर थे, बिभ्रम विलाससहित थे, भगवानका मुख देखनेकेलिये लालायित थे और कज्जलसे शोभायमान थे ॥ ५० ॥ उसका मस्तक भौंराके समान काले बालोंसे सुशोभित था, पुष्पगंध आदिसे सुगंधित था और देव गुरुको ही नमस्कार करता था ॥ ५१ ॥ पुण्य संपत्ति ही उसकी जननी थी लज्जा ही उसकी सखी थी और गुण ही उसके परिजन थे ॥ ५२ ॥ वह दिव्य वस्त्र पहने हुए थी उत्तम शृङ्गार रचनासे सुशोभित थी और ऐसी जान पड़ती थी मानों ब्रह्माने (नाम कर्मने) कोमल और मनोहर परमाणुओंसे ही बनाई हो ॥ ५३ ॥ इस संसारमें कवियोंने स्त्रियोंके जो कुछ उत्तम लक्षण वर्णन किए हैं वे ऐराके शुभ शरीरमें सब विद्यमान थे ॥ ५४ ॥ हमलोग वीतराग हैं इसलिए हमने वे सब लक्षण नहीं कहे हैं क्योंकि शृङ्गारकी पुष्टि

होनेसे मनुष्योंके हृदयमें राग बढ़ता है ॥ ५५ ॥ जिसप्रकार इन्द्रकी इन्द्राणी होती है उसीप्रकार वह रानी अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी, वह उत्कृष्ट प्रणयकी भूमि थी ॥ ५६ ॥ इस प्रकार महाराज विश्वसेन अपने पुण्यकर्मके उदयसे ऐरा देवीके साथ साथ यथासमय तृप्ति करनेवाले भोग भोगते थे ॥ ५७ ॥ अथानन्तर—सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने अपने अवधिज्ञानसे जब जान लिया कि महाराज मेघरथके जीव अहमिन्द्रकी आयु छह महीनेकी रह गई है तब उसने कुवेरसे कहा कि कुरुजांगल देशकी हस्तिनापुरी नगरीमें महाराज विश्वसेन राज्य करते हैं उनकी महारानी ऐराके शुभ उदरमें धर्मके नाथ, सबके द्वारा पूज्य मुक्तिके भर्ता और सबको शांति देनेवाले सोलहवें तीर्थंकर श्रीमान् भगवान् शांतिनाथ अवतार लेगें। इसलिये हे धनाधीश! तुम पुण्य संपादन करनेकेलिये वहां जाओ और स्वयं बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके घर महा आश्चर्य प्रगट करनेवाली रत्नोंकी वर्षा करो ॥ ५८-६१ ॥ इन्द्रकी बात सुनकर उस यक्षराजके भाव दूने होगये और वह इन्द्रकी आज्ञाकों मस्तकपर रखकर पुण्य संपादन करनेकेलिये शीघ्र ही उनके घर आया ॥ ६२ ॥ तथा वह प्रतिदिन महाराज विश्वसेनके घर बहुमूल्य बेडूर्य पद्मराग आदि मणियोंकी तथा उत्तम सुवर्णकी वर्षा करने लगा ॥ ६३ ॥ उस रत्नोंकी वर्षामें गंगा सिन्धु आदि नदियोंके शीतल कण थे और भगवानके जन्मको सूचित करनेवाले तथा कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके मनोहर पुष्प थे ॥ ६४ ॥ वह रत्नोंकी धारा ऐरावत हाथीकी मोटी और बहुत चौड़ी सूंढ़के समान थी और ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों धर्मरूपी वृक्षके मोटे २ अंकुरोंकी परम्परा ही हो ॥ ६५ ॥ आकाशको रोककर पड़ती हुई वह रत्नोंकी धारा ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों स्वर्गकी लक्ष्मी ही ऐरा देवीकी सेवा करनेके लिये पृथ्वीपर आ रही हो ॥ ६६ ॥ वह आकाशसे पड़ती हुई सुवर्णमयी वर्षा ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों अपनी शोभासे मनुष्योंको पुण्यका फल साक्षात् ही दिखला रही हो ॥ ६७ ॥ वह महाराज विश्वसेनका घर रत्न और सुवर्णकी महा वृष्टिसे सब ओर भर गया, उसे देखकर सब लोक धर्माचरण करनेमें तत्पर हो गये ॥ ६८ ॥ वह ऐरा महादेवीका मन्दिर देवोंने सुवर्ण और रत्नोंकी वर्षासे भर दिया इस लिये मणियोंकी सैकड़ों

किरणोंसे भरा हुआ वह घर ताराओंके समूहके समान जान पड़ता था ॥ ६९ ॥ इसप्रकार वह कुबेर पुण्य
संपादन करनेके लिये छह महीने तक प्रसन्न होकर प्रतिदिन बहुमूल्य रत्नोंकी वर्षा करता रहा ॥ ७० ॥
अथानन्तर—प्रथम स्वर्गके इन्द्रने धर्मकी प्रेरणासे पद्मद्रह आदिके कमलोंपर निवास करनेवाली श्री, ह्री, धृति,
कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी इन देवियोंसे कहा कि महाराज विश्वसेनकी महादेवी ऐराके शुभ उदरमें तीर्थंकर चक्रव-
र्ती और कामदेव इन तीन पदोंसे सुशोभित भगवान शांतिनाथ अवतार लेंगे ॥ इसलिये तुम शीघ्र जाओ और
भगवानके जन्मके लिये उत्तम पवित्र द्रव्योंसे गर्भशोधना करो। इन्द्रकी आज्ञासे उन देवियोंने पवित्र द्रव्योंसे
गर्भका संशोधनकर उसे शुद्ध स्फटिकके समान कर दिया ॥७४॥ श्रीदेवीने भगवानकी मातामें लक्ष्मी धारणकी,
ह्रीने लज्जा, धृतिने धैर्य, कीर्तिने स्तुति, बुद्धिने ज्ञान और लक्ष्मीने संपदा धारण की ॥ ७५ ॥ इस प्रकार वे
देवियां मातामें अपने २ गुणोंको अलग स्थापनकर केवल पुण्य संपादन करनेके लिए माताकी सेवा करने
लगीं ॥ ७६ ॥ अथानन्तर चतुर्थ स्नान करनेके बाद वह भगवानकी मातायोंसे सुशोभित रत्नोंके बने हुये,
मनोहर भवमें सुन्दर कोमल शय्यापर शयनकर रही थीं। उसी दिन उसने रातके पिछिले पहर भगवानके
जन्मको सूचित करनेवाले और श्रेष्ठ फल देनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥७७-७८ ॥ उसने पहिले स्वप्नमें शर-
दऋतुके बादलके समान गर्जता हुआ और ऐरावत हाथीके समान ऊंचा मदोन्मत्त हाथी देखा ॥ ७९ ॥
दूसरे स्वप्नमें एक बैल देखा, उस बैलका स्कंध नगाड़ेके समान ऊंचेको उठा हुआ था वह मोटा था, धीरे २
डहार रहा था, सफेद था, और ऐसा जान पड़ता था मानों अमृतकी राशि ही हो ॥८०॥ तीसरे स्वप्नमें उसने
एक सिंह देखा, चंद्रमाकी छायाके समान उसका शरीर था लाल उसके कंधे थे और ऐसा जान पड़ता था
मानों अपने पुत्रका एक जगह इकट्ठा किया हुआ पराक्रम ही हो ॥ ८१ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देखी, वह
लक्ष्मी सोनेके ऊंचे सिंहासनपर बैठी थी और ऐरावत हाथी सोनेके कलशोंसे उसे स्नान करा रहे थे ऐसी
वह लक्ष्मी माताको अपनी ही लक्ष्मी जान पड़ी थी ॥ ८२ ॥ पांचवें स्वप्नमें उसने आनन्दसे दो मालाएं
देखीं, उन मालाओंकी सुगंधिसे उन्मत्त भ्रमर उनपर लग रहे थे और उन भ्रमरोंके झकोरोंसे वे मालाएं

ऐसी जान पड़ती थीं मानों उन्होंने गाना ही आरम्भ किया हो ॥ ८३ ॥ छट्ठे स्वप्नमें उसने चंद्रमा देखा, चन्द्रमा समस्त कलाओंसे पूर्ण था, ताराओं सहित था, बड़ी सुन्दर चांदनी उससे निकल रही थी अन्धकारको वह नष्ट कर रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानों माताका मुख ही हो ॥ ८४ ॥ अपने मांगलिक कार्यमें सातवें स्वप्नमें उसने उदयाचलसे उदय होता हुआ सूर्य देखा जो कि अन्धकारको नाश कर रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानों सोनेका बना हुआ कलश ही हो ॥ ८५ ॥ आठवें स्वप्नमें उसने रत्नोंसे ढके हुए दो सुवर्णमय कलश देखे वे कलश ऐसे जान पड़ते थे मानों जिनके मुंह कमलोंसे ढके हुए हैं ऐसे अपने स्नान करनेके कलश ही हों ॥ ८६ ॥ नौवें स्वप्नमें उसने स्वच्छ जलसे भरे हुए और जिसमें कमोदनी और कमल दोनों ही फूल रहे हैं ऐसे कीचडरहित मनोहर सरोवरोंमें दो मछलियां देखीं ॥ ८७ ॥ दशवें स्वप्नमें उसने एक सुन्दर सरोवर देखा उस सरोवरका जल तैरते हुए कमलोंकी पराग वा केसरसे पीला हो रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानों वह सुवर्णके चूर्णसे ही भर रहा हो ॥ ८८ ॥ ग्यारहवें स्वप्नमें उसने समुद्र देखा, वह समुद्र चुभित हो रहा था, लहरें उसमें उठ रही थीं, अनेक रत्न उसमें पड़े हुए थे और ऐसा जान पड़ता था मानो अपने पुत्रके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि रत्नोंका एक स्थान ही हो ॥ ८९ ॥ बारहवें स्वप्नमें उसने सुवर्णका बना हुआ एक सिंहासन देखा, वह सिंहासन बहुत ऊंचा था, अनेक मणियां उसमें जड़ी हुई थीं और ऐसा जान पड़ता था मानों मेरु पर्वतका एक अद्भुत शिखर ही हो ॥ ९० ॥ तेरहवें स्वप्नमें उसने एक देव विमान देखा वह विमान बहुमुल्य रत्नोंसे दैदीप्यमान था और ऐसा जान पड़ता था मानों देवोंके द्वारा लाया हुआ अपने पुत्रका प्रसूतिभवन ही हो ॥ ९१ ॥ चौदहवें स्वप्नमें उसने पृथ्वीको फोड़कर निकलता हुआ नागेन्द्रका भवन देखा वह भवन सुन्दर था सुवर्ण रत्नोंका बना हुआ था और ऐसा जान पड़ता था मानो जिनभवन ही हो ॥९२॥ पन्द्रहवें स्वप्नमें उसने अत्यंत दैदीप्यमान रत्नोकी महा राशि देखी वह राशि ऐसी जान पड़ती थी मानों अपने पुत्रके निःस्वेद (पसीना न आना) आदि गुणोंका समूह ही हो ॥ ९३ ॥ सोलहवें स्वप्नमें उसने धूमरहित जलती हुई दैदीप्यमान अग्नि देखी वह अग्नि ऐसी जान पड़ती

थी मानों अपने महा उज्वल प्रताप ही मूर्ति धारण कर आ गया हो ॥ ९४ ॥ सब स्वप्नोंके अन्तमें उसने
सब लक्षणोंसे सुशोभित, सुवर्णकीसी कांतिवाला ऊंचे शरीरका गजराज अपने मुखरूपी कमलमें प्रवेश
करता हुआ देखा ॥ ९५ ॥ तदनन्तर जिसप्रकार सीपमें मोतीका विंदु आ जाता है उसी प्रकार शुभ कर्मके
उदयसे भादो कृष्ण सप्तमीके दिन शुभ भरणि नक्षत्रमें उस ऐरा महादेवीके गर्भमें महाराज मेघरथका जीव
सर्वार्थसिद्धिसे चयकर आ विराजमान हुआ ॥ ९६-९७ ॥ इसप्रकार पुण्यकर्मके उदयसे सब मलोंसे रहित
भगवान शांतिनाथ अपने कर्मरूपी शत्रुओंको नाश करनेके लिये देवियोंके द्वारा संशोधित मोक्षके समान
दुख रहित मनोहर दिव्य गर्भमें अवतरित हुए ॥ ९८ ॥ भगवान शांतिनाथके जीवने धर्मके प्रभावसे मनुष्य
भवमें भी अनेक प्रकारके सुख भोगे थे और स्वर्गमें भी तथा ग्रैवेयक सर्वार्थसिद्धि आदि विमानोंमें भी
अनेक प्रकारके सुख भोगे थे। अनेक इन्द्र उनको पूजा करते थे और सेवा करते थे। वे भगवान बड़े ही सुंदर
थे और तीनों ज्ञानोंसे सुशोभित थे यही समझकर बुद्धिमानोंको भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए पूर्ण धर्मका
सदा पालन करते रहना चाहिये ॥ ९९ ॥ इस संसारमें जीवोंको धर्मके ही प्रभावसे सुख मिलता है धर्मके
प्रभावसे ही अनेक भोग और गुणोंका सागर स्वर्ग मिलता है, धर्मके ही प्रभावसे शत्रुरहित सुराज्य मिलता
है और धर्मके ही प्रभावसे तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाली बहुतसी लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १०० ॥ धर्मके
ही प्रभावसे देवोंके द्वारा पूज्य ऐसा इन्द्रपद प्राप्त होता है, धर्मके ही प्रभावसे चक्रवर्तीका पद प्राप्त होता है
जिसकी अनेक राजा सेवा करते हैं, धर्मके ही प्रभावसे तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसा तीर्थंकर पद प्राप्त
होता है और धर्मके ही प्रभावसे विद्वान लोग सुख देनेवाले मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ १ ॥ साक्षात्
मोक्षका कारण ऐसा वह मुनियोंका उत्तम धर्म सम्यग्दर्शनसे प्रगट होता है, सम्यग्ज्ञानसे प्रकट होता है
और सम्यक्चारित्रसे प्रकट होता है समस्त इन्द्रियोंको दमन करनेसे प्रकट होता है मनका निग्रह करनेसे
और आत्माका ध्यान करनेसे प्रकट होता है ॥ २ ॥ तथा स्वर्गके सुख देनेवाला वह गृहस्थोंका धर्म पात्रोंको
दान देनेसे, भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेसे, भगवान तीर्थंकर परमदेवका स्मरण करनेसे, व्रतोंको

पालन करनेसे, प्रोषधोपवास करनेसे और परोपकार करनेसे प्रकट होता है ॥ ३ ॥ जो जीव मन वचन कायसे सुखके सागर एक धर्मका ही पालन करते हैं वे श्रीशांतिनाथ भगवानके समान स्वर्ग और मनुष्योंके महासुख भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ इस संसारमें धर्म ही स्वर्गोंके सुख देनेवाला है और गुण प्रकट करनेवाला है, इस धर्मका आश्रय मुनिराज ही लेते हैं क्योंकि धर्मसे ही यह पुरुष संसार समुद्रमें पार होता है इसीलिये मैं धर्मके लिए ही सदा नमस्कार करता हूं। धर्मके सिवाय अन्य कोई मोक्षका कारण नहीं है। धर्मकी जड़ सम्यग्दर्शन है, इसलिए मैं अपने मन बचन काय धर्ममें ही धारण करता हूं। हे धर्म इस संसारमें अशुभ मोहसे मेरी रक्षा कर ॥ ५ ॥ भगवान शांतिनाथ समस्त पापोंकी शांति करनेवाले हैं, धर्मात्मा जीवोंके शरण हैं और संसार काम आदिके संतापसे संतप्त हुए जीवोंके समस्त दुख दूर करनेवाले हैं ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवानको मैं समस्त दुख और पाप नष्ट करनेके लिये तथा समस्त व्यसन शांति करनेके लिए नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें अहमिंद्रके गर्भावतरणको करनेका बारहवां अधिकार समाप्त ॥ १२ ॥

अथ तेरहवां अधिकार ।

अथानन्तर—वह मंगल करनेवाली ऐरा महादेवी जगानेके लिये बजते हुए तुरई आदि बाजे सुनकर जगी और बंदी लोगोंके मंगल, गीत सुनने लगी ॥ २ ॥ बंदीजन कहने लगे कि हे देवी ! आपके सामने यह जगनेका समय आ गया है क्योंकि यह प्रातःकालका समय धर्म ध्यानके योग्य है ॥ ३ ॥ इस योग्य समयमें कितने ही जैनी मोक्ष प्राप्त करनेके लिये चंचल योगोंका निरोध कर सुख देनेवाला उत्तम सामायिक करते हैं ॥ ४ ॥ कितने ही लोग धर्म साधन करनेके लिये एकाग्रचित्तसे समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाले पंच परमेष्ठियोंके वाचक उत्तम नमस्कार मंत्रोंका जप करते हैं ॥ ५ ॥ मोक्षरूपी स्त्रीमें आसक्त हुए कितने ही लोग चारपाईसे उठकर मनको रोककर कर्मोंका नाश करनेवाला अरहंतोंका ध्यान करते हैं ॥६॥ इस समय

कितने ही धीर वीर मुनि केवल मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए शरीरसे ममत्व छोड़कर संसाररूपी समुद्रसे पार कर-
नेके लिये जहाजके समान कायोत्सर्ग धारण करते हैं ॥ ७ ॥ इस प्रातःकालके समय कितने ही लोग कामप्रेम
छोड़कर धर्ममें प्रेम करने लग जाते हैं इसलिये हे देवि ! आप भी इस समय धर्ममें ही प्रेम कीजिये ॥ ८ ॥
यह संसार अनित्य है इसी बातको लोगोंके सामने बतलाता हुआ चन्द्रमा अस्ताचलके सम्मुख हो गया
उसकी किरणें भी मन्द पड़ गई हैं और कांति भी मन्द पड़ गई है ॥ ९ ॥ जिसप्रकार श्रीजिनेन्द्रदेवके शुभ
बचन रूपी किरणोंसे भव्य जीवोंका मनरूपी कमल प्रफुल्लित हो जाता है उसीप्रकार सूर्यकी किरणोंसे सब
कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं ॥ १० ॥ जिसप्रकार श्रीजिनेन्द्रदेवके बचनोंसे अभव्य जीवोंका हृदय कमल संकु-
चित हो जाता है उसीप्रकार इस प्रातः कालके समय सूर्यके संबंधसे कुमुदिनियोंका समूह संकुचित हो गया
है ॥ ११ ॥ जिसप्रकार श्रीजिनेन्द्रदेवके बचनोंसे अज्ञान नष्ट हो जाता है उसी प्रकार प्रातः कालके सूर्योदय
होनेसे रात्रिका अन्धकार सब नष्ट हो गया है ॥ १२ ॥ बहुत कहनेसे क्या ? पापोंको शांत करनेके लिये रात्रि
व्यतीत हो गई है और रात्रिके व्यतीत होनेसे बहुतसे लोग धर्मध्यानमें लग गये हैं ॥ १३ ॥ इसलिये हे देवि
अब शीघ्रही शय्या छोड़िये और इस प्रातः कालके समय स्तोत्र स्मरण कर धर्मका सेवन कीजिये ॥ १४ ॥
हे सुमङ्गले ! इसी धर्मके सेवन करनेसे तू इसलोकमें इंद्राणी आदिसे उत्पन्न हुए और परलोकमें स्वर्गादि-
कोंसे उत्पन्न हुए मंगलोंको (कल्याणोंको) प्राप्त होगी ॥ १५ ॥ वह सती महादेवी पहिलेसे ही जग रही
थी तो भी बन्दीजनोंने उसे ऊपर लिखे अनुसार प्रबोधित किया उस समय महादेवीका मुख कमलिनीके
समान स्वप्नोंके देखनेसे प्रफुल्लित हो रहा था ॥ १६ ॥ वह शय्यासे उठी और समस्त मङ्गल कार्योंकी सिद्धि-
केलिये धर्मका कारणभूत भगवानका स्मरण करने लगी ॥ १७ ॥ उसने समस्त पुण्यकर्मके लिये, स्नानादिक
नित्य कर्म किया वस्त्राभरण पहने और फिर वह चलती हुई कल्पवेलके समान निकली, उस समय सफेद
छत्रसे वह शोभायमान हो रही थी जिनवाणीके समान लोगोंको प्रिय थी, चारों ओर परदा आदि डालकर
अपना महोदय प्रगट कर रही थी, और जिसप्रकार चन्द्रमाकी रेखा रात्रिमें प्रवेश करती है उसी प्रकार

थोड़ेसे समीप रहनेवाले लोगोंसे घिरी हुई उस रानीने महाराजकी सभामें प्रवेश किया ॥ १८—२० ॥ महाराजने रानीको देखकर अपने योग्य विनय की और अपने स्नेहको सूचित करनेवाला आधा आसन स्वयं उसे दिया ॥ २१ ॥ वह महादेवी सुखसे विराजमान हुई और अपना मुख कमल प्रसन्न-कर तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले अपने पतिसे कहने लगी कि हे देव! मैं रात्रि के पिछिले पहर सुखसे सो रही थी उस समय मैंने महा अभ्युदयको सूचित करनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ २२-२३ ॥ हे देव! वे स्वप्न अत्यंन्य अद्भुत माहातमयको प्रकट करनेवाले फल संपादन करनेमें समर्थ हैं इसलिए मैं उन्हें कहती हूं, आप मन लगाकर सुनिए ॥ २४ ॥ १ पर्वतके समान गजराज, २ महा शब्द करता हुआ ऊंचा बैल ३ पर्वतकी शिखरको उल्लंघन करता हुआ सिंह, ४ ऐरावत हाथियोंके द्वारा स्नान करती हुई लक्ष्मी, ५ लटकती हुई दो मालाएं, ६ आकाशको प्रकाशित करता हुआ चंद्रमा, ७ उदय होता हुआ सूर्य, ८ सुन्दर दो मछलियां, ९ अमृत से भरे हुए दो कुंभ, १० स्वच्छ जलसे भरा हुआ और कमलों से शोभाय-मान सरोवर, ११ रत्नोंसे भरा हुआ समुद्र, १२ सुवर्णका बना हुआ सिंहासन, १३ स्वर्गसे आता हुआ विमान, १४ पृथिवीको फोड़कर निकलता हुआ नागेन्द्र भवन, १५ जिसकी किरणें चारों ओर फैल रही हैं ऐसी रत्नराशि और १६ कनकके समान निर्मल (धूमरहित) अग्नि ये सोलह स्वप्न देखे थे। हे स्वामिन! मुझपर दयाकर इन का सच्चा फल मुझसे कहिए क्योंकि मेरे मनमें इनके फल सुननेकी इच्छा बहुत कुछ बढ़ रही है ॥ ३० ॥ तदनंतर महाराजने अपने अवधिज्ञानसे उनका फल जाना और अपने प्रफुल्लित होते हुए मुख कमलसे वे महादेवीके लिए उनका फल कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि हे देवी! हे देवोंके द्वारा पूज्य! महा अभ्युदयको प्रकट करनेवाले तेरे स्वप्नोंका फल पुत्रकी प्राप्ति है उसीको मैं कहता हूं तू मन लगाकर सुन ॥ ३२ ॥ गजराजके देखनेसे तेरे तीर्थंकर महापुत्र होंगे, वे राज्य करेंगे, समस्त संसार उनकी पूजा करेगा और ों लोकोंके वे उपकारक होंगे ॥ ३३ ॥ महा वृषभ (बैल) के देखनेसे वे तीनों लोकोंमें सर्व श्रेष्ठ होंगे संसारमें धर्मरूपी रथको चलानेमें वे ही समर्थ होंगे ॥ ३४ ॥ सिंह देखनेसे उनमें अनन्त शक्ति होगी

और समस्त अशुभ कर्मरूपी हाथियोंका मद दूर करनेके लिए तथा उनका नाश करनेके लिये वे सिंहके समान समर्थ होंगे ॥ ३५ ॥ दो मालाओंके देखनेसे अनेक प्रकारके सुख देनेवाले वे धर्मतीर्थके कर्ता होंगे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मीके देखनेसे सब इन्द्रोंके द्वारा क्षीर सागर जलसे मेरु पर्वतके ऊपर उनका महा ऋद्धियोंको सूचित करनेवाला महाभिषेक होगा ॥ ३७ ॥ पूर्ण चंद्रमाके देखनेसे वे लोगोंको प्रसन्न करनेवाले और समस्त संसारको आनन्द देनेवाले होंगे और धर्मरूपी अमृतकी महावृष्टिसे भव्यरूपी धान्योंको वे सींचनेवाले होंगे ॥ ३८ ॥ सूर्यके देखनेसे संसारके समस्त रूपोंको वे जीतनेवाले होंगे। सूर्यकोसी उनकी कांति होगी, वे कामदेव, अत्यन्त रूपवान और तीर्थंकर होंगे तथा दिव्य परमाणुओंसे उनका शरीर बना हुआ होगा ॥ ३९ ॥ दो कलशोंके देखनेसे उन्हें निधियां प्राप्त होंगी, वे धर्मरूपी अमृतसे भरपूर होंगे तीर्थंकर होंगे, अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित होंगे और समवसरणकी विभूति उन्हें प्राप्त होगी ॥ ४० ॥ दो मछलियोंके देखनेसे मनुष्य लोक और स्वर्गलोकके सब सुख उहें प्राप्त होंगे और उनका मन सब जीवोंपर दया करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ सरोवरके देखनेसे उनके शरीरपर एकसौ आठ लक्षण और नौसौ व्यंजनहोंगे। वे कलाविज्ञानमें चतुर होंगे और बुद्धिमान होंगे ॥ ४२ ॥ समुद्रके देखनेसे वे तीर्थंकर अनन्त दर्शन नअत। ज्ञान अनन्त सुख और अनन्त वीर्यके समुद्र होंगे और रत्नत्रय आदि रत्नोंकी खानि होंगे ॥ ४३ ॥ सिंहासनके देखनेसे वे जगत गुरु भगवान इन्द्र नरेद्र आदिके द्वारा मान्य और समस्त भोगोंको एक स्थान ऐसा सामाज्य प्राप्त करेंगे ॥ ४४ ॥ स्वर्गसे आते हुए विमानके देखनेसे देवोंके द्वारा पूज्य वे तीर्थंकर भगवान धर्मतीर्थके प्रवृत्ति करनेके लिये स्वर्गसे आकर अवतार लेंगे ॥ ४५ ॥ नागेन्द्रका भवन देखनेसे समस्त संसारको प्रगट करनेवाला अवधिज्ञान उनके होगा और इसलोक परलोक दोनों लोक संबंधी हित अहित जाननेमें वे निपुण होंगे ॥ ४६ ॥ रत्नराशिके देखनेसे वे तीर्थंकर अनन्त गुणोंकी खानि होंगे और संसारमें महान् नररत्न होंगे ॥ ४७ ॥ निर्धूम अग्निके देखनेसे वे तीर्थंकर भगवान अपने शुक्लध्यान रूपी अग्निस कर्मरूपी ईंधनके महासमूहको अवश्य जलावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ अंतमें जो गजराजको

... इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ अंतमें जो गजराजको

मुखमें प्रवेश करते हुएदेखा है उसका फल यह है कि तेरे निर्मल गर्भसे श्रीशांतिनाथ तीर्थंकरने अवतार लेलिया है ॥ ४६ ॥ सुन्दर आकारको धारण करनेवाली वह महादेवी इसप्रकार अपने स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुई उसका शरीर रोमांचित हो गया और उसे बहुत ही आनन्द हुआ ॥ ५० ॥ उसी समय स्वर्गमें अपने आप घंटोंका महान शब्द होने लगा और बिना ही बजाए देवोंके बड़े नगारे (अनहद बाजे) बजने लगे ॥ ५१ ॥ उसी समय कल्पवृक्षोंसे बहुतसे पुष्पोंकी पुष्प वर्षा होने लगी और शीतल मंद सुगन्धित तथा कोमल और प्रिय वायु वहने लगी ॥ ५२ ॥ तथा भगवानके गर्भावतरणके प्रभावसे इन्द्रोंके आसन कपने लगे और उनके मुकुट कुछ नव गए ॥ ५३ ॥ उन सब आश्चर्योंको देखकर अवधिज्ञानसे उन्होंने भगवानका गर्भावतरण जाना और फिर गर्भकल्याण करनेके लिए वे तैयार हुए ॥ ५४ ॥ भगवानके गर्भावतरणके प्रभावसे ज्योतिर्लोकमें भी महा सिंहनाद हुआ तथा पहिले कहे हुए सब आश्चर्य हुए ॥ ५५ ॥ तथा व्यंतरोंके स्थानोंमें भी अपने आप भेरी नाद होने लगा और स्वर्गमें जो जो आश्चर्य हुएथे वे आश्चर्य सब होने लगे ॥ ५६ ॥ भवनवासियोंके भवनोंमें भी अपने आप शंखध्वनि होने लगी और पहिले कहेहुए सब आश्चर्य अपने अल्प होने लगे ॥ ५७ ॥ तदनन्तर सौधर्म इन्द्रको आदि लेकर सब इन्द्र आए, सबके साथ अलग अलग सातों प्रकारकी सेना थी, अपनी अपनी सवारियोंपर वे आ रहे थे, उनके साथ बड़ी भारी विभूति थी, वे अपनी कांतिसे आकाशको प्रकाशित कर रहे थे, अनेक प्रकारके उनके तुरई आदि बाजोंके शब्दोंसे सब दिशाएं बहिरी सी हो रही थीं, नृत्य गीतोंमें वे लगे हुए थे, भगवानका गर्भकल्याण करनेकी उनकी इच्छा थी, उत्सवमें वे लगे हुए थे अपनी अपनी देवांगनाएं उनके साथ थी और सब देव भी उनके साथ थे। इसप्रकार गर्भ कल्याणकी पूजा करनेके लिये वे सब क्षण भरमें ही महाराज विश्वसेनके मन्दिरमें आ पहुँचे ॥ ५८-६१ ॥ उसीप्रकार सब ज्योतिषीदेवोंके साथ तथा अपने परिवारके साथ सब सूर्य चन्द्रमा भगवानकी माताके घर आए ॥ ६२ ॥ इसीप्रकार सब व्यंतर देव अपनी विभूति और देवियोंके साथ प्रसन्न होकर पुण्य संपादन करने लिये भगवानके गर्भकल्याणमें आए ॥ ६३ ॥ उसीप्रकार बड़ी ऋद्धिको

धारण करनेवाले भवनवासी देवोंके इन्द्र भी अपने निकाय (भवनवासी देवों) के साथ धर्म साधन करने-की इच्छासे पृथ्वीपर आए ॥ ६४ ॥ इसप्रकार देवोंसे, सेनासे, विमानोंसे और बाहनोंसे भरा हुआ महाराज विश्वसेनका सब घर आकाश और वन नगरके समान दिखाई देता था ॥ ६५ ॥ तदनन्तर सब देवोंसे घिरे हुये और परमानन्दमें डूबे हुये सौधर्म इन्द्रने अपनी इन्द्राणीके साथ केवल धर्म साधन करनेके लिये बड़ी भक्तिसे गभमें विराजमान भगवान जिनेंद्रदेवकी तीन प्रदक्षिणाएं दी और दैदीप्यमान मुकुटसे सुशोभित अपना उत्तम मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार किया ॥ ६६-६७ ॥ फिर उसने बहुमूल्य और दिव्यवस्त्राभरणोंसे माता पिताकी पूजा की और फिर उनके नामने मनोहर हाव भावोंसे नाट्य शास्त्रके क्रमसे उत्पन्न हुआ और रथोत्सव करनेवाला उत्तम आनन्द नामका नाटक किया ॥ ६८-६९ ॥ तदनन्तर अपना कार्य समाप्तकर सौधर्म इन्द्रने पुण्य संपादन करनेके लिये भगवानको माताकी सेवामें दिक्कुमारियोंको नियुक्त किया और उत्तम श्रेष्ठाचरणोंके द्वारा महा धर्मका उपार्जनकर वह सब देवोंके साथ अपने स्थानको चला गया ॥ ७०-७१ ॥ तदनन्तर चारों निकयोंके चतुर देव अपना अपना कार्य कर परम आनन्द मनाते हुये और प्रसन्न होते हुए अपने अपने इन्द्र और देवांगनाओंके साथ अनेक प्रकारके भावोंसे महा पुण्य संपादन कर अपने अपने स्थानको चले गए ॥ ७२-७३ ॥ सब देवोंके चले जानेके पश्चात् उसी समयसे भगवानकी माताकी आज्ञा पालन करनेवाली वे दिक्कुमारी देवियां केवल पुण्य संपादन करनेके लिए अपने अपने योग्य कार्योंसे माताकी सेवा करने लगी कितनी ही उसे तांबूल देने लगी और कितनी ही देवियां उसे स्नान करानेके कामपर नियुक्त हुईं ॥ ७५ ॥ कितनी ही देवियां भोजन बनानेके काममें लग गईं, कितनी ही शय्या बनानेमें लग गईं, और कितनी ही देवियां पुण्य संपादन करनेकेलिए उसके पैर दावनेमें लग गईं ॥ ७६ ॥ कोई देवी प्रसन्न होकर स्वयं दिव्य सुगंधित द्रव्योंसे तथा कुंकुम और कज्जलसे माताका श्रृंगार करनेलगीं ॥ ७७ ॥ हार कंकण केयुर आदि बहुतसे आभरणोंको प्रसन्नताके साथ पहनाती हुई, कोई देवी ठीक कल्पलताके समान सुशोभित होती थी ॥ ७८ ॥ कल्पलताके समान कितनी ही देवियां

उन्हें रेशमी वस्त्र समर्पण करती थीं और कितनी ही देवियां उन्हें दिव्य मालाएं पहनाती थीं ॥ ७९ ॥ कितनी ही देवियां हाथको तलवार लेकर उठाये हुए बड़े प्रयत्नके साथ भगवानकी माताके शरीरकी रक्षा करनेमें लगी हुई थीं ॥ ८० ॥ कितनी ही देवियां सुवर्ण और रत्नोंके बने हुऐ तथा अनेक लोगोंसे भरे हुए महाराजके आंगनमें पुष्पोंकी परागसे भरी हुई पृथ्वीको झाड़ रही थीं ॥ ८१ ॥ कितनी ही देवियां पृथिवीपर घिसे हुए चन्दनके छींटे दे रही थीं और कितनी ही देवियां सावधान होकर गीले कपड़ेसे उसे पोंछ रही थीं ॥ ८२ ॥ कितनी ही देवियां माताके सामने रत्नोंके चूर्णसे स्वस्तिक रचना कर रही थीं (सांथिया निकाल रही थीं) और कितनी ही देवियां कल्पवृक्षोंके सुगंधित पुष्पोंकी उसे भेट दे रही थीं ॥ ८३ ॥ कितनी ही देवियां अपने शरीरको छिपाकर: आकाशमें खड़ी थीं और जोरसे कह रही थीं कि महादेवीकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे करो ॥ ८४ ॥ कितनी ही देवियां चलते समय साथ चलती थीं, कितनी ही देवियां खड़े होनेपर आसन देती थीं और माताके बैठ जानेपर उसके चारों ओर बैठ जाती थीं ॥ ८५ ॥ इसप्रकार वे देवांगनायें पुण्य संपादन करनेके लिये तीर्थंकरके गुणोंकी आशासे उस गर्भवती भगवानकी माताकी सेवा करती थीं ॥ ८६ ॥ चारों ओरके अन्धकारको दूर करती हुई कितनी ही देवांगनायें रात्रिमें अपने भवनोंमें दैदीप्यमान ज्योतिवाले उज्जल मणियोंका प्रकाश करती थीं ॥ ८७ ॥ कितनी ही देवियां जलक्रीडा कराकर माताको सुख पहुंचाती थीं दूसरे दिन बनक्रीडा कराकर सुख पहुंचाती थीं और फिर किसी दिन कथा गोष्ठी कहकर माताको सुख पहुंचाती थीं ॥ ८८ ॥ कितनी ही देवियां उसके पुत्रके गुणोंको प्रगट करनेवाले और मनको प्रसन्न करनेवाले अनेक प्रकारके श्रेष्ठ मधुर गीतोंसे माताको प्रसन्न करती थीं ॥ ८९ ॥ कितनी ही देवियां श्रेष्ठ गीतोंसे मिले हुए वीणा, मृदङ्ग, बंशी आदि बाजोंसे तथा अनेक प्रकारकी तुरहियोंसे माताके मनको संतुष्ट करती थीं ॥ ९० ॥ कितनी ही देवांगनाएं विक्रिया ऋद्धिसे होनेवाले तथा हाव भावोंसे भरे हुए रसीले और मनोहर नृत्योंसे माताको परम सुखी करती थीं ॥ ९१ ॥ इसप्रकार उन देवियोंके द्वारा की हुई सेवासे वह माता ऐसी शोभायमान थी मानों संसार भरकी लक्ष्मी किसी तरह एक जगह ही आकर इकट्ठी हो गई

हो ॥ ९२ ॥ इस प्रकार वे दिक्कुमारियां बड़ी शीघ्रताके साथ मातकी सेवा कर रही थीं और गर्भमें आये भगवानके प्रभावसे मालाकी शोभा और विभूति बहुतही बढ़ गई थी ॥ ९३ ॥ अथानन्तर-नौवां महीना समीप आनेपर वे देवियां विशेष काव्योंकी चर्चासे गर्भके भारको धारण करनेवाली उस महादेवीको प्रसन्न करती थीं ॥ ९४ ॥ निगूढ़ अर्थ (छिपा हुआ अर्थ) क्रियागुप्त (जिससें क्रिया छिपी हो) विंदुच्युतक, मात्राच्युत, अक्षरच्युत, (जिनमें विंदुमाता अक्षर कम किया गया हो) आदि श्लोकोंसे तथा अन्य भी कई प्रकारके श्लोकोंसे वे देवियां माताको प्रसन्न करने लगीं ॥ ९५ ॥ देवियोंने पूछा कि इस संसारमें सत्पुरुष कौन है ? माताने उत्तर दिया कि जो धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पदार्थोंको सिद्धकर मोक्षमें जा विराजमान हुआ है वही सत्पुरुष वा सज्जन है। उसके सिवाय अन्य कोई सज्जन नहीं है ॥ ९६ ॥ फिर देवियोंने पूछा कि इस संसारमें कायर पुरुष कौन है ? माताने कहा कि जो मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म अर्थ काम मोक्ष इन पुरुषार्थोंको सिद्ध नहीं करता वही कायर है अन्य कोई नहीं ॥ ९७ ॥ देवियोंने पूछा कि कौनसे मनुष्य सिंहके समान समझे जाते हैं उत्तरमें माताने कहा कि जो इन्द्रियोंके साथ साथ कामदेवरूपी दुर्धर हाथीको मार भगाते हैं वे ही मनुष्य सिंह कहलाते हैं। अन्य नहीं ॥ ९८ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें नीच पुरुष कौन है ? माताने उत्तर दिया कि जो मनुष्य सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र धर्म और तपको पाकर भी उन्हें छोड़ देते हैं वे विद्वानोंके द्वारा निंद्य नीच कहलाते हैं॥ ९९ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि विद्वान कौन हैं ? माताने कहा कि जो शास्त्रोंको जानकर पाप, मोह और बुरे काम नहीं करते हैं और विषयोंमें आसक्त नहीं होते हैं वे ही व्रती विद्वान कहलाते हैं अन्य नहीं ॥ १०० ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें मूर्ख कौन है ? माताने उत्तर दिया कि जो शास्त्रोंको जानते और मनन करते हुए भी पाप, मोह, इन्द्रियोंकी आसक्ति और कुमार्गको नहीं छोड़ते हैं वे ही संसारमें मूर्ख हैं ॥ १ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें जन्मके अन्धे कौन हैं ? इसके उत्तरमें माताने कहा कि जो तीर्थंकर परमदव, धर्मकाय गुरु और शास्त्रोंके दर्शन नहीं करते वे जन्मांध हैं तथा जो कामांध हैं वे विशेषकर जन्मांध हैं ॥ २ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस

संसारमें बहिरे कौन हैं? माताने कहा कि जो अरहंत देवके कहे हुए शास्त्रोंको तथा धर्मोपदेशके हितकारक वाक्योंको नहीं सुनते हैं वे ही बहिरे कहलाते हैं ॥ ३ ॥ इस संसारमें लंगड़े कौन हैं? इसके उत्तरमें माताने कहा कि जो आलसी न तो तीर्थयात्राको जाते हैं न किसी धर्मकार्यमें जाते हैं और न मुनियोंको नमस्कार करने जाते हैं वे ही लंगड़े गिने जाते हैं॥ ४ ॥ फिर देवियोंने पूछा कि गूंगे कौन हैं? माताने कहा कि जो शास्त्रोंको जानते हुए भी समय पाकर हित मित और प्रिय बचन नहीं कहते हैं वे गूंगे कहलाते हैं देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें विवेकी कौन हैं? माताने कहा कि जो देव, कुदेव, धर्म, अधर्म, पात्र, अपात्र और शास्त्र कुशास्त्रका विचार करते हैं वे ही विवेकी हैं॥ ६॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें अविवेकी कौन हैं? माताने उत्तर दिया कि जो गुरु, कुगुरु, बंध, मोक्ष और पुण्यपापका विचार नहीं करते वे ही अविवेकी हैं ॥ ७ ॥ इस संसारमें धीर वीर कौन हैं माताने कहा कि जो काम इन्द्रिय मन तथा परीषह कषाय आदिसे जीते नहीं जाते वे ही धीर वीर कहलाते हैं ॥ ८ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि अधीर कौन हैं? माताने कहा कि जो कामदेवरूपी योद्धाओंके द्वारा ताड़ना किए जानेपर चारित्ररूपी युद्धसे शीघ्र ही भाग जाते हैं वे ही अधीर कहलाते हैं अन्य नहीं ॥ ९ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें पूज्य और प्रशंसनीय कौन कहलाते हैं? माताने कहा कि जो घोर परीषह और उपसर्गोंके आनेपर भी स्वीकार किए हुए शुभ चारित्रको नहीं छोडते वे ही प्रशंसनीय हैं ॥ १०॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें निंद्य कौन हैं माताने कहा कि जो कामदेवरूपी आकाशी चोरोंसे पीडित होकर स्वीकार किए हुए तप चारित्र और संयम आदिको छोड़देते हैं वे निंद्य हैं ॥ ११॥ देवियोंने फिर पूछा कि रात्रिमें जगनेवाले कौन हैं। माताने कहा कि जो ज्ञानरूपी सूर्यको हृदयमें धारणकर और मोहरूपी रात्रिको नाशकर आत्माका ध्यान करते हैं वे ही रात्रिमें जगनेवाले कहलाते हैं ॥ १२ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि सोनेवाले कौन कहलाते हैं माताने कहा के जो मोहरूपी नींदके वशीभूत हुए मनुष्य हृदयमें विराजमान ज्ञानरूपी सूर्यको नहीं जानते हैं और न आत्माके ध्यानको ही जानते हैं वे ही सोनेवाले कहलाते हैं ॥ १३ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें

गुणी कौन हैं ? माताने कहा कि जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, और तपसे विभूषित हैं तथा मुक्तिरूपी स्त्रीके प्यारे हैं और आत्माका हित करनेवाले हैं वे गुणी कहलाते हैं ॥ १४॥ देवियोंने फिर पूछा कि निर्गुणी कौन हैं माताने कहा कि जो सम्यग्दर्शन, चारित्र, दान, शील, तप और जिनपूजासे रहित हैं वे अशुभ कार्य करनेवाले निर्गुणी कहलाते हैं ॥ १५ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि जन्म किनका सफल है माताने कहा कि जिन धीर पुरुषोंने रत्नत्रयादिके द्वारा मोक्षको अपने हाथमें कर लिया है उन्हींका जन्म सफल है ॥ १६ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि निष्फल जन्म किनका है माताने कहा कि जो तप चारित्र व्रत दान पूजा आदि नहीं करते उन्हींका जन्म इस संसारमें निष्फल समझना चाहिए ॥ १७ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि शीघ्र करने योग्य कार्य कौनसा है माताने कहा कि कर्मोंको नाश करनेवाले और संसारको पूर्ण करनेवाले तप, धर्म, व्रत, दान, पूजा, उपकार आदि कार्योंको बहुत शीघ्र कर डालना चाहिए ॥ १८ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि मनुष्योंके लिए कठिन शल्य क्या है माताने कहा कि जो जीव हिंसादिक पाप व अनाचारका सेवन स्वयं छिपकर करते हैं वही उनके लिये कठिन शल्यके समान चुभता रहता है ॥ १९ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि संसारमें अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य कौनसे हैं माताने उत्तर दिया कि जो कभी दूसरेकी निन्दा नहीं करते और आत्मध्यान अध्ययन आदि आत्माके कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं ऐसे ही मनुष्य संसारमें दुर्लभ हैं ॥ २० ॥ फिर देवियोंने पूछा कि पक्षपात कहां करना चाहिए माताने कहा कि धर्ममें, साधर्मी पुरुषोंमें शास्त्रमें जिन-प्रतिमामें जिनचैत्यालयमें और भगवान जिनेंद्रदेवके कहे हुए सत्यमार्गमें पक्षपात अवश्य करना चाहिये॥२१॥ देवियोंने फिर पूछा कि मध्यस्थभाव कहां रखने चाहिये माताने कहा कि संसारमें जो पुरुष रागी है द्वेषी है, तीव्र मिथ्यात्वरूपी पिसाचसे जकड़ा हुआ है और दुष्ट है सदा मध्यस्थभाव रखना चाहिये ॥ २२ ॥ देवियोंने फिर पूछा कि दिन रात क्या चिन्तवन करना चाहिए ! माताने कहा कि रात दिन धर्मध्यान का चिंतवन करना चाहिए। संसारकी असारता, शास्त्रोंकी आज्ञा, मोक्ष, तप और रागको घटानेका सदा चिंतवन करते रहना चाहिए ॥२३॥ देवियोंने फिर पूछा कि इस संसारमें उत्तम स्त्री कौनसी है माताने कहा कि जो शीलवती

ती स्त्री श्रीतीर्थंकर ऐसे मनुष्य रत्नो को उत्पन्न करती है वह स्त्री सर्वोत्तम है अन्य नहीं ॥ २४॥ फिर देवियोंने पूछा कि हे देवी ! आपके समान और स्त्री कौन है माताने उत्तर दिया कि जो स्त्री संसारके समस्त जीवोंका उपकार करनेवाले तीर्थंकरको उत्पन्न करती है वह स्त्री मेरे समान है ॥२५॥ इसप्रकार देवियोंने जो कुछ पूछा वही गर्भमें विराजमान भगवान तीर्थंकरके माहत्म्यसे उस महादेवीने तुरंत ही बतला दिया ॥२६॥ देवियोंने फिर पूछा कि जो नित्यस्त्रीमें आसक्त है और इसीलिए जो कामी है विरक्त बुद्धिवाला नहीं है जो लोभरहित होकर भी अत्यन्त लोभी है, और कभी स्नान न करनेपर भी पवित्र रहता है वह कौन है ! (यह प्रहेलिका वा पहेली है इसका अर्थ कहीं मिला तो है नहीं परन्तु जो इस समय सूझ रहा है वह यह है—जो नित्यस्त्री अर्थात मोक्षस्त्रीमें आसक्त है इसलिए जो कामी अर्थात् काम—अभीष्ट पदार्थ, उसको सिद्ध करनेवाला है और विरक्त अर्थात् विशेष रीतिसे रक्त-रागद्वेषयुक्त बुद्धिवाला नहीं है जो लोभरहित होनेपर भी मोक्षकी इच्छा रखता है और कभी स्नान न करनेपर भी सदा पवित्र रहता है वह मुनि है) ॥ २७ ॥ हे देवी ! तू अपना चित्त हरिहर आदिसे अलग रख क्योंकि तीन पदको धारण करनेवाले भगवान शांतिनाथमें ही तेरा हृदय व्याप्त हो रहा है और वे भगवान आपके गर्भमें आये हैं इसीलिए लोग आपको परमपवित्र कहते हैं (यह क्रियागुप्त श्लोक है) हे जननी संसारके अखिल जन तेरे लड़केकी ही जय कहते हैं ॥२८॥ क्योंकि तेरा लड़का अत्यंत सुकृती है गुणोंका सागर है इंद्र नरेंद्र आदि निखिल जन उसकी स्तुति करते हैं और तीनों लोकोंके लोग उसकी आराधना करते हैं (यह निरोष्ठय-जिसमें ओठ न लगे, श्लोक है और अर्थ भी निरोष्ठ्य अक्षरों में ही लिखा गया है)॥ २६ ॥ हे जननी ! तेरा लड़का अखिल शत्रुओं का नाशक है, सज्जन लोगोंका रक्षक है ऋषि सरोजोंके लिये सूर्य है और तीर्थका कर्ता है ॥ ३० ॥ (यह निरोष्ठ्य है और अर्थ केअक्षर भी निरोष्ठ्य हैं) हे देवी भगवान जिनेंद्र देव तीनों लोकोंके स्वामी हैं और तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं इसलिये सब इन्द्र देवोंके साथ उनकी सेवा करनेके लिये आते हैं ॥३१॥ (यह बिन्दुमान श्लोक है) हे देवी तेरा पुत्र दैदीप्यमान लक्षणोंके समूहसे शोभायमान है समस्त देवोंके द्वारा

पूज्य है और तीनों लोकोंको पालन करनेमें तत्पर है ॥ ३२ ॥ ('यह विन्दुच्युतक श्लोक है) इसप्रकार उन देवियोंके द्वारा कहे हुए कठिन श्लोकोंको भी विशेष रीतिसे जानती हुई वह महा देवी बहुत ही सुखसे समय व्यतीत करती थी ॥ ३३ ॥ वह महादेवी अपने उदरमें तीन ज्ञानको धारण करनेवाले तीर्थंकरको धारण कर रही थी इसलिये समस्त ज्ञानमें वह स्वभावसे ही धीरता धारण कर रही थी ॥३४॥ जिसप्रकार प्रातःकालके समय गर्भमें दैदीप्यमान सूर्यको धारण करती हुई पूर्व दिशा शोभायमान होती है उसीप्रकार अपने गर्भमें कांतिसे अत्यंत दैदीप्यमान अद्भुत तीर्थंकर बालकको धारण करती हुई महादेवी बहुत ही अच्छी जान पड़ती थी ॥ ३५ ॥ जिसप्रकार गर्भमें (मध्यभागमें) रत्न रहनेसे पृथ्वी शोभायमान होती है उसीप्रकार तीनों पदोंसे सुशोभित होनेवाले तीर्थंकरके गर्भमें आनेसे उस महादेवीकी शोभा बहुत ही बढ़ गई थी ॥ ३६ ॥ वे भगवान तीर्थंकर शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल थे, देवोंके द्वारा पूज्य थे और दयाकी मूर्ति थे इसीलिये उदरमें रहते हुए भी माताको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं हुई थी ॥ ३७ ॥ माताके कृश उदरमें कोई किसी प्रकारका प्रगट विकार नहीं हुआ था तथापि गर्भकी वृद्धि तो हुई थी यह केवल भगवानके तेजका ही प्रभाव था ॥ ३८ ॥ शची इन्द्रानी भी अपने पाप नाश करनेकेलिये देवियोंके साथ बड़े आदरसे छिपकर पूज्य माताकी सेवा करती थीं ॥ ३८ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ हैं थोड़ेसेमें इतना ही समझ लेना चाहिये कि वह माता तीनों लोकोंमें प्रशंसनीय थी और तीनों लोकोंकी माता थी क्योंकि धर्म तीर्थको प्रगट करनेवाले तीर्थंकरकी भी वह जननी थी ॥ ४० ॥ कुवेरने नौ महीने तक महाराज विश्वसेनके घर प्रतिदिन आकाशसे सुवर्ण और रत्नोंकी वर्षाकी थी ॥ ४१ ॥ अथानन्तर—ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रातः कालके भरणी नक्षत्रमें शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमें जिसप्रकार पूर्व दिशा किरणोंको फैलाते हुए सूर्यको प्रगट करती है उसीप्रकार उस महासती ऐरादेवीने सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न किया। वह पुत्र तीनों लोकोंमें भरे हुए महा आनन्दके समूहके समान सुन्दर था, निर्मल तीनों श्रेष्ठ ज्ञान ही उसके निर्दोष नेत्र थे, वह पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान था, अपनी कांतिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था, भव्यरूपी कमलोंको प्रफु-

ल्लित करनेवाला था, सूर्यके समान अत्यंत देदीप्यमान था और रूपमें कामदेवको भी लज्जित करनेवाला था ॥ ४२-४५ ॥ उस समय सब दिशाओंमें प्रसन्नता हो गई थी आकाश निर्मल हो गया था और स्वामीके उत्पन्न होनेसे सब प्रजाको हर्ष उत्पन्न हुआ था ॥ ४६ ॥ भगवानके जन्म लेनेसे सब कुटुम्बीलोग अपनेको धन्य और कृतकृत्य मानते थे, और बड़े भारी आनन्दके समूहसे पुण्यका भंडार भरते थे ॥ ४७ ॥ तीर्थंकर उत्पन्न होते ही स्वर्गमें धर्मके कारण समुद्रकी गर्जनाके समान महाघंटा नाद होने लगा था ॥ ४८ ॥ देवोंके बड़े नगाड़े बिना बजाये अपने आप ही बजने लगे थे और कोमल तथा सुख देनेवाली शीतल मंद सुगंधित हवा चलने लगी थी ॥ ४९ ॥ यद्यपि आकाश और पृथ्वी दोनों ही सुगंधित पुष्पोंकी सुगंधिसे व्याप्त हो रहे थे तथापि कल्पवृक्ष उस समय अनेक प्रकारसे पुष्प वृष्टि कर रहे थे ॥ ५० ॥ इन्द्रोंके आसन अकस्मात् कम्पायमान होने लगे थे मानो उन देवोंको अकस्मात् ऊंचे आसनसे नीचे गिरा रहेहो ॥ ५१ ॥ भगवानके जन्म लेनेके प्रभावसे जन्म कल्याणकी विधिको सूचित करनेवाले तथा किरणोंसे व्याप्त ऐसे उन देवोंके मुकुट शीघ्र ही नम्र होगए, नीचेकी ओर झुक गए ॥५२ ॥ उन आश्चर्योंको देखकर इन्द्रोंने अपने अवधिज्ञानसे भगवानका जन्म होना जाना और उसीसमय वे जन्म कल्याण करनेके लिए तैयार हुए ॥ ५३ ॥ ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें धर्मको सूचित करनेवाला मनोहर सिंहनाद हुआ और भगवानके जन्मको सूचित करनेवाले बाकीके भी सब आश्चर्य हुए ॥ ५४ ॥ व्यंतर देवोंके आवासोंमें गंभीर भेरीनाद हुआ था और आसनोंका कंपायमान होना आदि सब आश्चर्य हुए थे ॥ ५५ ॥ भवनबासी देवोंके भवनोंमें महान् शंख ध्वनि हुई थी और जन्म कल्याणकी विधिको सूचित करनेवाले बाकीके सब आश्चर्य हुए थे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार आश्चर्योंको देखकर चारों निकायोंके इन्द्रोंने अपने अपने देवोंके साथ अपने अवधिज्ञानसे भगवानका जन्म होना जाना और अपने अपने काम करनेमें चतुर वे सब इन्द्रादिक देव बहुत ही आनन्दित होकर अपनी अपनी देवांगनाओंके सथा पुण्यके सागर ऐसे जन्म कल्याण करनेकेलिए तैयार हुए ॥ ५७-५८ ॥ तदनन्तर सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञासे देवोंकी सेना शब्द करती हुई समुद्रोंकी लह-

रोंके समान अनुक्रमसे स्वर्गसे निकली ॥ ५९ ॥ बैल, रथ, घोड़े, हाथी, नृत्य करनेवाले, गंधर्व और सेवक वर्ग इस अनुक्रमसे एकके पीछे एक इन्द्रकी सेना निकली थी ॥ ६० ॥ यह सात प्रकारकी सेना अलग २ प्रत्येक इन्द्रकी थी और प्रत्येक सेनाके भी सात २ भेद थे अर्थात् बैलोंकी सेना सात प्रकारकी थी, घोड़ों की सेना भी सात प्रकारकी थी इसीप्रकार सातों सेनायें सात २ प्रकारकी थीं ॥ ६१ ॥ बैलोंकी पहिली सेनामें दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले चौरासी लाख बैल थे, दूसरी सेनामें इससे दूने अर्थात् एक करोड़ अड़सठ लाख बैल थे, तीसरीमें इससे दूने तीन करोड़ छत्तीस लाख बैल थे, चौथीमें इससे दूने छह करोड़ बहत्तरि लाख पांचवींमें इससे दूने तेरह करोड़ चवालीस लाख, छठीमें छब्बीस करोड़ अठासी लाख और सातवींमें तिरपन करोड़ छिहत्तरि लाख बैल थे ॥ ६२ ॥ इसप्रकार बैलोंकी सातों सेनाओंमें एक सौ छह करोड़ अडसठ लाख (एक अरब छह करोड़ अडसठ लाख) बैल थे ॥ ६३ ॥ इसीप्रकार सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी सेनामें रथ घोड़े आदि सब सेनाओंकी संख्या बैलोंकी संख्याके समान थी ॥ ६४ ॥ भगवानके जन्म कल्याणके महोत्सवमें सबसे आगे पहिली रेखामें शंख अथवा कुंद पुष्पके समान सफेद मनोहर बैल चल रहे थे ॥ ६५ ॥ उसके पीछे बैलोंकी दूसरी सेना चल रही थी उसमें मणि और सुवर्णसे शोभायमान जवा पुष्पके समान लाल रङ्गके बैल चल रहे थे, उनके बाद नीलकमलके समान रंगवाले बैल बड़े उत्सवके साथ जा रहे थे ॥ ६६ ॥ उनके बाद अत्यन्त दिव्य रूपको धारण करनेवाले मरकतमणिके रंगवाले बैलोंकी सेना जा रही थी, उसके बाद सुवर्णके रंगवाले बैलोंकी सेना और फिर जिनकी कांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसे अंजनके समान काले बैलोंकी सेना जा रही थी ॥ ६७ ॥ उसके बाद सातवीं रेखामें आकाशको प्रकाशित करती हुई अशोकके फूलके समान रंगके शुभ बैलोंकी सेना चल रही थी ॥ ६८ ॥ प्रत्येक बैलों की सेनाके बीच २ में तुरही आदि अनेक प्रचारके देवोंके बाजे महासागरकी गर्जनाके समान बजते चले जा रहे थे ॥ ६९ ॥ वे सब बैल मनोहर थे, घंटा, किंकिणी, चमर, मणि और पुष्पोंकी माला आदिसे सुशोभित थे और दिव्यरूपको धारण करनेवाले थे ॥ ७० ॥ उन बैलोंके सुन्दर आसनोंपर देवकुमार चढे हुए

थे और इसप्रकार जन्म कल्याणमें चलते हुए वे बैल चलते हुए पर्वतोंके समान शोभायमान होते थे ॥७१॥ बैलोंकी सेनाके पीछे रथोंकी सेना थी पहिली रेखामें मनोहर सफेद रथ थे जो कुंद पुष्पके अथवा चंद्रमाके समान स्वच्छ थे और सफेद छत्र आदिसे सुशोभित थे ॥ ७२ ॥ उनके पीछे चार पहियोंवाले वैडूर्यमणिके बने हुए रथ थे जो मन्दरके फूलोंके समान थे बड़े सुन्दर थे और उपमा रहित थे ॥ ७३ ॥ उनके बाद सोनेके बड़े २ छत्र, ध्वजा, चमर आदिसे सुशोभित तपाये हुए सोनेके बने हुए बड़े ऊंचे रथ चल रहे थे ॥ ७४ ॥ तदनन्तर गम्भीर शब्द करते हुए, दूभके पत्तेकी कांतिको जीतते हुए मरकत मणियोंके बने हुए बहुतसे पहियोंके शुभ रथ चल रहे थे ॥ ७५ ॥ उनके बाद नीलमणिके समान कर्कोट मणिके बने हुये रथ चल रहे थे, उनके पीछे कमलके समान पद्मराग मणियोंके बने हुए अद्भुत रथ चल रहे थे ॥ ७६ ॥ भगवानके जन्म कल्याणके लिये सातवीं रेखामें मोदकीसी गर्दनके रंगके इन्द्रनील मणियोंके बने हुए अद्भुत रथ चल रहे थे ॥ ७७ ॥ इसप्रकार देव देवियोंसे परिपूर्ण, मणियोंकी कांतिसे व्याप्त, दिव्य, शुभ महारथ सात रेखाओंमें चल रहे थे ॥७८ ॥ वे रथ ध्वजा छत्र चमर तथा पुष्पमालाओंसे सुशोभित थे और इन्द्रको भी महापुण्यके फलसे प्राप्त हुये थे ॥ ७९ ॥ अनेक प्रकारके बाजोंसे व्याप्त और आकाश आच्छादनकर चलते हुए वे निर्मल रथ आकाशरूपी समुद्रमें जहाजके समान शोभायमान होते थे ॥ ८० ॥ रथोंके बाद घोड़ोंकी सेना थी। पहिली रेखामें सुन्दर मूर्तिको धारण करनेवाले चमर आदिसे सुशोभित क्षीर सागरकी लहरोंके समान सफेद घोड़े चल रहे थे ॥८१॥ उनके पीछे उदय होते हुये सूर्यके समान सुन्दर और ऊंचे घोड़े जा रहे थे, फिर गोरोचनकेसे रंगके और उनके पीछे मरकत मणिकी कांतिवाले घोड़े जा रहे थे ॥ ८२ ॥ उनके बाद नील कमलके समान फिर जवा पुष्पके समान और फिर सातवीं कक्षामें इन्द्रनील मणिके समान घोड़े जा रहे थे ॥ ८३ ॥ वे घोड़े अत्यन्त दिव्य रूपवान थे, मणियोंकी मालाओंसे तथा पुष्पमालाओंसे विभूषित थे, मनोहर थे, वे अलग २ रंगके सात रेखाओंमें चल रहे थे, उनका शरीर सोने की धूलिसे धूसरित हो रहा था, मृदंग तुरही आदि महाबाजोंके शब्दोंसे वे व्याप्त थे, उनपर रत्नोंके

आसन लगे हुए थे, तथा चढे हुए देवकुमार उन्हें चला रहे थे, वे शुभ थे, उत्तम थे, चंचल थे और आकाश रूपी समुद्रमें तरंगोंके समान जान पड़ते थे ॥ ८४-८६ ॥ घोड़ोंके पीछे हाथियोंकी सेना थी। पहिली रेखा में गायके दूधके समान श्वेत बड़े ऊंचे हाथी थे, दूसरी रेखामें उदय होते हुए सूर्यके समान मनोहर हाथी थे, तीसरी रेखामें तपाये हुए सोनेके रंगके हाथी थे, चौथी रेखामें सरसोंके फूलके समान थे, पांचवीं रेखामें ऊंचे दांतोंवाले नील कमलके समान हाथी थे, छठी रेखामें जैतपुष्पके समान और सातवीं रेखामें अञ्जन पर्वतके समान काले हाथी थे। इसप्रकार इन शुभ महा हाथियोंका समूह चल रहा था ॥ ८७-८६ ॥ इन हाथियोंकी प्रत्येक रेखाके बीच २ शंख मृदंग तुरही नगाड़े आदि देवोंके बाजे मीठे स्वरोंसे बजते जा रहे थे ॥ ६० ॥ उन हाथियोंके गंडस्थलसे मद झर रहा, गरजते हुये, विभूतियोंसे सुशोभित, और रत्नोंके घंटा उनपर लटक रहे थे ॥ ६१ ॥ मणि और पुष्पोंकी मालाएं उनपर पड़ी हुई, अनेक प्रकारकी ध्वजाएं उनपर फहरा रही थीं, सफेद छत्रसे उनकी कांति बढ़ रही थी और कानरूपी चमरोंको वे ढुला रहे थे ॥ ६२ ॥ सोनेकी संकल उनके पैरोंमें पड़ी हुई, चारों ओर लगी हुई छोटी घंटियां बज रही थीं, वे बड़े मनोहर, अपनी देवियोंके साथ देव उनपर चढ़े हुए उनसे वह बहुतही अच्छे जान पड़ते थे ॥ ६३ ॥ भगवानके जन्म कल्याणमें अनेक सुन्दर आभूषणोंसे सजाये हुए हाथियोंकी घटा चलती हुई ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो चलते हुए पर्वत ही हों ॥ ६४ ॥ हाथियोंके पीछे नृत्य करनेवालोंकी सेना, उसमें बहुतसे देव भगवानके जन्मोत्सवमें जन्मकल्याणकका उत्सव मनाते हुए दिव्य और उत्कृष्ट नृत्य करते जा रहे थे ॥ ६५ ॥ पहिली रेखामें राजाधिराज कामदेव और विद्याधर राजाओंके चरित्र दिखलाते हुए उत्तम नृत्य करते, दूसरी रेखामें गुणी देव समस्त अर्द्धमहामंडलेश्वर राजाओं के शुभ चरित्र दिखलाते हुए नृत्य कर रहे थे ॥ ६७ ॥ तीसरी रेखामें वे देव आकाशमें ही बलदेव, नारायण प्रतिनारायणके पराक्रमोंके चरित्रको दिखलाते हुए नृत्य कर रहे थे ॥ ६८ ॥ चौथी रेखामें देव अपनी देवियोंके साथ छहों खंडोंके स्वामी चक्रवर्ती राजाओंके गुण वर्णन करते हुए तथा उनके चरित्र दिखलाते हुए नृत्यकर रहे थे ॥ ६६ ॥ पांचवी कक्षामें देव देवियां चरमशरीरी

मुनि, लोकपाल और इन्द्रोंके गुण और उन गुणोंसे प्रगट हुए चरित्र दिखलाती हुई नृत्य कर रही थीं ॥ १०० ॥ छठी रेखामें वे देव अत्यन्त निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले, महर्षि गणधर देवोंके गुणोंसे गुथे हुए चरित्र दिखलाते हुए नृत्य कर रहे थे ॥ १ ॥ और सातवीं अन्तिम कक्षामें महा नृत्य करनेमें तत्पर मनोहर देव अपनी देवियोंके साथ भगवानके जन्म कल्याणोत्सवमें प्रातिहार्यसहित अनंतवीर्यके स्वामी, चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित और पंच कल्याणकोंके द्वारा पूज्य ऐसे भगवान तीर्थंकर जिनेन्द्रदेवके गुण और महाचरित्र वर्णन करते हुए अत्यन्त रसीला नृत्य करते हुए जा रहे थे ॥ २-४ ॥ नृत्य करनेवालोंके पीछे गन्धर्वोंकी सेना थी । वे देव दिव्य शरीरको धारण किए हुए महारूपवान, वस्त्र आभूषणोंसे विभूषित, कलावान, उनको ध्वनि मधुर, उत्सव मना रहे थे और मालाएं पहिने थे ॥ ५ ॥ भगवानके जन्म कल्याणमें महासप्त स्वरसे शोभायमान गंधर्व जातिकी सेनाके देव मनोहर गान गाते हुए जा रहे थे ॥ ६ ॥ पहिली रेखामें षड्ज नामके मनोहर स्वरसे भगवानके गुणोंको गाते हुए सुन्दर कंठवाले देव चले जा रहे थे ॥७॥ उनके पीछे ऋषभ स्वर गाते हुए उनके बाद गांधार स्वर गाते हुए, उनके बाद मध्यम स्वरसे भगवानके गुण गाते हुए देव थे ॥ ८ ॥ पांचवीं रेखामें पंचम स्वरसे, छठी रेखामें धैवत स्वरसे और सातवीं रेखामें निषाद स्वरसे गाते हुए देव अपनी देवियोंके साथ चले जा रहे थे ॥ ९ ॥ वे देव वीणा, मृदंग, तुरही, झल्लरी आदि बाजे बजाते थे, उनके स्वर मनोहर, दिव्य वस्त्र, माला, भूषण आदि सुशोभित थे, उनक आकार अत्यन्त सुन्दर अनेक प्रकारके गानके रसमें लीन, गीत नृत्य कलाओंमें चतुर, उनका मुख मनोहर, मूर्ति दिव्य, ज्ञानी, धीरवीर, तीर्थंकरोंके गुण वर्णन करनेमें लगे हुए थे और उनका स्वर गम्भीर था । वे देव भगवानके जन्म कल्याणोत्सवमें पुण्य संपादन करनेके लिए अपनी २ देवियोंके साथ भगवान जिनेंद्रदेवके अनंत गुणोंको प्रगट करनेवाले तथा पुण्य संपादन करनेवाले अनेक प्रकारके मनोहर गीत गाते हुए चले जा रहे थे ॥ १०-१३ ॥ उनके बाद नृत्योंकी सेना, पहिली रेखामें वस्त्राभरणोंसे सुशोभित काली ध्वजाएं लिए हुये भौंरेके समान काले रंगके देव जा रहे थे ॥ १४ ॥ उनके पीछे सुवर्णके दंडपर नीली ध्वजा

फहराते हुए हाथमें चमर लिए हुये देव, तीसरी रेखामें वैडूर्यमणियोंके दण्डांपर सफेद ध्वजाएं लिये हुए देव चौथी रेखामें हाथी, सिंह, बैल, दर्पण, मोर, चकवा, गरुड़, चक्र, सूर्य आदिकी अलग २ चिन्होंवाले मरकत मणियोंके दंडोंमें सोनेकी सुन्दर ध्वजाएं हाथमें लिये हुए देव, पांचवीं रेखामें विद्रुमके दण्डमें कमलके समान कमलके चिन्हवाली ध्वजायें लिये हुये देव। छठी रेखामें सुवर्णके दण्ड लगी हुई कुंदपुष्प के समान सफेद ध्वजाएं लिये हुये देव ॥ १८ ॥ सातवीं कक्षामें मणियोंके दण्डोंमें लगे हुये और मोतियों की मालाओंसे सुशोभित ऐसे सफेद छत्रोंको हाथोंमें लिये हुये देव ॥ १९॥ भगवानके जन्म कल्याणोंत्सव में दिव्य वस्त्र और मालाओंसे मनोहर, आभूषणोंसे सुशोभित आकाशको प्रकाशित करते हुये और हाथों में ध्वजाएं लिए भृत्य जातिकी सेना जा रही थी ॥ २० ॥ इसप्रकार अद्भुत विभूतिसे सुशोभित और धर्म के रसमें लीन हुई सौधर्म इन्द्रकी सातों प्रकारकी सेना स्वर्गसे निकली ॥ २१ ॥ उसीसमय नागदत्त नामके अभियोग्य जातिके स्वामीने ऐरावत हाथीको वनाया। उस हाथीका वंश (पीठकी हड्डी) वहुत ऊंचा, जंबूद्वीपके समान उसका वहुत वड़ा शरीर, गोल शरीर, अनेक प्रकारकी लीला करता हुआ उसका मस्तक गोल और ऊंचा, संगठन एकसा, वह हाथियोंमें मुख्य, इच्छानुसार चलनेवाला, वहुत रूपवान, उसका तालु चिकना और लाल, सूंढ वहुत लम्बी, उसका चलना सात्विक, वह वलवान सुन्दर और मनोहर, उसकी सांससे सुगंध निकलती, ओठ उसके लम्बे, शब्द गंभीर, मदके झरनेसे उसका शरीर व्याप्त हो रहा था, अनेक लक्षणोंसे वह सुशोभित, चलते हुये पर्वतके समान, उसका कंठ हार मालासे सुशोभित होनेसे उस-पर सुवर्णकी झूल पड़ी हुई थी, दो घंटे उसपर लटक रहे थे उससे मदका निर्झरना झर रहा था, वह कैलाश पर्वतके समान, अथवा शरद ऋतुके बादलके समान सुन्दर और अपनी सफेदीसे उसने सब दिशायें सफेद कर दी थीं ॥ २२-२७ ॥ इसप्रकार विक्रियासे बनाये हुए उस दिव्य हाथीपर चढ़ा हुआ तथा नम्री-भूत हुआ तेजकी मूर्ति और महा उन्नत वह इन्द्र स्वर्गसे निकला ॥ २८ ॥ उस ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ वह सौधर्मइन्द्र अपनी कांतिसे ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो उदयाचल पर्वतपर तेजका पुंज सूर्य

ही हो ॥ २९ ॥ उस ऐरावत हाथीके बत्तीस मुंह थे, वे सब मुंह समान थे, और सबकी कांति समान थी। प्रत्येक मुखमें मूसलके समान मनोहर आठ २ दांत थे ॥३०॥ प्रत्येक दांतपर निर्मल जलसे भराहुआ एक एक मनोहर सरोवर था, प्रत्येक सरोवरमें एक २ मनोहर कमलिनी थी, और एक २ कमलिनीपर फूले हुये बत्तीस २ कमल थे। एक २ कमलपर कमलके दलोंके समान बत्तीस २ दल थे और प्रत्येक दलपर जिनके मुख कमल कुछ हंस रहे हैं और जिनकी भोंहे सुन्दर है ऐसी बत्तीस २ देवोंकी अप्सराएं लयके साथ नृत्य कर रही थीं ॥ ३०-३३ ॥ उनके हास्य श्रृंगार हाव भाव लय आदिसे भरे हुए अत्यंत रसीले नृत्यको देखते हुये देव बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे ॥ ३४ ॥ सौधर्मइन्द्रके साथ दिव्य रूपको धारण करनेवाला प्रतींद्र भी बड़ी विभूतिके साथ अपने वाहनपर चढ़ा हुआ युवराजके समान निकला ॥ ३५ ॥ आज्ञा ऐश्वर्यके बिना जिनके गुण विभूति सब इन्द्रके समान हैं और इन्द्र भी जिन्हें मानता है ऐसे सामानिक देव भी इन्द्रके साथ चले ॥ ३६ ॥ इन्द्रके पुरोहित मंत्री और आमात्योंके समान त्रायस्त्रिंशत जातिके तेतीस देव भी इन्द्रके साथ चले ॥ ३७ ॥ जिनपर इन्द्रकी कृपा रहती है और विभूतिसे जो सभासदोंके समान हैं एसे तीनों परिषदोंके देव भी इंद्रके चारों ओर होकर चले ॥ ३८ ॥ जिनका आशय उन्नत है और जो शरीररक्षकके समान हैं ऐसे आत्मरक्षक देव भी अपने वाहन और आयुधों सहित इन्द्रके समीप जाकर खड़े हुये ॥३९॥ कोतवालके समान लोकपाल भी अपनी विभूतिके साथ निकले और सेनाके समान पहिले कही हुई सात प्रकारकी शुभ सेना भी निकली ॥ ४० ॥ नगरनिवासियोंके समान प्रकीर्णक देव भी निकले और काम करनेवाले दासोंके समान आभियोग्य जातिके देव भी निकले ॥ ४१ ॥ चंडालोंके समान स्वर्गके अन्तमें निवास करनेवाले अल्प पुण्यमान् और थोड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले किल्विषिक जातिके देव भी स्वर्गसे निकले ॥ ४२ ॥ इसप्रकार दश प्रकारके देव अपनी २ विभूतिसे सुशोभित होकर पुण्य संपादन करनेके लिये सौधर्म इन्द्रके साथ स्वर्गसे निकले ॥ ४३ ॥ इन्द्रके चलते समय उसके सामने अप्सराएं नृत्य कर रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों दूसरे लोगोंको इन्द्रके अद्भुत पुण्यके फलको ही दिखला रही हों ॥ ४४ ॥ जिनके कण्ठ लाल हो रहे हैं ऐसी किन्नरी

देवियां भी मधुरस्वरसे वीणाके साथ तीर्थंकर नामकर्मसे उत्पन्न हुए भगवान जिनेंन्द्र देवके गुणोंको गाती हुई जा रही थीं ॥ ४५ ॥ उन जन्मकल्याणोत्सवमें सव देवोंसे घिरा हुआ, समस्त आभरण और तेजसे दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ ईशान स्वर्गका ऐशानेंद्र भी अपनी देवियोंको साथ लेकर वड़ी विभूतिके साथ घोड़ेपर चढ़ा हुआ केवल पुण्य संपादन करनेके लिये सौधर्म इंद्रके साथ स्वर्गसे निकला ॥ ४६-४७ ॥ जिनके हृदय पुण्यसे भरे हुये हैं जो दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले हैं और धर्ममें तत्पर हैं ऐसे वाकीके सनत्कुमार आदि इन्द्र भी अपनी २ विभूतिके साथ अपनी २ सवारियोंपर चढ़े हुये अपनी २ इन्द्राणी और देवोंको साथ लिये हुये उस पुण्यकार्यके लिये सौधर्म इन्द्रके साथ ही स्वर्गसे निकले ॥ ४८-४९ ॥ उस समय नगाड़ोंके गंभीर शब्दोंसे तथा देवोंके द्वारा कहे हुये जय जय शब्दोंसे देवोंकी सेनामें वड़ा भारी कोलाहल फैल रहा था ॥ ५० ॥ कितने ही देव प्रसन्न होकर हंस रहे थे, कितने ही नृत्य कर रहे थे कितने ही फिरकी ले रहे थे, कितने ही शरीरको तोड़ रहे थे और कितने ही देव आगे दौड़ रहे थे ॥ ५१ ॥ इन्द्रादिक सव देव अपने २ विमान और अलग २ वाहनोंके साथ समस्त आकाशको रोककर चलने लगे ॥ ५२ ॥ उन चलते हुये वाहन और विमानोंसे आकाश व्याप्त हो गया और ऐसा मालूम होने लगा मनों पटलोंके सिवाय कोई दूसरा ही स्वर्ग वनाया गया है ॥ ५३ ॥ सूर्य चन्द्रमा असंख्यात ग्रह नक्षत्र तारे आदि सव ज्योतिषी देव अपनी २ देवांगनाओंके साथ निकले ॥ ५४ ॥ वे सव ज्योतिषी देव कांतिमान्, लोकपाल व त्रायस्त्रिंशत देवोंसे रहित श्रीजिनेंद्रदेवके शासनकी धर्मप्रभावना करनेवाले वे सव ज्योतिषी देव अपनी विभूति और देवोंके साथ अपने वाहनोंपर चढ़े हुये तथा आकाशको प्रकाशित करते हुये पृथ्वीपर उतरे ॥ ५५-५६ ॥ इसी तरह असुरकुमार नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार ये क्रीड़ाकरनेमें आशक्त दश प्रकारके भवनवासी देव अपने अपने वाहनोंपर चढ़े अपनी देवांगना और इंद्रोंके साथ अपनी अपनी विभूतिके साथ लेकर पृथ्वीपर उतरे ॥ ५७-५८ ॥ भगवानके जन्मोत्सवमें अपने अपने वाहनोंपर चढ़े हुये अपनी विभूतिके साथ लोकपाल त्रायस्त्रिंशतको छोड़कर केवल आठ आठ भागोंमें वटे

हुए असंख्यात किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ये आठों प्रकारके व्यंतरदेव अपने परिवारको साथ लेकर केवल पुण्य संपादन करनेकेलिये आए ॥ ६०-६२ ॥ इसप्रकार भगवानके जन्मोत्सवमें अपनी २ विभूतिके साथ चारों निकायोंके असंख्यात समस्त धर्मात्मा देव अनुक्रमसे आकाशसे उतर कर बहुत ही शीघ्र अनेक ऋद्धियोंसे शोभायमान ऐसी हस्तिनापुरी नगरीमें आए ॥ ६३-६४ ॥ सेनाके देव अपने २ वाहनोंके साथ उस नगरीके आकाश वन मार्ग आदि सबको घेरकर ठहर गए तथा इन्द्रानीके साथ आए हुये अलग २ सब इन्द्रोंसे और महोत्सव मनाते हुये कितने ही देवोंसे राजाका आंगन भर गया ॥ ६५-६६ ॥ तदनंतर शची इन्द्रानीने अद्भुत प्रसवागारमें प्रवेश किया और बड़ी प्रसन्नतासे भगवानके साथ २ माताको देखा ॥ ६७ ॥ शचीने जगतगुरु भगवान की बहुत सी प्रदक्षिणाएं दीं नमस्कार किया और फिर माताके सामने खड़ी होकर उसकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६८ ॥ कि हे माता ! तू आज संसार भरकी माता है, तू ही कल्याणी है तू ही सुमंगला है, तू ही महादेवी है, तू ही पुण्यवती है, और तू ही कीर्तिमती है ॥ ६९ ॥ जो तीर्थंकर तीनों लोकोंके पिता कहलाते हैं उनकी तू माता है इसलिये आज तू सबसे श्रेष्ठ है, महापुरुषोंके द्वारा पूज्य है, और देवियोंके द्वारा सेवनीय है ॥ ७० ॥ यदपि यह स्त्री जन्म सज्जनोंके द्वारा निंद्य है तथापि आपके समान स्त्री जन्म पाना तीनों लोकोंमें प्रशंसनीय है। क्योंकि आपके समान स्त्री जन्म तीर्थंकरकी उत्पत्तिका कारण है ॥ ७१ ॥ जिसप्रकार पूर्वदिशा अंधकारको नाश करनेवाले सूर्यको प्रगट करती है उसीप्रकार आपने भी अंतरंग बहिरंग दोनों प्रकारके अंधकारको दूर करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेवरूपी सूर्य प्रगट किए हैं ॥७२॥ इसप्रकार छिपी हुई इन्द्रानीने माताकी स्तुतिकी फिर मायामयी नींदमें उसे सुलासा दिया और उसके पास मायामयी पुत्र रखकर वह अपने फैलते हुये तेजसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले बाल चंद्रमाके समान भगवान तीनों लोकोंके नाथको बड़ी प्रसन्नतासे दोनों हाथोंमें उठाकर वहांसे निकली ॥ ७३-७४ ॥ अत्यंत दुर्लभ ऐसे भगवानके शरीरका स्पर्शकर वह शची ऐसा मानने लगी मानो तीर्थंकरके उत्पन्न होनेका समस्त ऐश्वर्य उसे ही मिल गया हो ॥७५॥ हर्षसे जिसके नेत्र फट रहे हैं ऐसी वह शची अपनी कांतिसे पूर्ण चंद्रमा-

को जीतनेवाले भगवानके मुखको बार बार देखकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ ७६ ॥ तदनंतर उन भग-
वानको लेकर चलती हुई वह इन्द्रानी उनके शरीरकी किरणोंके समूहसे ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो
सूर्य सहित पूर्वदिशा ही हो ॥ ७७ ॥ उस समय दिक्कुमारी देवियां अष्टमंगल द्रव्य इन्द्रानीके सामने लिये
चल रही थीं उनमेंसे कोई तो उत्तम छत्र लिये हुई थी, कोई ध्वजा, कोई कलश, कोई चमर, कोई
सुन्दरी सुप्रतिष्ठ कोई श्रृंगार कोई दर्पण और कोई ताल (पंखा) लिये हुए थी ॥ ७८-७९ ॥
जिस प्रकार पूर्वदिशा उदय होते हुए सूर्यको जिसपर मणियां देदीप्यमान हो रही हैं ऐसे उदया-
चल पर्वतकी शिखरपर बिराजमान करदेती है उसीप्रकार इन्द्रानीने भी बाहर आकर उन तीर्थंकरको इन्द्रके
हाथमें विराजमान कर दिया ॥ ८० ॥ उस समय इन्द्र आदरपूर्वक इन्द्रानीके हाथसे लेकर भगवानके रूपको
प्रेमपूर्वक आंखें फाड़ फाड़कर देखने लगा ॥ ८१ ॥ सूक्ष्म बुद्धिको धारण करनेवाला वह इन्द्र भगवानको
देखकर बहुत संतुष्ट हुआ और फिर भगवानके गुण वर्णन कर उनकी स्तुति करने लगा ॥ ८२ ॥ हे देव !
आप संसारके स्वामी हैं, हे प्रभो आप जगतके गुरु हैं आप धर्म तीर्थके विधाता हैं और योगियोंकेलिए भी
आप महा पूज्य हैं ॥ ८३ ॥ हे प्रभो ! आप इस लोकालोकरूपी घरमें समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेवाले
निर्मल केवलज्ञानरूपी दीपके धारक होंगे इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ८७ ॥ हे प्रभो ! आप वचनरूपी
किरणोंसे आज्ञानांधकारको दूर करनेवाले ज्ञानरूपी सूर्य हैं आप ही मोहरूपी नींदसे सोए हुए इस समस्त
संसारको जगावेंगे ॥ ८४ ॥ हे देव ! अपने शरीरकी कांतिसे बाह्य अंधकारको नष्ट कर दिया है अब आगे
अपने बचनरूपी किरणोंसे भव्य जीवोंके मनके अंधकारको दूर करेंगे ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! जिससमय आप
तीनों ज्ञानोंको धारणकर गर्भमें आए थे उसीसमय अहमिन्द्र भी आपको नमस्कार करते हैं और देवोंके
साथ इन्द्र भी नमस्कार करते हैं ॥ ८७ ॥ हे नाथ ! मुक्तिस्त्री आप ही पर आसक्त हुई है और आपके ही
लिये उत्सुक हो रही है आपमें समस्त गुण चन्द्रमाकी कलाके समान वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं ॥ ८८ ॥
इसलिये हे जगतगुरु ! आपको नमस्कार है, हे कर्मोंको नाश करनेवाले आपको नमस्कार है आप भव्यरूपी

कमलोंके लिये सूर्यके समान हैं और गुणोंके सागर हैं इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो आप चक्रवर्ती हैं, धर्म चक्रवर्ती हैं और कामदेव हैं इसलिए आपको नमस्कार है, हे देव ! मैं आपके चरण कमलोंको बड़े आदरके साथ मस्तकपर धारण करता हूं। इसप्रकार इन्द्रने भगवानकी स्तुति की, उनको अपनी गोदमें बिठाया और मेरु पर्वत पर चलनेके लिये अपने हाथको ऊंचा उठाकर फिराया अर्थात् सबको चलनेका संकेत किया ॥ ६१ ॥ हे ईश ! आपकी जय हो, हे लोकके स्वामी ! आपकी जय हो, संसारमें आपकी वृद्धि हो और आप ही बढ़ते रहें, हे दयालु, हे नाथ ! आप मेरी रक्षा करें, इसप्रकार हृदयमें प्रसन्नता धारण करते हुए देव ऊंचे शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे इसलिये उस समय सब दिशाओंको बहिराकर देनेवाला कोलाहल हो रहा था ॥ ६२ ॥ तदनन्तर अपने शरीरकी कांति और आभरणोंकी किरणोंसे इन्द्रधनुष बनाते हुए तथा जय जय शब्द करते हुए देव आकाशमें जा पहुंचे ॥ ६४ ॥ गंधर्व देवोंने संगीत करना प्रारम्भ किया और हाथियोंके दांतोंके कमलोंपर विजलीके समान मनोहर अप्सराएं रसीला नृत्य करने लगीं ॥ ६५ ॥ इधर उधर फैले हुए देवोंके रत्नजड़ित विमानोंसे भराहुआ निर्मल आकाश ऐसा अच्छा मालूम होने लगा मनो उसने अपने नेत्र ही उघाड़े हों ॥ ६६ ॥ ईशान इन्द्रने सोधर्म इन्द्रकी गोदमें विराजमान श्रीजिनेंद्रदेवके मस्तक पर सफेद छत्र लगाया ॥ ६७ ॥ सनत्कुमार माहेंद्र ये दोनों इन्द्र भगवानपर क्षीरसागरकी लहरोंके समान चमर ढोरने लगे ॥ ६८ ॥ उस समयकी विभूतिको देखकर मिथ्यादृष्टी देव भी इन्द्रको प्रमाण मानकर श्रेष्ठ जिनमार्गमें अपनी श्रद्धा करने लगे ॥ ६६ ॥ हस्तिनापुरीसे लेकर मेरु पर्वततक इन्द्रनील मणियोंके द्वारा बनाई हुई सीढियां ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों भक्तिसे आकाश ही सीढी मय परिणत हो गया हो ॥ ३०० ॥ इन्द्रादिक सब देव शीघ्र ही ज्योतिष पटलको उल्लंघनकर मेरु पर्वतके मस्तकपर महामनोहर पांडुक वनमें जा पहुंचे ॥ १ ॥ वह मनोहर मेरु पर्वत पृथ्वीके नीचे एक हजार योजन गहरा है और निन्यानवे हजार योजन ऊंचा है ॥ २ ॥ उसकी चौड़ाई पृथ्वीके समीप दश हजार योजन है और वनोंसे सुशोभित मस्तकपर एक हजार योजन है। उस पर्वतकी सेवा अनेक देव भी

करते हैं ॥ ३ ॥ मस्तकके ऊपर चूलिका है जो मूलमें बारह योजन चौड़ी है शिखर पर चार योजन चौड़ी है मध्यमें आठ योजन चौड़ी है और नीचेसे ऊपरतक चालीस योजन ऊंची है ॥ ४ ॥ वह मेरु पर्वत चारो वनरूपी महामनोहर वस्त्रोंसे सोलह चैत्यालयरूपी आभूषणोंसे, कूटरूपी दो हाथोंसे, पीठरूपी दो पैरोंसे, चूलिकारूपी मुकुटसे और शिलारूपी ललाटसे इंद्रके समान शोभायमान था, वह मेरु पर्वत अभिषेकके द्वारा जिनेंद्रदेवका उपकार था और देव देवी भी उसकी सेवा करते थे ॥ ५-६ ॥ पर्वतकी ईशान दिशामें एक बड़ी भारी पांडुकशिला है उसीपर सदा तीर्थंकरोंका अभिषेक हुआ करता है ॥ ७ ॥ वह पांडुकशिला सौ योजन लंबी है पचास योजन चौड़ी है और आठ योजन ऊंची है। वह शिला शास्वती है और अर्द्ध चंद्रमाके आकारकी है ॥ ८ ॥ वह महा उज्वल शिला देवोंके द्वारा अनेक बार क्षीर सागरके जलसे प्रक्षालन की गई है इसलिये वह पवित्रताकी परम सीमातक पहुंच गई है ॥ ९ ॥ तीर्थंकरोंके अभिषेकके लिये उस शिलाके मध्य भागमें जो सिंहासन रक्खा है उसका मुख पूर्वको ओर है और रत्नोंकी किरणोंसे वह व्याप्त है ॥ १० ॥ उसके अगल बगलमें दो स्थिर सिंहासन और हैं जिनपर खड़े होकर सौधर्म और ईशान इन्द्र भगवानका अभिषेक करते हैं ॥ ११ ॥ वह भगवानके विराजमान होनेका सिंहासन पांच सौ धनुष ऊंचा है नीचे पांचसौ धनुष चौड़ा है और ऊपर ढाईसो धनुष चौड़ा है ॥ १२ ॥ इसप्रकार इन्द्रने अनेक प्रकारकी विधि, नृत्य, गीत, नाद और शुभ महोत्सवके साथ तीनों लोकोंके नाथ भगवान तीर्थंकरको उस ऊंचे सिंहासनपर विराजमान किया और बाकीके सब देवोंने बड़ी प्रसन्नतासे चारों ओरसे मेरु पर्वतको घेर लिया ॥ १३ ॥समस्त पुण्यकर्मके उदयसे जिस तीर्थंकर भगवानको गर्भमें ही सब देवोंके साथ इन्द्रोंने सेवा की थी, जन्म लेते ही मेरुपर्वतकर जिनका अभिषेक और पूजन हुआ था जो समस्त गुणोंके समुद्र हैं और कर्मोंको जीतनेवाले हैं ऐसे तीर्थंकर भगवानकी संसारमें जय हो ॥१४॥ श्रीशांतिनाथ भगवानने निर्मल पुण्यकर्मके उदयसे ही मनुष्य और देवगतिमें अनेक प्रकारके सुख भोगे थे और फिर इन्द्रोंने उनको मेरुपर्वतपर अभिषेक करनेके लिए स्थापन किया था यही समझकर बुद्धिमान लोगोंको

अपने हृदयमें सदा धर्म धारण करना चाहिये ॥ १५ ॥ जिस समय भगवान शांतिनाथ सिंहासनपर विराजमान थे उस समय सब देव उनके लिए इसप्रकार कल्पना करते थे कि क्या यह चन्द्रमा अथवा पुण्यकी राशि है ? अथवा क्या निर्मल प्रभावका पुँज है ? अथवा काम है ? क्या देवोंके द्वारा नमस्कार किया हुआ इन्द्र है ? अथवा परब्रह्म है ? क्या चक्रवर्ती है अथवा धर्मको मूर्ति है इसप्रकार कल्पना किये हुए शांतिनाथ भगवान हम तुम लोगोंको शांति दें ॥ १६ ॥ धर्मसे ही चक्रवर्तीका पद प्राप्त होता है, धर्मसे ही इन्द्रका उत्तम पद प्राप्त होता है, धर्मसे ही मनुष्य द्वारा पूज्य तीर्थंकर पद प्राप्त होता है और धर्मसे ही शास्वत मोक्ष पद प्राप्त होता है। धर्मसे ही जीवोंको सब प्रकारकी विभूति प्राप्त होती है और धर्मसे ही मेरुपर्वतपर अभिषेक होता है यही समझकर विद्वानोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये निर्मल धर्मका सेवन करना चाहिए ॥ १७-१८ ॥ भगवान शांतिनाथ तीनों लोकोंमें शांति करनेवाले हैं, मुनिराज भी शांतिनाथका आश्रय लेते हैं, शांतिनाथसे श्रेष्ठ धर्मकी प्रवृत्ति होती है, इस लिए मैं उन शांतिनाथको नमस्कार करता हूं। मनुष्योंको शांतिनाथसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है शास्वती मोक्षस्त्री शांतिनाथकी ही है, हे शांतिनाथ ! आजसे मैं आपमें ही अपना मन लगाता हूं, हे प्रभो, इस संसारमें मुझे शांति दीजिए ॥ १६ ॥

इसप्रकार श्रीशांतिनाथ पुराणमें जन्मावतरण और देवोंके आगमनका वर्णन करनेवाला तेरहवां अधिकार समाप्त ॥१३॥

अथ चौदहवां आधिकार ।

श्रीशांतिनाथ भगवान उनके चरित्र वर्णन करनेके लिए मुझे निर्मल बुद्धि प्रदान करें तथा शांति दें इसी लिए मैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अथानन्तर—भगवानका अभिषेक देखनेके लिये सब देव अनुक्रमसे सब दिशाओंमें पांडुक शिलाको घेरकर खड़े बैठ गए ॥ २ ॥ दिक्पाल देव अपने निकायोंके साथ भगवानका अभिषेक देखनेकी इच्छासे भगवानके सिंहासनके चारों ओर अपनी अपनी दिशामें जा बैठे ॥ ३ ॥ उस पांडुकवनमें देवोंकी सब सेना

आनन्द सहित चूलिका और मेरु पर्वतको तथा समस्त आकाशको घेरकर बैठ गईं ॥ ४ ॥ तदनन्तर परम
आनन्दको धारण करते हुए सौधर्म इन्द्रने सब इंद्रों और देवोंके साथ भगवानका अभिषेक करना प्रारम्भ
किया ॥ ५ ॥ उस समय देवोंके नगाडे आकाशमें व्याप्त होकर बजने लगे और देवांगनाएं आनंदित होकर
उत्तम नृत्य करने लगीं ॥६॥ उस समय कालागुरुकी सुगंधित धूपका धूंआ चारों ओर फैल गया और देवोंने
शांति पुष्टि देनेवाले बहुतसे पुण्यार्थ समर्पण किए ॥ ७ ॥ इन्द्रोंने एक दिव्य मंडप बनाया जिसमें सब देव
बिना किसी बाधाके बैठ गए उस मंडपमें कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुई सुवर्ण और मोतियोंकी मालाएं लटक
रही थीं जो पुण्यकी पंक्तियोंके समान जान पड़ती थीं ॥ ६ ॥ तदनन्तर सौधर्म इन्द्रने भगवान शांतिनाथका
प्रथम अभिषेक करनेके लिए सबसे पहिले प्रस्तावना विधिकी और फिर कलशोद्धार किया अर्थात कलश
हाथमें लिया ॥ १० ॥ फिर श्रीमान् ईशान इन्द्रने भी आनन्दित होकर सुवर्ण रत्नोंसे बना हुआ और चंदनसे
चर्चित ऐसा कलश हाथमें लिया ॥ ११ ॥ बाकीके कल्पवासी इंद्र आनन्द सहित जय जय शब्द कहने लगे
और ऊपरका काम कर उनके परिचारक बने ॥ १२ ॥ सब इन्द्रानी सब देवी और अपसराओंके साथ हाथमें
मंगल द्रव्य लेकर परिचारिकाएं बनी ॥ १३ ॥ जिन कलशोंसे जल लाया गया था वे सुवर्णके बने हुए थे,
उनका मुख एक योजन चौड़ा था, आठ योजनकी उनकी गहराई थी, मणियोंकी किरणोंसे वे व्याप्त थे,
और मोतियोंकी मालाएं उनपर लटक रही थीं । उन कलशोंसे देव क्षीर सागरका जल लाने लगे थे और
उस समय वे देव मेरुसे लेकर क्षीर सागर तक सीढ़ीरूपसे खड़े २ जल ला रहे थे ॥ १४-१५ ॥ भगवान
शांतिनाथ स्वयंभू हैं स्वयं पवित्र हैं दूधके समान उनका सफेद निर्मल रुधिर है इसलिये क्षीरसागरके बिना
और कोई जल उनके स्पर्श करने योग्य नहीं है यही समझकर अत्यानंदित हुए देव उनके अभिषेकके लिए
क्षीरसागरका ही जल लाए थे ॥ १६-१७ ॥ जलसे भरे हुए उन कलशोंसे आकाश व्याप्त हो गया था और
ऐसा जान पड़ता था मानों सन्ध्या समयके कुछ पीले बादलोंसे ही भर गया हो ॥ १८ ॥ भगवानका अभि-
षेक करनेके लिये इन्द्रने अपनी बहुतसी भुजाएं बना ली थीं और सबमें वह आभूषण पहने हुए था, इस-

लिये वह ऐसा जान पड़ता था मानों भूषणांग जातिका कल्पवृक्ष ही हो ॥ १९ ॥ इन्द्रने कण्ठमें पड़ी हुई मोतियोंकी मालासे सुशोभित होनेवाले तथा सुवर्णके बने हुए कलश हजार भुजाओंसे उठा रक्खे थे, इसलिये उस समय वह इन्द्र ऐसा जान पड़ता था मानों भाजनांग जातिका कल्पवृक्ष ही हो ॥ २० ॥ तदनन्तर सौधर्म इन्द्रने जय जय जय इसप्रकार तीनबार कहकर बड़ी प्रसन्नता से भगवानके मस्तकपर स्थूल मनोहर और निर्मल धारा छोड़ी ॥ २१ ॥ उन आनन्दित हुए करोड़ों देवोंमें जय जय शब्दका बड़ा भारी कोलाहल हो गया और जय आपकी बृद्धि हो इसप्रकारके शब्दोंसे सब दिशाएं बहिरीसी हो गईं ॥ २२ ॥ तदनन्तर कल्पवासी सब इंद्रोने संस्सार किए हुए सुवर्णके कलशोंसे भगवानके ऊपर हाथीकी सूढके आकारकी स्थूल धारा छोड़ी ॥ २३ ॥ भगवानके मस्तकपर पड़ती हुई वह दूधके समान सफेद जलकी धारा ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो वेगसे बहती हुई किसी दूसरी गंगा नदीका प्रवाह ही हो ॥ २४ ॥ परन्तु भगवानमें अनंत शक्ति थी और वज्र वृषभ नाराच उनका संहनन था इसलिए वे अपनी महिमा से हेला व लीलापूर्वक मेरु पर्वतके समान उस धाराकी प्रतीक्षा करते थे ॥२५॥ वह धारा जिस पर्वतपर पड़े उसके टुकड़े २ हो जांय परन्तु भगवान अपनी शक्तिसे उसे पुष्पोंके समान मानते थे ॥ २६ ॥ अभिषेक करते समय निर्मल जलकी छटायें भगवानके शरीरको स्पर्शकर दूर आकाशमें उछलती हुई ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानों भगवानके शरीरके स्पर्शसे वह पापोंसे छूट गई हों और इसलिए ऊपरको जा रही हों ॥ २७ ॥ भगवानके अभिषेककी ठंडी छटायें कुछ तिरछी भी जा रहीं थीं और ऐसी मालूम पड़ती थीं मानो दिशारूपी स्त्रियोंके कानोंमें पड़े हुए मोती हों ॥ २८ ॥ पर्वतरूपी भगवानके मस्तकपर मेघरूपी इन्द्रके द्वारा पड़ती हुई वह क्षीर सागरके जलकी धारा ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो कोई निर्झरना ही हो ॥ २९ ॥ वह जल कलशोंके मुखपर रक्खे हुए कमलोंके साथ पड़ता था इसलिए उस पर्वतके मस्तकपर वह जल उन कमलोंसे हंसोंकी उत्तम शोभाको प्राप्त होता था ॥३० ॥ उस पर्वतपर कहीं शुद्ध स्फटिककी पृथ्वी थीं, कहीं नीलमणियोंकी थी और कहीं विद्रुतमयी थी इसलिए वह जलकी धारा भी उस पृथ्वीके सम्बन्धसे अनेक प्रकारकी सुशो-

भित होती थी ॥ ३१ ॥ वह स्वच्छ जलका प्रवाह मंदराचल पर्वतसे नीचे पृथ्वीतक पड़ता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानों वह नहीं समानेके कारण ही नीचे गिर रहा हो ॥ ३२ ॥ उस समय महाधूप जल रही थी, दीपोंके जलनेसे प्रकाश हो रहा था, देव वंदीजनोंके द्वारा अभिषेकके समयके मंगल गीत गाये जा रहे थे, किन्नरी देवियां भी भगवानके अभिषेकके समयमें मनोहर गीत गा रही थीं, देवियोंका समूह अनेक प्रकार का उत्तम नृत्य कर रहा था, गंधर्वदेव भी गा रहे थे, देवोंके मनोहर वाजे वज रहे थे, जय नन्द आदिके शब्द हो रहे थे और करोड़ों स्त्रोत पढ़े जारहे थे, इसप्रकार इन्द्रोंने प्रसन्नतासे वड़ी विभूतिके साथ अनेक कलशोंसे भगवान तीर्थंकर देवका अभिषेक समाप्त किया ॥ ३३-३६ ॥ तदनंतर इन्द्रने भक्तिपूर्वक वंदना करनेके लिये सुगंधित गंधोदक जलके कलशोंसे भगवानका अभिषेक करना प्रारंभ किया ॥ ३७ ॥ विधिको जाननेवाले इंद्रने सुगंधि द्रव्योंसे मिले हुये दिव्य गंधोदकसे भगवान तीर्थकरका अभिषेक किया ॥ ३८ ॥ समस्त दिशाओंमें व्याप्त होनेवाली और संसार भरमें उत्सव करनेवाली वह क्षीर सागरकी धारा जिनवाणी के समान हम लोगोंको प्रसन्न करे ॥ ३९ ॥ जो तीक्ष्ण तलवारकी धाराके समान विघ्नसमूहोंको नाश करती है ऐसी पुण्यधाराके समान जलकी धारा हमलोगोंको मोक्षप्रद हो ॥ ४० ॥ जो जलधारा भगवानके शरीर का स्पर्श पाकर अत्यन्त पवित्र हो गई है वह धारा भगवानकी दिव्यध्वनिके समान हमारे अन्तःकरणको पवित्र करो ॥ ४० ॥ इसप्रकार गंधोदकसे भगवानका अभिषेक कर इंद्रोंने संसारकी शांतिकेलिये ऊंचे शब्दों से शांतिकी घोषणाकी । तदनन्तर देवोंने अपने आत्माको शांत करनेकेलिये वह गंधोदक पहिले तो मस्तकपर लगाया फिर सब शरीरपर लगाया और फिर भेंटके समान स्वर्गको ले गये ॥ ४२-४३ ॥ इसप्रकार इन्द्रोंने बड़े आनंदसे भगवानका अभिषेक किया और फिर तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसे उन भगवानका अनेक प्रकारसे पूजन किया ॥ ४४ ॥ दिव्यगंध, मुक्ताफल, कल्प वृक्षोंके पुष्प, अमृतपिंड, माणिक्य उत्तम धूप उत्तम फल और अर्घ चढ़ाकर भगवानकी पूजाकी शांति पौष्टिक किया और इसप्रकार भगवानका जन्माभिषेक कल्याण समाप्त किया ॥ ४५-४६ ॥ फिर इन्द्रोंने सब देव देवांगनाओंके साथ प्रसन्न होकर भगवानकी तीन

प्रदक्षिणाएं दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया ॥ ४७ ॥ उस समय आकाशसे जलकणोंके साथ पुष्पोंकी वर्षा हुई और सुगंधित केशरसे कुछ कुछ पीला हुआ वायु मंद मंद बहने लगा ॥ ४८ ॥ इसप्रकार इन्द्रने प्रसन्न होकर जिनका अद्भुत स्नानोत्सव किया एसे वे पवित्र भगवान तीनों लोकोंको शीघ्र ही पवित्र करें ॥ ४९ ॥ अथानंतर-अभिषेक समाप्त होनेपर इंद्रानीने कुतुहल चित्तसे तीनों जगतके गुरु भगवानका शृंगार करना प्रारम्भ किया ॥ ५० ॥ जिनका अभिषेक हो चुका है और अपने तेजसे सूर्यको जीत रहे हैं ऐसे भगवानके शरीरपर लगे हुए जलकणोंको उसने स्वच्छ निर्मल वस्त्रसे पोछा ॥ ५१ ॥ भगवानका शरीर अत्यंत सुगंधित था तथापि भक्तिमें तत्पर रहनेवाली इंद्रानीने सुगंधित गाढ़ चंदनसे उसपर अनुलेपन किया ॥ ५२ ॥ यदापि भगवान तीनों लोकोंके तिलक थे तथापि इंद्रानीने उनके ललाटपर तिलक किया और उनके मस्तकपर कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी मालासे सुशोभित रहनेवाला मुकुट धारण किया ॥ ५३ ॥ यदपि भगवान तीनों लोकोंके चूडामणि थे तथापि इद्रनीने चूड़ामणि पहनाया और प्रसन्न होकर नेत्रोंमें काजल लगाया ॥ ५४ ॥ भगवानके कानोंमें स्वाभाविक छिद्र थे इसलिये इंद्रानीने उनमें भक्तिपूर्वक सूर्य चंद्रमाके समान कांतिवाले मनोहर कुंडल पहिनाये ॥ ५५ ॥ उनके हृदयमें मणियोंका हार पहिनाया कण्ठमें कंठी और माला पहनाई और इसप्रकार अत्यंत रूपवान भगवानकी शोभा सर्वोत्तम बनाई ॥ ५६ ॥ उनके दोनों हाथ केयूर कटक अङ्गद और दिव्य अंगूठीसे सुशोभित थे और इसलिए वे कल्पबृक्षके समान जान पड़ते थे ॥ ५७ ॥ इंद्रानीने प्रसन्न होकर भगवानकी कमरमें किंकिणियोंके साथ २ बहुमूल्य और बहुत सुशोभित मणियोंकी करधनी पहिनाई ॥ ५८ ॥ पैरोंमें मणियोंके नूपुर शोभायमान थे जो बजनेवाले थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों सरस्वती ही उन अद्भुत पैरोंको सेवा कर रही हो ॥ ५९ ॥ भगवान तीर्थंकर देव तीनों लोकोंके शृंगार भूत थे, अत्यंत रूपवान थे और दिव्य शरीरको धारण करनेवाले थे यदपि उनके शरीरका शृंगार करनेसे कोई लाभ नहीं था तथापि इंद्रानीने अपना कर्त्तव्य पालन करनेके लिये और पुण्य संपादन करनेके लिये उसी समय भगवानका शृंगार किया था ॥ ६०-६१ ॥ उस समय सिंहासनपर विराजमान हुए भगवान

ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों यशोराशि ही एक जगह इकट्ठी हुई हो अथवा लक्ष्मीका निर्मल पुंज हो अथवा शुभ परमाणुयोंका समूह हो वा तेजका ही समूह हो अथवा संपूर्ण कलायोंसे सुशोभित चंद्रमा ही हो वा सौभाग्यका खजाना ही हो वा सुन्दरका समूह हो अथवा गुणोंका सागर हो अथवा भाग्यका समूह हो अथवा ऋद्धियोंसे सुशोभित मुनिराज ही हों ॥ ६२ ६४ ॥ सुवर्णकी कांतिका धारण करनेवाला भगवानका शरीर स्वभावसे ही सुन्दरथा तथा अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित किया गया था और फिर इन्द्रानी ने तिलक आदि देकर उसका श्रृंगार किया था इसलिए उस उपमारहित शोभाका वर्णन भला कौन विद्वान कर सकता है ॥६५-६६॥ इसप्रकार परम आनन्द देनेवाले भगवानको श्रृंगारकर वह इन्द्रानी उनकी रुपसंपति को देखकर स्वयं ही अत्यन्त आश्चर्य करने लगी ॥ ६७ ॥ इन्द्रने भी आश्चर्य और कौतुकके साथ अपने दोनों नेत्रोंसे भगवानके रूपकी उस समयकी अद्भुत शोभा देखी परन्तु फिर भी संतुष्ट नहीं हुआ इसलिए असंतुष्ट होकर अधिक देखनेकी इच्छासे उसने अपनी विक्रिया ऋद्धिसे सहस्र नेत्र बनाए ॥ ६८-६९ ॥ उस समय सब देव निमेष वा टिमिकार रहित लोचनोंसे पुण्यराशिके समूह के समान भगवानके निर्मल रुपको देखते थे ॥ ७० ॥ देवियां भी सब टिमिकाररहित नेत्रोंसे मणियोंकी खानिके समान उनका रुप देख रही थीं और बहुत देरतक देखते हुए भी तृप्त नहीं होती थीं ॥ ७१ ॥ तदनंतर इन्द्रादिक देवोंने भगवानका बड़ा भारी माहात्म्य प्रगटकर उनकी स्तुति करनी आरंभ की ॥७२ ॥ जिसप्रकार द्वीतीयाका चंद्रमा लोगों को आनन्द देता हुआ प्रगट होता है उसी प्रकार हे देव ! आप ही हम लोगोंको परम आनंद देनेके लिए प्रकट हुए हैं, हे देव ? आपका पुण्योदय सर्वोत्तम है ॥ ७३ ॥ आप मिथ्यात्व और अज्ञानरूपी कूएमें पड़ते हुए प्राणियोंको स्वयं धर्मरूपी हाथका सहारा देकर कृपापूर्वक उनका उद्धार करेंगे ॥७४॥ हे प्रभो, जिसप्रकार आपके शरीर की किरणोंसे वाह्य अन्धकार नष्ट हो गया है उसी प्रकार मनुष्योंका अंतरग अंधकार भी आपके वचनोंसे नष्ट हो जायगा ॥ ७५ ॥ हे देव ? आप सोलहवें तीर्थंकर हैं, आप ही पांचवें चक्रवर्ती हैं आप ही कामदेव हैं और आप ही मुक्तिके पति हैं ॥ ७६ ॥ हे नाथ ? आप जगतके स्वामी हैं गुरुओं के

महागुरु हैं, धर्मतीर्थको उत्पन्न करनेवाले हैं और सद्धर्मके मुख्य नेता हैं ॥ ७७ ॥ जिसप्रकार चंद्रमा स्वयं स्वच्छ है इसलिये वह समस्त पृथ्वीको धवलित वा सफेद कर देता है उसीप्रकार आप भी पवित्र हैं इसलिये आप अपने परम गुणोंसे समस्त संसारको पवित्र करेंगे ॥ ७८ ॥ हे प्रभो ? आपके वचनामृतरूपी रोगसे घिरे हुए बहुतसे जीव कल्याण प्राप्त करेंगे ॥ ७९ ॥ हे देव ? आप शिरसे पैरतक सम्यग्ज्ञानादि समस्त गुणोंसे परिपूर्ण हैं इसीलिए जगह न पानेके कारण ही मानों दोष आपमें से भाग गये हैं ॥ ८० ॥ हे देव ? आप बिना ही स्नान किये पवित्र हैं तथापि आज इस मेरुपर्वतपर आपका स्नान किया गया है इसलिये हे प्रभो ? समस्त लोकोंको और पापसे मलिन होनेवाले हम लोगोंको आप पवित्र कीजिये ॥ ८१ ॥ हे देव आप तीनों ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले हैं तथापि संसार में बुद्धिमान लोग आपको केवल ज्ञानरूपी सूर्यका उदयाचल मानते हैं ॥ ८२ ॥ जिसप्रकार शुद्ध खानिसे निकली हुई मणि भी संस्कारके सम्बंधसे और अधिक दैदीप्यमान होने लगती है उसी प्रकार अभिषेक और आभरणोंके संस्कारसे आप भी और अधिक दैदीप्य मान होने लगे हैं ॥ ८३ ॥ मुनि लोग आपको पुराणपुरुष कहते हैं, पुराण कवि बतलाते हैं विना कारण ही बन्धु कहते हैं तीनों लोकोंके पिता बतलाते हैं, सब जीवोंके हितकारक, पूज्य, समस्त विद्याओंमें निपुण, और धर्मात्मा भव्योंको मोक्षतक पहुंचानेकेलिये साथी बतलाते हैं ॥ ८४-८५ ॥ आपकी आत्मा पवित्र है, आप गुणशाली हैं और संसारसे डरे हुए प्राणियोंको शरण हैं इसलिये आपको नमस्कारहै ॥ ८६ ॥ आप जगतके स्वामी हैं दश धर्मोंको उत्पन्न करनेकेलिये विशाल क्षेत्र हैं, सज्जनोंको प्रसन्न करनेवाले हैं और दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले हैं, इसलिये आपको बार बार नमस्कार हो ॥ ८७ ॥ हे प्रभो ? आपकी प्रवृत्ति परिग्रह रहित है, आप सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले हैं आप अत्यंत बलवान हैं और सज्जनोंके गुरु हैं इसलिये आपको बार बार नमस्कार हो ॥ ८८ ॥ आपका निर्मल शरीर पसीना रहित है, मल रहित है, शरीरका रुधिर दूधके समान सफेद है, आपका संहनन वज्रवृषभ नाराच है, संस्थान समचतुरस्र है, आपका शरीर अत्यंत रूपवान है, अत्यंत सुगंधित है, सब सुलक्षणोंसे सुशोभित है, अनंत शक्तिको धारण करता है और

आपके वचन प्रिय और समस्त जीवोंका हित करनेवाले हैं ये सुन्दर दश अतिशय आपके शरीर के साथ प्रगट हुए हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, बार बार नमस्कार हो ॥८६-६२॥ इनके सिवाय और भी आपमें अनेक गुण हैं आप शांति करनेवाले हैं श्रीमान् हैं और ज्ञानके समुद्र हैं इसलिए आपको बार बार नमस्कार हो ॥ ६३ ॥ हे संसार के स्वामी ? आप उपमारहित हैं और अनेक महिमाओं से भरे हुए लक्षणों से शोभायमान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥ ६४ ॥ हे देव ! इस प्रकारकी स्तुति कर हम आपसे कुछ मांगते नहीं हैं क्यों कि आप तो तीनों लोकों के साम्राज्यके स्वामी हैं और हमें उसका लोभ नहीं है ॥ ६५ ॥ हे स्वामिन् ! आप हमें निर्मल रत्नत्रय दीजिये, समाधि दीजिये, समाधि मरण दीजिये हमारे अशुभ कर्मोंका नाश कीजिये और अपने शुभ गुण हमें दीजिये ॥ ६६ ॥ अथवा हे जिनराज ! बहुत बड़ी प्रार्थनासे क्या लाभ है, आप भव भवमें केवल आपमें होनेवाली गाढ भक्ति दीजिये ॥ ६७ ॥ इसप्रकार स्तुतिकर इन्द्रादि देवोंने भगवानके गुण प्राप्त करनेके लिये अथवा मोक्ष प्राप्त करनेके लिये मस्तक नवाकर भगवानके चरण कमलोंको बड़ी प्रसन्नतासे नमस्कार किया ॥ ६८ ॥ वे भगवान संसारमात्रको शांति देनेवाले थे, उनके पाप सब शांत हो गए थे और वे स्वयं शांति थे यही समझकर इन्द्रोंने उनका 'शांति' यह सार्थक नाम रक्खा ॥ ६६ ॥ तदनन्तर इन्द्रने भगवानको ऐरावत हाथीपर विराजमान किया और फिर इन्द्रादिक सब देव पहिलेके समान दुंदुभी आदि बाजे, गीत, नृत्य, जय जय शब्द और बड़ी विभूतिके साथ आकाशको उलंघन कर बहुत शीघ्र हस्तिनापुरी नगरीमें आ गए ॥ १००-१०१ ॥ वह नगरी भवनोंपर लगी हुई अनेक प्रकारकी मनोहर ध्वजाओंसे तथा गीत नृत्य आदि महोत्सवोंसे प्रत्यक्ष अमरपुरीके समान शोभायमान हो रही थी ॥ २ ॥ देवोंकी सेना उस नगरीको घेरकर चारों ओर ठहर गई मानो वह उसकी शोभा देखनेके लिये ही आई हो ॥ ३ ॥ तदनंतर इन्द्रने स्वयं जगतगुरु भगवानको लेकर थोड़े से देवोंके साथ बहुत सी शोभासे सुशोभित महाराज विश्वसेनके आंगनमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ वहांपर देवोंके द्वारा की हुई अनेक शोभासे सुशोभित ऐसे महाराजके आंगनमें सौधर्म इन्द्रने सिंहासनपर भगवानको

विराजमान किया ॥ ५ ॥ उस समय महाराज विश्वसेनका शरीर रोमांचित हो गया था और वे बड़े आश्चर्यके साथ आंखें फाड़ फाड़कर भगवानको देख रहे थे उस समय भगवान अपनी कांतिसे चन्द्रमाके समान सुन्दर जान पड़ते थे, देखनेमें बहुत ही प्रिय लगते थे, तेजमें सूर्यके समान थे और समस्त आभरणोंसे सुशोभित थे, ऐसे भगवानको महाराज देख रहे थे ॥ ६-७ ॥ इन्द्रानीने माताकी मायानिद्रा दूर की और उसे जगाया तब वह सती प्रसन्न होकर परिवारके साथ अपने पुत्रको देखने लगी ॥ ८ ॥ उस समय वे भगवान अपनी कांतिसे सूर्यको जीत रहे थे इसलिए ऐसे जान पड़ते थे मानो तेजका समूह ही एक जगह आकर प्रगट हो गया हो तथा आभूषणोंसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भूषणांग जातिके कल्पवृक्ष ही हों ॥ ९ ॥ उस समय भगवानके माता पिता इंद्रानीके साथ इन्द्रको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए क्योंकि उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो चुके थे ॥ १० ॥ तदनंतर श्रीशांतिनाथका पुण्य प्रकट करनेके लिए इन्द्रने देवोंके साथ प्रसन्न होकर उत्तम गुणोंसे माता पिताकी प्रशंसा की ॥ ११ ॥ वह कहने लगा कि संसारमें आप धन्य हैं, आप जगतपूज्य हैं, तीनों लोक आपकी बंदना करता है, देव भी आपकी बंदना करते हैं, आप चतुर हैं, महाभाग्यशाली हैं और कल्याणभागी हैं ॥ १२ ॥ संसारमें आप ही दोनों सौभाग्यका भोग करनेवाले हैं आप ही श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए हैं, आप ही ज्ञानी हैं, आप ही लोक मान्य हैं, आप ही श्रेष्ठ हैं, श्रेष्ठ लक्ष्मीसे सुशोभित हैं और समस्त राजाओंके मुख्य हैं ॥ १३ ॥ आपके अद्भुत पुण्यकर्मके उदयसे ही समस्त गुणोंकी खानि, गुरुओंके गुरु तीनों लोकोंके चूड़ामणि और सर्वोत्तम भगवान तीर्थंकरने आपके घर अवतार लिया है ॥ १४ ॥ जीवोंको समस्त तत्व प्रकट करनेवाले ये महान तीर्थंकररूपी सूर्य ऐरारूपी पूर्व दिशामें विश्वसेनरूपी उदयाचल पर्वतसे प्रकट हुए हैं ॥ १५ ॥ ये भगवान अज्ञानरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं भव्य जीवोंके हृदय कमलको प्रफुल्लित करनेवाले हैं और तीनों जगतके गुरु हैं आप उनके माता पिता हैं इसलिये आप तीनों जगतके गुरुके भी गुरु हैं ॥ १६ ॥ यह आपका राज भवन आज जिनालयके समान आराधना करने योग्य है और आप हम लोगोंके द्वारा सदा पूज्य और मान्य हैं क्योंकि आप हमारे गुरुके भी गुरु हैं ॥ १७ ॥

इसप्रकार इन्द्रने माता पिताकी स्तुति की, दिव्य और उत्तम वस्त्र माला और आभरणोंसे उनकी पूजा की
और सब तरह उन्हें प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ तदनंतर इंद्रने भगवानको मेरुपर्वतपर ले जानेकी वहांपर अभि-
षेक करनेकी और फिर आनेकी सब बात ज्योंकी त्यों कह सुनाई ॥ १६ ॥ पुत्रकी उस बातको सुनकर माता
पिता बहुत ही प्रसन्न हुए उन्हें परम सोमातक पहुंचानेवाला सुख प्राप्त हुआ और वे बहुत ही आश्चर्य करने लगे
॥ २० ॥ तदनंतर माता पिताने इंद्रके उपदेशानुसार बड़ी विभूति और उत्सवके साथ फिर दुबारा भगवानका
जन्मोत्सव मनाया ॥ २१ ॥ उस समय अनेक: वर्णोंकी महाध्वजा, माला, मोतियोंकी माला और मनोहर
तोरणोंसे सजाई गई वह नगरी बहुत ही अच्छी जान पड़ती थी ॥ २२ ॥ उस समय रत्नोंके चूर्णसे पूरे हुए
चौकोंसे नगरकी गलियां बहुत अच्छी जान पड़ती थीं और वह नगरो भी रत्न गीत बाजोंसे स्वर्गके समान
जान पड़ती थी ॥ २३ ॥ जिसप्रकार राजा और सज्जन लोग अपनी २ स्त्रियोंके साथ समस्त विघ्नोंको नाश
करनेके लिये और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये जिनालयोंमें बड़ी विभूतिके साथ समस्त कल्याणोंको सिद्ध करने-
वाली भगवानकी अभिषेक पूर्वक पूजा कर रहे थे उसी प्रकार हृदयमें आनन्दित होकर सब नगरनिवासी
भी भगवानकी पूजा कर रहे थे ॥ २४-२५ ॥ जिसप्रकार महाराज विश्वसेनने दीन और अनाथ लोगोंको
अनेक प्रकारका दान दिया उसी प्रकार नगर निवासियोंने भी बड़ी प्रसन्नतासे दान दिया ॥ २६ ॥ जिस-
प्रकार अन्तःपुरमें स्त्री-पुरुष सब नृत्य बाजे आदिसे महाउत्सव मना रहे थे उसी प्रकार नगर निवासी भी
घर २ आनन्द मनाने लगे ॥ २७ ॥ जिसप्रकार मेरुपर्वतपर बड़ी विभूतिके साथ परम उत्सव हुआ उसी
प्रकार वहां भी परम आनन्दमें डूबे हुए कुटुम्बी लोगोंके द्वारा परम उत्सव मनाया गया ॥ २८ ॥ उस समय
अन्तःपुरमें और नगर निवासी लोगोंके साथ समस्त संसारको आनंदित देखकर इन्द्र भी अपना अनंद
प्रकट करना चाहा और इसलिये उसने उन सबके सामने बड़ी विभूतिसे सब परिवारके साथ उसी समय
मनको बहुत अच्छा लगनेवाला आनन्द नामका नाटक करना प्रारम्भ किया ॥ २९-३० ॥ इंद्रका वह नाटक
प्रारम्भ होते ही महाराज विश्वसेन आदि सब राजा अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ उसे देखनेके लिए बैठ गये।

गए ॥ ३१ ॥ उस समय उस नाटककी विधिको जाननेवाले गंधर्वपात्रोंके द्वारा श्रीजिनेन्द्रदेवके गुणोंको प्रगट करनेवाला संगीत सजने लगा ॥ ३२ ॥ वीणाके साथ स्वर मिलनेवाली किन्नरी देवियोंके द्वारा गंभीर स्वरसे तीर्थंकरके गुणोंको प्रगट करनेवाला मनोहर संगीत गाया जा रहा था ॥ ३३ ॥ उस उत्सवमें देवोंके हाथोंसे बजाये हुए मृदंग नृत्यके योग्य मधुर शब्द कर रहे थे और देवोंके मुखसे बजनेवाली बंशियां भी उसी लयमें बज रही थीं ॥ ३४ ॥ इन्द्रने सबसे पहिले धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला गर्भकल्याणक और जन्मकल्याणक संबन्धी नाटक दिखलाया ॥३५॥ फिर उन्हीं भगवानकी पिछली ग्यारह पर्यायोंको दिखलाकर तत्संबन्धी अनेक प्रकारके रूप दिखलाये ॥ ३६ ॥ अथवा उसने सबसे पहिले शुद्ध पूर्व रंग दिखलाया और फिर शरीरको अच्छे लगनेवाले साधनोंके द्वारा अनेक प्रकारका नाटक दिखलाया ॥ ३७॥ इंद्रने चित्र, रेचक, पादुकट, और कंठाश्रित आदिके द्वारा अच्छा रस दिखलाते हुए तांडव नृत्य किया ॥ ३८ ॥ उस समय इंद्र हजार भुजाओंको बनाकर नृत्य कर रहा था उस समय ऐसा मालूम होता था मानों उसके पैर रखनेसे पृथ्वी ही फटकर चल रही हो ॥ ३९ ॥ वस्त्र और आभूषणों से देदीप्यमान होनेवाला और ऊंचे शरीरको धारण करनेवाला वह इन्द्र आभूषणों से सुशोभित अपनी बहुत सी भुजाओं को फैलाकर नृत्य कर रहा था और ऐसा मालूम होता था मानों कल्पवृक्ष ही नृत्य कर रहा हो ॥ ४० ॥ वह इन्द्र क्षणभरमें एक दिखाई देता था, क्षणभरमें अनेकरूप धारण करता था, क्षणभरमें स्थूल, क्षणभरमें लघु, क्षणभरमें समीप, क्षणभरमें दूर क्षणभरमें आकाशमें, क्षणभरमें पृथ्वीपर क्षणभरमें अनेक हाथों वाला क्षणभरमें दो हाथोंका, क्षणभरमें दीर्घ क्षणभरमें छोटा, क्षणभरमें बहुत, लम्बा चौड़ा और क्षणभरमें अणुरूप दिखाई देता था। इस प्रकार वह इन्द्र अपनी विक्रियाका माहात्म्य दिखला रहा था, और वह स्वयं इन्द्रजालके समान प्रतीत होता था ॥४१-४३॥ इन्द्रके बहुतसे हाथों पर भी बहुतसी अपसरायें लीलापूर्वक अपना मनोहर शरीर, कमर, पैर, गला आदि हिला हिलाकर नृत्य कर रहीं थीं ॥४४॥ कोई बढ़ते हुए लयके साथ नृत्य कर रहीं थीं और कोई तांडव नृत्य कर रही थीं और कोई अप्सराएं अनेक प्रकारके अभिनय दिखलाकर नृत्य कर रहीं थीं ॥४५॥ कोई इन्द्रके हाथों

की उंगलियों पर फिरकी ले रहीं थीं, कोई उंगलियों के पर्वोंपर फिरकी ले रहीं थी, और कोई उसकी ओर नाभिकर वांसके समान खड़ी थी ॥ ४६ ॥ इन्द्रकी प्रत्येक भुजापर नृत्य करती हुई और कड़े वेगसे फिरकी लेती हुई देवांगनाएं विजलीके समान जान पड़ती थी ॥ ४७ ॥ नृत्य करते हुए इन्द्रके प्रत्येक शरीरकी जो चेष्टा होती थी वह सब उन नृत्य करनेवाले पात्रों में बंट जाती हुईके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ४८ ॥ उन देवियोंके साथ नृत्य करता हुआ सौधर्म इन्द्र अपनी विभूतिसे ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों कल्पलताओंके साथ नृत्य करता हुआ जंगम कल्पवृक्ष ही हो ॥ ४९ ॥ उस नाटकमें दर्शक तो विश्वसेन आदि महाराज तथा ऐरा आदि महादेवियां थीं, उससे तीनों जगतके गुरु भगवान शांतिनाथकी आराधनाकी जा रही थी, सौधर्म स्वर्गका इंद्र नट था, देवांगनाएं नृत्यकारिणी थीं, देवोंके दुंदुभी वाजे थे, गंधर्वादिक गानेवाले थे, वह रस, वह नृत्य, वह विज्ञान, वह विक्रिया, वह गीत, वह बाजा और वह देवोंके द्वारा किया हुआ अद्भुत महोत्सव यह सब महा मनोहर था और बड़ा ही विचित्र था। वह वचनोंके अगोचर था इसलिये कोई भी विद्वान उसका वर्णन नहीं कर सकता ॥ ५०-५३ ॥ महाराज विश्वसेन ऐरा देवी के साथ उस अद्भुत नृत्यको देखकर बहुत ही आश्चर्य करने लगे। उस समय अनेक इन्द्रादिक देव उनकी उत्तम प्रशंसा कर रहे थे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर इन्द्रने भगवानकी सेवा करनेके लिए बहुत क्रीड़ा करनेवाले देव छोड़ दिए जो कि भगवानके समान ही आयु रूप भेष आदिको धारण किए हुए थे ॥ ५५ ॥ इसप्रकार धर्म साधनकर प्रसन्न हुए चारों निकायोंके देव अपना २ नियोग पालनकर तथा अनेक प्रकारका पुण्योपार्जनकर अपने २ स्थानको चले गए ॥ ५६ ॥ दृढ़रथका जीव भी पुण्यकर्मके उदयसे बहुत दिनतक सुखोंका अनुभव कर सर्वार्थसिद्धिसे चयकर महाराज विश्वसेनकी यशस्वती रानीसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ वह चक्रायुध दिव्य लक्षणोंसे सुशोभित था, मोक्षगामी था, महा धीर वीर था, महापुरुष था और ज्ञान त्याग आदि गुणोंका स्थान था ॥ ५७-५८ ॥ भगवान शांतिनाथको स्नान कराने वस्त्राभरण पहनाने, संस्कार करने और खिलानेके लिए इन्द्रने अनेक देवांगनाओंको धायरूपमें रख छोड़ा था ॥ ५९ ॥ वे सब

देवांगनायें भक्तिपूर्वक दिव्य द्रव्योंसे भगवानका स्नान मंडन क्रीडन और अद्भुत संस्कार आदि सब करतीं थीं ॥ तदनन्तर भगवानके सुन्दर शरीरके अवयव द्वितीयाके चंद्रमाके समान धीरे २ अनुक्रमसे बढ़ने लगे ॥ ६१ ॥ वे भगवान शांतिनाथ थोड़ासा हंसते थे और मणियोंके बने आंगनमें रिंगते थे, इसप्रकार वाल्य अवस्थामें अद्भुत चेष्टायें करते हुए वे माता पिताको आनन्दित करते थे ॥ ६२ ॥ भगवानके मुखरूपी चंद्रमा में उनका थोड़ासा हंसना निर्मल चांदनीके समान था उससे माता पिताके मनका संतोषरूपी समुद्र बहुत ही बढ़ जाता था ॥ ६३ ॥ तदनन्तर उनके मुखरूपी कमलमें सरस्वतीने (वाणीने) प्रवेश किया । वह वाणी बड़ी ही मधुर थी, बड़ी ही मनोहर थी और संसार भरको आनन्द देनेवाली थी ॥ ६४ ॥ वे भगवान मणि-योंकी पृथ्वीपर डगमगते पैरोंसे चलते हुए पहने हुए आभूषणोंसे ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों चलता हुआ कल्पवृक्ष ही हो ॥ ६५ ॥ वे कुमार कभी तो हाथी घोड़ा बन्दर आदिका सुन्दर रूप धारणकर बड़ी प्रसन्नतासे भगवानको क्रीडा कराते थे ॥ ६६ ॥ कभी भगवानकी आयुके समान ही बालकका मनोहर रूप बनाकर रत्नोंकी धूलिसे क्रीड़ा कराकर उनको प्रसन्न करते थे ॥ ६७ ॥ भगवानके शरीरके अवयव जैसे जैसे बढ़ते जाते थे वैसे २ ही देव पहिले आभूषणोंको लेकर नए आभूषण पहना देते थे ॥ ६८ ॥ भगवान का वह बालकपन चंद्रमाके समान संसारमें बंदनीय था, लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था और मनोहर तथा निर्मल था ॥ ६९ ॥ इसप्रकार वे भगवान अमृतमय अन्नपानसे तथा अपनी आयुके योग्य आभूषणों से चंद्रमाकी मनोहरताके समान अनुक्रमसे कुमार अवस्थाको प्राप्त हो गए थे ॥ ७० ॥ शरीरके साथ २ ही उम्रकी कांति, दीप्ति कला विद्या और तीनों ज्ञानोंसे उत्पन्न होनेवाले गुण सब अपने आप बढ़ते चले गए थे ॥ ७१ ॥ उनका शरीर मनोहर था, वाणी प्रिय, सज्जनोंको मान्य और प्रेम उत्पन्न करनेवाली थी, नेत्र सौम्य अवस्थाको धारण करते थे और उनका अंग उपांग सब शुभ था ॥ ७२ ॥ मतिज्ञान श्रुतिज्ञान अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान तो साथ ही प्रगट हुए थे तथा और भी सब महाविद्याएं अपने आप आगई थीं ॥ ७३ ॥ वे तीर्थंकर भगवान हित, अहितको, तीनोंको और मुनि गृहस्थके धर्मको अपने ज्ञानसे अपने आप

ही जानते थे ॥ ७४ ॥ इसलिए वे भगवान समस्त विद्वानोंके गुरु थे और महा समस्त विद्याओंको प्रकट करनेवाले थे संसारमें उनका अन्य गुरु कोई नहीं था ॥ ७५ ॥ तदनन्तर क्षायिक सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होनेवाले बुद्धिमान भगवानने आठवें वर्षमें गृहस्थ धर्मकी इच्छासे परम शुद्धतापूर्वक अपने योग्य पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ये सब स्वयं धारण किए ॥ ७६-७७ ॥ वे भगवान माता पिताका आनन्द बढ़ाते हुए, भाइयोंका सुख बढ़ाते हुए और संसारके लोगोंमें प्रेम बढ़ाते हुए अनुक्रमसे बढ़ने लगे ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वे भगवान अपनी कांतिसे कामदेवको तथा चन्द्रमाको और दीप्तिसे सूर्यादिकको जीतते हुए उपमा रहित यौवन अवस्थाको पाकर बहुत सुशोभित होने लगे ॥ ७९ ॥ वे भगवान शांतिनाथ दिव्य रूपवान थे, तपाए हुये सोनेके समान उनकी कांति थी, एक लाख वर्षकी आयु थी और चालीस धनुष ऊंचा उनका शरीर था ॥ ८० ॥ वे भगवान निःस्वेद (पसीना न आना आदि) आदि गुणोंसे, यौवनकी शोभासे और देवोंके द्वारा लाए हुए उत्तम वस्त्राभूषणोंसे समस्त उपमाओंको जीतते हुए बहुत ही सुशोभित होते थे ॥ ८१ ॥ भ्रमररूपी बालोंसे सुशोभित उनका मस्तक माला और मुकुटसे ऐसी अच्छी शोभा देता था मानों अद्भुत शोभाको धारण करनेवाली चूलिकासे मेरुपर्वतका शिखर ही शोभायमान हो रहा हो ॥ ८२ ॥ चन्द्रमाको जीतनेवाले विस्तीर्ण ललाट पर ऐसी अच्छी २ शोभा थी, मानो वह सरस्वती देवीको महाक्रीड़ा करनेके स्थानकी लीलाको ही धारण करता हो ॥ ८३ ॥ काली पुतलीयोंसे शोभायमान ऐसे भगवानके सुन्दर भौंहवाले दोनों नेत्रोंकी शोभा ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों समस्त शत्रुओंको जीतकर वे नेत्र शांत हो गये हों ॥ ८४ ॥ सूर्य चन्द्रमाके समान दोनों कुण्डलोंसे शोभायमान और श्रुतज्ञानसे परिपूर्ण ऐसे भगवानके दोनों कर्ण ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों वे गीत आदिके सुननेकी चरम सीमाको पहुंच गये हों ॥ ८५ ॥ भगवानके मुखरूपी चन्द्रमाकी शोभाका तो भला कौन वर्णन कर सकता है क्योंकि उससे तो जगतका हित करनेवाला और स्वर्ग मोक्षके मार्गका उपदेश देनेवाली मनोहर दिव्यध्वनि निकली है ॥ ८६ ॥ भगवानकी नासिका भी ऊंची थी बड़ी अच्छी शोभाको धारण करती थी और

ऐसी जान पड़ती थी मानो सरस्वतीके अवतारके लिये एक प्रणालिका ही बनाई गई हो ॥ ८७ ॥ भगवानका वक्षःस्थल भी बहुत बड़ा था, लक्ष्मी और कांतिसे सुशोभित थ उसपर दिव्य हार पड़ा हुआ था जिससे उसकी शोभा और भी बहुत बढ़ गई थी ॥ ८८ ॥ भगगवानकी दोनों भुजाएं केयूर आदिसे सुशोभित थीं लक्ष्मीरूपी लतासे विभूषित थीं और ऐसी अच्छी जान पड़ती थीं मानों इच्छानुसार फल देनेवाले दो कल्पवृक्ष ही हों ॥ ८९ ॥ भगवानके हाथकी उंगलियोमें लगे हुये मनोहर नख ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो दश लाक्षणिक धर्मको प्रकट करनेके लिये ही तत्पर हुये है ॥ ९० ॥ भगवानके शरीरके मध्यभागमें नाभि ऐसी अच्छी शोभा देती थी मानों जिसमें भ्रमर पड़ रहे हैं और लक्ष्मी तथा हंसनी जिसकी सेवा कर रही हैं ऐसी छोटी सरोवरी (तलैया) ही हो ॥ ९१ ॥ करधनी और वस्त्रोंसे ढका हुआ उनका कटिभाग (कमर) ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों वेदिकासे घिरा हूआ सुन्दर जम्बूद्वीप ही हो ॥ ९२ ॥ केलेके खम्भेके समान कोमल परन्तु कायोत्सर्ग करनेमें समर्थ ऐसे भगवानके दोनों मजबूत जंघे ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों जगतरूपी घरके ही खंभे हों ॥ ९३ ॥ नखरूपी चन्द्रमाओंकी किरणोंसे व्याप्त और मनुष्य देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे भगवानके दोनों चरण, कमल और अशोककी शोभाको जीतते हुए सदा सुशोभित रहते थे ॥ ९४ ॥ नखसे लेकर चोटीतक भगवानकी जो महाकांति शोभायमान थी उस सब कांति वा शोभाको संसार भरमें कोई भी चतुर पुरुष वर्णन नहीं कर सकता ॥ ९५ ॥ भगवानका शरीर वज्रमय हड्डियोंसे वना हुआ था और अन्तडी चमड़ा आदि सब वज्रमय था फिर भला उनके बलका प्रमाण इस संसारमें कौन जान सकता है ॥ ९६ ॥ उनके शरीरका संस्थान पहिला समचतुरस्त्र संस्थान था और वह शरीर दूसरे धर्मस्थानके समान दिव्यपरमाणुओंसे बना हुआ था ॥ ९७ ॥ भगवानका शरीर बात पित्त कफ आदि दोषोंसे सब रोगोंसे मल मूत्रसे रहित वह शरीर लोकोत्तर था ॥ ९८ ॥ श्रीवृक्ष, शंख, कमल, स्वतिक, अंकुश, तोरण, चमर, सफेद, छत्र, सिंहासन, ध्वजा, मछली, दो कुम्भ, कच्छप, चक्र, समुद्र, सरोवर, विमान, भवन, नाग, मनुष्य, स्त्री, सिंह, बाण, तूणीर, [तरकस] मेरु, इन्द्र, गंगानदी, पुर, गोपुर, दैदी-

प्यमान दो सूर्य, घोड़ा, पंखा, वेणु, वीणा, मृदङ्ग, दो मालाएं, रेशमी, वस्त्र, बाजार, दैदीप्यमान कुण्डल आदि अनेक प्रकारके आभरण, उद्यान, कलमी चावलोंका पका और फला हुआ खेत, रत्नोंका द्वीप, वज्र, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, गाय, बैल, चूडारत्न, महानिधि, कल्पलता, सुवर्ण, जम्बूवृक्ष, गरुड, नक्षत्र, तारे, चन्द्रमा, ग्रह, सिद्धार्थवृक्ष, मनोज्ञ प्रातिहार्य तथा और भी मंगल द्रव्योंको आदि लेकर भगवानके शरीरपर एकसौ आठ लक्षण थे और नौसौ दूसरे व्यंजन थे ॥ ९९-२०६ ॥ इसप्रकार गुणोंके सागर भगवान शांतिनाथ जब कुमार अवस्थाको अथवा यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए थे उस समयके उनके गुणोंकी संख्या कौन जान सकता था ॥ ७ ॥ यौवन अवस्था प्राप्त हो जानेपर पिताने मंद रागको धारण करनेवाले तीर्थंकर पुत्रके लिये बड़े उत्सवके साथ कुल, रूप, आयु, शील, कला, कांति, आदिसे सुशोभित लावण्यरूपी समुद्रकी वेलाके समान पुण्यवती दिव्य कन्याएं विधिपूर्वक विवाह दी थीं ॥ ८-९ ॥ तदनंतर वे भगवान पुण्यकर्मके उदयसे उन स्त्रियोंके साथ नवीन स्नेहसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके दिव्य महा सुख भोगते थे ॥ १० ॥ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपना कल्याण करनेके लिए कभी गंधर्वोंके द्वारा गाये हुए गीतोंसे, कभी देवियोंके नृत्योंसे, कभी अगल बगलमें रहनेवाली किन्नरी देवियोंके द्वारा बजनेवाले वीणा आदि मनोहर बाजोंसे, कभी धर्मकथासे और कभी गोष्ठियोंसे भगवानको सदा सुख पहुंचाता रहता था ॥ ११-१२ ॥ इस प्रकार भगवान शांतिनाथने पच्चीस हजार वर्षतक मनुष्यों और देवोंके द्वारा प्राप्त हुए तथा कुमार अवस्थासे प्रकट हुए बहुतसे उत्तम सुख भोगे थे ॥ १३ ॥ तदनंतर इंद्रादिक देवोंने पिताकी सलाहसे भगवानको सिंहासनपर विराजमानकर बड़े आनंद और विभूतिके साथ गीत नृत्य तुरही आदिके शब्दोंके साथ मोतियोंकी माला, चंदन आदिसे सुशोभित गंगा आदि तीर्थ जलसे भरे हुए सुवर्णमय उत्तम कलसोंसे भगवानका राज्याभिषेक किया और फिर स्वर्गसे आये हुए वस्त्राभूषणोंसे उनका उत्तम शृंगार किया ॥ १४-१६ ॥ उस समय मनुष्य देवोंके द्वारा ध्वजा तोरण माला आदिसे सजाई हुई वह मनोहर नगरी साक्षात् इन्द्रपुरीके समान सुशोभित होती थी ॥ १७ ॥ राज्याभिषेकके बाद महाराज विश्वसेनने सब राजाओंके सम्मुख बड़ी विभूतिके

साथ भगवानके मस्तक पर राज्यपट्ट बांधा ॥ १८ ॥ उस राज्योत्सवमें महाराज विश्वसेनने सब भाइयोंको प्रसन्न किया था और इच्छानुसार धन देकर सब बंदीजन, दीन, और अनाथ लोगोंको प्रसन्न किया था सब लोगोंको आनन्द देनेवाले उस उत्सवमें न तो कोई दीन दिखाई देता था, न अनाथ दिखाई देता था, न दुखो वा शोक करनेवाला दिखाई देता था और न कोई निर्धन ही दिखाई देता था ॥ २० ॥ इस प्रकार इन्द्रादि देव पुण्य उपार्जन करनेके लिये बड़ी विभूतिके साथ भगवान शांतिनाथका राज्य कल्याण कर अपने अपने स्थानको चले गए ॥ २१ ॥ अथानन्तर-राज्य नीतिमें चतुर वे भगवान न्यायमार्गसे योग और क्षेमका स्थापन कर प्रजाका पालन करने लगे ॥ २२ ॥ समस्त देशके राजा सामंत विधाधर और देव भगवानकी आज्ञा मानते थे और मस्तक झुकाकर उनके चरण कमलोंको नमस्कार करते थे ॥ २३ ॥ भगवान शांतिनाथके राज्यमें सौधर्म स्वर्गका इंद्र काम करता था (उस राज्यको चलाता था) फिर भला ऐसा कौन था जो भगवानकी अज्ञाका उल्लंघन करे ॥ २४ ॥ उस समय घनीभूत मनोहर पृथ्वी सुन्दर स्त्रीके समान प्राप्त हुए नये स्वामीके लिए धन धान्य आदि कोशमें आनेवाली अनेक संपदाओंको उत्पन्न करती थी ॥ २५ ॥ मंद रागको धारण करनेवाले वे भगवान अपने पुण्यकर्मके उदयसे अपनी रानियोंके साथ मध्य लोक और स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए और जो वाणीसे भी कहे नहीं जा सकें ऐसे भोगोंका अनुभव करते थे ॥२६॥ देव विद्याधर और भूमिगोचरी सब जिनको सेवा करते हैं ऐसे उन शांतिनाथ भगवानने पच्चीस हजार वर्ष तक महा मंडलेश्वर राज्यकी लक्ष्मीका अनुभव किया था ॥ २७ ॥ तदनंतर पुण्यकर्मके उदयसे उनके छहो खंडोंको वश करनेवाले चक्र आदि चौदह रत्न अपने आप उत्पन्न हो गए थे ॥ २८ ॥ इसीप्रकार महाप्रतापी उन भगवानके नौ निधियां प्रगट हुई थीं । उन रत्नोंमेंसे चक्र, छत्र, तलवार और दंड ए चार रत्न आयुधशालामें प्रगट हुए थे, काकिणी, चर्म, और चूलामणि ए तीन रत्न श्रीगृहमें उत्पन्न हुए थे । पुरोहित, शिलावट सेनापति और गृहपति ए चार रत्न हस्तिनापुरी नगरीमें ही उत्पन्न हुए थे और उनके पुण्यकर्मके उदयसे कन्या, हाथी घोड़ा ए तीन रत्न विजयार्द्ध पर्वतपर उत्पन्न हुए थे जो कि विद्याधरोंने लाकर भगवानको समर्पण कर

दिए थे। इसी प्रकार नौ निधियां नदी और समुद्रके संगमपर प्रगट हुई थीं जो कि भगवानके पुण्यकर्मके वशीभूत हुए गणवद्ध जातिके व्यंतर देवोंने भक्तिपूर्वक भगवानको लाकर अर्पण करदीं थीं ॥ २६-३३ ॥ यद्यपि भगवान मंद लोभी थे तथापि पुण्यकर्मकी प्रेरणासे वे देव, विद्याधर और राजाओंके साथ दिग्वि-जय करनेके लिए निकले ॥ ३४ ॥ भगवानने छहो खंड पृथ्वीका उपभोग करनेवाले राजा, सब विद्याधरोंके स्वामी और समुद्रमें निवास करनेवाले मगध आदि व्यंतर देव बिना किसी परिश्रमके लोला पूर्वक ही वश कर लिए और कन्यारत्न आदि उत्तम पदार्थ उनके दिये हुए सब स्वीकार किए॥३५-३६॥ भगवानने आठ सौ वर्षमें ही सब पृथ्वी पर परिभ्रमणकर छहों खंडमें रहनेवाले सब राजा देव और विद्याधर वश कर लिए ॥ ३७॥ तदनंतर छहों प्रकारकी सेनाके साथ वे चक्रवर्ती लौटे और बड़ी बिभूतिके साथ तथा देवादिकोंके साथ उन्होंने अपनी नगरीमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ तदनंतर विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंने तथा देवोंने बड़ी विभूतिके साथ सुवर्णके कलशोंसे भगवानका अभिषेक किया ॥ ३६ ॥ जब भगवानका अभि-षेक हो चुका और वे सिंहासनपर आ विराजमान हुए तब गणवद्ध देव मागध आदि व्यंतर देवोंके इन्द्र, हिमवान पर्वतके स्वामी विजयार्द्ध पर्वतके स्वामी, विजयार्द्ध पर्वतकी श्रेणियोंके स्वामी मुकुट वद्ध राजा और कल्पवासी देवोंने आकर भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर भगवानको नमस्कार किया ॥ ४०-४१ ॥ उससमय उनपर चमर ढुलाए जा रहे थे और भाई बन्धु, रानियां और छहों खंडोंके राजाओंके साथ विराजमान हुए वे भगवान बहुत ही सुखी हो रहे थे ॥ ४२ ॥ वे भगवान अपने पुण्यकर्मके उदयसे अपने भाई बन्धुओंके साथ, सब तरहकी बाधासे रहित उपमारहित, तृप्त करनेवाले मनोहर मध्यलोक तथा स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुए दश प्रकारके चक्रवर्तियोंके दिव्य भोग सदा भोगते रहते थे उनका प्रमाण भला कौन बुद्धिमान जान सक्ता है ॥ ४३-४४ ॥ भगवान शांतिनाथके राज्यमें न कोई कंटक (उपद्रवी) था, न आज्ञाका उल्लंघन कर-नेवाला था न कोई दीन था और न कोई अभागा था। संसारके सब राजा प्रजा आनन्दसे रहते थे ॥ ४५ ॥ भगवान शांतिनाथ चक्रवर्तीके पुण्यके फलको दिखलानेवाले, ऐरावत हाथीके समान ऊंचे और जिनसे मद

झर रहा है ऐसे चौरासी लाख हाथी थे ॥४६॥ सुवर्ण और रत्नोंके बने हुए चौरासी लाख रथ थे और वायुके समान तेज चलनेवाले अठारह करोड शुभ घोड़े थे ॥४७॥ तेज चलनेवाले पयादे भी चौरासी करोड थे और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनको नमस्कार करते थे ॥ ४८ ॥ उनके अन्तःपुरमें कुल जाति आदिसे परिपूर्ण बत्तीस हजार राजाओंकी कन्याएं विवाही हुई आई थीं और भक्तिपूर्वक म्लेच्छ राजाओंके द्वारा दी हुई राजपुत्रियां भी बत्तीस हजार थीं। इसीप्रकार विद्या विनयसे सुशोभित कोमल शरीर को धारण करने वालीं बत्तीस हजार ही विद्याधर राजाओंकी कन्याएं थीं ॥ ४६-५० ॥ गीत बाजोंसे भरपूर और अत्यन्त सुख देनेवाले बत्तीस हजार ही नाटक थे ॥ ५१ ॥ अच्छे स्थानोंसे सुशोभित बत्तीस हजार देश थे और कोटसे घिरे हुए बहत्तर हजारि नगर थे ॥ ५२ ॥ इसीतरह जिनमंदिरोंसे विभूषित और कुटुम्बी लोगोंसे भरे हुए छ्यानवे करोड़ गांव थे ॥ ५३ ॥ निन्यानवे हजार समुद्रको वेलासे घिरे हुए शुभ द्रोणमुख थे ॥ ५४ ॥ उन भगवान के अधिकारमें अच्छे रत्नोंके निकलनेके स्थान ऐसे अड़तालीस हजार पत्तन थे ॥ ५५ ॥ जिनमें धार्मिक लोग रहते हैं और जो नदी समुद्र दोनोंसे घिरे हैं ऐसे सोलह हजार खेट थे ॥ ५६ ॥ मनुष्योंसे भरे हुए और समुद्रके भीतर बसे हुए छप्पन अंतर्द्वीप थे ॥ ५७ ॥ धर्मात्मा लोगोंसे भरे हुए और पर्वतके ऊपर बसे हुए ऐसे चौदह हजार संवाहन थे ॥ ५८ ॥ भगवानके पुण्यकर्म के उदयसे वन पर्वत नदी और धान्य आदिसे भरे हुए अट्ठाईस हजार दुर्ग वा किले थे ॥ ५६ ॥ उनकी सेवा में अठारह हजार मलेच्छ राजा थे जो भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर उनके चरण कमलों को नमस्कार करते थे ॥ ६० ॥ एक करोड़ हंडे थे जो रसोईघरमें चांवल बनानेके काम आते थे ॥ ६१ ॥ एक लाख करोड़ हल थे जो सदा खेत जोतनेके काम आते थे ॥ ६२ ॥ उनके तीन करोड़ गाय थीं जिनके दूध चलानेका शब्द सुनकर रास्तागीर भी थोड़ी देरके लिए ठहर जाते थे ॥ ६३ ॥ विद्वानोंने सातसौ कुक्षवास बताये हैं जिनमें मलेच्छ देशके लोग आकर ठहरते थे ॥ ६४ ॥ काल, महाकाल, नैसर्प, पांडुक, पद्म, माणव, पिंग, शंख,और सब रत्न ये प्रसिद्ध नामकी नौ निधियां थीं जिनसे वे चक्रवर्ती घरकी चिन्तासे सर्वथा रहित थे ॥ ६५-६६ ॥ पुण्यके निधि उन चक्रवर्तीके काल नामकी

निधि थी उससे लौकिक शब्द प्रगट करनेवाली चीजें निकला करती थीं। यहनिधि विशेषकर वीणा वंशी मृदङ्ग आदि इन्द्रियोंके मनोज्ञ विषयों को विशेष रीति से दिया करती थीं ॥ ६७-६८ ॥ श्रोतोर्थ करके उप देशके अनुसार असि मसि आदि छह कर्मोंके योग्य सर्व साधना महा काल नामकी निधिसे उत्पन्न होते रहते हैं ॥ ६९ ॥ शय्या आसन मकान आदि नैसर्प निधिसे और धान्य तथा छहों रसोंकी उत्पत्ति पांडुक निधिसे उत्पन्न होती है ॥ ७० ॥ लक्ष्मी को प्रगट करनेवाले चक्रवर्तीके पुण्य कर्मके उदयसे रेशमी वस्त्र दुकूल आदि वस्त्रोंको पद्म निधि देती है ॥ ७१ ॥ चक्रवर्तीके लिए सबतरहके दिव्य आभरण पिंगल निधिसे प्रगट होते हैं और नीति शास्त्र माणव निधिसे मिलते हैं ॥ ७२ ॥ शास्त्रोंकी उत्पत्ति शंख निधिसे होती है और सुवर्ण आदि भी शंख निधिसे प्रगट होते हैं ॥ ७३ ॥ चक्रवर्ती और धर्म चक्रीके सर्वरत्न नामकी निधिसे महा नील तथा और भी बहुमूल्य रत्नोंके ढेर प्रगट होते हैं ॥ ७४ ॥ इन निधियोंकी देव रक्षा करते हैं चक्रवर्तीके भोगोप भोगों का वर्णन कौन करसकता है ॥ ७५ ॥ उन चक्रवर्ती के पहिले कहे हुए चौदह रत्न थे जो आश्चर्य कारक भोगोंको प्रगट करते थे और देव भी जिनकी रक्षा करते थे ॥ ७६ ॥ सोलह हजार गणबद्ध जातिके देव थे जो शस्त्र लेकर नौ निधि चौदह रत्न और चक्रवर्तीकी रक्षा करते थे ॥ ७७ ॥ घरको घेरे हुए चितिसार नामका मनोहर कोट था और मणियोंके तोरणोंसे शोभायमान सर्वतोभद्र नामका गोपुर था ॥ ७८ ॥ सेनाके लिये नंद्यावर्त नामका बहुत बड़ा शिविर था, और सब जगह सुख देनेवाला वैजयंत नामका राजमहल था ॥ ७९ ॥ दिक्स्वस्तिका नामकी सभा थी बहु मूल्य रत्नकुट्टिमा पृथ्वी थी मणियोंकी बनी हुई सुविधि नामकी चमचमाती हुई छड़ी थी ॥ ८० ॥ दिशाओंको देखनेके लिए गिरिकूटक नामका ऊंचा भवन था और वर्द्धमान नामका मनोहर प्रदर्शनीय भवन था ॥ ८१ ॥ उन भगवानके घर्मांतक [गर्मीको दूर करनेवाली] नामका धारागृह और वर्षामें रहनेके लिए गृहकूटक नामका वर्षाभवन था ॥ ८२ ॥ पुष्करावर्त नामका सफेद चूनासे पुता हुआ मनोहर शुभ भवन और सदा अक्षय रहनेवाला कुवेरकांत नामका भांडागार था ॥ ८३ ॥ जिसमें कोई चीज कभी न निवटे ऐसा वसुधारक नामका कोठार और जीमूत नामका बहुत मनोहर स्नान भवन था

॥ ८४ ॥ रत्नमाला नामकी चमकती हुई माला और देवरम्या नामका मनोहर कपड़ेका तंबू था ॥ ८५ ॥ भयानक सिंहोंके द्वारा धारणकी हुई सिंहवाहिनो नामकी शय्या और अनुत्तर नामका ऊंचा सिंहासन था ॥ ८६ ॥ इसी तरह उपमा नामके शुभ चमर और दैदीप्यमान रत्नोंसे बना हुआ सूर्य प्रेम नामका छत्र था ॥ ८७ ॥ जो युद्धमें शत्रुओंके बाणोंसे कभी न भिद सके और जिसकी कांति दैदीप्यमान है ऐसा अभेद नामका सुन्दर कवच था ॥ ८८ ॥ उनके अत्यन्त सुन्दरताको धारण करनेवाला अजितंजय नामका मनोहर रथ और सुर असुर सबको जीतनेवाला वज्रकांड नामका धनुष था ॥ ८९ ॥ कभी व्यर्थ न जानेवाले अमोघ नामके बाण और शत्रुओंको नाश करनेवाली वज्रतुण्डा नामकी प्रचंड शक्ति थी ॥ ९० ॥ सिंहारक नामका भाला सिंहानख रत्नदंड और मणियोंकी मूठ लगी हुई लोहवाहिनी छुरी थी ॥ ९१ ॥ जयश्रीके साथ प्रेम रखनेवाला और मनके समान शीघ्र चलनेवाला कणप और भूतमुखके चिन्हवाला भूतमुख नामका खेट था ॥ ९२ ॥ दैदीप्यमान कांतिवाली सौनंद नामकी तलवार थी और सब दिशाओंको सिद्ध करनेवाला सुदर्शन नामका चक्र था ॥ ९३ ॥ उन महाराजके चंडवेग नामका प्रचंड दंड और जिसमें जल कभी न आ सके ऐसा वज्रमय नामका दिव्य चर्मरत्न था ॥ ९४ ॥ सबसे उत्तम चूड़ामणि नामका मणिरत्न और अन्धकारको नाश करनेवाली चिंताजननी नामकी कांकिणी थी ॥ ९५ ॥ उन शांतिनाथ भगवानके अयोध्य नामका सेनापति था और अत्यन्त बुद्धिमान बुद्धिसागर नामका पुरोहित था ॥ ९६ ॥ कामवृद्धि नामका बुद्धिमान गृहपति था जोकि इच्छानुसार सामान देनेवाला था और जिसे महाराजने लेने देनेके काममें नियुक्त किया था ॥ ९७ ॥ भद्रमुख नामका स्थपति रत्न था जो वास्तुविद्यामें अत्यंत चतुर था और अनेक भवन बनानेमें निपुण था ॥ ९८ ॥ विजय पर्वत नामका बहुत बड़ा और सफेद पट्टहाथी था और पवनंजय नामका ऊंचा और शीघ्र चलनेवाला घोड़ा था ॥ ९९ ॥ उन महाराजके सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न था जिसकी उपमा संसार में कोई नहीं थी, जो अत्यन्त रसीला था, स्वभावसे मधुर था, मनोहर था और दिव्य रूपवान था ॥३००॥ उन भगवानके आनंदिनी नामकी बारह भेरी थीं जिनकी मीठी आवाज बारह योजनतक जाती

थी और समुद्रकी गर्जनाके समान जिनकी आवाज थी ॥ ३०१ ॥ विजयघोष नामके बारह पटहा थे और गंभीरवर्त नामके चौबीस शंख थे ॥ २ ॥ इसीतरह अड़तालीस करोड़ पताकाएं थीं औरमहा-कल्याणक नामका ऊंचा शुभ दिव्यासन था ॥ ३ ॥ विद्युत्प्रभ नामके सुन्दर मणिकुण्डल थे, जो कि सूर्य चन्द्रमाके समान थे और पुण्य कर्मके उदयसे भगवानको प्राप्त हुए थे ॥ ४ ॥ रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त ऐसी विषमोचिका नामकी पादुकायें थीं जो दूसरेके पैरका स्पर्श होते ही विष उगलती थीं ॥ ५ ॥ उन भगवानके वीरांगद नामके रत्नोंके बने हुए कड़े थे जो बिजलीके वलयके समान हाथोंमें शोभायमान थे ॥ ६ ॥ अमृतगर्भ नामका उनका भोजन था जो स्वादिष्ट सुगंधित और अत्यन्त रसीला था और जिसे चक्रवर्तीके सिवाय अन्य कोई नहीं पचा सकता था ॥ ७ ॥ अमृतकल्प नामका हृदयको प्रसन्न करनेवाला संस्कृत स्वाद्य था और अमृत नामका रसायनके समान रसीला दिव्य पानक था ॥ ८ ॥ रत्न, निधि, रानियां, पुर, शय्या आसन, सेना, नाट्य, भाजन भोज्य और वाहन ये दश प्रकारके भोगोप-भोग कहलाते हैं इनको भोगते हुए और सुखसागरमें मग्न रहते हुए भगवानको व्यतीत होनेवाला समय मालूम भी नहीं हुआ था ॥ ६-१० ॥ वे भगवान शांतिनाथ कभी तो तीर्थंकर नामकर्मके शुभ उदयसे इन्द्रादिके द्वारा संपादन किए हुये सुखरूपी अमृतको भोगते थे और कभी चारित्र पालन कर सुखी होते थे ॥ ११ ॥ कभी अपने पुण्यकर्मके उदयसे स्त्रीरत्न, निधि आदि वस्तुओंके साथ अनेक प्रकारका सुख भोगते थे ॥ १२ ॥ तथा कभी कामदेव पदसे उत्पन्न हुये अपने दिव्य निरामय (रोगरहित) रूपको देख-कर मनमें संतुष्ट होते थे ॥ १३ ॥ इसप्रकार सुखरूपी समुद्रमें डूबे हुये वे भगवान पुण्यरूपी कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुये सुखका अनुभव करते थे और इस तरह व्यतीत हुआ समय भी उन्हें मालूम नहीं होता था ॥ १४ तीर्थंकर चक्रवर्ती और कामदेव इन तीनों पदोंसे सुशोभित उन भगवानको जो सुख था उसका प्रमाण केवल ज्ञानीके बिना और कोई भी चतुर नहीं जान सकता ॥ १५ ॥ इसप्रकार देवोंके द्वारा पूज्य वे भगवान शांतिनाथ अपने पुण्यकर्मके उदयसे रत्न निधि आदिसे प्रकट हुए, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव-

पदसे उत्पन्न हुए, उपमारहित, अपार और क्षणक्षणमें उत्पन्न होनेवाले उत्तम सुखोंका अनुभव करते थे ॥ १६ ॥ इस संसारमें विना धर्मके न तो तीर्थंकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है, न चक्रवर्तीकी पूर्ण संपत्ति प्राप्त होती है न तीनों लोकोंका प्रभुत्व प्राप्त होता है और न अत्यन्त सुख प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ धर्मके बिना न तो निधि रत्न आदि प्राप्त होते हैं न तीनों लोकोंमें फैलनेवाला यश प्राप्त होता है, न इन्द्र नरेंद्रों-द्वारा मान्यता प्राप्त होती है और न लोकोत्तर सुख प्राप्त होते है ॥ १८ ॥ धर्मके विना न तो धर्मसाधनमें बुद्धि लगती है न समस्त शास्त्रोंकी जानकारी प्राप्त होती है, धर्मके विना न तो जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है और न धर्मके बिना इष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है ॥ १९ ॥ यही समझकर बुद्धिमान लोगोंको परलोककी सिद्धिके लिये मन बचन कायकी शुद्धतापूर्वक बड़े प्रयत्नसे व्रत, दान पूजा, दीक्षा, तप, जप, यम आदि पालनकर भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुये धर्मका पालन करना चाहिये ॥ २० ॥ तीनों लोक जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं जो पापरहित हैं और पुण्यके स्थान हैं ऐसे वे भगवान शांतिनाथ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानको फैलाते थे, पापोंका नाश करनेवाला धर्मध्यान धारण करते थे, मोक्ष प्राप्त करने के लिये पर्वके दिनोंमें सदा प्रोषधोपवास धारण करते थे सदा न्याय और विवेकसे काम लेते थे तथा श्रावक धर्मके योग्य उत्तम व्रत पालन करते थे ॥ २१ ॥ स्तुति और बंदना किये हुए वे पूज्य श्रीशांतिनाथ भगवान संसारकी अशांतिको दूर करें, धर्मात्मा लोगोंके तथा मेरे अशुभ कर्मोंका नाश करें और धर्मध्यान पापोंसे रहित पूर्ण शुक्लध्यान, रत्नत्रय समाधि और समाधिमरण प्रदान करें ॥ २२ ॥

इस प्रकार शांतिनाथ पुराणमे जन्माभिषेक और राजलक्ष्मीको वर्णन करनेवाला चौदहवां अधिकार समाप्त ॥ १४ ॥

अथ पन्द्रहवां अधिकार ।

अपने समस्त पाप शांत करनेके लिये अनंत महिमाओंसे बिराजमान और समस्त सोभाग्यके समुद्र वान शांतिनाथको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अथानन्तर—इसप्रकार राज्य करते हुये भगवानको

पच्चीस हजार वर्ष व्यतीत हो गये तब किसी एक दिन वे अपने अलंकृत भवनमें बिराजमान थे। वहांपर
उन्होंने किसी दर्पणमें अपनी दो छाया देखीं। उन्हें देखकर वे आश्चर्यके साथ विचार करने लगे कि यह
इसके भीतर क्या है॥ २३॥ उन्होंने अपने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह सब अपनेही शरीरसे उत्पन्न
हुआ है और अपने पहिले जन्मकी दो पर्याएं हैं। वे उसको अनेक प्रकारसे विचार करने लगे॥ ४॥ वे
भगवान चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयोपशमसे और काललब्धिसे उसी समय वैराग्यको प्राप्त हुये॥ ५॥ वे
विचार करने लगे कि जिस प्रकार यह छाया चंचल है उसी प्रकार यह शरीर, राज्य, पद, संपत्ति आयु स्त्री
आदि सब चंचल हैं॥ ६॥ तदनन्तर वे भगवान मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अपने मनमें वैराग्य उत्पन्न कर-
नेकेलिये माताके समान बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे॥ ७॥ अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व
अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म ये बारह अनुप्रेक्षायें कहलाती हैं।
इनको वे भगवान अलग २ चिंतवन करने लगे॥ ८-९॥ वे विचार करने लगे कि देखो यह मनुष्योंका
शरीर विजलीके समान चंचल है, मृत्युके द्वारा यह अवश्य नष्ट होनेवाला है बुढ़ापारूपी राक्षसीसे घिरा
हुआ है और विष अग्नि सर्प शत्रु आदिसे नष्ट होनेवाला है॥ १०॥ पुत्र, मित्र, स्त्री, भाईबन्धु, सेवक,
माता पिता, आदि सब अनित्य हैं क्षणभरमें जलके बुद्बुदाके समान नष्ट हो जाते हैं॥ ११॥ यह राज्य
पापके समान हैं, पापकी खानि है, छायाके समान चंचल है, अनेक शत्रुओंसे घिरा हुआ है, और शत्रुओंके
द्वारा अनेक प्रकारकी शत्रुता उत्पन्न करनेवाला है॥ १२॥ यह लक्ष्मी वेश्याके समान चंचल है, इसके
लिये चोर, शत्रु, राजा आदिसे भी प्रार्थना करनी पड़ती है, सब लोग इसका उपभोग करते हैं, बड़ी कठि-
नतासे प्राप्त होती है और दुख देनेवाली है॥ १३॥ घर बाहन, गृहस्थीके सब पदार्थ, राज्य अलंकार और
चक्रवर्तीकी पदवी आदि सब कालरूपी अग्निसे भस्म हो जाते हैं॥ १४॥ पूर्ण पुण्यको प्राप्त हुये इंद्रादिक
देव भी अपने समयानुसार स्वर्गसे पड़ते हैं फिर भला पुण्यहीन मनुष्योंकी तो बात ही क्या है॥१५॥ जिस-
प्रकार घटीयंत्रके द्वारा कूएसे पानी निकाला जाता है उसी प्रकार घड़ी दिन आदिके द्वारा प्राणियोंकी दुर्लभ

आयु सदा निकलती रहती है ॥ १६ ॥ इन सब बातोंको समझता हुआ ऐसा कौन बुद्धिमान है जो मोक्ष-मार्गरूपी सुख सागरको छोड़कर स्त्री कुटुँब आदि अनित्य पदार्थोंमें अपनी बुद्धिको निश्चल समझे ॥ १७ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको काम भोगोंसे विरक्त होकर तप चारित्र आदिके द्वारा अनित्य शरीरसे नित्य मोक्ष सिद्ध कर लेना चाहिये ॥ १८ ॥ इस समस्त संसारको अनित्य समझकर और मोक्षको उत्तम तथा नित्य समझकर बुद्धिमानोंको शीघ्र ही अनंत गुणोंका सागर ऐसा मोक्षपद सिद्ध कर लेना चाहिये ॥१६॥ संसारमें धन सब पैर धूलके समान है और अनेक पापोंका कारण है, यह शरीर यमराजके समान है विषयोंसे उत्पन्न हुआ सुख दुख पूर्वक होता है, जीवन बादलोंके समान चंचल है पुत्र स्त्री आदि सब कुटुंबी लोग इंद्रजालके समान हैं। इसप्रकार समस्त पदार्थोंको अनित्य वा चंचल समझकर बुद्धिमानोंको शीघ्र ही मोक्षके लिए प्रयत्न करना चाहिये ॥ २० ॥ इति अनित्यानुप्रेक्षा।

जिसप्रकार बनमें बाघके द्वारा पकड़े हुए हिरणको कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार इस संसारमें रोग मृत्यु आदिके द्वारा पकड़े हुए मनुष्योंको ही कोई शरण नहीं है ॥ २१ ॥ जिसप्रकार किसी जहाजसे छूटे हुए पक्षीको उस समुद्रमें उसे कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार संसाररूपी समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंको भी कोई नहीं बचा सकता ॥ २२ ॥ यमराजके द्वारा ले जाते हुए इस प्राणीको समस्त देव मनुष्य मंत्र तंत्र और उत्तम औषधियें आदि कोई नहीं बचा सकतीं ॥ २३ ॥ जो मूर्ख औषधि चंडिका मंत्र आदिको शरण मान लेते हैं वे भी शीघ्र मर जाते हैं क्योंकि वे देव आदि उन्हें कभी नहीं बचा सकते ॥ २४ ॥ यदि इंद्रादिक देव ही मनुष्योंके शरण हो जांय तो फिर वे अपनी आयु पूरी हो जानेपर अनेक पदसे पृथ्वीपर क्यों आ पड़ते हैं॥ २५ ॥ इसलिये मनुष्योंको श्रीजिनेंद्र देवका कहा हुआ अहिंसाधर्म ही शरण है वही पापोंको नाश करनेवाला है और इसलोक तथा परलोकमें साथ जानेवाला है इसलिए उसीका पालन करना चाहिये ॥ २६ ॥ इसके सिवाय मुनिराजने अरहंत आदि पंच परमेष्ठी शरण बतलाए हैं क्योंकि इस संसार समुद्रमें भव्य जीवोंको वे ही पार करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ अथवा इस असार संसारमें अनंत गुणोंका समुद्र, सदा

निश्चल रहनेवाला, और अनंत सुख देनेवाला मोक्षपद ही मनुष्योंको शरण है ॥ २८ ॥ इसप्रकार इस समस्त संसारको अशरण और सुखसे अत्यंत दूर समझकर बुद्धिमानोंको तप और रत्नत्रय आदिके द्वारा सदा निश्चल रहनेवाला मोक्ष सिद्धकर लेना चाहिये ॥ २९ ॥ जिस समय यमराज सामने आता है (आयु पूर्ण होती है) उस समय तीनों लोकोंमें इंद्र चक्रवर्ती मंत्र तंत्र औषधि आदि कोई भी इस जीवको रोग क्लेश विषाद दुःखभय मृत्यु आदिसे नहीं बचा सकता, सब व्यर्थ जाते हैं यही समझकर सब उत्तम बुद्धिमानोंको धर्म और मोक्षको ही शरण मानना चाहिये । इन्हींका सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ इति अशरणानुप्रेक्षा ।

दुःखरूपी सिंह बाघ आदिसे भरे हुए इस पांच प्रकारके अनादि संसाररूपी बनमें दुःखसे पीड़ित हुए ये प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार परिभ्रमण किया करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्यास आदिसे दुखी हुए जीवोंने कर्म और आहार पर्याप्ति आदि द्वारा अनंत पुद्गलराशि ग्रहण कर ली है ॥ ३२ ॥ इस लोकाकाशमें ऐसा कोई प्रदेश बाकी नहीं है जहांपर इस जीवने अपने पाप कर्मके उदयसे अनंत बार न जन्म लिया हो न मरण किया हो ॥ ३३ ॥ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका कोई ऐसा समय बाकी नहीं है जहांपर कर्मोंके वशीभूत हुए ए जीव न मरे हों अथवा न जन्मे हों ॥ ३४ ॥ नरकगति तिर्यंचगति मनुष्य गति और स्वर्गमें ग्रैवे-यक तक कोई ऐसी योनि बाकी नहीं है जहांपर इस जीवने अनेक बार न जन्म लिया हो, न मरण किया हो ॥ ३५ ॥ यह जीव मिथ्यात्व अव्रत कषाय आदि भावोंसे प्रतिदिन संसारके कारण और अत्यंत दुःख देने-वाले कर्मोंका बंधे करता रहता है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार कर्मोंसे बंध हुए कुमार्गगामी प्राणी धर्मरूपी जहाजके न मिलनेसे इस अनादि संसाररूपी समुद्रमें गोता खाते रहते हैं ॥ ३७ ॥ यह अत्यंत कामी मूर्ख संसारमें दुखको ही सुख मानलेते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष कामको जलन आदिसे उत्पन्न हुए सब सुखोंको भी दुखरूप ही समझते हैं ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार विषसे भरे हुए घड़ेमें कभी अमृत नहीं हो सकता उसीप्रकार सेकड़ों दुखोंसे भरे हुए इस निर्गुण संसारमें कभी सुख नहीं मिल सकता ॥ ३९ ॥ इसप्रकार इस संसारको दुःख-

मय समझकर बुद्धिमानोंको चारित्र आदिके द्वारा अनंत सुखका सागर ऐसा मोक्ष सिद्ध कर लेना चाहिये ॥ ४० ॥ इकट्ठे किए हुए पापकर्म रूपी सांकलसे बंधे हुए प्राणी संसाररूपी शत्रुको नाश करनेवाले सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके न मिलनेसे पाप दुख भय देनेवाले निःसार असह्य संसारमें सदा परिभ्रमण किया करते हैं यही समझकर संवेग आदि गुणोंसे सुशोभित होनेवाले पुरुषोंको प्रयत्न और शीघ्रतापूर्वक रत्नत्रय धारण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ इति संसारानुप्रेक्षा ।

यह जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेलाही मरता है, अकेला ही सुख भोगता है अकेला ही दुखी होता है, अकेला ही रोग सहन करता है, अकेला ही नीरोग रहता है और अकेला ही चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है ॥ ४२ ॥ विषयोंमें अन्धा हुआ यह अकेला ही जीव हिंसा आदिके द्वारा ऐसा पाप कर्म उपार्जन करता है जिससे नरकमें जाकर जो बचनसे कहा भी न जा सके ऐसा महा दुख भोगता है ॥ ४३ ॥ यह अकेला ही मूर्ख छल कपट कर ऐसा पाप करता है जिससे तिर्यंच गतिमें जाकर छेदन भेदन आदिके दुःखसहन करता हुआ स्थावर योनिमें परिभ्रमण करता है ॥ ४४ ॥ अकेला ही अल्पारंभादिक द्वारा मनुष्य भव पाता है और अनेक जातियोंमें पाप पुण्यसे उत्पन्न हुए सुख दुख भोगता रहता है ॥४५॥ तथा अकेला ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सद्धर्म, दान पूजा आदिके द्वारा धर्म उपार्जनकर स्वर्गमें सदा सुख भोगता रहता है ॥ ४६ ॥ अकेला ही तप चारित्रके द्वारा आठों कर्मोंको नाशकर जन्म मरण आदिसे रहित और अनन्त सुखका स्थान ऐसा मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ४७ ॥ जो कुटुम्बके लिए इन्द्रिय और धनादिकके द्वारा पाप कमाता है वह अकेला ही दुर्गतियोंमें जाकर उस पापका फल भोगता है। उस दुखको भोगनेके लिये और कोई नहीं आता ॥ ४८ ॥ अन्न पान आदिसे पालन पोषण किया हुआ यह शरीर भी परलोकमें जीवके साथ नहीं जाता फिर भला शत्रुके समान कुटुम्बी लोग कैसे जा सकते हैं ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख मोहकर्मके उदयसे धन कुटुंबियोंके लिये 'यह मेरा है' करते रहते हैं वे भी उनको छोडकर अकेले ही परिभ्रमण किया करते हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार आत्माको अकेला ही समझकर बुद्धिमान लोग मरण आदिमें

अनंत गुणोंका कारण ऐसा निर्ममत्व ही धारण करते हैं॥ ५१ ॥ यह जीव अकेला ही चारित्रतप दान पूजन आदिके द्वारा प्रतिदिन धर्मसेवनकर और देवोंकी बिभूति पाकर सुख भोगता है तथा अकेला ही प्रतिदिन हिंसा आदिके द्वारा पाप उपार्जनकर नरक तिर्यंच गतिमें अनेक प्रकारके दुख भोगता है और अकेला ही महाव्रतादिकोंके द्वारा कर्म नष्टकर उपमारहित मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ५२ ॥ इति एकत्वानुप्रेक्षा।

इस संसारमें माता भी अन्य है पिता भी अन्य है पुत्र बांधव आदि भी अन्य हैं और स्त्री पुत्री आदि सब पृथक् पृथक उत्पन्न होती हैं ॥ ५३ ॥ जहांपर आत्माके प्रदेशोंमें मिला हुआ और आत्माके साथ उत्पन्न हुआ यह शरीर ही आत्मासे भिन्न निश्चित है फिर भला कुटुम्बी लोग आत्माके कैसे हो सकते हैं ॥५४॥ लक्ष्मी, घर, भाई, सेवक आदि सब कर्मोंसे उत्पन्न होते हैं इसलिए सब भिन्न हैं पाप और ममत्वको उत्पन्न करनेवाले हैं और कर्मोंके कारण हैं ॥ ५५॥ अनेक दुखोंसे दुखी हुआ यह जीव कर्मों के उदयसे पहिले शरीरको छोड़ता रहता है और नए शरीरको ग्रहण करता रहता है इसप्रकार संसारमें अनेक प्रकारके शरीर धारण करता रहता है ॥ ५६॥ शरीर धन घर आदि जो कुछ कर्मोंके उदयसे प्राप्त होता है वह सब आत्मासे भिन्न है और सब विनश्वर में ॥ ५७॥ मूर्ख लोग शरीरादि पदार्थोंको आत्मासे भिन्न क्यों नहीं जानते हैं क्योंकि जन्म मरणके समय वे तो इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥ ५८ ॥ यह आत्मा कर्मोंसे सर्वथा भिन्न है ,फिर भला वह शरीर घर धन आदि से मिलकर एक कैसे हो सकता है ॥ ५९ ॥ यह आत्मा एक है, नित्य है, ज्ञानमय है, गुणी है और सबसे भिन्न है योगी लोग सदा इसीप्रकार ध्यान करते रहते हैं ॥ ६० ॥ जो जीव अपने आत्माको प्रतिदिन शरीरादिकसे भिन्न मानते हैं वे ही समस्त कर्मों से रहित परमात्मपदको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६१ ॥ इसप्रकार ज्ञानी पुरुष आत्माको सबसे भिन्न समझकर सबसे भिन्न और मोक्षके कारण ऐसे अपने अकेले आत्माका ही सेवन करते हैं ॥ ६२ ॥ यह शरीर और घर सब आत्मासे भिन्न है तथा कुटुम्ब धन आदि भी भिन्न है और कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए संसार के जितने पदार्थ हैं वे भी सब आत्मासे भिन्न हैं यही समझकर बुद्धिमानोंको अपने आत्माको तथा मोक्षको प्राप्त करनेके

लिए अपने ही आत्मामें अपने ही आत्माके द्वारा सदा अपने ही आत्माका ध्यान करते रहना चाहिए ॥ ६३ ॥ इति अन्यत्वानुप्रेक्षा। यह शरीर शुक्र शोणितसे बना है, सप्तधातुमय है, अपवित्र है, विष्ठा आदिसे भरपूर है, निंद्य है, राग रूपी सर्पोंके बिलके समान है, दुर्गंधमय है अत्यन्त घृणित है, सैकड़ों कीड़ोंसे भरा हुआ है अनित्य है ऐसे शरीरमें ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो धर्मको छोड़कर प्रेम करे ॥ ६५ ॥ इसशरीरके मुख आदि मनोहर स्थनोंमें भी जो पदार्थ रख दिया जाता है वही स्थान अपने स्वभावके अनुसार मनुष्योंको घृणा उत्पन्न कर देता है ॥ ६६ ॥ जिसप्रकार चांडाल के घर में हड्डी चमड़ा आदिको छोड़कर और कोई सुन्दर पदार्थ नहीं मिल सकता उसीप्रकार इस घृणित शरीरमें भी कोई पदार्थ सुन्दर नहीं मिल सकता ॥ ६७ ॥ यद्यपि ये प्राणी इस शरीरका पालन पोषण करते हैं तथापि यह उनको इसी जन्ममें अनेक रोगोंसे दुखी करता है और पर लोकमें नरकादि दुर्गति देता है इससे बढ़कर भला और कौनसा आश्चर्य हो सकता है ॥ ६८ ॥ यदि तपश्चरण के द्वारा इस शरीरको कृश किया जाय तो यह इस जन्ममें शुभ ध्यान आदि आत्मासे उत्पन्न हुए सुखोंको देता है और परलोकमें स्वर्ग मोक्षादिके सुख देता है। इससंसार में इस से बढ़कर और क्या आश्चर्य हो सकता है ? ॥ ६९ ॥ यह शरीर नरकके समान असार है, दुर्गंधमय है, नव द्वारोंसे सदा झरता रहता है, पापोंका कारण है और दुखोंका पात्र है। यह विजलीके समान अनित्य है, और मानों यमके मुखमें हो ठहरा हुआ है। यही समझकर बुद्धिमानोंको धर्मकार्य करनेमें कोई किसी प्रकारका प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ७०-७१ ॥ जिन उत्तम बुद्धिमानोंने अपने आत्माकी सिद्धिके लिए तप यम आदि कष्टोंके द्वारा इस शरीरको कृश किया है उन्हींका शरीर पाना सफल हुआ है ॥ ७२ ॥ इसप्रकार शरीरको अपवित्र समझ कर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिए बुद्धिमानोंको सदा तप, चरित्र, धर्म आदि पवित्र कार्य करते रहना चाहिये ॥ ७३ ॥ यह शरीर शुक्र शोणितसे बना है, घृणा उत्पन्न करनेवाला है, रोगरूपी सर्पोंका घर है, भूख, प्यास, काम, कषायरूपी अग्निसे संतप्त है, समस्त अशुद्ध पदार्थोंका मुख है और अन्न वस्त्र आदि समस्त पवित्र पदार्थोंको भी बहुत शीघ्र अपवित्र बना देता है इस शरीरका ऐसा स्वभाव चिंत-

बनकर बुद्धिमानोंको घोर तपश्चरणके द्वारा इसे सफल करना चाहिये ॥ ७४ ॥ इति अशुचि अनुप्रेक्षा ॥६॥

जिसप्रकार छेदवाली नाव पानी भर जानेके कारण समुद्रमें डूब जाती है उसीप्रकार यह प्राणी कर्मोंके आस्रव होनेके कारण इस दुस्तर संसार समुद्रमें डूब जाता है ॥ ७५ ॥ जिसप्रकार जहाजसे छूटा हुआ मनुष्य समुद्रमें असह्य दुख भोगता है उसीप्रकार धर्मसे छूटा हुआ यह मूर्ख इस भयानक संसाररूपी समुद्रमें अनेक कष्ट भोगता है ॥ ७६ ॥ मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद ये सब कर्म आनेके कारण हैं ये ही मनुष्योंको संसाररूपी समुद्रमें डुबानेवाले हैं ॥ ७७ ॥ जबतक मनुष्योंके चारों गतियोंमें परिभ्रमण करनेवाले और अनेक दुख देनेवाले अशुभ कर्मोंका आस्रव होता रहता है तबतक उन्हें नित्य मोक्ष सुख कभी नहीं मिल सकता ॥ ७८ ॥ जिसप्रकार अपराधी पुरुष गलेमें सांकल डालकर कारागारमें पहुंचाया जाता है उसी प्रकार कर्मोंके द्वारा यह जीव चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है ॥७९॥ जिसप्रकार ऋणी (कर्जदार) मनुष्य परवश होकर रातदिन महा दुख भोगता रहता है उसीप्रकार कर्मोंके आधीन हुआ यह जीव नरकादि दुर्गतियोंमें घोर दुख सहन किया करता है ॥ ८० ॥ जिस महापुरुषने सम्यग्दर्शन सम्यक् चारित्र, संयम, कषायनिग्रह और ध्यान आदिके द्वारा कर्मोंका आस्रव रोक लिया है उसीका मनोरथ पूर्ण हुआ है ॥ ८१ ॥ जो पुरुष यम, तप चारित्र आदिके द्वारा कर्मोंके आस्रवको रोक नहीं सकते उनका शरीर धारण करना सब व्यर्थ है ॥ ८२ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको शुभ ध्यानसे पापास्रवको रोकना चाहिये और मोक्ष प्राप्त करनेके लिए आत्मध्यानसे दोनों प्रकारका कर्मास्रव रोकना चाहिए ॥ ८३ ॥ यही समझकर बुद्धिमान लोग मुक्तिरूपी स्त्रीको प्राप्त करनेके लिए अपने मनको निग्रहकर तथा चारित्र आदि धारणकर सदा कर्मोंके आस्रवको रोकते रहते हैं ॥ ८४ ॥ इन्द्रिय और मनसे होनेवाला आस्रव संसाररूपी समुद्रमें डुबानेवाला है, मोक्षसे दूर रखनेवाला है, समस्त दुखोंका निधि है, नरकका स्थान है, कुमार्गमें रुलानेवाला है और पाप उत्पन्न करनेवाला है यही समझकर गुणी पुरुष तप, व्रत, ध्यान आदिके द्वारा समस्त आस्रवको रोककर और कर्मोंको नाशकर सदा रहनेवाली मोक्षरमणीको प्राप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ इति आस्रवानुपेक्षा ॥ ७ ॥

जिसप्रकार बिना छिद्रका जहाज समुद्रके पार पहुंच जाता है उसीप्रकार धीर वीर पुरुष संवरके द्वारा कर्मों का नाशकर संसारके पार हो जाते हैं ॥ ८६ ॥ चतुर पुरुष समिति, व्रत, गुप्ति, परीषहजय, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, अध्ययन, संयम आदिके द्वारा संवर धारण करते हैं ॥ ८७ ॥ संवरके साथ यदि थोड़ा भी तप, चारित्र, संयम आदि किया जाय तो वह भी सब प्रकारके कल्याण देनेवाला और मोक्षरूपी वृक्षका बीज हो जाता हैं ॥ ८८ ॥ यह संवर जीवका परम मित्र है, संवर ही परम तप है, संवर ही स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेवाला है, संवर ही धर्मका कारण है और संवर ही अनन्त सुख देनेवाला है ॥ ८९ ॥ जिसने कर्मों का आस्रव रोक-कर संवर धारण किया है वही संसारके पार होता है और वही अपने हाथमें मोक्षको ले सक्ता है फिर भला और सुखोंकी तो बात ही क्या है ॥ ९० ॥ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले योगी पुरुष संवर धारण करनेके लिये सम्यग्दर्शनसे मिथ्यात्वको नाश करते हैं, व्रतोंसे अविरतिको, यत्नपूर्वक धर्म धारणकर प्रमादोंको, क्षमासे क्रोधरूपी शत्रु को, मार्दवसे मानको, आर्जवसे मायाको, संतापसे लोभको, कायोत्सर्गसे शरीरके ममत्वको, मौनसे वचनयोगको और ध्यान तथा शास्त्रज्ञानके अभ्याससे मनोयोगको नष्ट करते हैं इसप्रकार आस्रवके सब कारणोंको नष्ट कर डालते हैं ॥ ९१-९२ ॥ जो जीव चारों गतियोंके कारणरूप कर्मों को रोककर संवर धारण करता है वही मोक्ष प्राप्त कर सकता है बिना संवरके मोक्षके लिए परिश्रम करना सब व्यर्थ है ॥९३॥ यही समझकर मोक्षकी इच्छा करनेवाले मुनियोंको सब इन्द्रियोंको तथा योगोंको निग्रहकर और तपश्च-रण धारणकर सदा संवर धारण करना चाहिए ॥ ९४ ॥ यह संवर सर्वधर्मका निर्मल समुद्र है सुखका निधि है, मुक्तिरूपी स्त्रीका भाई है, नरकरूपी घरका किवाड़ है, तीर्थंकर भी सदा इसकी सेवा करते हैं, यह अनंत गुणोंकी खानि है और निर्मल है इसलिए बुद्धिमानोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अनेक प्रकारके संयम आदिके द्वारा सदा सब कर्मों को रोककर संवर धारण करना चाहिये ॥ ९६ ॥ इति संवरानुप्रेक्षा ॥ ८ ॥

सविपाक और अविपाकके भेदसे निर्जरा दो प्रकारकी होती है, जो कर्म अपना फल देकर जो खिर जाते हैं वह सविपाक निर्जरा है यह संसारमें सब जीवोंके होती है ॥ ९७ ॥ तथा तपश्चरण, संयम, ध्यान, परीष-

हजय और श्रुतज्ञानसे बिना फल दिए हुए कर्म नष्ट हो जाते हैं वह अविपाक निर्जरा है। अविपाक निर्जरा पापकर्मों का संवर करनेवाले मुनियोंके ही होती है ॥ ९८ ॥ जिसप्रकार अजीर्ण रोगवाला प्राणी मलके निकल जानेसे सुखी हो जाता है उसीप्रकार तप चारित्ररूपी औषधिके द्वारा कर्मरूपी मलके निकल जानेसे (नष्ट-हो जानेसे) ही यह जीव सुखी होता है ॥ ९९ ॥ सविपाक निर्जरासे अन्य कर्मों का आस्रव होता रहता है इसलिए वह त्याग करने योग्य है और अविपाक निर्जरा स्वर्ग मोक्ष देनेवाली है इसलिये वही सज्जनोंको ग्रहण करने योग्य है ॥ १०० ॥ जिसप्रकार अधिक गर्मी देनेसे कच्चे आम भी पक जाते हैं उसीप्रकार बुद्धि-मान लोग तपश्चरणरूपी गर्मीसे असंख्यात कर्मों को पकाकर नष्ट कर डालते हैं॥ १ ॥ जो पुरुष इस संसा-रमें पहिले उपार्जन किए हुए कर्मों की निर्जरा करते हैं उनके साथ मुक्ति स्त्री भी हो लेती है फिर भला देवां-गनाओंकी तो बात ही क्या है ॥ २ ॥ यह कर्मों की निर्जरा मुक्तिरूपी कन्याकी माता है, नरकरूपी घरकी अगला (बेंड़ा) है, स्वर्गके लिए सीढ़ियोंकी पंक्ति है और सुखकी खानि है ॥ ३ ॥ मुनि लोग पहिले तो पापरूप अशुभ कर्मोंका संवरकर उनकी निर्जना करते हैं, और फिर अशुभ कर्मोंका संवरकर उनकी निर्जरा करते हैं ॥ ४ ॥ अपने आत्माका हित चाहनेवाले प्राणियोंके लिए यह निर्जरा परम माता है, यह सब दुखों को दूर करनेवाली है, सारभूत है और अनंत सुख उत्पन्न करनेके लिए पृथ्वीके समान हैं ॥ ५ ॥ यही सम-झकर उत्तम बुद्धिमानोंको मन तथा इंद्रियोंका निरोधकर और तप चारित्र संयमादि धारणकर प्रतिदिन कर्मोंको निर्जरा करनी चाहिये ॥ ६ ॥ यह कर्मोंकी (अविपाक) निर्जरा संसाररूपी समुद्रसे पार कर देने-वाली है, मुक्तिरूपी स्त्रीकी सखी है, नरकके दरवाजेकी मजबूत अर्गला है, स्वर्गके लिये निर्मल सीढ़ियोंकी पंक्ति है, अनंत सुखोंकी खानि है और श्रीतीर्थंकर भी इसकी सेवा करते हैं इसलिये बुद्धिमानोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कायक्लेश, तप जप आदि गुणोंके द्वारा यह कर्मों की निर्जरा सदा करते रहना चाहिये ॥ १७ ॥ इति निर्जरानुप्रेक्षा ॥ ९ ॥

यह लोक अकृत्रिम है, नित्य है, ऊर्ध्व मध्य अधोलोकके भेदसे तीन प्रकारका है, वह ज्ञान गोचर है,

डेड मृदंगके आकारका है, और चारों कोनों तक जीवोंसे भरा हुआ है ॥ ८ ॥ उत्पाद ध्रौव्य सहित और अपने २ गुणोंसे भरपूर ऐसे धर्म अधर्म आकाश काल और जीवराशिसे वह लोक भरा हुआ है ॥ ९ ॥ उस के अधोभागके सात नरकोंमें चौरासी लाख बिल हैं जो समस्त दुखोंके निधान हैं ॥ १० ॥ उनमें पापी नारकी अन्य नारकियोंके द्वारा दिये हुए परस्परके छेदन भेदन आदि अनेक प्रकारके घोर दुखोंके द्वारा सदा दुख भोगते रहते हैं ॥ ११ ॥ वे नरक समस्त दुखोंके समुद्र हैं उनमें यह जीव पहिले उपार्जन किए हुए पापकर्मके उदयसे जो वचनोंसे भी न कहे जा सकें ऐसे दुख भोगता रहता है वहांपर जीवोंको लेशमात्र भी सुख नहीं मिलता ॥ १२ ॥ केवल ढाई द्वीप ही ऐसा है जिसमें कुछ जीव पुण्योपार्जन करते हैं कुछ चारित्र धारणकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और कुछ हिंसाकर पाप कमाते हैं ॥ १३ ॥ ज्योतिष्क और व्यंतर देवोंसे भरे हुए असंख्यात द्वीपोंमें ये जीव पुण्य पापके वश होकर सदा परिभ्रमण किया करते हैं ॥ १४ ॥ पूर्वोपार्जित शुभ कर्मोंके उदयसे कुछ धर्मात्मा जीव सोलह स्वर्गोंमें और नव ग्रैवेयक आदि कल्पातीत विमानोंमें अनेक प्रकारके सुख भोगते रहते हैं ॥ १५ ॥ उसके आगे सदा एकसा रहनेवाला नित्य स्थान है जहांपर अनेक सुखमें लीन हुये और तीनों लोकोंके द्वारा वंदनीय ऐसे सिद्धात्मा निवास करते हैं उनको मैं भी नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ इसप्रकार लोकका विचित्र स्वरूप जानकर विद्वान लोग रागादिकको छोड़कर मोक्ष प्राप्त करनेका उपाय करते हैं ॥ १७ ॥ यह अनेक प्रकारका समस्त लोक द्रव्योंसे भरपूर है, उत्पाद ध्रौव्य स्वरूप है, सर्वज्ञके ज्ञानके गोचर है, सुख दुखसे भरा हुआ है, अनादि है और सदा रहनेवाला अविनाशी है लोकका ऐसा स्वरूप जानकर बुद्धिमान लोग रत्नत्रयके द्वारा सिद्ध होकर उसके ऊपर जा विराजमान होते हैं ॥ १८ ॥ इति लोकानुप्रेक्षा ॥ १० ॥

जन्म मरणसे पीडित हुआ यह जीव अनंत कालतक निगोदमें परिभ्रमण किया करता है और फिर अन्य स्थावरोंमें भ्रमण करता है त्रस पर्याय नहीं पाता ॥ १९ ॥ कदाचित् बड़ी कठिनतासे त्रस पर्याय मिल भी जाय तो बहुत दिनतक लट कुंथ आदि कीड़े मकोड़ोंकी योनियोंमें ही घूमा करता है पंचेन्द्रिय

पर्याय नहीं पाता ॥ २० ॥ कदाचित् पंचेन्द्रिय भी हो जाय तो बहुत दिनतक असैनी ही बना रहता है, धर्मबुद्धिसे रहित होनेके कारण सैनी नहीं होता ॥ २१ ॥ कदाचित् सैनी भी हो जाय तो सिंह बाघ आदि क्रूर जातियोंमें उत्पन्न होकर हिंसादिके द्वारा महापाप उत्पन्न करता है जिससे नरकादिकोंमें जाकर अनेक दुख भोगता है ॥ २२ ॥ नरकोंमें जाकर अनेक सागरतक दुख भोगता है और ऐसे दुख भोगता है जो वचनसे भी न कहे जा सकें। पाप कर्मके उदयसे यह जीव दुर्लभ मनुष्य पर्याय नहीं पा सकता ॥ २३ ॥ कदाचित् समुद्रमें गिरे हुए रत्नके समान दुर्लभ मनुष्य पर्याय प्राप्त कर ले तो फिर म्लेच्छ खण्डोंमें ही भ्रमण किया करता है आर्यखण्डमें जन्म नहीं लेता ॥ २४ ॥ कदाचित् भाग्यवशसे आर्यखंडमें भी जन्म ले ले तो भी बहुत दिनतक नीच कुलमें ही भ्रमण किया करता है, कल्पवृक्षके समान दुर्लभ श्रेष्ठ कुलमें जन्म नहीं ले सकता ॥ २५ ॥ कदाचित् श्रेष्ठ कुलमें भी जन्म ले ले तो आयु, रोगरहित शरीर, इन्द्रियोंकी पूर्णता रत्नत्रयकी प्राप्ति, कषायोंकी मंदता, अरहंतदेवके कहे हुए शास्त्र, निर्ग्रंथ गुरु, सम्यग्दर्शन, तप, ज्ञान, चारित्र आदिकी प्राप्ति उत्तरोत्तर दुर्लभ है, कदाचित् बड़े भाग्यसे ये सब मिल भी जांय तो चिंतामणि रत्नके समान ध्यानकी प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है ॥ २६-२७ ॥ इन सबको पाकर भी यह मनुष्य यदि धर्म साधन करनेमें वा मोक्ष प्राप्त करनेमें प्रमाद करे तो फिर यह दीन संसाररूपी वनमें भ्रमण किया ही करता है ॥ २८ ॥ फिर यह जीव समुद्रमें गिरे हुए माणिकके समान करोड़ों सागरतक भी मनुष्य पर्याय, श्रेष्ठकुल और धर्मके साधन नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ २९ ॥ यही समझकर बुद्धिमान लोग रत्नत्रयकी सामग्री पाकर धर्म साधनमें महा प्रयत्न करते हैं उस धर्मके सेवनसे मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ३० ॥ इस संसारमें मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, फिर सुदेश, सुकुल श्रेष्ठबुद्धि, आरोग्यता, इद्रियोंकी पूर्णता, श्रेष्ठगुरु, सम्यग्दर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यकचारित्र, तप, उत्तरोत्तर दुर्लभ है इसलिये धार्मिक पुरुष इनको पाकर सदा बड़े प्रयत्नसे चारित्र धारण कर मोक्ष सिद्ध किया करते हैं ॥ ३१ ॥ इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ॥ ११ ॥

क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य यह दश प्रकारका उत्तम

महाधर्म कहलाता है यही धर्म मोक्षका कारण है इसलिये ज्ञानी मनुष्योंको मन वचन कायसे क्षमा आदि धर्मोंको धारण करना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥ बुद्धिमान लोग धर्मसे ही तीर्थंकर पद पाते हैं, धर्मसे ही चक्रवर्ती की विभूति, इंद्रके सुख, स्वर्ग, राज्य, कीर्ति और दिव्य शरीर प्राप्त करते हैं ॥३४॥ तीनों लोकोंमें जो पदार्थ दुर्लभ है, जो दूर है और जो बड़ी कठिनतासे प्राप्त हो सकता है वह भी धर्मात्मा जीवोंको धर्मके प्रभावसे लीलामात्रमें प्राप्त हो जाता है॥ ३५ ॥ धर्मसे ही पुत्र पौत्र आदि कुटुंब मिलता है धर्मसे ही सुखकी सामग्री मिलती है धर्मसे ही रूपवती स्त्री मिलती है और धर्मसे ही सेवक आदि प्राप्त होते हैं ॥ ३६॥ जिसके धर्मका उदय होता है उसके पास सुख देनेवाली तीनों लोकोंकी लक्ष्मी घरकी दासीके समान स्वयं आ जाती है ॥ ३७ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष इनका मूल कारण धर्म ही है धर्मके बिना ये कुछ नहीं प्राप्त होते इसलिए बुद्धिमानोंको सबसे पहिले धर्म ही सेवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको बहुमूल्य मनुष्य रत्न पाकर धर्मके बिना कभी एक समय भी नहीं बिताना चाहिए ॥ ३९ ॥ जो निर्मल धर्म पालन करते हैं उनके चरणकमलोंको इन्द्र भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं औरोंकी तो बात ही क्या है ॥ ४० ॥ यही समझकर सज्जनोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए प्रतिदिन श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए दयामय धर्मका पालन करना चाहिए ॥ ४१ ॥ यह उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारका धर्म सुखका सागर है, मोक्षका कारण है, समस्त गुणोंका निधि है, स्वर्गके लिये सीढ़ीके समान है, इन्द्रोंके लिए अनेक ऋधियां देनेवाला है, तीर्थंकर पद देनेवाला है, समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला है, संसारकी समस्त लक्ष्मी और शोभाको देनेमें चतुर है और रत्न निधि आदिका घर है इसलिए मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको आत्माकी सिद्धि करनेके लिए भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए सद्धर्मका सदा पालन करते रहना चाहिये ॥ ४२ ॥ इति धर्मानुप्रेक्षा ॥ १२ ॥

ये बारह अनुप्रेक्षाएं शास्त्रोंमें कही हैं ये सब अनुप्रेक्षाएं मुक्तिरूपी स्त्रीकी सखी हैं, सार भूत हैं तथा वैराग्य और धर्माचरणकी माता हैं, जो मनुष्य अपने हृदयमें इनको धारण करते हैं वे तीनों लोकोंके स्वामी होते हैं उनके सबप्रकारकी लक्ष्मी स्वयं आजाती है सब पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं और मुक्ति, स्त्री, ज्ञान, चारित्र

आदि समस्त धार्मिक गुण और अत्यन्त वैराग्य प्राप्त हो जाता है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे भगवानके हृदयमें अनंत सुखका कारण और कर्मरूप शत्रुओंका नाश करनेवाला वैराग्य दूना होगया ॥ ४४ ॥ उन्होंने विरक्त होकर छहों खंड पृथ्वी नौ निधि चौदह रत्न भोग काय स्त्री आदिका मोह छोड़ दिया और वे वरसे निकलनेकी तैयारी करने लगे ॥ ४५ ॥ इतनेमें ही ब्रह्मलोकमें रहनेवाले अत्यन्त शांत दीक्षा कल्याणको सूचित करनेवाले देवर्षि ब्रह्मचारी निर्मल हृदयको धारण करनेवाले एकावतारी चतुर और ग्यारह अंग चौदह पूर्वके पारगामी और दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले सारस्वत, आदित्य, बन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट ये आठ प्रकारके विचक्षण लौकांतिक देव अपने अवधिज्ञानसे तथा अकस्मात होनेवाले चिन्होंसे भगवानका वैराग्य उत्पन्न होना जानकर आये और आते ही उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे मस्तक झुकाकर भगवानको नमस्कार किया ॥ ४६-४९ ॥ तदनन्तर उन्होंने हाथ जोड़ श्रेष्ठ द्रव्योंसे भगवानकी पूजा की और फिर भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर उत्तम गुणोंके द्वारा वे भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ हे देव ! आप संसारको जाननेवाले हैं और ज्ञानियोंमें भी महाज्ञानी हैं इस संसारमें ऐसा कौन है जो आपको समझावे क्योंकि आप महापुरुषोंके भी गुरु हैं ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार लोग फूलसे बनस्पतिकी पूजा करते हैं जलकी अंजलि देकर समुद्रकी पूजा करते हैं और केवल दीपकसे सूर्यकी पूजा करते हैं उसीप्रकार हे जिनराज ! केवल सम्बोधनके बहानेसे भक्तिपूर्वक लोग आपकी स्तुति करते हैं ॥ ५२-५३ ॥ हे देव ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं विद्वानोंके गुरु हैं आपही संसारसे भयभीत होनेवाले लोगोंके रक्षक हैं और इस संसारसे बचानेके लिये आप ही मनुष्योंके शरण हैं ॥ ५४ ॥ हे देव ! आपके धर्मोपदेशसे श्रेष्ठ व्रतोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं कितने ही पुण्यवान स्वर्गको जाते हैं और कितने हो कल्पातीत विमानोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ ५५ ॥ हे स्वामिन् ! आज सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानको रोकनेवाला मनुष्योंका मिथ्याज्ञान रूपी अन्धकार आपके बचनरूपी किरणोंसे नष्ट होकर दूर भाग जायगा ॥ ५६ ॥ हे देव ! आपके तीर्थकी (दिव्य ध्वनिकी) प्रवृत्ति

होनेसे आज रत्नत्रयरूप महान मोक्षका मार्ग प्रगट होगा इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ५७ ॥ हे नाथ ! आज आपके चारित्ररूपी तलवारके हाथमें लेनेसे यह तीनों लोकोंको जीतनेवाला मोहरूपी शत्रु अपने आप ही 'हा मैं मरा, हा मैं मरा' इसप्रकार कहता हुआ कांप रहा है ॥ ५८ ॥ हे स्वामिन् ! आज आपके ज्ञानका उदय होनेसे इस संसारमें मनुष्योंके स्वर्गमोक्ष प्राप्त करनेवाला और सुखका सागर ऐसा महान् धर्मका उदय होगा ॥ ५९ ॥ हे प्रभो ! सूर्यके समान आपका उदय होनेसे खद्योतके समान पाखंडी लोग प्रभारहित हो जायेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ६० ॥ हे देव ! आपका दीक्षाकल्याणक सुनकर धर्मरूपी महासागर की वृद्धि होनेसे आज, हम स्वर्ग निवासियों तथा मनुष्योंको बहुत ही आनन्द हुआ है ॥ ६१ ॥ हे जिनेंद्र, आज आपका धर्मोपदेश सुनकर बहुतसे मोही मनुष्य मोह नाश करेंगे, कामी लोग कामको नष्ट करेंगे, और पापी लोग पापको छोड़ देंगे ॥ ६२ ॥ हे स्वामिन् ! आपके केवलज्ञानसे सज्जन लोगोंका उपकार होगा इसमें कोई संदेह नहीं है इसलिए हे प्रभो ! आप केवलज्ञान प्राप्त करनेके लिए उद्यम कीजिए ॥ ६३ ॥ हे नाथ ! वैराग्यरूपी तीक्ष्ण तलवारसे जगतके जीतनेवाले मोहरूपी दुष्ट योद्धाको मारकर आज शीघ्र ही संयम धारण कीजिये ॥ ६४ ॥ हे देव ! आज राज्यके कठिन भारको छोड़कर अपने ज्ञानके द्वारा तीनों जगतके राज्यका कारण और सुगम ऐसा तपश्चरण का भार स्वीकार कीजिये ॥ ६५ ॥ हे देव ! आप विद्वान और मूर्ख दोनोंको उपदेश देनेवाले हैं फिर क्या हम लोगोंके द्वारा प्रबुद्ध किये जा सकते हैं ? क्या प्रकाश करनेके लिये सूर्यको दीपक दिखाया जाता है ॥ ६६ ॥ इसलिये हे नाथ ! तपश्चरण कर आप समस्त संसार को पवित्र कीजिये और केवल ज्ञान प्राप्तकर शीघ्र ही मनुष्योंका उपकार कीजिए ॥ ६७ ॥ हे देव आप धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके पारगामी हैं, चक्रवर्ती हैं, कामदेव हैं, तीर्थंकर हैं और तीनों लोकोंके स्वामी हैं ॥ ६८ ॥ हे नाथ ! अब चौथे मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध करनेके लिए चारित्र धारण कीजिए क्योंकि चारित्र धारण कर ही आप संसारसे भव्य जीवोंका उद्धार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥ ६९ ॥ जिसप्रकार संसारमें आकाशसे कोई बड़ा नहीं है, और परमाणुसे कोई छोटा नहीं है उसीप्रकार हे देव ! तीनों कालमें आपसे कोई

बड़ा देव नहीं है ॥ ७० ॥ इसलिये हे जिनेन्द्र दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले, जगतको आनन्द देनेवाले परमेष्ठी आपको नमस्कार है बार बार नमस्कार है ॥ ७१ ॥ आपका ज्ञान समस्त संसारको जानता है इस-लिये आपको नमस्कार है, आप सज्जनोंके गुरु हैं इसलिये आपको नमस्कार है, आप मुक्तिस्त्रीके पति हैं इसलिये आपको नमस्कार है और आप कल्याणके सागर हैं इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ७२ ॥ हे देव! इस स्तुतिके द्वारा हम आपसे संसारकी लक्ष्मी नहीं मांगते हैं किन्तु हमे आप अपने गुणोंका समूह हो दे डालिए ॥ ७३ ॥ हे भगवान शांतिनाथ इन्द्र भी आपके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं, आप संसारके सब नेत्रोंको उत्सव देनेवाले हैं, आप ही तीनों कालोंके जीवोंके भावोंको कहनेवाले हैं, आप हो समस्त कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेवाले हैं, आप ही तीनों लोकोंके जीवोंको पार करनेमें चतुर हैं, आप ही सर्वदर्शी हैं, आप ही सर्वज्ञ हैं, और आप ही तीर्थंकर चक्रवर्ती कामदेव पदको धारण करनेवाले हैं इसलिये हे देव ! मेरे लिये तो आप ही शरण हैं ॥ ७४ ॥ इसप्रकार उन लौकांतिक देवोंने भगवानकी स्तुति की, प्रशंसा की और बार बार उन्हें प्रणाम किया तथा अपना नियोग साधनकर वे प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चले गये ॥ ७५॥ जिसप्रकार दीपक चक्षुके द्वारा पदार्थोंके देखनेमें सहायक होता है उसीप्रकार लौकांतिक देवोंके वचन भग-वानकी दीक्षामें सहायक होगये थे ॥ ७६ ॥ भगवान जबतक अपना राज्य छोड़ने और वनमें जानेके लिए तैयार हुए तबतक चारों निकायके देव और इन्द्र अपने अपने चिन्होंसे तथा आसनोंके कंपायमान होनेसे भगवानका दीक्षा कल्याणक जानकर पहिले कहे अनुसार अपने अपने वाहन और देवांगनाओंके साथ अपनी कांतिसे आकाशको प्रकाशित करते हुए गीत नृत्य करते हुए आये और आते हो उन्होंने जगतगुरु भगवानको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ७७-७९ ॥ उस समय देवोंकी सेना, देवांगनाएं और देव सब आकाश, नगरकी गलियां, राज्यभवन नगर बन सबको रोककर खड़े होगये थे ॥ ८० ॥ तदनन्तर इन्द्रादिक देवोंने बड़े उत्सवके साथ दीक्षा कल्याणका उत्सव मनानेके लिए बड़ी विभूति पूवक मोतियोंकी माला-ओंसे सुशोभित, क्षीरसागरके जलसे भरे हुए, सुवर्णके, ऊंचे, गहरे उत्तम कलशोंसे भगवानका सर्वोत्तम

महाभिषेक किया ॥ ८१-८२ ॥ फिर उन इन्द्रोंने आदरपूर्वक दिव्य आभूषण दिव्य वस्त्र और चंदनकी बनी हुई सुगंधित मालाओंसे भगवानको विभूषित किया ॥ ८३ ॥ भगवानने बड़े उत्सव और विभूतिके साथ अपने पुत्र नारायणका राज्याभिषेक किया और सब राज्य संपदा उसे दी ॥ ८४ ॥ भगवानने मोहरूपी शत्रुको मारकर आदरपूर्वक सब कुटुम्बी लोगोंसे पूछा और फिर वे इन्द्रके हाथका सहारा लेकर इन्द्रोंके द्वारा बनाई हुई, रत्नमयी, दीक्षा लेनेकी प्रतिज्ञाके समान सर्वार्थसिद्धि नामकी पालकीपर सवार हुए ॥ ८५-८६ ॥ उस पालकीको सबसे पहिले राजा लोग प्रसन्न होकर सात पैंडतक ले चले फिर सात पैंडतक प्रसन्न चित्तवाले विद्याधर आकाशमें ले चले और फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए सब देव उस पालकीको कंधेपर रखकर शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥ ८७-८८ ॥ भगवानके माहात्म्यकी प्रशंसा बस इतनेमें ही समाप्त समझनी चाहिये कि इन्द्र भी प्रसन्न चित्त होकर उनकी पालकीको ले जा रहे थे ॥ ८९ ॥ उस समय देव पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे, जय जय शब्द कर रहे थे और गंधोदककी वर्षाके साथ शीतल पवन बह रहा था ॥ ९० ॥ देव बंदीजन गमन समयके मङ्गल गीत गा रहे थे और देवोंके द्वारा बजाये हुए गमन समयके बाजे बज रहे थे ॥ ९१ ॥ उस समय इन्द्रकी आज्ञासे देव लोग "यह सज्जनोंके गुरु भगवानके मोहरूपी शत्रुके जीतनेका समय है"। इसप्रकार ऊंचे शब्दोंसे घोषणा कर रहे थे ॥ ९२ ॥ उस समय देव प्रसन्नता उत्पन्न होनेके कारण सब आकाशको घेरकर भगवान शांतिनाथके आगे आगे बड़ी प्रसन्नतासे जय जय शब्दोंका कोलाहल कर रहे थे ॥ ९३ ॥ उस समय भगवानके सामने समस्त दिव्य देवांगनाएं प्रसन्न होकर अपने शरीरकी छत्रबंध आदिकी लघुता दिखला कर तथा और भी अनेक तरहके चित्र दिखलाकर नृत्य कर रही थीं ॥ ९४ ॥ किन्नर जातिकी देवियां मोहरूपी शत्रुके विजयकी प्रशंसासे गुथे हुए गीत गाती हुई भगवानके सामने मार्गमें ही मधुर स्वरसे गा रहीं थीं ॥ ९५ ॥ उस समय इन्द्रोंके शरीरकी कांति आकाशके अन्त तक फैल रही थी और दुंदुभियोंके शब्द सब दिशाओंको रोककर सब जगह भर गए थे ॥ ९६ ॥ इन्द्र लोग भगवानके इधर उधर चमर ढुला रहे थे और सब दिक्कुमारियां हाथोंमें मंगल द्रव्य लेकर सामने

चल रही थीं ॥९७॥ उस समय बाजोंके शब्दों से, नृत्यों से, जयजयकारोंके शब्दोंसे और गंधर्वोंके द्वारा होनेवाले गीतोंसे संसार भरको आनन्द हो रहा था ॥९८॥ वे भगवान उस समय रत्नोंकी बनी हुई बहुमूल्य दिव्य पालकीमें विराजमान थे और दिव्यमाला आभरण वस्त्र आदि पहने हुए थे इसलिए वे मुक्ति कन्याके वरके समान सुशोभित होते थे ॥ ९९ ॥ अथवा वे भगवान असंख्यात देवोंसे घिरे हुए बड़ी विभूतिके साथ आकाशमार्गसे जा रहे थे इसलिए वे ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों संयमरूपी लक्ष्मीके साथ विवाह करनेके लिए कोई उत्तम वर ही जा रहा हो ॥ २०० ॥ इन्द्रों ने छत्र आदिकी अनेक प्रकारकी शोभासे उनका माहात्म्य प्रगट किया था तथा नगरसे निकलते नगर निवासियों ने इसप्रकार उन्हें आशीर्वाद दिया था ॥ १ ॥ कि हे नृपाधीश ? आप जाइए आपका मोक्षमार्ग कल्याणकारी हो, हे देव आपकी जय हो, आपकी वृद्धि हो और आपको समस्त कल्याण प्राप्त हों ॥ २ ॥ उन्हें जाते हुए देखकर कितने ही लोग परस्पर कह रहे थे कि संसारमें यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि ये भगवान रत्न, निधि, स्त्रियां आदि सबको छोड़कर वनको जा रहें हैं ॥३॥ इस बातको सुनकर अन्य कितने ही लोग कहने लगे कि यह ऐसा वैराग्यका ही माहात्म्य है। कि जिससे ये लोग ऐसी लक्ष्मीको भी छोड़ सकते हैं ॥ ४ ॥ यह सुनकर अन्य कितने ही लोग कहने लगे कि संसार में ऐसे थोड़े उत्तम मनुष्य होते हैं जो इस लक्ष्मीको भोग सकते हैं और क्षणभरमें ही उसे छोड़ सकते हैं ॥ ५ ॥ अन्य कितने ही लोग कहने लगे कि ये भगवान तीर्थंकर हैं चक्रवर्ती है और कामदेव हैं इसलिए ये इस लोक और परलोकके सब कामोंमें समर्थ हैं अन्य कोई पुरुष ऐसा नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ यह सुनकर अन्य कितने ही चतुर लोग कहने लगे कि यह तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है, इन भगवानकी ही ऐसी शक्ति है औरोंमें ऐसी शक्ति कभी नहीं हो सकती ॥७॥ अन्य कितने ही लोग कहने लगे कि भगवान के धर्मका प्रभाव देखो जो इन्द्र भी सब देवोंके साथ इनकी सेवा कर रहा है ॥ ८ ॥ अन्य कितने ही लोग कहने लगे कि संसारमें जो कुछ आश्चर्यकारी पद है वह सब पुण्यका ही माहात्म्य है ॥ ९ ॥ इसप्रकार उत्कृष्ट वचनोंसे जिनकी प्रशंसा होरही है ऐसे वे भगवान अनुक्रमसे इन्द्रके साथ साथ नगरके बाहर जा पहुंचे

॥ १० ॥ अथान्तर-भगवानके चले जानेपर उनकी रानियां भी शोकसे व्याकुल हुईं और मार्ग में मंत्रियोंको साथ लेकर भगवानके पीछे पीछे चलीं ॥ ११ ॥ भगवानके वियोगरूपी अग्निसे उनका शरीर झुलसासा हो गया था उहोंने आभूषण उतार दिये थे, शोभा उनकी जाती रही थी और गिरती पड़ती वे भगवानके पीछे पीछे जा रही थीं ॥ १२ ॥ कितनी ही दावानलसे जली हुई लताके समान जान पड़ती थीं, उनकी शरीररूपी लकड़ी कंप रही थी, मूर्छा आनेसे उनके नेत्र बन्द होगए थे और वे पृथ्वीपर गिर पड़ी थीं ॥ १३ ॥ हे नाथ आज आप कहां चले गए ? अब आपका मिलाप कहां होगा ? मैं आपके बिना कैसे जीवित रहूंगी ? इसप्रकार दुखसे व्याकुल हुई कितनी रानियां रोरोकर करुणा उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे विलाप कर रही थीं और केशों की चोटी खोले हुए प्रभाहीन कितनी ही रानियां अपनी छाती हो कूट रही थीं ॥ १४-१५ ॥ कितनी ही रानियोंके केशपाश छूट गए थे, मालाएं टूट गई थीं, चोली ढीली हो गईथीं, आंखोंसे आंसू बह रहे थे और उनकी अवस्था शोचनीय हो गई थी ॥ १६ ॥ कितनी रानियां अपने थोड़ेसे पुण्यसे उत्पन्न हुए सौभाग्यकी निंदा करती थीं जिनसे कि असमयमें ही संसार के द्वारा निंदनीय दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था ॥ १७ ॥ कोई कोई चतुर रानियां कह रही थीं कि तुम लोग रोओ मत, हम सब लोग स्वामीके साथ निर्दोष तपश्चरण करेंगे, जिससे हमें भी स्वामीका पद प्राप्त होगा। इसप्रकार आश्वासन देनेवाले वचनोंसे और शास्त्रज्ञानसे कितनी ही रानियोंने अपना शोक दूर कर दिया था ॥ १८-१९ ॥ इतनेमें महापुरुषोंने आकर शुभ वचनोंसे समझाकर अन्तःपुरके साथ साथ उन स्त्रियोंको रोका और कहा कि आगे मत जाओ, आगे जानेके लिए प्रभुकी आज्ञा नहीं है ॥ २० ॥ इस आज्ञाको सुनकर उन्होंने लम्बी गर्म सांसली और चित्तमें यह धारण कर कि हम अवश्य ही निर्दोष तपश्चरण करेंगे, बड़े कष्टसे घरको लौट गईं ॥ २१ ॥ संयमरूपी लक्ष्मीके रसके लिए उत्सुक हुए वे भगवान चक्रायुध आदि भाइयोंके नगर निवासी और राजा महाराजाओंके साथ तथा इन्द्रके साथ और देवोंके द्वारा किए हुए महा उत्सवके साथ जहांतक लोगोंकी दृष्टि पहुंच सके इतनी दूर आकाशमार्गसे चलकर सहस्राम्र नामके वनमें जा पहुंचे ॥ २२-२३ ॥ उस वनमें एक शीतल छायावाला

वृक्ष था जिसमें सूर्यकी उष्ण किरणें भी रुक जाती थीं, उस छायामें घिसा हुआ चन्दन छिड़का हुआ था जिससे मांगलिक शोभा बढ़ रही थी, उसी छायामें एक विशाल और विचित्र चन्दोवा तना हुआ था, जिसपर बहुतसी ध्वजाएं फहरा रही थीं जगह जगह धूपघट रक्खे हुए थे, जिनके निकले हुए धूमसे सब दिशाएं सुगंधित हो गई थीं, उस चंदोवाकी बहुत बड़ी शोभा की गई थी उसका वास्तुविधान भी किया था और वह बहुत ही प्रशंसनीय था, उसमें एक शिला रक्खी हुई थी जो देवोंने पहिले हीसे रख छोड़ी थी, वह शिला बहुत बड़ी थी, पवित्र थी, गोल थी चन्द्रकांत मणिकी बनी हुई थी और शुभ थी, उस शिलाके चारों ओर दीक्षा महोत्सव देखनेके लिए देव देवी खड़े थे, इन्द्रानीने अपने हाथसे रत्नोंका चूर्ण बनाकर उसपर स्वस्तिक बना रक्खा था उस शिलाको पृथ्वीके समान उत्तम देखकर वे भगवान उस पालकीसे उतरे ॥ २४-२८ ॥ तदनन्तर परिचारक इन्द्रके साथ उत्तर दिशाकी ओर मुखकर विराजमान हुए और लोगोंके शब्द तथा मांगलिक बाजे शांत हो जानेपर उन्होंने शुभ भावनाएं धारण कीं ॥ २५ ॥ फिर उन्होंने मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक मोहको नष्ट करनेके लिए वस्त्र आभरण माला तथा क्षेत्र वस्तु आदि दश प्रकारके बाह्य परिग्रह का त्याग किया फिर उन्होंने भावोंको शुद्ध करनेके लिए मिथ्यात्व आदि अन्तरंगके चौदह प्रकार के परिग्रहों का त्याग किया और शरीरादिकसे तथा समस्त पदार्थोंसे ममत्वका त्याग किया ॥ ३०-३१ ॥ उस समय वे भगवान सेवक आदि चैतनरूप परिग्रहोंका तथा मोती रत्नादिक अचेतनरूप समस्त पदार्थोंका त्यागकर निस्पृह हो गए थे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वे स्थिरतापूर्वक पर्यंकासनसे विराजमान हुए और फिर उन्होंने सिद्धों को नमस्कारकर पांच मुष्टियोंसे केश लोच किया ॥ ३३ ॥ उन चतुर भगवानने मोहकी वेलके ऊपरी भागके समान केशोंका लोच किया और दिगम्बर अवस्था धारण कर परमेश्वरी दीक्षा धारणकी ॥३४ ॥ उन धीर वीर भगवानने मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदनासे समस्त पापरूप योगोंका त्यागकर सामायिक धारण किया और समता आदि संयम धारण किया ॥ ३५ ॥ उन बुद्धिमानने व्रत समिति गुप्ति आदि संयम के भेदोंको धारण कर अट्ठाइस मूलगुण धारण किये और उत्तर गुण भी धारण किये ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ कृष्णा

चतुर्थीके दिन सायंकालके समय भरणी नक्षत्रमें भगवान शांतिनाथने प्रसन्न होकर दीक्षा धारणकी ॥३७॥ भगवानने जिन केशोंका लोच किया था उनको भगवानके मस्तकपर निवास करनेके कारण अत्यन्त पवित्र समझकर इन्द्रने बड़े आदरसे उनको रत्नकी पेटीमें रक्खा तथा भगवानके मस्तकका स्पर्श करनेसे उनको अत्यन्त पवित्र समझकर इन्द्रने बड़ी विभूतिके साथ लेजाकर उन्हें क्षीरसागरमें क्षेपण किया ॥ ३८-३६ ॥ वस्त्र आभूषण माला आदि जो जो चीजें भगवानने उतारी थीं उन्हें भी देव असाधारण उत्तम समझकर अपने साथ ले गए थे ॥ ४० ॥ आश्चर्य है कि उत्तम पुरुषोंके सम्बन्धसे निर्गुण पदार्थ भी उत्तम होजाते हैं जैसे श्रीजिनेन्द्रदेवके आश्रय होनेसे यक्ष भी पूजे जाते हैं ॥ ४१ ॥ भगवानके साथ साथ चक्रायुध आदि एक हजार राजाओंने दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर संयम धारण किया ॥ ४२ ॥ उन नवदीक्षित मुनियोंसे घिरे हुए वे शांतिनाथ भगवान ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानों एक बड़ा कल्पवृक्ष अन्य कल्पवृक्षोंसे घिरा ही हो ॥ ४३ ॥ अत्यन्त शांत और आभूषण आदिसे रहित उन भगवानकी दिगम्बर अवस्था को धारण करने वाला शरीर अपने तेज और कांति आदि गुणोंसे अच्छा जान पड़ता था मानों चन्द्रमाका अद्भुत पूर्ण बिंब ही हो ॥ ४४ ॥ उस समय भगवानके दैदीप्यमान और उपमारहित रूपको इन्द्र सब देवोंके साथ हजारों नेत्रोंसे देखता हुआ भी तृप्त नहीं होता था ॥४५॥ तदनन्तर सन्तुष्ट हुए इन्द्र तीनों लोकोंके स्वामी और परम पदमें रहनेवाले भगवानके यथार्थ उत्तम गुणोंको वर्णन कर उनकी स्तुति करने लगे ॥४६॥ हे देव ! गुणोंके प्रमाणको उल्लङ्घनकर उनको अधिकताके साथ वर्णन करना स्तुति कहलाती है परन्तु आपमें तो गुण ही अनन्त हैं हम तो उनको भी कहनेमें समर्थ नहीं ॥ ४७ ॥ तथापि हम मंदबुद्धिवाले लोग केवल भक्तिके वश होकर आपकी स्तुति करनेको तैयारहुए हैं इसमें केवल भक्ति ही कारण है और कुछ नहीं ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! इस संसार में चारों ज्ञानोंको धारण करनेवाले गणधरदेव भी आपके गुणरूपी समुद्रका पार नहीं पा सकते फिर भला हम लोग उनका पार कैसे पा सकते हैं ॥ ४६ ॥ नदी, वृक्ष, मेघ और निधि आदि केवल दूसरोंका उपकार करते हैं परन्तु आप संसार भरका हित करनेवाला अपना और दूसरेका दोनोंका उपकार करते हैं। हे देव ! हे धीर

वीर आज आपने चारित्ररूपी तलवार लेकर मोहको ऐसा भगाया कि वह आपके सब साथियोंको भी छोड़ कर पाखण्डियोंके हृदयमें जा छिपा ॥ ५१ ॥ मोहरूपी मल्लको हारा हुआ देखकर काम सब इन्द्रियों के साथ आपके परिवारसे (मुनियोंके सम्बंधसे) भी भागकरअत्यन्त रागी लोगोंमें जा छिपा ॥ ५२ ॥ हे देव आज आपके संयमरूपी तलवार के हाथमें लेनेपर इस दुःख देनेवाली कर्मोंकी सेनामें महा त्रास मच रहा है ॥ ५३ ॥ संसारमें रात्रिका अन्धेरा तब तक ही रहता है जब तक कि सूर्यका उदय नहीं होता उसी प्रकार इस संसारमें मोहरूपी अन्धकार तब तक ही रह सकता है जब तक कि आपके केवलज्ञान रूपी सूर्यका उदय नहीं होता ॥ ५४ ॥ हेप्रभो संसाररूपी सागरमें डूबते हुए प्राणियोंको आप ही कृपापूर्वक धर्मोपदेशरूपी हाथका सहारा देनेवाले हैं। हे देव ? आप बिना कारणके जगत बन्धु हैं ॥ ५५ ॥ आपने तपश्चरण और मोक्षकेलिए रत्न निधि आदिके द्वारा भरा हुआ पूर्ण साम्राज्य तृणके समान छोड़दिया इसलिए आपके समान इस संसारमेंऔर कौन है ॥ ५६ ॥ हे नाथ आज सूर्यके समान आपका उदय होनेसे भव्य जीवोंके हृदय रूपी कमल प्रफुल्लित होगए हैं मोहरूपी नींद नष्ट होगई है और अज्ञानरूपी अन्धकार भी नष्ट हो गया है ॥ ५७ ॥ हे प्रभो ? आपने पहिले भवमें थोड़ेसे ही तपश्चरणसे महापुण्य संपादन कियाथा उसीसे आपको एक साथ तीनपद प्राप्त हुए हैं ॥ ५८ ॥ हे देव आपने निर्मल जिनवाणीके समान तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली शुद्ध दीक्षा धारणकी है इसलिये उस शुद्ध दीक्षाको प्राप्त करनेके लिए मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥ हे नाथ आपने परमेश्वरपदके लोभसे तुच्छ और चंचल राज्यको छोड़कर दीक्षा धारणकी है, इसके सिवाय आप शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं और समस्त संसार आपको नमस्कार करता है इस- लिये मैं भी आपको नमस्कार करता हूं ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! आपका हृदय मुक्ति स्त्रीमें आसक्त है इसलिये आपने स्त्रीरत्न धातु उपधातुओंसे बना हुआ और चंचल (अनित्य) समझकर दीक्षा धारणकी है इसलिये हे नाथ मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ६१ ॥ हेय (त्याग करने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) को समझकर आप उपादेयमें ही संलग्न हो गये हैं इसके सिवाय आप अत्यन्त शांत हैं सौम्य हैं और

तपश्चरणरूपी लक्ष्मीके रसमें पगे हुए हैं इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ६२ ॥ आपने पराधीन सुखका त्याग कर स्वाधीन सुखका अनुभव किया है अब भी आप सबसे उत्तम कल्याण चाहते हैं इसलिए हे शांतिनाथ ! मैं आपको बार बार नमस्कार करता हूं ॥ ६३ ॥ हे स्वामिन् आपने सदा रहनेवाले रत्नोंकी प्राप्तिके लिए थोड़े दिन रहनेवाले रत्न छोड़ दिये हैं तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानरूपी रत्न और माणिक्यको ग्रहण कर लिया है इसलिए हे जिन ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ६४ ॥ हे तीनों लोकोंके स्वामी ! इस स्तुतिके द्वारा हम आपसे तीनों लोकोंका आधिपत्य नहीं मांगते हैं हमें तो आप भव भवमें रत्नत्रय सहित दीक्षा ही दे दीजिये ॥ ६५ ॥ हे देव ! आप इस संसारमें सज्जनोंके स्वामी हैं, मोक्षरूपी घरको पहुंचा देनेके लिए आप ही हमारे नेता हैं आप बिना ही कारणके बन्धु हैं, विद्वानोंके द्वारा पूज्य हैं अत्यन्त बुद्धिमान हैं, मुनि लोग भी अपने हृदयमें बहुत दिन तक आपका ध्यान करते रहते हैं आप तीर्थंकर हैं दीक्षित हैं और मोक्ष मार्गके पथिक हैं इसीलिए हमने आपकी स्तुति की है इस स्तुतिसे हमें केवल आपके ही गुण प्राप्त हों ॥ ६६ ॥ इसप्रकार इंद्रोंने उनका स्तुति की और वे पुण्य संपादन करनेके लिए अपने हृदयमें उनके पवित्र गुणोंको स्मरण करते हुए सब देवोंके साथ अपने २ स्थानको चले गए ॥६७॥ दीक्षारूपी स्त्रीके वशीभूत हुए चक्रायुध आदि भाइयोंको छोड़कर बाकीके मंत्री भाई बन्धु आदि सब लोग मन बचन कायसे जगत बंधु भगवानको नमस्कार कर अपने २ घरको चले गए ॥ ६८ ॥ इधर भगवान मोक्ष प्राप्त करनेके लिए मनको शुद्धकर, मौन धारण कर और शरीरको निश्चल विराजमान कर संकल्प विकल्प रहित ध्यान करने लगे ॥ ६९ ॥ इसप्रकार जब उनका छठा उपवास पूर्ण होगया तब वे ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक आहार लेनेके लिए निकले। उस समय वे समता धारण किए हुए थे परन्तु हृदयमें ऊंच नीच घरोंकी (जातिकी) भावना अवश्य करते थे, वे तीनों प्रकारके वैराग्यका चितवन कर रहे थे, चतुर थे, समस्त संसार उन्हें बंदना करता था, चारों ज्ञानोंको वे धारण किए हुए थे और निर्दोष अन्नके ढंढनेमें तत्पर थे। वे भगवान चार हाथ मार्गको देखते जा रहे थे, न बहुत धीरे चलते थे न बहुत शीघ्र चलते थे, पैरोंको उठाते रखते हुए लीला पूर्वक चलते हुए

हाथीके समान जा रहे। वे मुनिराज दानियोंको संतुष्ट करते हुए केवल शरीरको स्थिर रखनेके लिये अनु-
क्रमसे विहार करते हुए मंदरपुर नामके नगरमें पहुंचे ॥७०-७३॥ किसी घरमें जाकर शीघ्रतासे निकल जाना ही
जिनका आभूषण है ऐसे वे दिगम्बर अवस्थाको धारण करनेवाले भगवान अपनी कांतिसे सब लोगोंको
मोहित करते हुए राजभवनमें जा पहुंचे ॥ ७४ ॥ वहांके महाराज सुमित्र बड़ी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य
निधानके समान उन अद्भुत पात्रको देखकर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ७५॥ पुण्यकर्मको जाननेवाले उन
महाराजने भगवानको अपने हाथ जोड़े उनके चरण कमलोंको नमस्कार किया और तिष्ठ २ कहकर उन्हें
स्थापन किया ॥ ७६ ॥ श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और त्याग ये सात दानियोंके गुण
कहे गए हैं ॥ ७७ ॥ प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजा, प्रमाण, वचन शुद्धि, मनशुद्धि, काय शुद्धि
और आहार शुद्धि यह नव प्रकारकी भक्ति कहलाती है, दानी लोग पुण्य संपादन करनेके लिये इनको
करते हैं ॥ ७८-७९ ॥ पुण्यात्मा महाराज सुमित्रने सातों गुणोंसे सुशोभित होकर बड़ी भक्तिसे उन भगवा-
नको प्रासुक, मधुर, मनोहर, रसीला, तृप्ति करनेवाला सुख देनेवाला, क्षुधाको दूर करनेवाला और चारित्रको
बढ़ानेवाला आहार दिया ॥ ८०-८१ ॥ उस दानके आनन्दसे संतुष्ट हुए देवोंने महाराज सुमित्रके घर बहु-
मुल्य मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त ऐसे रत्नोंकी वर्षा की ॥८२॥ समस्त आश्चर्योंको करनेवाली वह आकाशसे
पड़ती हुई स्थूल रत्नोंकी धारा ऐसी जान पड़ती थी मानो मनुष्योंको दानका अद्भुत फल ही बतला रही हो
॥ ८३ ॥ उस समय आकाशसे देवोंके हाथसे पड़ती हुई और भ्रमरोंसे व्याप्त ऐसी पुष्पोंकी वर्षा हो रही
थी और ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानो वह दाता और पात्र दोनोंकी पूजा करनेके लिये ही आ रही हो
॥ ८४ ॥ उस समय समस्त संसारको बहरे करनेवाले देवोंके गंभीर बाजे बज रहे थे और गंगा नदीकी
बूदोंको वरसाता हुआ शीतल वायु बह रहा था ॥ ८५ ॥ देव उस दानसे संतुष्ट होकर "अहा यह कैसा
अच्छा दान है, ये कैसे उत्तम पात्र हैं और सब गुणोंका स्थान कैसा अच्छा दाता है" इसप्रकार आकाशमें
महाशब्द कर रहे थे ॥ ८६ ॥ उस दानसे महाराज सुमित्र अपनेको कृतार्थ मानते हुये घरको सफल मानने

लगे थे, गृहस्थाश्रमको सफल मानने लगे थे और अपने हाथोंको सार्थक मानने लगे थे ॥ ८७ ॥ आचार्य कहते है कि मैं तो घर उसीको मानता हूं जहां मुनिराज अपने शरीरकी रक्षाके लिये आते हैं । जिस घरमें मुनिराज आहारके लिए नहीं आते वह मनुष्योंका घर व्यर्थ है ॥ ८८ ॥ इस संसारमें वे ही गृहस्थ धन्य हैं जो पात्रोंको सदा अनेक प्रकारका दान देते रहते हैं । जो गृहस्थ मुनियोंको कभी दान नहीं देते वे पापी ही हैं ॥ ८९ ॥ दानसे जिस प्रकार इस लोकमें लक्ष्मी बड़प्पन और कीर्ति प्राप्त होती है उसी प्रकार परलोकमें भी स्वर्ग मोक्षके महासुख प्राप्त होते हैं ॥ ९० ॥ अपने आत्मतत्वमें तल्लीन रहनेवाले जितेन्द्रिय और निराश्रय रहनेवाले वे मुनिराज आहार लेकर ध्यान करनेके लिये बनको चले गये ॥ ९१ ॥ वे भगवान व्रतोंको पालन करनेके लिये पृथ्वी अप तेज वायु बनस्पति इन पांचों स्थावरोंको तथा त्रस जीवोंको मन बचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दया पालन करते थे ॥ ९२ ॥ मौन धारण किए हुए वे भगवान संवर धारण करनेके लिये सदा सत्यव्रतमें अचौर्यव्रतमें और ब्रह्मचर्यव्रतमें मन वचन कायसे तल्लीन रहते थे ॥ ९३ ॥ वे स्वप्नमें भी कभी किसी परिग्रहमें इच्छा नहीं रखते थे, इसीप्रकार गुप्ति समिति आदि सब व्रतोंसे परिपूर्ण थे तथा और भी अनेकव्रतोंको पालन करते थे ॥ ९४ ॥ वे पंच महाव्रतोंको बड़े प्रयत्नसे पालन करते थे और उनकी पूर्ण सिद्धिके लिये वे उनकी पच्चीस भावनाओंको सदा चिंतवन करते रहते थे ॥९५॥ वे भगवान अहिंसा महाव्रतकी विशुद्धताके लिए मनोगुप्ति, बचन गुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति, और आलोकितपान भोजन इन पांच भावनाओंका चिंतवन करते थे ॥ ९६-९७ ॥ वे भगवान सत्यमहाव्रतके लिये क्रोधका त्याग, लोभका त्याग भयका त्याग, हास्यका त्याग और सूत्रोंके अनुसार बचन बोलना इन पांचों भावनाओंका चिंतवन करते थे ॥ ९८ ॥ नित उचित और आज्ञानुसार ग्रहण करना अन्यथा ग्रहण न करना तथा भोजन और पानमें संतोष धारण करना अचौर्यव्रतकी भावना है इनको भी वे चिंतवन करते थे ॥ ९९ ॥ स्त्रियोंकी शृंगाररूप कथाओंका त्याग, स्त्रियोंके रूप देखनेका त्याग, पहिले भोगे हुए भोगोंके स्मरण करनेका त्याग पौष्टिक रसीले भोजनका त्याग और शरीरके संस्कार करनेका त्याग इन ब्रह्मचर्यकी पांचों भावनाओंका भी

वे चिंतवन करते थे ॥ ३००-१ ॥ चेतन अचेतन रूप बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रूप इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होना परिग्रह त्याग महाव्रतकी भावनाएं हैं, इनको भी वे चिंतन करते थे ॥ २ ॥ महाव्रतोंको स्थिर रखनेके लिये ए महाव्रतोंकी पच्चीस भावनाएं हैं। भगवान शांतिनाथ इनको प्रतिदिन भावना करते थे ॥ ३ ॥ माया मिथ्या निदान आदि शास्त्रोंमें अनेक शल्य बतलाई हैं उन सबका त्यागकर भगवान निःशल्य होकर विहार करते हैं ॥ ४ ॥ वे जितेन्द्रिय भगवान समता धारणकर तथा प्रमाद रहित होकर एक सामायिक संयमको धारण करते हैं, उनके व्रतोंमें दोष न लगनेके कारण छेदोपस्थापना आदिसे वे अलग ही रहते थे। वे भगवान चौरासी लाख उत्तरगुणरूपी आभूषणोंसे विभूषित थे और अठारह हजार शीलरूपी वस्त्रोंसे अलंकृत थे ॥ ६ ॥ वे भगवान पहिले कहे हुए अट्ठाईस मूलगुणोंसे सुशोभित थे और कर्मोंको भय उत्पन्न करनेवाले बारह तपरूपी शस्त्रोंसे विभूषित थे ॥ ७ ॥ वे भगवान जहां सूर्य अस्त हो जाता था वहींपर ध्यान अध्ययनमें तल्लीन होकर मौन धारणकर और निर्भय होकर निवास करते थे ॥८॥ वे भगवान ममत्व नष्ट करनेके लिए ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक गांव, खेट, नगर, द्रोणमुख, पुर, पत्तन, मटंब, वन, कर्वट और अनेक देशोंमें वायुके समान विहार करते थे तथा वनोंमें भी सिंहके समान विहार करते थे ॥ ९-१० ॥ वे भगवान प्रमादरहित होकर नदीके किनारे, गुफामें, भयानक वनमें, वृक्षोंके, कोटरोंमें, शिलापर, पर्वतपर और कंदराओंमें निवास करते थे ॥ ११ ॥ ध्यान धारण करने और कर्मोंको नाश करनेके लिए शरीरसे ममत्व छोड़कर कहींपर कायोत्सर्ग धारण करते थे और कहींपर वज्रासन धारण करते थे ॥ १२ ॥ तथा क्षुधा तृषा आदि समस्त परीषहोंको और आर्तध्यान रौद्रध्यानरूपी अशुभ शत्रुओंको शांतपरिणामरूपी बाणोंसे नष्ट कर देते थे ॥ १३ ॥ वे धीर वीर भगवान जाड़ेके दिनोंमें मोक्ष प्राप्त करनेके लिए चौराएमें ध्यान धारण कर और काष्ठके समान निश्चिल होकर शीतकी बाधाको सहन करते थे ॥ १४ ॥ गर्मीके दिनोंमें पर्वतके ऊपर शिलापर सूर्यके सामने कायोत्सर्ग धारणकर गर्मीकी बाधाको सहन करते थे ॥ १५ ॥ वर्षाऋतुमें झंझा वायु बहनके समय केवल पापोंको नाश करनेके लिए वृक्षके नीचे ध्यान धारणकर वर्षाजन्य कष्टको सहन

करते थे ॥ १६ ॥ इसप्रकार चक्रायुध आदि अनेक मुनियोंके साथ बहुतसे देशोंमें विहार करते हुए वे भगवान सहस्राम्रवनमें जा पहुंचे ॥ १७ ॥ वे श्रेष्ठ मुनिराज मोक्ष प्राप्त करनेके लिए छह उपवास धारणकर नंद्यावर्त वृक्षके नीचे दृढासनसे विराजमान होकर ध्यान करने लगे ॥ १८ ॥ वे पूर्व दिशाकी ओर मुँहकर विराजमान हुए, बाह्य सामग्रीको पाकर उन्होंने समस्त चिंताओंका निरोध किया और सिद्धोंके गुण प्राप्त करनेके लिए सबसे पहिले सिद्धोंके आठों गुणोंका ध्यान करने लगे ॥ १६ ॥ अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनन्त वीर्य, सम्यग्दर्शन, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अव्याबाध और अगुरुलघु ये सिद्धोंके आठ गुण हैं सिद्धपद प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले तीर्थंकरोंको तथा अन्य मुनियोंको इन गुणोंका ध्यान करना चाहिए ॥ २०-२१ ॥ इसीप्रकार वे भगवान अपने मनमें धर्मसाधन करनेवाले उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका चिंतवन करने लगे तथा सब द्रव्य तत्व और पदार्थोंका चिन्तवन करने लगे ॥ २२ ॥ तथा मनको शुद्ध करनेके लिए आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संसथानविचय इन चारो धर्मध्यानोंको धारण करने लगे ॥ २३ ॥ उन्होने चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक किसी एक जगह नरकायु तिर्यंचायु और देवायु इन तीन प्रकृतियोंको विना ही प्रयत्नके नष्ट करदिया था ॥ २४ ॥ अनन्तनुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और मिथ्यात्वकी तीन प्रकृतियां धर्म ध्यानसे पहिलेसे ही नष्ट होगई थीं ॥ २५ ॥ फिर वे उत्तम आत्म शुद्धियोंका चिंतवन करते हुए सातवें गुणस्थानमें जा पहुंचे और मोक्षरूपी घरकी सीढ़ीके समान क्षपक श्रेणीमें विराजमान हुए ॥ २६ ॥ वे भगवान प्रमादरहित होकर अनुक्रमसे अधःप्रवृत्ति करण अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानें जा विराजगान हुए ॥ २७ ॥ साधरण, आतप, एक इन्द्रिय, द्वींद्रिय , तींद्रिय, चतुरइंद्रिय जाति, निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यग्गति, तिर्याग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत ये सोलह प्रकृतियां उन्होंने अनिवृत्ति गुणस्थनके पहिले भागमें ही नष्ट कर दी थीं ॥२८-२६ ॥ वे महा योद्धा भगवान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामके पहिले शुक्ल ध्यानरूपी तलवारको हाथमें लेकर और गुप्तिरूपी कवच पहनकर कर्मोंसे युद्ध कर रहे थे

ऊपर लिखी सोलह प्रकृतियोंको नाश करनेके बाद उन्होंने उसी नौवें गुणस्थानके दूसरे भागमें उसी शुक्लध्यानसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये आठ कषाय नष्ट कर दिये थे ॥ ३०-३१ ॥ तदनन्तर उन्होंने ध्यानके योगसे तीसरे भागमें नपुंसकवेद चौथे भागमें स्त्रीवेद, पांचवे भागमें हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा, छठे भागमें नपुंसकवेद सातवें भागमें संज्वलन क्रोध, आठवें भागमें संज्वलन मान, नौवें भागमें संज्वलन माया नष्ट की ॥ ३२-३३ ॥ कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करनेमें उद्यत हुए उन भगवानने फिर विजयभूमि पाकर दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्मसांपराय नामके चारित्ररूपी तीक्ष्ण तलवारसे सूक्ष्म लोभ नष्ट किया और इसप्रकार कर्मरूपी शत्रुओंको नाश करनेवाले उन भगवानने सब कषायोंको नष्ट कर दिया ॥ ३४-३५ ॥ इसप्रकार उन्होंने अनन्त गुणोंको बढ़ानेवाला बारहवां गुणस्थान प्राप्त कर लिया और फिर वे बाकीके घातिया कर्मरूपी पापोंको नाश करनेकेलिये उद्यम करने लगे ॥ ३३ ॥ उस बारहवें गुणस्थानके पहिले क्षणमें उन्होंने एकत्ववितर्क अविचार नामके दूसरे शुक्लध्यानसे निद्रा और प्रचला दो प्रकृतियां नष्ट कीं और फिर यथाख्यात चारित्र धारण करनेवाले उन भगवानने उसी दूसरे निर्मल शुक्लध्यानसे उसी बारहवें गुण स्थानक अन्तिम क्षणमें चार दर्शनावरणकी प्रकृतियां पांच ज्ञानावरणकी प्रकृतियां और पांच अन्तरायकी प्रकृतियां नष्ट कीं ॥ ३७-३९ ॥ इसप्रकार उन्होंने कर्मोंकी तिरेसठ प्रकृतियोंको नष्टकर उसीसमय लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाला अनन्त केवलज्ञान अनन्तदर्शन क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यक्चारित्र ये अपना और दूसरेका हित करनेवाली नौ केवललब्धियां प्राप्त की इसप्रकार भगवान शांतिनाथने छद्मस्थ अवस्थाके सोलह वर्ष व्यतीतकर पौष शुक्ला एकादशीके दिन सायंकालके समय स्नातक बनकर देवोंके द्वारा महापूजा प्राप्त की थी ॥ ४०-४३ ॥ भगवान शांतिनाथके घातिया कर्म नष्ट होनेपर तथा केवलज्ञान प्रगट होनेपर देवोंके समूह आकाशमें जय जय शब्द कर रहे थे, देवोंके द्वारा बजते हुए नगाडोंके शब्दोंसे सब दिशाएं और आकाश भरगया था और आकाशसे कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी

वर्षा हो रही थी ॥ ४४ ॥ भगवानके समस्त गुणरूपी समुद्रकी ज्ञानरूपी लहरके बढ़नेपर (पूर्णज्ञान होनेपर) शीतल और सुगंधित बायु :मन्द मन्द रीतिसे बह रहा था, आकाश सब दिशाओंके साथ निर्मल और मनोहर होगया था और सम्यग्ज्ञानियोंको आनन्द हो रहा था ॥ ४५ ॥ भगवानके माहात्म्यसे स्वर्गमें उसी-समय इंद्रोंके आसन कंपायमान होगये थे उनके मस्तकके मुकुट नम्रीभूत होगये थे और क्षण क्षण करनेवा-ले घंटा आदि बाजोंके समूहोंका अद्भुत शब्द होने लगा था ॥ ४६ ॥ जिन भगवानको केवल ज्ञान प्रगट होते ही देवोंके सब इन्द्रोंने अपने अपने निकायोंके सब देवोंके साथ अपने सिंहासनसे उठकर और थोड़ेसे पेंड चलकर नमस्कार किया था तथा जो समस्त पापोंसे रहित हैं, जिनेंद्र हैं, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं और समस्त संसारके स्वामी हैं, उनको मैं भी मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं और सदा उनकी स्तुति करता हूं ॥ ४७ ॥ जिन भगवान शांतिनाथके लिये कुवेरने इन्द्रकी आज्ञासे भक्तिपूर्वक सब देवोंके साथ आकर अनेक प्रकारकी रचनाके द्वारा संसारके समस्त उत्तम लोगोंके द्वारा सेवा करने योग्य ऐसी समवसरण की विभूतिकी रचनाकी थी वे भगवान शांतिनाथ इस संसारमें सदा जयशील हों ॥ ४८ ॥ जिन भगवान शांतिनाथको देवोंके इन्द्रको आदि लेकर सब देव और सब मुनिराज भक्तिपूर्वक दिव्य मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं, जो सर्वज्ञ हैं, जिनेन्द्र हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले हैं, बिजयी हैं, धर्मो-पदेश देनेमें सदा तत्पर हैं, तीनों लोकोंके स्वामी हैं और गुणोंके निधि हैं ऐसे भगवान शांतिनाथको मैं उनकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये स्तुति करता हूं ॥ ४९ ॥ जो सर्वज्ञ हैं, दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले हैं, सब देवगण जिनकी पूजा करते हैं, जो भव्य जीवोंके लिये एक अद्वितीय बंधु हैं, कल्याणमय हैं, कल्या-णके कारण हैं, समस्त शत्रुओंको जीतनेवाले हैं, अन्तरहित हैं, अत्यन्त धीर वीर हैं, सर्वोत्तम मुनियोंके भी स्वामी हैं, निखिल गुणोंके समुद्र हैं, प्रपंचि रहित हैं, जिनेन्द्र हैं, और समस्त संसार जिन्हें बंदना करता है ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवानको मैं उनके अतिशय प्राप्त करनेके लिए मस्तक झुकाकर सदा नमस्कार करता हूं।

इसप्रकार शांतिनाथ पुराणमें दीक्षा कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणको वर्णन करनेवाला पन्द्रहवां अधिकार समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

अथ सोलहवां अधिकार ।

जो देवोंके देव हैं, तीनों जगतके स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्व दर्शी हैं और तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं ऐसे श्री शांतिनाथ भगवानको मैं अपने पाप शांत करनेके लिए नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अथानन्तर— आसनोंके कंपायमान होने आदि चिन्होंसे भगवानके केवलज्ञानको उत्पत्ति जानकर दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले चारों निकायोंके सब देव अपने अपने इन्द्रोंके साथ तथा अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ हाथी आदि अपने २ बाहनोंपर चढ़े हुए पहिले जन्म कल्याणके समय वर्णन किए अनुसार भगवानकी पूजा करनेके लिये अपने २ स्थानोंसे निकले ॥ २ ॥ वे सब असंख्यात देव गीत नृत्य करते हुए बड़ी विभूतिके साथ अपने शरीर और आभरणोंकी कांतिसे आकाशको प्रकाशित करते हुए जा रहे थे ॥ ४ ॥ देवोंके महा नगाड़ोंके शब्द और जय जय शब्दके कोलाहलके साथ आनन्दसहित गमन करते हुए धर्मात्मा इन्द्रोंने दूसरे ही देवोंद्वारा बहुमूल्य रत्नोंसे बनाये हुए समवसरण स्थानको देखा। वह समवसरण समस्त विभूतिका एक स्थान था ॥ ५-६ ॥ यद्यपि इन्द्रादिकोंके द्वारा बने हुए उस समवसरणका वर्णन कोई नहीं कर सकता तथापि भव्य जीवोंको प्रसन्न करनेके लिये आचार्य कुछ थोड़ासा वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ चार योजन और दो कोस लंबा चौड़ा गोल आकारका इंद्रनील महा रत्नोंका बना हुआ पीठ था ॥ ८ ॥ उसके चारों ओर एक ऊंचा धूलिशाल था, जो पांचों वर्णोंके रत्नोंको धूलिसे बना हुआ था, बहुत बड़ा था, दैदीप्यमान किरणोंसे भरपूर था, इन्द्रधनुषके समान अनेक रंगोंसे भरपूर था, और उस पीठके चारों ओर बहुत ऊंचा और बहुत ही सुन्दर शोभायमान था ॥ ९-१० ॥ इस धूलिशालके चारों दिशाओंमें रत्नोंकी मालाओंसे सुशोभित और सुवर्णके खंभोंपर विराजमान तोरण अपनी अलग शोभा दिखा रहे थे ॥ ११ ॥ उन तोरणोंसे कुछ दूर आगे चलकर सब दिशाओंमें मार्गके मध्यभागमें दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाली जगती थीं। इन जगतियोंपर सुवर्णकी सोलह सोलह सीढ़ियां बनी हुई थीं, भगवानके

अभिषेकसे वे पवित्र थीं और चार चार गोपुरोंसे सुशोभित तीन तीन कोटोंसे घिरी हुई थीं ॥ १२—१३ ॥ उन जगतियोंके बीचमें दिव्य पीठिकाएं बनी हुई थीं और उनपर देवोंके द्वारा पूज्य और अत्यन्त रूपवान तीर्थंकरोंको प्रतिमाएं विराजमान थीं ॥ १४ ॥ उन पीठिकाओंके ऊपर तीन २ कटनीदार पीठ थीं और उन पीठोंके ऊपर आकाशको छूनेवाले मानस्तम्भ विराजमान थे ॥ १५ ॥ वे मानस्तम्भ बहुत ऊंचे थे और घंटा चमर ध्वजाएं और शिरपर फिरते हुए छत्रोंसे सुशोभित थे ऐसे मानस्तम्भ चारों दिशाओंमें थे ॥ २६ ॥ उनको दूरसे देखते ही मिथ्यादृष्टियोंका मान खंडित हो जाता था इसलिये 'मानस्तम्भ' यह उनका सार्थक नाम प्रसिद्ध था । १७ ॥ उन मानस्तम्भोंके मध्यभागमें जो भगवानको अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित प्रतिमाएं विराजमान थीं उनको इंद्र भी चीर सागरके जलसे तथा और भी अनेक द्रव्योंसे पूजा करते थे ॥ १८ ॥ उन मानस्तम्भोंके चारों ओर चारों दिशाओंमें मनोहर चार बावड़ियां थीं जो कि स्वच्छ जल और कमलोंसे सुशोभित थीं ॥ १९ ॥ उन बावड़ियोंमें मणियोंकी सीढ़ियां बनी हुई थीं, नंदोत्तरा आदि उनका नाम था, उनके किनारेपर पादप्रक्षालनके कुँड बने हुए थे तथा भ्रमर और पक्षियोंसे वे शोभायमान थीं ॥ २० ॥ उन बावडियोंसे कुछ ही आगे चलकर प्रत्येक मार्गको छोड़कर बाकीके भागमें कमलोंसे ढकी हुई, पक्षियोंसे सुशोभित और स्वच्छ जलसे भरी हुई खाइयां शोभायमान थीं ॥ २१ ॥ इसके भीतरी भागमें उत्तम लतावन था जो कि अनेक प्रकारके वृक्ष और लताओंके सब ऋतुओंके फूलोंसे सुशोभित था । उस लतावनमें इन्द्रोंके विश्रामके लिये मनोहर क्रीड़ा पर्वत थे, लताभवन थे, जिनके भीतर शय्याएं बिछी हुई थीं और जगह २ चन्द्रकांतमणियोंकी शिलाएं पड़ी हुई थीं ॥ २२-२३ ॥ उस लतावनसे आते मार्गको छोड़कर पहिला कोट था, जो कि बहुत ऊंचा था, देदीप्यमान था और सुवर्णमय था ॥ २४ ॥ वह कोट ऊपरसे नीचे तक कहीं तो मोतियोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान था, कहीं विद्रुमोंसे सुशोभित था, कहींपर नील मणियोंसे नए बादलोंके समान जान पड़ता था, कहीं लाल मणियोंसे इंद्रगोपके समान (वर्षा ऋतुमें होनेवाला लाल जानवर) सुन्दर जान पड़ता था, कहीं बिजलीसे पीला दिखाई

देता था और कहीं अनेक तरहके रत्नोंकी किरणोंसे इंद्रधनुषके समान जान पड़ता था ॥ २५-२६ ॥ उसपर कहीं मनुष्य और पक्षियोंके चित्रमय जोड़े बैठे थे और कहीं वह लतावोंसे ढका हुवा था, इसप्रकार निषिध पर्वतको स्पर्द्धा करता हुवा वह कोट बहुत ही अच्छा जान पड़ता था ॥ २७ ॥ उस कोटके चारों दिशाओं में चार बड़े दरवाजे थे जो तिमंजिले बने हुए थे और पद्मराग मणियोंकी शिखरोंसे वे शोभायमान थे ॥ २८ ॥ कहींपर गानेवाले देव कहींपर भगवानके गुण गा रहे थे, कहींपर सुन रहे थे और कहींपर नृत्य कर रहे थे तथा कहींपर वर्षासे व्याकुल हुई स्त्रियां बैठी थीं ॥ २९ ॥ प्रत्येक दरवाजेपर भृंगार, कलश, झारी आदि एकसौ आठ मंगल द्रव्य सुशोभित थे ॥ ३० ॥ उन प्रत्येक दरवाजोंपर सौ सौ तोरण थे जो कि मणियोंके आभरणोंकी कांतिके समूहसे आकाश को भी कुछ कुछ पीला कर रहे थे ॥ ३१ ॥ शंख आदि नौ निधियां उन दरवाजोंके पास ही रक्खी हुई थीं और भगवानका तीनों लोकोंको उल्लंघन करनेवाला माहात्म्य प्रकट कर रहीं थीं ॥ ३२ ॥ चारों दिशाओंके चारों दरवाजोंमें उन दरवाजोंके भीतर मार्गके दोनों ओर दो दो (मार्गके एक इधर एक उधर) नाट्यशालयें शोभायमान थीं ॥ ३३ ॥ उन नाट्यशालाओंके स्तंभ सुवर्णके थे, दीवालें स्फटिक मणियोंकी थीं और शिखर माणिक्य मणियोंके बने हुए थे, वे नाट्यशालायें बहुत ही ऊंची और बहुत ही दिव्य थीं ॥ ३४ ॥ उन दरवाजोंकी तीनों मंजिलें शरद-ऋतुके बादलोंके समान शोभायमान थीं और गाने बजानेके शब्दोंसे वे बादलोंके गर्जनोंकी शोभाको धारण करती थीं इसप्रकार वे सदा उत्सवसे ही भरपूर रहती थीं ॥ ३५ ॥ उन नाट्यशालोंमें कहीं तो देव भगवानको विजय गा रहे थे और कहीं किन्नरी देवियां प्रसन्न होकर वीणा आदि बाजोंके मधुर स्वरसे गा रही थीं ॥ ३६ ॥ तथा कहींपर देवांगनाएं मृदंग आदि बाजोंके साथ अपने मनोहर शरीरोंको हिला झुलाकर देखनेवालोंको अत्यन्त प्रिय लगनेवाला परम नृत्य कर रही थीं ॥ ३७ ॥ उन दरवाजोंसे कुछ आगे चलकर मार्गके दोनों ओर दो२धूपघट रक्खे हुए थे जो कि निकलते हुए धूपकी धूमसे आकाशको भी सुगंधित कर रहे थे ॥ ३८ ॥ मार्गोंके इधर उधर और दो मार्गोंके बीचमें चार वन थे जो ऐसे जान पड़ते

थे मानो नंदन आदि वनोंकी पंक्तियां ही भगवानके दर्शन करनेके लिए आई हों ॥ ३६ ॥ उनमेंसे एक एक अशोक बृक्षोंका वन था, दूसरा सप्तपर्ण बृक्षोंका था, तीसरा चंपाके वृक्षोंका और चौथा आमके बृक्षोंका वन था। वे सब वन संतुष्ट होकर फूले हुए फूलोंकी शोभा धारण कर रहे थे ॥ ४० ॥ वे सब बड़े मनोहर थे, ऊंचे थे, उनकी अच्छी छाया थी, सबपर फल लग रहे थे, सब ऋतुओंके फूलोंसे फूल रहे थे और उनपर बैठे हुए पुरुषकोकिल मधुर शब्द कर रहे थे ॥ ४१ ॥ उन वनोंमें कहीं तो तिकोन चौकोर बावड़ियां थीं, कहींपर छोटे तलाब थे, कहींपर भवन थे, कहींपर कृतिम पर्वत थे, कहींपर मनोहर चित्रशालाएं थीं कहीं पर तलाव थे, कहींपर नीचे बालूवाली नदियां थीं, कहींपर क्रीड़ासंडप थे, कहींपर एक मंजिल दो मंजिल के मकानोंकी पंक्तियां बनी हुई थीं और कहींपर इन्द्रगोपोंसे भरी हुई हरी घास की भूमि शोभायमान थी ॥ ४२ — ४४ ॥ अशोकवनमें अशोक नामका एक महाचैत्यबृक्ष था जो कि सुवर्णकी बनी हुई तीन कटनीकी पीठपर विराजमान था और उसपर भगवान की प्रतिमाएं विराजमान थीं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सप्तपर्णमें सप्तवर्णका महा चैत्यवृक्ष था, चम्पकवनमें चम्पाका महावृक्ष था और आम्रवनमें आमका महावृक्ष था, ये सब तीन कटनीदार पीठपर खड़े थे और सबपर जिनप्रतिमाएं विराजमान थीं ॥ ४६ ॥ उन्हीं वनों में एक एक दिशा में मालाएं, वस्त्र, मयूर, कमल, हंस, वीणा, सिंह, वृषभ, हाथी और चक्रोंके चिन्ह वाली ध्वजाएं थीं, ॥ ४७ - ४८ ॥ वायुसे हिलते हुए उन ध्वजाओंके वस्त्र ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो हाथ उठाकर भगवानकी पूजा करनेके लिए देव विद्याधरोंको ही बुला रहे हों ॥ ४९ ॥ मालाओंकी ध्वजाओंमें मनोहर दिव्य मालाएं लटक रही थीं और बाकीकी ध्वजाओंमें वस्त्र आदि शोभायमान हो रहे थे ॥ ५० ॥ भगवान शांतिनाथके मोहरूपी शत्रुओंके जीतनेसे प्रत्येक दिशामें सब मिलाकर एक एक हजार अस्सी अस्सी महाध्वजाएं फहरा रही थीं ५१ ॥ वे सब ध्वजाएं चारों दिशाओंकी मिलाकर चार हजार तीन सौ बीस थीं ॥ ५२ ॥ वहांसे कुछ आगे चलकर दूसरा रूपाका बना कोट था जो कि बहुत बड़ा था और बहुत सुन्दर था ॥५३॥ पहिलेके समान चांदीके बने हुये इसके भी चार दरवाजे थे तथा निधियां और मंगल द्रव्य

सब पहिलेके समान रक्खी हुई थीं ॥५४॥ पहिलेके समान मार्गके दोनों ओर दो दो सुन्दर नाट्यशालाएं थीं और दो दो ही धूपघट रक्खे हुए थे ॥५५॥ मार्गोंके इधर उधर दो भागोंके बीचमें कल्पवृक्षोंके वन थे जो कि अपनी कांतिसे आकाशको प्रकाशित कर रहे थे और बड़े ही मनोहर थे ॥५६॥ उन वनोंमें मालांग वस्त्रांग भूषणांग ज्योतिरांग और दीपांग आदि जातिके कल्पवृक्ष थे जोकि ऊंचे थे, छायावाले थे और फलोंसे शोभायमान थे ॥ ५७ ॥ वृक्षोंके फल आभरण थे, पत्ते वस्त्र थे और मालाएं शाखानोंपर लटक रही थीं इस प्रकार वे वृक्ष सर्व पदार्थमय थे ॥ ५८ ॥ उन वनोंके भीतर सिद्धार्थ वृक्ष थे जिनपर श्रीसिद्ध भगवानकी प्रतिमाएं विराजमान थीं जो बड़े ही मनोहर थे ऊंचे थे और सूर्यके समान दैदीप्यमान थे ॥ ५९ ॥ इन सिद्धार्थ वृक्षोंकी सब रचना चैत्यवृक्षके समान समझनी चाहिये अन्तर केवल इतना ही है कि ये कल्पवृक्ष हैं और अपने मनके संकल्पके अनुसार पदार्थोंको देनेवाले हैं ॥ ६० ॥ अशोक सप्तपर्ण चंपक और आम्र ये चार चैत्यवृक्ष हैं ये चैत्यवृक्ष सबके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं चार चार महा दरवाजोंसे सोभायमान तीन तीन कोटोंसे घिरे हुए हैं, घंटा, चमर, भृङ्गार, कलश आदि मंगल द्रव्योंसे शोभायमान हैं, माणिक्यके पत्र बने हुए हैं इनके मस्तकपर तीन छत्र फिर रहे हैं, सुवर्णकी महा शाखाएं हैं, पद्मराग मणियोंके पुष्प हैं, इनके नीचेके भागमें चारों दिशाओंमें भगवान जिनेंद्रदेवकी प्रतिमाएं विराजमान हैं जिनकी इन्द्र नरेन्द्र विद्याधर सब पूजा करते हैं सब स्तुति करते और सब नमस्कार करते हैं ॥ ६१-६४ ॥ वनोंके चारों ओर वन वेदी थीं जो चार बड़े दरवाजोंसे शोभायमान थीं और सुवर्ण तथा रत्नोंकी बनी हुई थीं ॥ ६५ ॥ इनके दरवाजोंपर घंटाओंके समूह लटक रहे थे और मोतियोंकी मालाएं शोभायमान हो रही थीं ॥ ६६ ॥ इन वेदियोंके दरवाजे चांदीके बने हुए थे, और अष्ट मंगलद्रव्य, संगीत, वाद्य, नृत्य, रत्नोंके आभूषण तथा तोरणोंसे शोभायमान थे ॥ ६७ ॥ उन वेदियोंके आगे दो दो मार्गोंके बीचमें सुवर्णके खंभोंपर फहराती हुई अनेक प्रकारकी ध्वजाओंकी पंक्तियां शोभायमान थीं वे ध्वजाओंके स्तंभ मणिओंके पीठोंपर विराजमान थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों भगवानके मोहरूपी शत्रुकी विजयको कहनेकी तैयारीके लिए ही अच्छी तरह खड़े हों ॥ ६८-६९ ॥ सिद्धा-

चैत्यवृक्ष, कोट बनकी वेदी, स्तूप, तोरण, मानस्तंभ, ध्वजा, और स्तंभोंकी उंचाई भगवानके शरीरकी उंचाईसे बारह गुनी होती है और चौड़ाई इनके अनुसार समझ लेनी चाहिये इसीप्रकार बन भवन और पर्वतोंकी भी उंचाई आगमको जाननेवाले मुनिराजोंने इतनी ही (शरीरकी ऊंचाईसे बारह गुनी) बतलाई हैं ॥७०-७२॥ पर्वतोंकी चौड़ाई उंचाईसे आठगुनी है और स्तूपोंकी चौड़ाई उंचाईसे कुछ अधिक समझनी चाहिये ॥ ७३ ॥ वेदी आदिकी चौड़ाई उंचाईसे चौथाई है यह सब लंबाई चौड़ाई बारह अंगोंको जाननेवाले गणधरदेवोंने बतलाई हैं ॥ ७४ ॥ इन वनोंमें कहीं नदियां थीं कहीं बावड़ियां थीं कहीं बालूके ढेर थे और कहीं सभाभवन बने हुए थे ॥ ७५ ॥ इन वनोंके बाद वनकी वेदी थी जो कि पहिली वेदीके समान थी सुवर्णकी बनी हुई थी और बड़ों दरवाजोंसे सुशोभित थी ॥७६॥ इस वनकी वेदीके आगे वनके चारों ओर अनेक भवनोंकी पंक्तियां थीं जोकि देव शिल्पकारोंकी बनाई हुई थीं ॥ ७७ ॥ ये सब भवन ऊंचे थे सुवर्णके खंभे इनमें लगे हुए थे इनका बंधन वज्रका बना हुआ था चंद्रकांतकी दीवालें थीं और अनेक रत्नोंसे जड़ी हुई थीं ॥ ७८ ॥ वे भवन कोई द्विमंजिले थे कोई तिमंजिले थे और कोई चार मंजिलके थे। किन्हींमें चंद्रशालायें बनी हुई थीं और किन्हींमें टेढ़े खंभे लगे हुए थे ॥ ७९ ॥ उनमें कहीं कूटागार कहीं पर सभाभवन और कहींपर प्रदर्शन भवन थे। किन्हींमें शय्या और ऊंचे आसन पड़े हुए थे, और मनोहर सीढ़ियां लगी हुई थीं ॥ ८० ॥ उन भवनोंमें देव गंधर्व, देवांगनायें और विद्याधर संगीत नृत्य वाद्य और कथाओंसे भगवानकी आराधना करते थे ॥ ८१ ॥ इन्हींके बराबर मार्गोंमें नौ नौ स्तूप थे जोकि पद्मराग मणियोंके बने हुये थे बहुत ऊंचे थे उनपर छत्र फिर रहे थे और बहुत सुन्दर बने हुये थे ॥ ८२ ॥ उन स्तूपोंपर सिद्ध भगवान और अरहंतदेवकी प्रतिमायें विराजमान थीं वे तेजकी राशिके समान थे और मंगलद्रव्योंसे परिपूर्ण थे उन स्तूपोंमें परस्पर एक दूसरेके साथ रत्नोंके तोरणोंकी मालायें लगी हुई थीं जोकि इन्द्र धनुषके समान शोभायमान थीं और आकाशरूपी आंगनको अनेक रंगका बना रही थीं ॥ ८४ ॥ वहीं पर देव और मनुष्य भगवानको प्रतिमाओंका अभिषेककर पूजाकर स्तुति करते थे और उनकी प्रदक्षिणा

देकर पुण्य उपार्जन करते थे ॥ ८५ ॥ स्तूप और भवनोंकी पंक्तिकी पृथ्वीके आगे चलकर नभस्फटिक नाम का कोट था जोकि शुद्ध स्फटिक रत्नोंका बना हुआ था ॥ ८६ ॥ पहिलेके समान इसमें भी पद्मराग मणियोंके बने हुये चार बड़े दरवाजे थे तथा मंगलद्रव्य और निधियां रक्खी हुई थीं ॥ ८७ ॥ पंखा, मंगल-छत्र, चमर, ध्वजा, दर्पण, सुप्रतिष्ठ, भृंगार और कलश ये मंगलद्रव्य प्रत्येक दरवाजे पर थे ॥ ८८ ॥ सब कोटोंके प्रत्येक दरवाजेपर हाथमें गदा आदि शस्त्र लिए हुए देव बैठे हुए थे। पहिले कोटके दरवाजोंपर व्यंतरदेव थे, दूसरे कोटके दरवाजोंपर भवनवासी थे और तीसरे कोटके दरवाजोंपर कल्पवासी देव थे ॥८९॥ उस नभःस्फटिक कोटसे लेकर भगवानकी पहिली पहिली पीठिका तक लगी हुई सोलह दीवालें थीं जो आकाशके समान स्फटिककी बनी हुई थीं और बहुत ही निर्मल थीं ॥ ९० ॥ उन दीवालोंके ऊपर आकाश के समान स्फटिक मणियोंका बना हुआ श्रीमंडप था जोकि बहुत बड़ा था रत्नोंके खंभोंपर बना हुआ था और बड़ी भारी शोभासे सुशोभित था ॥ ९१ ॥ उस श्रीमंडपके मध्यभागमें पहिली पीठिका थी जो बहुत शोभायमान थी वैडूर्य मणियोंकी बनी हुई थी और तेजोमय पर्वतके समान सुशोभित थी ॥ ९२ ॥ उस पीठिकापर समान अन्तरसे सोलह जगह सीढ़ियां थीं जो कि सभाके कोठोंमें प्रवेश करनेकेलिए सब महा दिशाओंमें बनी हुई थीं और बहुत ही चौड़ी थीं ॥ ९३ ॥ अष्ट मंगलद्रव्य और यक्षोंके मस्तकोंपर रक्खे हुए तथा एक हजार आरोंके बने हुए धर्मचक्र उस पहिली पीठिकाकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ९४ ॥ उस पीठि-काके ऊपर दूसरा पीठ था जो सुवर्णका बना हुआ था और उसकी आठोंदिशाओंको और आठ प्रकारकी महा ध्वजायें फहरा रहीं थीं ॥ ९५ ॥ उन आठों प्रकारकी ध्वजाओंपर सिद्धोंके आठों गुणोंके समान अनुक्रमसे चक्र, हाथी, वृषभ, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और मालाओंके चिन्ह शोभायमान थे ॥ ९६ ॥ उस दूसरे पीठके ऊपर तीसरा पीठ था जो कि दैदीप्यमान रत्नोंकी कांति अन्धकारका नाशकर रहा था निर्मल था सब रत्नोंका बना हुआ था और बहुत ही सुन्दर था ॥ ९७ ॥ इस तीसरे पीठकी तीन कटनियां थीं यह पीठ बहुमूल्य मणियोंसे बना हुआ था, सुमेरु पर्वतके शिखरके समान ऊंचा था और निकलती हुई

किरणोंकी शोभासे शोभायमान था ॥ ६८ ॥ इन तीन कटनीवाले तीसरे पीठके ऊपर गंधकुटी शोभायमान थी जो कि सुवर्णकी जालियोंसे मोतियोंकी जालियोंसे और अन्य अनेक शोभाओंसे शोभायमान थी अत्यन्त शुभ थी मनुष्यमालाओंसे व्याप्त थी, किरणोंके समूहसे भरपूर थी, तेजके समूहसे ही क्या मानों बनी हुई था और धूपके धूएंसे सब दिशाओंको सुगंधित कर रहीं थीं ६६-१०० ॥ उस गंध कुटीके ऊपर सुवर्णका बना हुआ बहुत ऊंचा दिव्य सिंहासन था जो कि रत्नोंके समूहसे जड़ा हुआ था और अपनी कांतिसे आकाशको प्रकाशित कर रहा था ॥ १ ॥ उस सिंहासन पर जगतगुरु भगवान शांतिनाथ अपनी महिमासे उस सिंहासनके तलभागको बिना छूए उससे चार अंगुल ऊंचे विराजमान थे ॥ २ ॥ उस समय उनकी अनन्त महिमा थी, कांति करोड़ सूर्यसे भी अधिक थी, वे उपमा रहित थे, अत्यन्त शांत थे, सबसे बड़े थे और समस्त ऋद्धियोंके समुद्र थे ॥ ३ ॥ उस समवसरणमें आकाशसे देवोंके हाथोंके द्वारा कल्पवृक्षोंके फूलोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ४ ॥ भगवानके पास ही अशोकवृक्ष शोभायमान था जो कि बहुत ऊंचा, मणियोंके पुष्पोंसे व्याप्त, लोगोंका शोक दूर करनेवाला, महान् और मरकत मणियोंके पत्तोंसे सुशोभित था ॥ ५ ॥ भगवानके ऊपर तीन छत्र शोभायमान थे जो कि तीन चन्द्रमाओंके समान जान पड़ते थे, उनका महादंड रत्नोंका बना हुआ था और मोतियोंकी मालाएं उनपर लटक रही थीं ॥ ६ ॥ भगवानपर यक्षोंके हाथोंके द्वारा अत्यंत श्वेत और तरङ्गोंके समान चौसठ चमर ढुलाये जा रहे थे जिनसे उनकी शोभा बहुत ही अच्छी हो गई थी ॥ ७ ॥ देवोंके हाथोंसे बजते हुए देवोंके दुन्दुभी बाजे बज रहे थे जो कि नगाड़े और पणव आदिके शब्दोंसे सब दिशाओंको बहिरी बना रहे थे ॥ ८ ॥ अन्धकारको नाश करनेवाला भगवानका भामंडल भी ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों रत्न, सूर्य, चन्द्रमा, और देवोंको जीतकर तेजका समूह ही एक जगह इकट्ठा हो गया हो ॥ ९ ॥ भगवानके मुखसे मनोहर दिव्यध्वनि निकल रही थी जो कि संसारभरका हित करनेवाली थी, मोक्षमार्गको प्रकाशित करती थी अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करती थी और समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करती थी ॥ १० ॥ जिसप्रकार मेघका जल संयोग पाकर अनेक प्रकारका हो जाता है उसी-

प्रकार वह भगवान अनत्तरी वाणी मनुष्योंकी अनेक भाषारूप परिणत हो जाती थी ॥ ११ ॥ इसप्रकार आठों प्रातिहार्योंसे शोभायमान भव्यजीवोंके मध्यमें विराजमान और समस्त ऐश्वर्यमय भगवान शांतिनाथ ऐसे अच्छे सुशोभित होते थे मानों तेजका पुंज ही हो ॥ १२ ॥

अथानन्तर——इन्द्रादिक देवोंने अत्यन्त शोभायमान कुवेरके द्वारा वनाया हुआ और समस्त संसारकी ऋद्धियोंके एक घरके समान वह समवसरण दूरसे ही देखा। देखते ही प्रसन्न चित्त होकर उन्होंने जय २ शब्द कहे, उनकी तीन प्रदक्षिणा दी और फिर वे भगवानके दर्शन करनेके लिये बड़ी प्रसन्नतासे उस समवसरणमें गये ॥ १३-१४ ॥ समवसरणमें प्रवेश करते ही (भगवानको देखते ही) उनके हृदयमें कल्पनाएं उठने लगीं कि यह पुण्य परमाणुओंका समूह है ? वा केवलज्ञानरूपी श्रेष्ठ ज्योति ही बाहर निकल आई है ? अथवा यह भगवानका प्रताप है ? वा तेजकी निधि है ? अथवा यह यशकी राशि है ? वा साक्षात् भगवान तीन लोकके नाथ हैं ? इसप्रकार कल्पना करते हुए सौधर्म इन्द्रने सब इन्द्रोंके देवोंके और देवियोंके साथ गणधरोंसे घिरे हुए और चतुर्मुख विराजमान भगवान शांतिनाथके दर्शन किये ॥ १५-१७ ॥ शक्ति और रागके वशीभूत हुए स्वर्गोंके इन्द्रोंने मोक्ष प्राप्त करनेके लिए देव देवियोंके साथ अपने हाथ जोड़कर मस्तकपर रक्खे, जगतगुरु भगवानकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं नवकर घोटूं तथा जानुओंको पृथ्वीसे लगाया और मुकुटसे सुशोभित अपने मस्तकको झुकाकर बड़ी भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया ॥ १८-१९ ॥ तदनन्तर इन्द्रोंने अपने सब परिवारके साथ उठकर बड़ी भक्तिसे भगवानके चरण कमलोंकी महती पूजा की ॥२०॥ उन्होंने रत्नोंके भृंगारकी नालसे निकले हुए जलकी सफेद धारासे समस्त दिशाओंको सुगंधित करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ गंधसे अथवा स्वर्गके सुगंधित द्रव्योंसे मोतियोंके बने हुए अक्षतोंसे, कल्पवृक्षोंपर उत्पन्न हुए अनेक रंगके फूलोंकी मालाओंसे अमृतपिंडके बने हुए नैवेद्यसे, अन्धकारको नाश करनेवाले रत्नोंके दीपकोंसे दिव्यधूपसे, मनोहर फलोंसे और पुष्पांजलिसे भगवानकी पूजा की ॥ २१-२३ ॥ उन्होंने भगवानके सामने अपनी २ इंद्रानियोंके साथ अपने हाथसे रत्नोंके चूर्णकी आश्चर्य करनेवाली विचित्र वलि वना-

कर समर्पण की ॥ २४ ॥ इसप्रकार उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवानकी पूजा की, बार बार उन्हें नमस्कार किया और फिर अपने हृदयको भगवानके गुणोंमें लगाकर अपने अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकपर रक्खे ॥ २५ ॥ तदनन्तर उन इंद्रोंने भक्तिके भारसे ही क्या मानो अपना मस्तक झुकाया और एकसौ आठ सार्थक नामोंसे वे भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ हे देव ! आप जगतके नाथ हैं, आप संसारसे प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं और आप ही एक हजार आठ नामोंसे प्रसिद्ध हैं ॥ २७ ॥ हे स्वामिन् ! हम लोग आपके सब नामोंकी स्तुति कर सकें ऐसी शक्ति अभी हममें नहीं है क्योंकि अभी तो हमारे घातिया कर्म विद्यमान हैं [बिना उनके नाश किए वह शक्ति आ ही नहीं सकती] ॥ २८ ॥ इसलिये हे जिन ! हम लोग कुछ थोड़ेसे ही श्रेष्ठ नामोंसे आपकी स्तुति करते हैं जिससे हमारा मन और हमारे वचन दोनों ही पवित्र हो जांय ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! आप १ सर्वज्ञ हैं, २ सर्ववित् [सबको जाननेवाले] हैं, ३ सार्व [सबका भला करनेवाले] है ४ सर्वदर्शी [सबको देखनेवाले] हैं, ५ निरंजन [पापरहित] हैं, ६ कर्मघ्न [कर्मोंको नाश करनेवाले] हैं, ७ मारजित् [कामदेवको नष्ट करनेवाले] हैं, ८ स्वामी हैं, ९ केवली हैं, और १० विश्वदर्शन हैं ॥ ३० ॥ आप जिनेन्द्र हैं १२ जितकर्मा हैं, १३ मुनीन्द्र हैं, १४ विगतस्पृह (इच्छारहित) हैं, १५ निर्मोह (मोहरहित) हैं, १६ निर्भेद (भेदरहित) हैं, १७ वाग्मी (वक्ता) हैं, १८ निर्मम (ममत्वरहित) हैं, और १९ विजितेन्द्रिय (इन्द्रियोंको जीतनेवाले) हैं ॥ ३१ ॥ आप २० तीर्थनाथ हैं, २१ ऋषीकेश हैं, २२ धर्मचक्री हैं, २३ विदांवर (जानकारोंमें सर्वश्रेष्ठ) हैं, २४ धर्मकर्ता हैं, २५ मुनियोंके स्वामी हैं, २६ अनन्त हैं और २७ विश्वबंधु हैं ॥ ३२ ॥ आप २८ निर्मल हैं, २९ निष्कल (शरीर रहित) हैं ३० धीर हैं ३१ जगन्नाथ हैं ३२ जगतगुरु ३३ विश्वव्यापी (केवलज्ञानद्वारा समस्त संसारमें व्याप्त) हैं ३४ दयामूर्ति हैं ३५ घातिघाती (घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले) हैं और ३६ गुणाकर [गुणोंकी खानि] हैं ॥ ३३ ॥ आप ३७ विश्वेश [संसारके स्वामी] हैं ३८ जगदाराध्य [समस्त संसारके द्वारा आराधन करने योग्य] हैं ३९ संघार्च्य (समस्त संघके द्वारा पूज्य) हैं ४० धर्मवत्सल हैं ४१ ध्यानी हैं ४२

मौनी हैं ४३ व्रती हैं ४४ दक्ष हैं ४५ संशमी (अत्यन्त शांत) हैं ४६ यमजित् [यमको जीतनेवाले] हैं और ४७ विजयी हैं ॥ ३४ ॥ आप निरौपम्य [उपमारहित] हैं ४९ निराबाध [सब तरहके दुखोंसे रहित] हैं ५० सकल [पूर्ण ज्ञानी वा सकलकेवली-शरीरसहित केवली] हैं ५१ प्रभु हैं ५२ अच्युत हैं ५३ आनन्द-स्वरूप हैं ५४ विश्वविद्येश [समस्त विद्याओंके स्वामी] हैं ५५ निष्प्रमाद (प्रमादरहित हैं) और ५६ निरामय (कामादि रोगोंसे रहित) हैं ॥ ३५ ॥ आप ५७ शुद्ध हैं ५८ बुद्ध हैं ५० वितर्क्यात्मा [जिनकी आत्मामें अनेक वितर्क किए जांय अनेक गुणवाले] हैं ६० विराग हैं ६१ जिननायक हैं ६२ जगतबंधु हैं ६३ जिनाधीश हैं ६४ कृती हैं ६५ धर्मी हैं और ६६ सुदिव्यवाक् [दिव्यध्वनिको धारण करनेवाले] हैं ॥ ३६ ॥ आप ६७ वागीश्वर [वाणीके ईश्वर] हैं ६८ जगतभर्त्ता हैं ६९ ॥ आराध्य [आराधन करने योग्य] हैं ७० संयमी हैं ७१ यमी हैं ७२ देवाधिदेव हैं ७३ महादेव हैं ७४ शंकर [कल्याण करनेवाले] हैं और ७५ सुखतन्मत [सुखरूप] हैं ॥ ३७ ॥ आप ७६ परमेष्ठी हैं ७७ नभोगामी [आकाशमें चलनेवाले] हैं ७८ कल्याण हैं ७९ अधिपति हैं ८० यति हैं ८१ देवर्षि हैं ८२ श्रीजिन हैं ८३ तुंग [सर्वोत्तम] हैं ८४ मुक्तिभर्त्ता हैं और ८५ बुधोत्तम [सर्वोत्तम विद्वान] हैं ॥ ३८ ॥ आप ८६ यतीश [यतियोंके स्वामी] हैं ८७ जिनशार्दूल [जिनसिंह वा जिनराज] हैं ८८ तत्त्ववित् [तत्त्वोंके जानकार] हैं ८९ तत्त्वदेशक [तत्त्वोंका उपदेश देनेवाले] हैं ९० अरजा [ज्ञानावरणादि कर्मरहित] हैं ९१ जितमात्सर्य (ईर्षारहित) हैं ९२ सुतपा [श्रेष्ठ तपश्चरण करनेवाले] हैं और ९३ ऋषिनायक हैं ॥ ३ ॥ आप ९४ महातेजा [अत्यन्त तेजस्वी] हैं ९५ विचारज्ञ हैं ९५ विवेकी हैं ९७ ज्ञानपारग [ज्ञानके पारगामी] हैं ९८ मोहारिजित् [मोहरूपी शत्रुको जीतनेवाले] हैं ९९ जगतज्येष्ठ (संसारमें सबसे बड़े) हैं १०० मुनीश हैं और १०१ जितदुष्कृत [पापोंको जीतनेवाले] हैं ॥ ४० ॥ आप १०२ विश्वज्ञ (समस्त संसारको जाननेवाले) हैं १०३ त्रिजगत स्वामी (तीनों लोकोंके स्वामी] हैं १०४ कामदेव हैं १०५ सुकामद (इच्छापूरी करनेवाले-इच्छानुसार देनेवाले) हैं १०६ त्रिकालवित् हैं १०७ त्रिलोकेश (तीनों लोकोंके स्वामी) हैं और आप

ही १०८ पदत्रयविभूषित (तीर्थंकर चक्रवर्ती और कामदेव तीनों पदोंसे विभूषित) है ॥ ४१ ॥ हे नाथ ! इस स्तुतिके फलसे परलोकमें तो हमें आपकी सब विभूति प्राप्त हो और इस लोकमें बहुत शीघ्र रत्नत्रयकी प्राप्ति हो ॥ ४२ ॥ हे देव ! गणधरदेव आपके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं, आप ज्ञानरूपी समुद्रके पारंगत हैं, आप तीनो लोकोंमें पूज्य हैं, आप सर्वदर्शी हैं, जिन हैं, सुखरूपी समुद्रके मध्यमें विराजमान हैं, अनन्त वीर्यको धारण करनेवाले हैं और आप ही तीनों लोकोंको पार कर देनेके लिये एक अद्वितीय चतुर हैं इसलिये हे देव ! आप इस संसारसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार इन्द्रोंने बड़े आनन्दसे भगवानके सामने खड़े होकर उनकी स्तुति की। मस्तक नवाकर बार बार नमस्कार किया और फिर अपने २ योग्य स्थानमें जा विराजमान हुए ॥४४॥ समवशरणमें चारों दिशाओं में चार मार्ग थे, उनको छोड़कर बाकीके जो चार कौन वा टुकड़े थे उनमें प्रत्येक टुकड़े में तीन तीनके हिसाब से सब मिलाकर बारह कोठे थे ॥ ४५ ॥ उनमें पूर्व दिशाके पहिले कोठेमें मुनिराज थे, दूसरेमें कल्पवासिनी देवियां थीं, तीसरेमें अर्जिका और श्राविकाएं थीं, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवांगनाएं थीं, पांचवेंमें व्यंतरी देवियां थीं, छट्ठेमें भवनवासिनी देवियां थीं, सातवेंमें भवनवासी देव थे, आठवेंमें व्यन्तर देव थे, नौवेंमें ज्योतिषी देव थे, दशवेंमें कल्पवासी देव थे, ग्यारहवेंमें मनुष्य थे और बारहवेंमें पशुगण थे। इसप्रकार अनुक्रमसे ये जीव बैठे हुए थे ॥ ४६-४७ ॥ इसप्रकार बारह प्रकारका संघ सब अपने २ कोठेमें बैठा हुआ था, सब भगवानका भक्त था, धर्मात्मा था और श्रीजिनेन्द्र देवकी दिव्यध्वनिको सुननेकी इच्छा रखता था ॥ ४८ ॥ यह बारह प्रकारका संघ तत्वोंके सुननेकी इच्छा रखता है यही जानकर बुद्धिमान चक्रायुध गणधरदेव उठे, हाथ जोड़कर भगवानके सामने खड़े हुए और तत्वोंके पूछनेके बहानेसे ही मनोहर वाणीसे भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ ४९-५० ॥ हे देव ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं, गुरुओंके भी महागुरु है, आप दुःखसे डरे हुए लोगोंके संरक्षक हैं और आप ही सज्जनोंके लिए धर्मोपदेशक हैं ॥ ५१ ॥ हे स्वामिन् ! ज्ञानावरण कर्मके नष्ट होनेसे लोक अलोकमें फैली हुई और समस्त तत्वोंको प्रकाशित

करनेवाली आपकी ज्ञानरूपी ज्योति आज बहुत ही अच्छी शोभायमान है ॥ ५२ ॥ हे जगत गुरु ! आपका केवल दर्शन लोक अलोक दोनों आकाशोंमें व्याप्त होकर अनंत पदार्थोंको हाथ रेखाके समान प्रकाशित करता है ॥ ५२ ॥ हे जिनेन्द्र ! अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे प्रकट हुआ तथा छेद आदिसे रहित आपका अनन्त महावीर्य समस्त लोकको उल्लङ्घनकर विराजमान है ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! आपका अनन्त सुख भी बड़ा ही विचित्र है, वह आत्मासे उत्पन्न हुआ हैं, अन्तरहित है, उपमारहित है, अव्याबाध (सब तरह की बाधाओंसे रहित) हैं, अतीन्द्रिय है और अत्यन्त निर्मल है ॥ ५५ ॥ हे देव ! आपके अनुग्रहसे भव्य जीव आपका धर्मोपदेश सुनकर तपश्चरणके द्वारा कर्मोंको नष्टकर शाश्वत मोक्षपदमें विराजमान होते हैं ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! जिस प्रकार जहाजके बिना समुद्रसे पार नहीं हो सकते उसीप्रकार हे यतीश ! आपके बिना इस संसाररूपी कूएसे मनुष्योंको कोई नहीं निकाल सकता ॥ ५७ ॥ हे नाथ इन भव्यरूपी खेतोंके मुंह पापरूपी सूर्यकी गर्मीसे मुरझा गए हैं इनसे बहुतसे फल प्राप्त करनेके लिए धर्मोपदेशरूपी अमृतसे इनका सिंचन कीजिए ॥ ५८ ॥ हे देव जिसप्रकार प्यासे दुखी चातक मेघसे जल चाहते हैं उसीप्रकार ये भव्यजीव मोक्ष प्राप्त करनेके लिए आपसे दिव्यध्वनिरूपी अमृतको चाह रहे हैं ॥ ५९ ॥ हेस्वामिन् जबतक आपका ज्ञानरूपी सूर्य उदय नहीं होता तबतक ही मनुष्योंके हृदयमें प्रशस्त मोक्ष मार्गको रोकनेवाला अज्ञान रूपी अन्धेरा बना रहता है ॥ ६० ॥ हे विभो आप बिना ही कारण के जगतबन्धु हैं। आप लोकके एक अद्वितीय पितामह हैं और आप ही संसारमात्रको संतुष्ठ करनेवाले असमयमें होनेवाले मेघ हैं ॥ ६१ ॥ हे तीर्थेश यद्यपि जगतको आश्चर्य करनेवाली विभूति आपके विराजमान है तथापि आप अपने शरीरसे भी अत्यन्त निस्पृह हैं। हे देव यह बात बड़ी हो आश्चर्य प्रकट करने वाली और लड़ी ही अद्भुत है ॥ ६२ ॥ यद्यपि आप बाहरसे उपमारहित भोगोपभोगसे सुशोभित हैं तथापि अन्तरंग में वीतराग ही हैं यह बात सबसे अधिक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥ ६३ ॥ हे देव आप ही सज्जनोंका अनुग्रह करनेमें चतुर हैं इसलिये जगन्नाथ मोक्ष सिद्ध करनेके लिए इन भव्यजीवों पर अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा अनुग्रह कीजिए

॥ ६६ ॥ हे प्रभो जन्म मृत्यु जरा आदिकी जलनको दूर करनेके लिए आपके वचनरूपी श्रेष्ठ अमृतको पीने के लिए हम सब सज्जनोंकी बड़ी ही इच्छा हो रही है ॥ ६५ ॥ इसलिए हे तीर्थराज आप कृपाकर समस्त तत्वोंको और मोक्षके मार्गको निरूपण कीजिए क्योंकि आप करुणा सागर हैं ॥६६॥ इसप्रकार स्तुति और प्रश्न कर तथा नमस्कारकर चक्रायुध गणधरदेव भगवानके वचनरूपी अमृतको इच्छा करते हुए भक्तिपूर्वक अपने कोठोमें जा विराजमान हुए अथान्तर-गणधर देवके इसप्रकार प्रश्न करनेपर भगवान शांतिनाथ अपनी अत्यन्त गंभीर वाणीसे तत्वोंको सिद्ध करनेके लिए विस्तारपूर्वक धर्मका स्वरूप कहने लगे ॥ ६८ ॥ भगवान शांतिनाथकी दिव्य ध्वनि निकलते समय न तो उनके मुखकमलमें कोई किसी प्रकारका विकार हुआ था और न तालु ओठ आदिका किंचित् भी हलन चलन हुआ था ॥ ६९ ॥ जिसप्रकार किसी पर्वतकी गुफासे दैदीप्यमान प्रतिध्वनि प्रगट होती है उसी प्रकार वर्णोंको स्पष्ट प्रकट करने वाली वह अद्भुत दिव्य ध्वनि भगवान के मुखसे निकलने लगी ॥ ७० ॥ हे गणधर तुम अपने संघके साथ आगे कहे हुए जीवादि तत्वोंको उनके भेद और पर्यायोंके साथ अनुक्रमसे सुनो ॥ ७१ ॥ जिनागममें जीव, अजीव, आस्रव, बंध; संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व बतलाये गये हैं ॥ ७२ ॥ इनमेंसे जीव दो प्रकारका है एक मुक्त और दूसरा संसारी। मुक्त जीवोंमें कोई भेद नहीं होता। संसारी जीव दो प्रकारके हैं एक त्रस और दूसरे स्थावर ॥ ७३ ॥ जो आठों कर्मोंसे रहित हैं, आठों गुणोंसे सुशोभित हैं, जगतबंद्य हैं, सुखसागरमें विराजमान हैं और लोकके ऊपर निवास करते हैं वे सिद्ध वा मुक्त कहलाते हैं ॥७४॥ पृथ्वी कायिक सात लाख, जलकायिक सात लाख अग्निकायिक सात लाख, वायुकायिक सात लाख, नित्यनिगोद सात लाख, इतर निगोद सात लाख, बनस्पति दश लाख, दो इन्द्रिय दो लाख, तेइन्द्रिय दो लाख,: चतुइन्द्रिय दो लाख, नारकी चार लाख, तिर्यंच चार लाख, देव चार लाख और मनुष्य चौदह लाख, ये चौरासी लाख जीवोंकी जातियां हैं। तथा आयु शरीर आदिके भेदसे भगवानने इनके बहुतसे भेद बतलाये हैं ॥ इसीप्रकार सब जीवोंके कुलोंकी संख्या एकसौ साढे निन्यानबे करोड़ बतलाई है। पांच इन्द्रियां, मन, वचन, शरीर, आयु और श्वासच्छ्वास ये दश प्राण

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके होते हैं। इसीप्रकार मनके विना असैनी पंचेन्द्रियके नौ, मन और कर्ण इन्द्रियके विना चौइन्द्रियके आठ, मन कर्ण और चक्षुइन्द्रियके विना तेइन्द्रियके सात मन कर्ण चक्षु और नासिकाके विना दो इन्द्रिय जीवोंके छह और मन कर्ण, चक्षु, नासिका, रसना वचन वलके विना एकेंद्रियके वाकीके चार प्राण होते हैं। ये प्राण ही जीवोंके जीवनके कारण हैं ॥ ७९ ८० ॥ आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन ये छह पर्याप्ति कहलाती हैं। मुनिराजोंने संगी [सैनी] पंचेंद्रियके ये छहों पर्याप्तियां बतलाई हैं ॥ ८१ ॥ दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय और असैनी पंचेंद्रियके मनके विना पांच पर्याप्ति बतलाई हैं और एकेंद्रिय जीवोंके भाषा और मनके विना चार पर्याप्ति श्रीजिनेन्द्रदेवने] कही हैं ॥ ८२ ॥ मिथ्यात्व, सासादन मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टी, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त संयत अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतकषाय, क्षीण कषाय, सयोगि केवली, अयोगि केवली, ये चौदह गुणस्थान भगवान जिनेंद्रदेवने बतलाये हैं ॥ ८३-८५ ॥ ये चौदह गुणस्थान मोक्षकी सीढियां हैं और गुणोंकी स्थितिके भेदसे भव्यजीवोंके गुणोंको बढ़ानेवाले हैं ॥ ८६ ॥ गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य सम्यक्त्व, संज्ञी आहार ये चौदह मार्गणाएं कहलाती हैं। इनके द्वारा जीवोंके जानकार विद्वान जीवोंको पहिचाना करते हैं ॥ ८७-८८ ॥ सेनी पंचेंद्रिय असैनी पंचेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, एकेंद्रिय सूक्ष्म, एकेंद्रियवादर ये सात पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे चौदह जीव समास वा जीवोंके चौदह भेद कहलाते हैं। ये चौदह भेद जीवोंकी जातियोंसे [एकेन्द्रिय आदि जातियोंसे उत्पन्न होते हैं ॥८३-९०॥ जो संसारमें पहिले भी जीवित था, अब भी जीवित है और आगे भी सदा जीवित रहेगा उसको जीव कहते हैं वह नित्य है और अनित्य भी है ॥ ९१ ॥ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, चक्षुज्ञान, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, ये सब समस्य संसारी जीवोंके रहनेवाले वैभाविक गुण हैं तथा केवलज्ञान, और केवलदर्शन ये दो स्वाभाविक गुण हैं ॥९२-॥ व्यवहारनयसे यह जीव कर्मोंका कर्ता है और अनेक प्रकारके सुख दुखरूप उनके फलोंको भोक्ता है। निश्चय नयसे न वह

कर्मोंका कर्ता है और न उनके फलोका भोक्ता है ॥ ६४ ॥ व्यवहार नयसे यह जीव मूर्त है और सदा संसारमें परिभ्रमण किया करता है परन्तु निश्चय नयसे यह जीव अमूर्त है और न संसारमें परिभ्रमण करता है। निश्चयनयसे यह जीव शुद्ध चैतन्य स्वरूप है ॥ ६५ ॥ इस जीवके प्रदेशोंमें दीपकके प्रकाशके समान संकुचित होने और विस्तृत होनेकी शक्ति है इसलिए वह सातों समुद्घातोंके विना सदा कर्मानुसार प्राप्त हुए छोटे बड़े शरीरके प्रमाणके ही समान रहता है ॥ ६६ ॥ विद्वान लोगोंने पर्यायकी अपेक्षासे उत्पाद और व्ययस्वरूप भी बतलाया है परन्तु निश्चयनयसे यह सदा असंख्यात प्रदेशी है ॥ ६७ ॥ कर्मोंके नष्ट होजानेपर यह जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेके कारण ऊपरको ही जाता है परन्तु कर्मसहित होनेपर पराधीन होकर चारों गतियोंमें परिभ्रमण करनेकेलिये सब दिशाओंमें गमन करता है ॥ ६८ ॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले जीवोंको मोक्ष प्राप्त करनेकेलिए रागद्वेष आदि सब विकारोंको नष्ट कर यह जीव द्रव्य ही उपादेय ग्रहण करने योग्य होता है। अन्य संसारी जीव संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवको उपादेय नहीं समझते ॥ ६६ ॥ इसलिए ज्ञानी पुरुषोंको अपने ज्ञानके द्वारा तथा तपश्चरण और रत्नत्रयरूपी शास्त्रोंके द्वारा कर्मोंको नष्टकर शीघ्र ही अपने आत्माको इस शरीरसे अलग करलेना चाहिए ॥ २०० ॥ इसप्रकार जीव तत्वके व्याख्यानसे समस्त सभासदोंको आनन्द उत्पन्न कराकर वे भगवान फिर अजीव तत्वोंका व्याख्यान करने लगे ॥ २०१ ॥ बुद्धिमानोंने अङ्ग पूर्वोंमें धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल यह पांच प्रकारका अजीव तत्व बतलाया है ॥ २ ॥ जिसप्रकार मछलियोंके चलनेमें पानी सहायक होता है उसीप्रकार जो जीव और पुद्गलोंके चलनेमें सहायक होता है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं यह धर्म द्रव्य नित्य है, अमूर्त है और गुणी है ॥ ३ ॥ जिसप्रकार पथिकोंको ठहरनेमें छाया सहायक होती है उसीप्रकार जो जीव पुद्गलोंको ठहरनेमें सहायक है वह अधर्म द्रव्य है। वह अधर्म द्रव्य भी अमूर्त है नित्य है और गुणी है ॥ ४ ॥ जो जीवादि द्रव्योंको जगह दे वह आकाश है लोक अलोकके भेदसे उसके दो भेद हैं वह अमूर्त है नित्य है और महान् वा व्यापक है ॥ ५ ॥ जीव पुद्गल धर्म अधर्म

और काल ये पांच द्रव्य जितने आकाशमें विद्यमान हैं उसको लोकाकाश कहते हैं और उससे आगे चारों और जो अनंत आकाश पड़ा हुआ है उसको अलोकाकाश कहते हैं ॥ ६ ॥ जो द्रव्योंको नवीनसे पुरानेरूप में परिवतन होनेका कारण है और जो घड़ी घंटा दिनरूप है उसको व्यवहार काल कहते हैं ॥ ७ ॥ आकाशके एक २ प्रदेशपर कालका एक २ परमाणु रत्नोंकी राशिके समान अलग २ स्थिर है उन सब असंख्यात कालाणुओंको निश्चयकाल कहते हैं ॥ ८ ॥ धर्म अधर्म एक जीव और लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं पुद्गलके प्रदेश अनेक प्रकार हैं संख्यात असंख्यात अनंत हैं परन्तु कालका एक ही परमाणु है इसलिए कालको छोड़कर बाकीके द्रव्य काय कहलाते हैं। उन्हीं पांचोंको पंचास्तिकाय कहते हैं ॥ ९-१० ॥ जो स्पर्श रस गंध वर्ण सहित है और इसलिये जो मूर्त है उसको पुद्गल कहते हैं। यह पुद्गल ही सदा जीवों को सुख दुःख देता रहता है ॥ ११ ॥ इस पुद्गलके छह भेद हैं। सूक्ष्म सूक्ष्म जैसे एक परमाणु, २ सूक्ष्म जैसे कर्मोंका समूह, ३ सूक्ष्मस्थूल जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, ४ स्थूल सूक्ष्म जैसे छाया, चांदनी, धूप, आदि, ५ स्थूल जैसे जल ६ स्थूल स्थूल जैसे पृथ्वी, पर्वत, आदि ॥ १२ ॥ इसप्रकार भगवान पांचों अजीव तत्वोंका अलग २ निरूपणकर फिर बुद्धिमानोंके लिए बाकीके तत्वोंका निरूपण करने लगे थे ॥ १४ ॥ आत्माके जिन भावोंसे कर्म आते हैं उनको भावास्रव कहते हैं और कर्मोंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं ॥ १५ पांच मिथ्यात्व पांच अव्रत, पन्द्रह प्रमाद, पच्चीस कषाय, पंद्रह योग ये सब भावास्रवके भेद हैं भगवान जिनेन्द्रदेवने ये सब त्याज्य बतलाये हैं ॥ १६-१७ ॥ सबसे पहिले शुभ धर्मध्यानसे पापकर्मोंके आस्रव का त्याग करना चाहिये और फिर मुनियोंको शुक्लध्यानके द्वारा शुभ कर्मोंके आस्रवका भी त्याग करना चाहिये ॥ १८ ॥ जीवोंके जिन रागादिक परिणामोंसे प्रतिसमय कर्म बन्धते रहते हैं उसे भगवानने भावबंध बतलाया है जो जीवके प्रदेश और कर्म परमाणुओंका परस्पर सम्बन्ध होता रहता है उसको द्रव्यबंध कहते हैं यह द्रव्यबन्ध शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके दुख देनेवाला बतलाया है ॥२०॥ वह बन्ध चार प्रकारका है प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध इनमेंसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध मन वचन

कायकी क्रियारूप योगोंसे होता है और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबन्ध कषायोंसे होता है ॥ २१ ॥ यद्यपि पाप कर्मोंकी अपेक्षा पुण्यबन्ध ग्रहण करने योग्य है क्योंकि वह सुख देनेवाला है परन्तु वह सुख वास्तविक सुख नहीं है इसलिये ज्ञानियोंको बह भी त्याग करने योग्य ही है ॥ २२ ॥ जो आत्माका परिणाम कर्मोंके आस्रवको रोकनेवाला है उसको भाव सम्बर कहते हैं और जो कर्मोंका रुक जाना नहीं आना है उसको द्रव्यसंवर कहते हैं ॥ २३ ॥ पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षायें, बाईस परीषहजय और पांच प्रकारका संयम वा चारित्र ये सब भावसंवरके कारण हैं ॥ २४-२५ ॥ इसलिये मन और इन्द्रियोंको कछवेके समान अपने वशमें कर मोक्ष प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक चारित्र पालन कर संवर धारण करना चाहिये ॥ २७ ॥ निर्जरा दो प्रकारकी है एक सविपाक और दूसरी अविपाक। सविपाक निर्जरा कर्मोंके उदयसे होती है और अविपाक निर्जरा तपश्चरणसे होती है ॥ सविपाक निर्जरा बिना ही प्रयत्नके होती है और सब जीवोंके होती है इसलिये वह त्याज्य है तथा दूसरी अविपाक निर्जरा मुनियोंके होती है मोक्ष देनेवाली है इसलिये वह ग्रहण करने योग्य है ॥ २८ ॥ जो रत्नत्रयके द्वारा व तपश्चरणके द्वारा प्रयत्नपूर्वक जीव पुद्गलका संबन्ध अलग हो जाता है (समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है) उसको मोक्ष कहते हैं वह मोक्ष अनन्त सुख देनेवाली है ॥ २९ ॥ जिसप्रकार पैरसे मस्तक तक बन्धे हुए पुरुषको छोड़ देनेसे अत्यन्त सुख होता है उसीप्रकार कर्मोंके नाश होनेसे सज्जनोंको अनन्त सुख प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ इसलिए चतुर पुरुषोंको अनन्त सुख प्राप्त करनेके लिए बड़े प्रयत्नसे कठिन तपश्चरण पालन कर बहुत शीघ्र सदा रहनेवाली मोक्ष सिद्ध कर लेनी चाहिए ॥ ३१ ॥ इसप्रकार भगवान शांतिनाथने सभासदोंको उनका सम्यग्दर्शन विशुद्ध करनेकेलिये बहुत विस्तार और भेदोंके साथ ऊपर लिखे अनुसार सातों तत्वोंको निरूपण किया ॥ ३२ ॥ इन्हीं सातों तत्वोंमें पुण्य पाप मिलानेसे नौ पदार्थ हो जाते हैं। ये चेतन और अचेतनरूप नौ पदार्थ मनुष्योंको सम्यग्ज्ञानकी बृद्धि करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ इसके बाद भगवान शांतिनाथने समस्त जीवोंका उपकार करनेके लिए उस सभामें कुछ पुण्य पापके कारण बतलाए ॥३४॥ मिथ्यात्व, अव्रत,

अशुभ योग, पापोपदेश, कषाय, प्रमाद, सब प्रकारके कुटिल कर्म, राग, द्वेष, मद, उन्माद, दुःख शोक भय, अशुभ, ध्यान, व्यसन, बहुतसा आरम्भ, सब प्रकारके परिग्रह, पिशुनता (चुगलखोरी) कठोर भाषण, अशुभ चेष्टा, अशुभाचरण, परस्त्रीका संकल्प, अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी इच्छा, इत्यादि दुराचरणोंसे, तथा और भी ऐसे २ कामोंसे जीवोंके दुःखोंका एकमात्र कारण ऐसा विषम और घोर पाप उत्पन्न होता है ॥ ३५-३८ ॥ तदनन्तर तीनों लोकोंके स्वामी और विना ही कारणके बन्धु ऐसे भगवान शांतिनाथने सभासदोंको पापोंसे डरनेकेलिए अपनी दिव्य वाणीसे उन पापोंके फल बतलाये ॥ ३९ ॥ नरकमें उत्पन्न होना नीच पशु पक्षियोंमें उत्पन्न होना, अन्धा बहिरा होना अंग उपांगरहित होना रोगी व कुशीली (व्यभिचारी) होना नीच जाति व नीच कुलमें जन्म लेना कुरूपी व सबको बुरा लगनेवाला होना कुमरण होना दरिद्री निंद्य कातर (दीन लाचार) नीच होना कुमाता कुपिता दुष्ट स्त्री शत्रु भाई कुपुत्र नीच कन्याएं कुमित्र दुष्ट सेवक और बुरा मकान आदि अनिष्ट पदार्थोंका संयोग होना बुरे परिणाम होना मुंहसे दुर्वचन निकालना भाई बन्धु आदि इष्ट पदार्थोंका वियोग होना चंचलता बनी रहना और बुरा शरीर प्राप्त होना इत्यादि सब दुखोंके कारण जीवोंको प्राप्त होते हैं वह सब संसारमें पापोंका ही फल समझना चाहिये ॥४०-४४॥ तीर्थंकर भगवान शांतिनाथने इसप्रकार पापका फल कहकर फिर उन्होंने पुण्यके कारणभूत उत्तम आचरणोंका वर्णन किया ॥ ४५ ॥ पहिले जो पापके कारण बतलाए हैं उनके विपरीत कार्य करना व्रतोंका पालन करना उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका पालन करना तपश्चरण नियम यम पालना महापात्रोंको चारप्रकारका दान देना भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजन करना धर्मोपदेश देना संवेग वैराग्य आदिका चिंतवन करना कायोत्सर्ग धारण करना शुभ ध्यान करना, ध्यान अध्ययन आदि कार्य करना पंच परमेष्ठियोंके नामवाले मंत्रोंका जाप करना, भगवान जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करना, पापोंके डरसे सदाचार पालन करना, विनयपूर्वक मुनियोंकी सेवा करना और धर्मात्माओंके साथ वात्सल्य भाव धारण करना इत्यादि कार्योंसे तथा अन्य भी ऐसे ही कार्योंसे इस संसारमें प्राणियोंको तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिकी विभूति देनेवाला और सुखकी खानि ऐसा

महापुण्य उत्पन्न होता है ॥४६-५०॥ इसप्रकार हृदयको अच्छे लगनेवाले अमृतके समान मनोहर वाक्योंसे पुण्यके कारण बतलाकर और संसारको आनन्द उत्पन्न कर वे भगवान पुण्यका फल कहने लगे॥ ५१ ॥ इन्द्र होना, चक्रवर्ती होना, तीर्थंकर होना, वैराग्य धारण करना, कामदेव बलभद्र होना, धन धान्य आदि विभूतिका प्राप्त होना, हाथी घोड़ा आदि महासेनाकी प्राप्ति होना, अच्छे सेवक, आज्ञाकारी देव सबपर आज्ञा चलना कीर्ति फैलना बड़प्पन मिलना भोगोपभोग संपदाओंकी प्राप्ति होना, शरीर नीरोग और सुन्दर मिलना रूपवान होना शुभ भावनाएं होना, ज्ञानी और दीर्घजीवी होना इन्द्रियोंके सब दुखोंकी प्राप्ति होना अच्छे कुलमें जन्म लेना, उत्तम स्त्री प्रेम करनेवाले भाई पुत्र आदि मिलना उत्तम माता पिताका होना और इच्छानुसार सब सामग्रियोंका मिलना इत्यादि पदार्थ जो सुखके साधन दिखाई पड़ते हैं वे सब सज्जन लोगोंको पुण्यका फल समझना चाहिये ॥ ५२-५६ ॥ बहुत कहनेसे क्या ? पुण्य पापके बिना इस संसारमें न तो कोई सुख दे सकता है और न कोई दुख दे सकता है ॥ ५७॥ जो बुद्धिमान अपने हृदयमें ऊपर कहे हुए सब पदार्थोंका श्रद्धान करता है वह मोक्ष महलकी पहिली सिढ़ीके समान सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निर्मल ऐसे अपने शुद्ध आत्माका श्रद्धान करता है उसके उसी भवमें मोक्ष प्राप्त करा देनेवाला निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ ५९ ॥ जो विद्वान् इन सातों तत्वोंको यथार्थ रीतिसे जानता है वह मुक्ति स्त्रीके मुखदेखनेके दर्पणके समान महाज्ञान प्राप्त करता है ॥६०॥ जो आत्माको जाननेवाला बुद्धिमान अपने ज्ञानके द्वारा अपने ही आत्माको जानता है उसके मुक्ति स्त्रीको वश करनेवाला निश्चय ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य जीव अजीव आदि तत्वोंको जानकर सब प्राणियोंमें दया करता है, सब परिग्रहोंका तथा सब प्रमादोंका त्याग करता है और आत्माकी सिद्धिके लिए यत्नाचारपूर्वक जिनमुद्रा धारण करता है वह मुक्तिरूपी स्त्रीके चित्तको प्रसन्न करनेवाला तेरह प्रकारका चारित्र धारण करता है ॥ ६२ ॥-६३ ॥ जो बुद्धिमान अपने आत्माके भीतर ध्यानके द्वारा अपने आत्माका ही ध्यान करता है उसके निश्चय चारित्र प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ विद्वान पुरुष प्रथम रत्नत्रयके द्वारा

तीनों लोकोंमें उत्पन्न हुए सुखको पाकर तीर्थंकरकी महा विभूति प्राप्त करते हैं और अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्तकर तेहैं ॥ ६५ ॥ मुनिराज लोग घातिया कर्मोंको नाश कर और देवोंके द्वारा पूज्य होकर उसी भवमें मुक्तिरूपी स्त्रीके भोगनेवाले हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ फिर निश्चय रत्नत्रयके आराधनसे अघातिया कर्मोंको नाश कर जन्म मरण आदिसे रहित होकर अनन्त सुखमें लीन होजाते हैं ॥ ६७ जो बुद्धिमान पहिले मोक्ष गये हैं जा रहे हैं या जांयगे वे सब केवल निश्चय व्यवहार दोनों प्रकारके रत्नत्रयके आराधनसे ही गये हैं और उन्हींके आराधनसे जांयगे और किसीको आराधनासे कोई जीव कभी मुक्त नहीं हो सकता ॥ ६८ ॥ यही समझकर मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए परिग्रहोंको त्याग कर मुक्तिस्त्रीको अत्यन्त प्रिय ऐसे दोनों प्रकारके रत्नत्रयकी आराधना बड़े प्रयत्नसे करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ इसप्रकार भगवान जिनेन्द्र देवने भव्य जीवोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए साध्य साधनके रूपसे दोनों प्रकारके रत्नत्रयका निरूपण किया ॥ ७० ॥ फिर भगवानने भव्य जीवोंका उपकार करनेके लिए विस्तारपूर्वक सब श्रावकाचारका निरूपण किया और मुनियोंके आचारका, निरूपण बड़ी विशेषतासे किया ॥ ७१ ॥ फिर भगवानने द्रव्यपर्यायोंसे भरे हुए सब लोकाकाशका तथा अलोकाकाशका निरूपण किया और ऊर्ध्व मध्य अधोलोकके भेदसे लोकके भेद बतलाए ॥ ७२ ॥ तदनन्तर हानि वृद्धिको सूचित करनेवाले अवसर्पिणी कालके बारह भेद बतलाए तथा सुख दुख देनेवाली भोगभूमि और कर्म भूमिका स्वरूप बतलाया ॥ ७३ ॥ तीर्थंकर बलभद्र चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण और कामदेव आदिके पुराण बतलाए और चरमशरीरियोंके बहुतसे चरित्र कहे। इन तीर्थंकर आदिकोंके कल्याण भी बतलाऐ, उनके कारण और उनसे होनेवाले सुख भी बतलाए तथा उन सबकी आयु काय, नाम, आदि सब विस्तारपूर्वक बतलाया ॥७४-७५॥ जो कुछ हो चुका था, होरहाथा और होनेवाला वह द्वादशांगमें कहे जानेवाला सब भगवानने अपनी दिव्यध्वनिसे देव और मनुष्यों को बतलाया ॥ ७६ ॥ मनुष्य, देव, देवांगनाएं, गणधर मुनि आदि सब विवेकी जन तत्वोंका स्वरूप, धर्मका स्वरूप, रत्नत्रयका स्वरूप सुन सब लोकाकाशका स्वरूपसुनकर तथा मोक्षके मार्गको जानकर मोक्ष प्राप्त होनेके समान हृदयमें बहुत ही

आनन्दित हुए ॥ ७७-७८ ॥ उस समय कितने ही निकट भव्य जीवोंने दिव्यध्वनिके द्वारा धर्मका स्वरूप जानकर और वैराग्य धारणकर दीक्षा धारण करली थी ॥ ७६ ॥ कितने ही जीव अपने अपने योग्य व्रतोंको कोई जघन्य श्रावक होगए थे कोई मध्यम श्रावक हो गए थे और कोई उत्कृष्ट श्रावक हो गए थे और कोई मध्यम श्रावक हो गये थे ॥ ८० ॥ कितने भव्य देवोंने तथा मनुष्योंने भगवानके वचनामृतका पानकर मिथ्यात्वरूपी विषका त्याग कर दिया था और सम्यग्दर्शन धारण कर लिया था ॥ ८१ ॥ उन भगवान तीर्थंकर परमदेवसे सुख देनेवाले धर्मका स्वरूप सुनकर कितनी ही स्त्रियोंने, देवियोंने और तिर्यंचोंने दान देने, पूजनकरने और शील पालन करनेमें भावना लगाई थी, कितने ही जीवोंने मोक्षमें अपनी भावना लगाई थी, कितने ही जीवोंने महाव्रत धारण किए थे, कितनी ही ने अणुव्रत धारण किये थे और कितने ही ने सम्यग्दर्शन धारण किया था ॥ ८२-८३ ॥ तदनन्तर अनेक ऋद्धियोंको तथा चारों ज्ञानोंको धारण करनेवाले महाबुद्धिमान और मुख्य चक्रायुध गणधर देवने समस्त संसारका उपकार करनेके लिये उसी समय भगवान जिनेन्द्र देवसे अर्थ लेकर पदरूपसे विस्तार पूर्वक बारह अंगोंकी रचना की॥ ८४-८५ ॥ जब भगवानकी दिव्यध्वनि बंद हो गई, सब शांत हो गये, वायुरहित समुद्रके समान सब निश्चल हो गये तब सूक्ष्म बुद्धिको धारण करनेवाला सौधर्म इन्द्र उठा, हाथ जोड़कर भगवानके सामने खड़ा हुआ और समस्त जीवोंका उपकार करनेके लिये तथा भगवानसे विहार करनेकी प्रार्थना करनेके लिये भव्य जीवोंको सम्बोधन आदिसे उत्पन्न हुए अनेक गुणोंको लेकर बड़ी सावधानीके साथ भगवानकी स्तुति करने लगा ॥ ८६-८८ ॥ हे देव ! आप तीनों लोकोंके नाथ हैं, आप गुरुओंमें महागुरु हैं, देवोंमें महादेव हैं और पुण्यवानोंमें महा पुण्यवान हैं ॥ ८६ ॥ आप पूज्योंमें महापूज्य हैं, स्तुत्योंमें महा स्तुत्य अत्यन्त स्तुति करने योग्य हैं, वंद्योंमें महावंद्य हैं और धर्मात्माओंमें महान् धर्मात्मा हैं ॥ हे देव ! आप मान्योंमें महामान्य हैं, योगियोंमें महायोगी हैं, ज्ञानियोंमें महाज्ञानी हैं और शुभोंमें महाशुभ हैं ॥ ६१ ॥ आप चतुरोंमें महाचतुर हैं, व्रतियोंमें महाव्रती हैं, धन्योंमें महाधन्य हैं और मनोहरोंमें महामनोहर हैं ॥ ६२ ॥ आप मौनियोंमें

महामौनो हैं, ऋषियोमें महाऋषी हैं, चक्रवर्तियोंमें महाचक्रवर्ती हैं और बुद्धिमानोंमें महाबुद्धिमान हैं ॥ ६३ ॥ आप शरण्योंमें (जिनको शरण ली जाय) महा शरण्य, गुणियोंमें महागुणी, धीरवीरोंमें महाधीरवीर, और यतियोंमें सर्वोत्तम यति, ॥ ६४ ॥ आप ध्यानियोंमें महाध्यानी संयमियोंमें महासंयमी, दानियोंमें महादानी, और दर्शनीयोंमें (दर्शन करने योग्योंमें) महादर्शनीय, ॥ ६५ ॥ आप बंन्धुओंमें परम बंन्धु, पिताओंमें पितामह, प्राथ्योंमें (जिनसे प्रार्थना की जाय) महा प्रार्थ्य, और हितैषियोंमें परम हितैषी ॥ ६६ ॥ आप ज्येष्ठोंमें महाज्येष्ठ (सबसे बड़े) उत्तमोंमें महाउत्तम, और तत्वोंमें महातत्व, । हे प्रभो ! आप इच्छा रहित हैं और जानकारोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६७ ॥ हे देव ! समुद्रकी लहरोंकी संख्या जानी नहीं जाती, आकाशके प्रदेशोंकी संख्या नहीं जानी जाती, बादलोंसे गिरती हुई धाराओंकी संख्या नहीं जानी जाती और नदियोंमें बालूके परमाणुओंकी संख्या नहीं जानी जा सकती, उसीप्रकार हे नाथ ! आप गुणोंके समुद्र हैं आप उपमारहित गुणोंकी संख्या गणधरादिकोंके द्वारा भी नहीं जानी जा सकती। इसलिए हे प्रभो ! मुझ ऐसोंसे आपके अनन्त गुण किसप्रकार कहे जा सकते हैं यही समझकर आपकी स्तुति करनेमें भी मेरा मन कम्प रहा है ॥ ८८-३०० ॥ हे स्वामिन् ! आप तीनों लोकोंके भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेमें समर्थ हैं। संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेमें समर्थ हैं और बादलके समान सबको तृप्त करनेमें समर्थ हैं ॥ १ ॥ जिसप्रकार सब देशोंमें बादलोंकी वर्षाके विना संसारको तृप्त करनेवाले धान्योंकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती उसीप्रकार हे नाथ ! आपके धर्मोपदेशरूपी अमृतकी वर्षाके विना भव्य जीवोंको स्वर्ग मोक्षके सुखदेनेवाले धर्मकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ २—३ ॥ इसलिये हे देव अब आज सज्जनोंका मोह और मिथ्यात्वको नाश करनेके लिये तथा सन्मार्गका उपदेश देनेके लिये य समय आगया है ॥ ४ ॥ हे देव आपसे धर्मोपदेशको सुनकर क्रूर पशु भी व्रतोंको धारण कर स्वर्ग पहुंचते हैं फिर भला भव्य जीवोंकी तो बात ही क्या है ॥ ५ ॥ इसलिये हे प्रभो ! अब भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिये आप महा उद्योग कीजिए। आपके तैयार होनेपर आपकी बिजयके उद्योगको सिद्ध करनेवाला

यह धर्मचक्र तैयार है ॥ ६ ॥ भगवान शांतिनाथ जगतको धर्मोपदेश देनेके लिए स्वयं उद्यत थे तथापि सौधर्म इन्द्रने उनकी स्तुतिकी। भक्तिपूर्वक विहार करनेके लिए भूमिका बांधी उनके गुणोंकी प्रार्थनाकी, उन्हे नमस्कार किया, जगतको आनन्द उत्पन्न किया और इसप्रकार वह अपनेको धन्य धन्य मानने लगा ॥ ७-८ ॥ तदनन्तर तीनों लोकोंके नाथ भगवान शांतिनाथ समस्त लोगोंके साथ धर्म चक्रको आगे रखकर विजयका (विहार करनेक) उद्योग करने लगे ॥ ९ ॥ भगवानके विहार करते समय करोंड़ो देव साथ चल रहे थे और जय जय शब्दोंकी घोषणा कर रहे थे जिससे बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था ॥ १० ॥ इसप्रकार भगवान शांतिनाथ सूर्यके समान इच्छारहित वृत्तिको धारण करते हुए सब देवोंके साथ विहार करने लगे ॥११॥ भगवान जिस देशमें विहार करते थे उसी देशमें सौ सौ योजन तक सुभिक्ष रहता था और ईति भीति सब नष्ट हो जाती थीं ॥ १२॥ समस्त जीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिए भगवान आकाश में ही विहार करते थे और धर्मरूपी अमृतकी महावृष्टि कर भव्यरूपी धान्योंको सींचते ॥ १३ ॥ भगवानकी शांत अवस्थाके प्रभाव से हिरणी बाघिनी; सर्प नकुल आदि जातिविरोधी जीव भी एक साथ रहते थे और कोई किसीको नहीं मार सकता था ॥ १४ ॥ भगवानका मोहनीय कर्म नष्ट होगया था इसलिए उनके कवला हार नहीं था, वे नोकर्म वर्गणाओंसेही तृप्त थे और शुद्ध आत्मासे उत्पन्न हुए अनन्त सुखसेसुखी थे ॥१५॥ उनके वेदनीय आदि कर्म भी जली हुई रस्सीके समान निरुपयोगी थे इसलिए उन भगवानके तिर्यंच वा देवोंसे होनेवाला कोई किसीतरहका उपसर्ग नहीं होता था ॥ १६ ॥ देव मनुष्य पशु आदि सब जगतगुरु भगवानको सब दिशाओंमें अपनी ओर हो देखते थे अर्थात् वे भगवान चतुरमुख विराजमान थे इसलिए उनके दर्शन चारों दिशाओंमें होते थे ॥ १७॥ वे भगवान सर्व विद्याओंके स्वामी थे, क्योंकि समस्त तत्वोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उनके प्रगट होगया था ॥ १८॥ उन जगतगुरु भगवानके ज्ञान अतिशय प्राप्त होनेसे शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी, नेत्रोंकी टिमिकार नहीं लगती थी और नख केशोंकी वृद्धि नहीं होती थी ॥ १९ ॥ भगवान शांतिनाथके घातिया कर्मोंके नाशहो जानेसे ये ऊपर लिखे दश अतिशय प्राप्त हुए थे

अपने और दूसरोंका उपकार करनेवाले ये दश अतिशय तीर्थंकरोंके ही होते हैं और किसीके नहीं ॥ २० ॥ धर्मोंपदेश देनेवाले उन भगवानके अर्द्धमागधी भाषा थी जो कि देव मनुष्य तिर्यंच सबकी भाषामय परिणत होती थी । अर्थात् सब जीव उसको अपनी अपनी भाषामें समझ लेते थे ॥२१॥ भगवानके समीप हिरण, बाघ, हाथी सिंह आदि जातिविरोधी जीवोंमें भी परस्पर मैत्रीभाव था ॥२२॥ उनके समीपकी भूमिपर देवोंके बनाए हुए मनोहर वृक्ष थे जोकि सब ऋतुओंके फल पुष्पोंके भारसे नम्र थे ॥२३॥ उस समवशरणमें दर्पणके समान निर्मल पृथ्वी थी जोकि बड़ी मनोहर थी रत्नमयी थी, सारभूत थी और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित थी ॥२४॥ संसारको धर्मोपदेश देनेकेलिए भगवानको विहार करते हुए जानकर सुख देनेवाली शीतल और सुगंधित वायु मन्द मन्द रीतिसे बहती थी ॥ २५ ॥ भगवानके निकट रहनेवाले देव विद्याधर मनुष्य पशु आदि सबको धर्म उत्पन्न होनेवाला परम आनन्द प्रगट होता था ॥ २६ ॥ वायुकुमार देव समवशरणसे एक एक योजन तक पृथ्वीको तृण कीड़े पत्थर आदिसे रहित कर देते थे ॥ २७ ॥ स्तनिकुमार देव भगवानके ऊपर इन्द्रधनुषसे सुशोभित और अनेक प्रकारकी बिजलीके विलासोंसे सुन्दर ऐसी गंधोदककी वर्षा करते थे ॥२८॥ भगवानका चरण जहांपर पड़ता था वहीं पर देव लोग उत्तम केसरसे सुशोभित दो सौ पच्चीस कमलोंकी रचना कर देते थे ॥ २९ ॥ भगवान तीर्थंकरके समीप सब पृथ्वी देवोंके अतिशयसे फलोंसे नम्रीभूत हुए चांवल आदि सब धान्योंसे सुशोभित दिखाई पड़ती थी ॥ ३० ॥ भगवानके समवसरणमें शरद ऋतुओंके सरोवरके समान सब आकाश निर्मल था और २ सब दिशायें निर्मल शोभायमान थीं ॥ ३१ ॥ चारों प्रकारके देव इंद्रकी आज्ञासे भगवानकी यात्राके लिये बहुत शीघ्र परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे ॥ ३२ ॥ जिसके एक हजार आरे हैं, जो महा दैदीप्यमान है, सूर्यको जीत रहा है, देव जिसकी रक्षा कर रहे हैं और जो रत्नोंका बना हुआ है ऐसा धर्म चक्र भगवानके आगे २ चलता था ॥ ३३ ॥ देव लोग भक्तिपूर्वक दर्पण आदि मनोहर अष्ट मंगल द्रव्य भगवानके सामने लिये खड़े थे ॥ ३४ ॥ घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले भगवानके देवोंके द्वारा किये हुये और महा ऋद्धिको धारण करनेवाले ये सब चौदह अतिशय शोभायमान थे ॥ ३५ ॥ आठों प्रातिहार्योंसे

सुशोभित वे भगवान जब आकाशमें विहार करते थे तब उनके चारों ओर करोड़ों ध्वजाएं फहराती थीं ॥ ३६ ॥ उस समय बहुतसे नगाड़ोंके शब्द हो रहे थे, जिनके शब्दोंसे सब दिशाएं भर गई थीं जो बड़े ही प्रेम प्रगट करनेवाले थे गंभीर थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों कर्मरूपी शत्रुओंको ललकार ही रहे हों ॥ ३७ ॥ आकाशरूपी रंगभूमिमें अप्सरायें नृत्य कर रहीं थीं गानेवाले देव और विद्याधर वीणाके साथ मधुर गीत गा रहे थे ॥ ३८ ॥ देव लोग बड़े उत्साहसे "भगवानकी जय हो, भगवानकी जय हो" आदि शब्द कह रहे थे और इन्द्रादिक भी अपने २ मुखसे जय २ शब्द कर रहे थे ॥ ३६ ॥ इसप्रकार जगतपति भगवान शांतिनाथ समस्त संसारको आनंदित करते हुये और अपने वचनरूपी अमृतसे सबको तृप्त करते हुये सब पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥ ४० ॥ दिव्य मूर्तिको धारण करनेवाले भगवान शांतिनाथरूपी सूर्यने अपने वचनरूपी किरणोंसे मिथ्यात्वरूपी अन्धकारके समूहको नष्टकर दिया और समस्त संसारको प्रकाशित कर दिया ॥ ४१ ॥ वे भगवान मोक्षादि रूप फलोंकी प्राप्तिके लिये बड़े प्रेमसे सब देशोंमें भव्यरूपी धान्योंके ऊपर सदा धर्ममयी वृष्टि करते हुए, मोहरूपी महा नींदको दूर करते हुये और अनेक भव्योंके हृदय कमलोंको प्रफुल्लित करते हुए अनुक्रमसे सब पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥ ४२-४३ ॥ बहुत दिनके प्यासे और इसीलिये धर्मरूपी जलकी इच्छा करते हुये भव्यरूपी चातकोंने भगवानरूपी बादलसे धर्मरूपी जलको बराबर पाकर खूब अच्छी तरह अपनी प्यास बुझाई थी ॥ ४४ ॥ उस समय वे भगवान तीव्र दुःख-रूपी अग्निसे जले हुये समस्त संसारको धर्मामृतरूपी जलसे सींचते हुए और सबको आनंदित करते हुये नवीन मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ४५ ॥ उन तीर्थंकर भगवानने बारह सभाओंके साथ सन्मार्गका (मोक्षमार्गका) उपदेश देनेके लिये अनुक्रमसे अवंति, कुरु, काशी, कोशल, अंग, वंग, मगध, कलिंग, सह्म, पुंड्र, विदर्भ, मंद्र, मालह, और पंचाल आदि अनेक देशोंमें विहार किया ॥ ४६-४७ ॥ समस्त अंगोंको जाननेवाले और अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले ऐसे चक्रायुधको आदि लेकर छत्तीस गणधर भगवानके चरण कमलोंको नमस्कार करते थे ॥ ४८ ॥ ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले और

समस्त प्राणियोंके हित करनेमें तत्पर ऐसे ग्यारह अंग चौदह पूर्वरूपी महासागरके पारंगत अर्थात् ग्यारह अंग चौदह पर्वके पाठीं श्रुतकेवली आठ सौ थे ॥ ४९ ॥ इसीतरह ध्यान और अध्ययनमें लगे हुए शिक्षकोंकी संख्या इकतालीस हजार आठ सौ थी ॥ ५०॥ पदार्थोंको प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों रीतियोंसे जाननेवाले तीन हजार अवधिज्ञानी मुनि भक्तिपूर्वक भगवानके चरणकमलोंको नमस्कार करते थे ॥ ५१ ॥ जिन्हें समस्त संसार नमस्कार करता है और आत्माके भीतर होनेवाले गुणोंसे जो सब समान हैं ऐसे केवलज्ञानियोंकी संख्या चार हजार थी ॥ ५२ ॥ अनेक आकार और अनेक रूप बनानेमें समर्थ ऐसे विक्रिया ऋद्धिसे सुशोभित होनेवाले मुनियोंकी संख्या छह हजार थी ॥ ५३ ॥ सूक्ष्म पदार्थोंको जाननेवाले चार हजार मनःपर्ययज्ञानी मुनि भक्तिपर्वक भगवानकी सेवा करते थे ॥ ५४॥ कुवादियोंके अज्ञानांधकारको नाशकर सन्मार्गको दिखानेवाले वादियोंकी संख्या दो हजार चार सौ थी ॥ ५५ ॥ इसप्रकार रत्नत्रयसे सुशोभित द्रव्य और भावलिंगी सब मुनियोंकी संख्या बासठि हजार थी ॥ ५६ ॥ सम्यग्दर्शन और शील आदि व्रतोंसे विभूषित ऐसी हरिषेणाको आदि लेकर साठ हजार तीन सौ अर्जिकाएं थी ॥ ५७ ॥ सम्यग्दर्शन और व्रत आदि गुणोंसे विभूषित ऐसे सुरकीर्तिको आदि लेकर दो लाख श्रावक भगवानके चरण कमलों की पूजा करते थे ॥ ५८ ॥ सम्यग्दर्शन और शीलव्रत आदिसे विभूषित ऐसी अर्हद्दासीको आदि लेकर चार लाख श्राविकायें भक्तिपूर्वक भगवानकी पूजा करती थी ॥ ५९ ॥ इनके सिवाय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी भावनामें तत्पर रहनेवाले असंख्यात देव देवियां भगवानके चरण कमलोंकी सदा सेवा करती थीं पूजा करती थीं स्तुति करती थीं ॥ ६० ॥ इनके सिवाय देशव्रतको धारण करनेवाले सिंह सर्प आदि संख्यात ही पशु भक्ति पूर्वक भगवानको नमस्कार करते थे, ऐसे उन भगवानको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये मैं भी नमस्कार करता हूं ॥ ६१ ॥ इसप्रकार बारह सभाओंके साथ सद्धर्मका उपदेश देते हुये और विहार करते हुए जब भगवानकी एक महीनेकी आयु रह गई तब वे सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए ॥ ६२ ॥ भगवान शांतिनाथके केवलज्ञानका समय (सशरीर केवलज्ञानका समय) सोलह वर्ष कम पच्चीस हजार (चौबीस

हजार नौ सौ चौरासी) वर्ष समझना चाहिये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वे भगवान शांतिनाथ विहार और धर्मोपदेश छोड़कर वहींपर मौन धारणकर और निश्चल होकर विराजमान हुए ॥ ६४ ॥ तदनन्तर जब उनकी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई तब उन्होंने मोक्ष जानेके लिये सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामके शुक्लध्यानसे योगोंका निरोध किया ॥ ६५ ॥ फिर योगरहित उन भगवानने व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामके शुक्लध्यानसे दो गंध, पांच रस, पांच वर्ण, पांच शरीर, पांच बंधन, पांच संघात, छह संस्थान, छह संहनन, देवगत्यानुपूर्वी, देवगति, दो विहायोगति (प्रशस्त अप्रस्शत) परघात, अगुरुलघु, उच्छ्वास, अपघात, अयशस्कीर्ति, अनादेय, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, स्थिर, अस्थिर, आठ स्पर्श, निर्माण, तीन अंगोपांग, अपर्याप्तक, दुर्भग, प्रत्येक शरीर, नीच गोत्र और असातावेदनीय ये बहत्तरि प्रकृतियां सबसे पहिले नष्ट कीं । फिर दूसरे ही समयमें उन अयोगी भगवान शांतिनाथने बाकीके कर्मोंको नाश करनेके लिये उद्यम किया और आदेय, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, पंचेंद्रिय जाति, यशःकीर्ति, पर्याप्ति, त्रस, वादर, सुभग, मनुष्यायु, ऊंच गोत्र, सातावेदनीय और तीर्थंकर नाम कर्म ये तेरह प्रकृतियां उसी गुणस्थानके अन्तिम समयमें नष्ट कीं ॥ ६६-६७ ॥ इसप्रकार ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके पहिले समयमें वे कृतकृत्य भगवान 'अ इ उ ऋ लृ' इन पांच लघु अक्षरोंके उच्चारण कालतक अयोगी रहकर तथा समस्त कर्मोंको और तीनों शरीरोंको नष्टकर लोकके शिखरपर जा विराजमान हुए ॥ ७५-७६ ॥ वे भगवान समस्त बंधनोंसे रहित होकर ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेसे एरंडसे छूटे हुये बीजके समान एक ही समयमें लोकशिखरपर जा विराजमान हुए ॥ ७७ ॥ जिनको समस्त संसार नमस्कार करता है और जो समस्त पदार्थोंको एक साथ देखने जाननेवाले हैं ऐसे वे भगवान वहांपर दिव्य गुणोंको पाकर उपमारहित, सदा एकसा रहनेवाला, अनंत, विषयोंसे रहित, नित्य, केवल आत्मासे प्रगट होनेवाला जन्म मरण जरा आदि दोषोंसे रहित और हानि वृद्धिसे रहित ऐसे निर्मल सुखका अनुभव करने लगे ॥७८-७९॥ देव मनुष्योंको तीनों कालोंमें और तीनों लोकोंमें जो पूर्ण सुख है उससे अनंतगुणा सुख वे भगवान एक

समयमें अनुभव करते थे ॥ ८० ॥ उसी समय उनकी अन्तिम पूजा करनेकी इच्छासे सब इन्द्रादिक देव आए और उन्होंने बड़ी भक्तिसे भगवानके उस मोक्षको सिद्ध करनेवाले परम पवित्र शरीरकी पूजा की। फिर उस शरीरको बहुमूल्य पालकीमें विराजमानकर चंदन अगुरु कपूर सुगंधित द्रव्योंके साथ बड़े आदर से ले गये और अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे प्रगट हुई अग्निसे वह शरीर शीघ्र ही पर्यायांतरको प्राप्त कर दिया अर्थात् भस्म कर दिया। उस समय उसकी सुगंधिसे सब दिशायें सुगंधित हो गई थीं ॥ ८१-८३ ॥ तदनंतर उन इन्द्रादिक देवोंने पंच कल्याणकोंको प्राप्त होनेवाले भगवान शांतिनाथके शरीरकी भस्म को बड़ी भक्तिसे ललाटपर, हृदयमें, कंठमें और भुजाओंपर लगाया ॥ ८४ ॥ फिर उन्होंने भगवानसे प्रार्थना की कि "हम भी ऐसे ही हों अर्थात हमको भी यह पद प्राप्त हो "इसके बाद उन्होंने आनंद नाटक किया और फिर प्रसन्न होकर वे सब देव अपने २ स्थानको चले गये ॥ ८५ ॥ चक्रायुध गणधरको आदि लेकर नौ हजार मुनि संयम धारणकर केवलज्ञान पाकर और इन्द्रादिक देवोंके द्वारा की हुई पूजाको पाकर तीनों शरीरोंको नष्टकर समस्त कर्मोंके नष्ट होनेसे सदा रहनेवाले और अनंत सुखके सागर ऐसे मोक्षमें जा विराजमान हुए थे, अर्थात् उनके समयमें नौ हजार मुनि मोक्ष गए थे ॥ ८६-८७ ॥ मोक्ष अवस्थामें जिनका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ कम है, जो मुक्तिस्त्रीके साथ परम सुखका अनुभव करते हैं और जो समस्त संसाररूप वंद्य हैं, ऐसे श्रीशांतिनाथ जिनराजको मैं उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त निर्मल भक्तिसे स्तवन करता हूं ॥८८॥ जो निर्मल गुणोंके निधान हैं, मुक्तिनाथ हैं, विद्वानोंके द्वारा परम पूज्य हैं, उपमारहित सुखके सागर हैं, सिद्ध पर्यायको प्राप्त हुये हैं, जिन्होंने लोकके शिखरपर अपना निवास बनाया है और जिन्होंने समस्त कर्म जीत लिये हैं, ऐसे सोलहवें तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ सदा जयशील हों ॥ ८९ ॥ जिन्होंने अपने पुण्यकर्मके उदयसे समस्त इंद्रियोंको प्रसन्न करनेवाले मनुष्य भवके सुखोंका अनुभव किया फिर देव पर्यायोंके सुखोंका अनुभव किया, वहांपर बहुतसी विभूति पाई, फिर तीर्थंकर चक्रवर्ती कामदेवकी विभूति प्राप्त की अन्तमें जिन्होंने मोक्ष स्त्री प्राप्त की ऐसे वे अत्यन्तसुन्दर भगवान

शांतिनाथ मेरे लिए शांति प्रदान करें ॥ ९० ॥ भगवान शांतिनाथ तीनों लोकोंके सज्जनोंको शांति करनेवाले हैं धार्मिक लोग भगवान शांतिनाथका आश्रय लेते हैं, भगवान शांतिनाथके द्वारा ही मोक्ष सुख प्राप्त होता है, उन भगवान शांतिनाथ को मैं शांति प्राप्त करने के लिये नमस्कार करता हूं। भगवान शांतिनाथ के सिवाय अन्य कोई मनुष्यों का हितकारी नहीं है, मुक्त्यंगना भगवान शांतिनाथकी ही है, मैं अपना हृदय भगवान शांतिनाथमें ही लगाता हूं। हे प्रभो! शांतिनाथ, हमें अपने गुण प्रदान कीजिये ॥ ९१ ॥ जो पहिले श्रीषेण राजा हुए थे, फिर दानके फलसे देवकुरुमें भोगभूमिया हुए थे, वहांसे शरीर छोड़कर पुण्यकर्म के उदयसे सौधर्म स्वर्गमें श्रीप्रभ नामके बड़े देव हुए थे, वहांसे चयकर सब विद्याओंके स्वामी राजा अमिततेज हुए थे, वहांसे शरीर छोड़कर आनत नामके तेरहवें स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले रविचूल नामके देव हुए थे। वहांसे चयकर श्रीमान् पुण्यवान राजा अपराजित नामके बलभद्र हुये थे, फिर धर्मके प्रभावसे अच्युत स्वर्गके इन्द्र हुए थे, वहांसे चयकर वज्रायुध नामके चक्रवर्ती हुए थे, फिर चारित्र धारणकर सातवें ग्रैवेयकमें अत्यन्त सुखी अहमिन्द्र हुए थे, वहांसे चयकर अनेक राजाओंके द्वारा बंदनीय ऐसे राजा मेघरथ हुए थे, वहांसे सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र उत्पन्न हुए थे और फिर वहांसे आकर भगवान शांतिनाथ हुए थे जो कि अत्यन्त सुन्दर थे, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, कामदेव थे, समस्त सज्जनोंकी इच्छाएं पूरी करनेवाले थे, जिन्होंने देव और मनुष्योंके उपमारहित सुखोंका अनुभवकर तथा पंच कल्याणकोंसे प्राप्त हुए सुखका अनुभवकर मुक्तिरूपी मनोहर स्त्री प्राप्त की थी ऐसे वे भगवान शांतिनाथ हमारे लिए अपनी अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी प्रदान करें ॥ ९२-९४ ॥ जो पहिले अनिन्दिता नामकी राजा श्रीषेणकी रानी थी, फिर भोगभूमिमें आर्या हुई, वहांसे सौधर्म स्वर्गमें विमलप्रभ नामका देव हुआ, फिर राजा श्रीविजय हुआ, फिर आनत स्वर्गमें मणिचूल देव हुआ, फिर अनन्तवीर्य नारायण (अर्धचक्रवर्ती) हुआ, फिर पापकर्मके उदयसे पहिले नरकमें नारकी हुआ, वहांसे आकर मेघनाद विद्याधर हुआ, फिर धर्मके प्रभावसे अच्युत स्वर्गमें प्रतींद्र हुआ, फिर राजा सहस्रायुध हुआ, फिर धर्मके प्रभावसे सातवें ग्रैवेयकमें सुखसागरमें रहनेवाला

अहमिन्द्र हुआ, फिर राजा दृढ़रथ हुआ, वहांसे सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिन्द्र हुआ, वहांसे आकर चक्रायुध गणधरदेव हुए और फिर जिन्होंने समस्त संसारमें एकमात्र पूज्य होकर और समस्त कर्मोंका नाशकर तथा समस्त संसारके स्वामी होकर तीनों लोकोंमें मान्य और तीर्थंकरोंके द्वारा सेवनीय ऐसी सर्वोत्तम मोक्षबधू प्राप्त की ऐसे वे भगवान चक्रायुध गणधरदेव शीघ्र ही अपने गुण हमें प्रदान करें ॥ ९५-९९ ॥ देखो अनिन्दता रानी राजा श्रीषेणका हित करती थी और उनसे प्रेम करती थी उसने पहिले तो मनुष्य और देवोंके सुख भोगे और फिर श्रीषेणके तीर्थंकर होनेपर गणधरका पद पाया और मोक्ष प्राप्त की। इसप्रकार उसने उनके साथ सब सुखोंका अनुभव किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको सज्जनोंके समागमसे क्या २ इष्ट पदार्थ प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् सब कुछ प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥

देखो ! भगवान शांतिनाथने पहिले भवोंमें धर्मसाधन किया था इसलिये उन्होंने मनुष्य और देवोंके बहुतसे सुखोंका अनुभव किया था, बारह जन्म तक अनेक विभूतियां प्राप्तकी थीं और अन्तमें अविचल मोक्ष पद प्राप्त किया था। यही समझकर विद्वान लोगोंको स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाले धर्ममें सदा और निरन्तर परम प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥ १ ॥ यह श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ श्रेष्ठधर्म मुक्तिका कारण है, सब सुखोंका निधि है, स्वर्ग राज्यादिकको उत्पन्न करनेके लिए महासागर है, तीर्थंकरोंकी ऋद्धियोंको देनेवाला है, गणधर पदको देनेवाला है, इन्द्रकी विभूतिको उत्पन्न करनेवाला है, संसारकी समस्त लक्ष्मीको देनेमें समर्थ है, सर्वमान्य है, गुणोंके समूहोंका भवन है, और विद्वानोंके द्वारा पूज्य है इसलिए चतुर पुरुषोंको आत्मसिद्धि करनेके लिए सब प्रयत्नोंके साथ इसका सेवन करना चाहिए ॥ २ ॥ जो श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकर तीनों कालमें और सब द्वीपोंमें उत्पन्न हुए हैं जो तीनों लोकोंमें पूज्य हैं, ज्ञानके दीपक हैं धर्मके स्वामी हैं, अनंत अत्यंत उत्कृष्ट हैं, जिनवरोंमें श्रेष्ठ हैं, समस्त दोषोंसे रहितहैं, तीनों लोकोंके स्वामी हैं, सबको शरण हैं और धर्मके आधार हैं, ऐसे वे समस्त तीर्थंकर भगवान हम तुम लोगोंको अपनी समस्त निर्मल लक्ष्मी प्रदान करें ॥३॥ जो सिद्ध भगवान प्रबुद्ध हैं प्रसिद्ध हैं, सब लोग जिनको नमस्कार करते हैं, जो

लोकशिखरपर विराजमान हैं, जो लोकोत्तर हैं, अनन्त पूर्ण सुखी हैं, जिन्होंने संसारका सब भार छोड़ दिया है, जो अव्याबाधस्वरूप (सब तरहके बाधाओंसे रहित) हैं जो अरूपी हैं निर्मल अनन्त गुणोंसे सुशोभित हैं और ज्ञान शरीरी हैं ऐसे श्रीसिद्धभगवानको मैं अपने हृदयमें स्थापन करता हूं और उनकी स्तुति करता हूं । सिद्ध भगवान हमें सिद्ध पद प्राप्त करें ॥ ४ ॥ जो आचार्य पंचाचार पालन करनेमें तत्पर हैं, और प्राणियोंका अनुग्रह करनेमें चतुर हैं, जो उपाध्याय पूर्ण श्रुतज्ञानका पाठ करनेमें चतुर हैं और मुनियोंके पढ़ानेमें तत्पर हैं तथा जो मुनिराज तीनों योगोंको धारण करनेवाले (वश करनेवाले) हैं, अत्यन्त तपस्वी हैं और मोक्ष स्त्रीके साधक हैं उन सब आचार्य उपाध्याय और मुनियोंको मैं नमस्कार करता हूं । वे सब हमें अपने अपने गुण प्रदान करें ॥ ५ ॥ जो श्रीअरहंतदेवका शासन ज्ञानमय है, भगवान सर्वज्ञ देवके मुख कमलसे प्रगट हुआ है गुणोंका घर है समस्त संसारको प्रकाशित करनेके लिये दीपकके समान है, सबका हित करनेवाला है, अज्ञानको दूर करनेवाला है, धर्मका स्वरूप करनेवाला है, मुनिराज भी जिसकी सेवा करते हैं, देव भी जिसकी पूजा करते है, जो सारभूत अमृतके समान है, अत्यन्त निर्मल है स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाला है और संसारके समस्त सज्जनोंको जो सदा शरणभूत है ऐसा वह श्रीअरहंतदेवका शासन सदा जयशील रहे ॥ ६ ॥ थोड़ीसी बुद्धिको धारण करनेवाले मुझ (सकलकीर्ति) मुनिके द्वारा बड़े कष्टसे जो यह श्रीशांतिनाथका निर्मल चारित्र कहा गया है वह बहुत दिन तक युग पर्यंत वृद्धिको प्राप्त होता रहे ॥ ७ ॥ यह श्रीशांतिनाथका चारित्र सब प्रकारके रागादि विकारोंको दूर करनेवाला है, व्रतोंका कारण है, धर्मका स्थान है गुणोंकी खानि है और रागादिक विकारोंसे सर्वथा रहित है इसलिये वीतराग मुनियोंको यह सदा पढ़ना पढ़ाना चाहिए ॥ ८ ॥ गुणियोंमें चतुर जो मुनि श्रेष्ठ धर्मके बीजरूप ऐसे इस पूर्ण शास्त्रको अपने शुद्ध परिणामोंसे पढ़ते हैं पढ़ाते हैं वा पुण्यके लिये जैन सभाओंमें इसका व्याख्यान करते हैं वे सम्यग्दृष्टी मुनि रागादिक विकारोंका नाश करते हैं निर्मल पुण्यराशि, सम्यग्ज्ञान गुण और विवेकको प्राप्त करते हैं और मनुष्य तथा देव गतियोंके उत्तम सुखोंका अनुभव कर अनुक्रमसे भगवान शांतिनाथके समान मोक्षमें जा

विराजमान होते हैं ॥ ६-१० ॥ मैं अल्पज्ञानी हूं, मैंने केवल मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे यह श्रीशांतिनाथके चरित्रका निर्माण किया है इसमें मेरे अज्ञान वा प्रमादसे जो स्वरसंधि छूट गई हो, कोई वर्ण रह गया हो वा मात्रा छूट गई हो उन सब मेरे दोषोंको सम्यग्ज्ञानी चतुर मुनि केवल मेरे लिए क्षमा करें ॥ ११ ॥ मैंने यह ग्रन्थ न तो अपनी कीर्ति फैलानेके लिये बयाना है न बड़प्पनके मिलने अथवा अन्य किसी लाभके लिये बनाया है और न अपने कवित्व आदिके अभिमानसे ही बनाया है, किंतु यह ग्रन्थ पापोंको नाश करनेके लिये तथा अपना और दूसरोंका उपकार करनेके लिए ही बनाया है ॥ १२ ॥ बहुत थोड़े श्रुतज्ञानको जानने-वाले सकलकीर्ति मुनिने यह श्रीशांतिनाथका चरित्र बनाया है इसको समस्त आगमको जाननेवाले वीतराग मुनि शुद्ध कर लें ॥ १३ ॥ यह श्रीशांतिनाथका चरित्र समस्त सुखोंका समुद्र है, अत्यन्त मनोहर है और मोक्ष सुख देनेवाले त्याग व्रतकी जड़ है इसलिए समस्त मुनियोंके मुख कमलोंके द्वारा सब पृथ्वीपर इसकी वृद्धि हो और पापोंको नाश करनेके लिए सब बुद्धिमान् अपनी २ पुस्तकोंमें लिखकर इसका प्रचार करें ॥ १४ ॥ श्रीशांतिनाथ भगवान अत्यंत शांत हैं, इन्द्रादिक सब देवोंके द्वारा पूज्य हैं, समस्त संसारके ईश्वर हैं, तीर्थंकर हैं, सौभाग्यकी एक निधि हैं, मूक्तिस्त्रीके पति हैं, तीर्थंकर और चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे सुशोभित हैं, शांति और धर्मको देनेवाले हैं, कामदेव हैं, चक्ररत्न और धर्मचक्र दोनोंको धारण करनेवाले हैं और सज्जनोंको अतिशय सेव्य हैं, ऐसे वे भगवान शांतिनाथ इस अपने चरित्रके साथ इस पृथ्वीपर सदा जय-शील बने रहें ॥ १५ ॥ मैंने इस उत्तम ग्रन्थके द्वारा भक्तिपूर्वक श्रीशांतिनाथ भगवानकी स्तुति की है इस लिए जब तक मुझे मोक्ष प्राप्त न हो तब तक वे शांतिनाथ भगवान कृपापूर्वक शीघ्र ही मेरे कर्मोंका नाश करें, मेरे दुखोंको दूर करें, निर्मल रत्नत्रय दें, समाधिप्रदान करें और श्रेष्ठ ध्यानकी प्राप्ति करावें ये सब बातें मोक्ष प्राप्त होने तक मुझे जन्म जन्ममें प्राप्त हों ॥ १६ ॥ 92548

इसप्रकार भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित शांतिनाथ पुराणमें श्रीशांतिनाथका समवसरण, धर्मोपदेश और मोक्षगमनका वर्णन करनेवाला सोलहवां अधिकार और ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ १६ ॥